भगवान श्री महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे

सप्ततिका प्रकरण नामक

[षष्ठ भाग]

(मूल, शब्दार्थ, गाथार्थ, विशेषार्थ, विवेचन, टिप्पण, पारिभाषिक शब्दकोष आदि से युक्त)

व्याख्याकार
मरुधरकेसरी, प्रवर्तक
मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज

सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'
देवकुमार जैन

प्रकाशक
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
जोधपुर—ब्यावर

श्री मरुधरकेसरी साहित्यमाला का ४१वा पुष्प

पुस्तक कर्मग्रन्थ [षष्ठ भाग]

पृष्ठ ६०६

सम्प्रेरक विद्याविनोदी श्री सुकनमुनि

प्रकाशक श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर [राजस्थान]

आवृत्ति : वीर निर्वाण सवत् २५०२
वि० स० २०३३, ज्येष्ठ पूर्णिमा
ई० सन् १९७६, जून

मुद्रक : श्रीचन्द सुराना के लिए
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–४

मूल्य १५) पन्द्रह रुपये मात्र

पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव आशुकविरत्न
मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

सम्पादकीय

जैनदर्शन को समझने की कुन्जी है—'कर्मसिद्धान्त'। यह निश्चित है कि समग्र दर्शन एव तत्त्वज्ञान का आधार है आत्मा, और आत्मा की विविध दशाओ, स्वरूपो का विवेचन एव उसके परिवर्तनो का रहस्य उद्घाटित करता है 'कर्मसिद्धान्त'। इसलिये जैनदर्शन को समझने के लिए 'कर्मसिद्धान्त' को समझना अनिवार्य है।

कर्मसिद्धान्त का विवेचन करने वाले प्रमुख ग्रन्थो मे 'श्रीमद् देवेन्द्रसूरि रचित' कर्मग्रन्थ अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। जैन साहित्य मे इनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। तत्त्वजिज्ञासु भी कर्मग्रन्थो को आगम की तरह प्रतिदिन अध्ययन एव स्वाध्याय की वस्तु मानते हैं।

कर्मग्रन्थो की सस्कृत टीकाए वडी महत्त्वपूर्ण हैं। इनके कई गुजराती अनुवाद भी हो चुके हैं। हिन्दी मे कर्मग्रन्थो का सर्वप्रथम विवेचन प्रस्तुत किया था विद्वद्वरेण्य मनीषी प्रवर महाप्राज्ञ प० सुखलालजी ने। उनकी शैली तुलनात्मक एव विद्वत्ताप्रधान है। प० सुखलालजी का विवेचन आज प्राय दुष्प्राप्य-सा है। कुछ समय से आशुकविरत्न गुरुदेव श्री मरुधर केसरीजी महाराज की प्रेरणा मिल रही थी कि कर्मग्रन्थो का आधुनिक शैली मे विवेचन प्रस्तुत करना चाहिए। उनकी प्रेरणा एव निदेशन से यह सम्पादन प्रारम्भ हुआ। विद्याविनोदी श्री सुकनमुनिजी की प्रेरणा से यह कार्य वडी गति के साथ आगे वढता गया। श्री देवकुमार जी जैन का सहयोग मिला और कार्य कुछ ही समय मे आकार धारण करने योग्य वन गया।

इस सपादन कार्य मे अनेक प्राचीन ग्रन्थ-लेखको, टीकाकारो, विवेचन-कर्ताओ तथा विशेषत प० सुखलाल जी के ग्रन्थो का सहयोग प्राप्त हुआ

और इतने गहन ग्रन्थ का विवेचन सहजगम्य बन सका। मैं उक्त सभी विद्वानो का असीम कृतज्ञता के साथ आभार मानता हूँ।

श्रद्धेय श्री मरुधरकेसरीजी महाराज का समय-समय पर मार्गदर्शन, श्री रजत-मुनिजी एव श्री सुकनमुनिजी की प्रेरणा एव साहित्य समिति के अधिकारियो का सहयोग, विशेषकर समिति के व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी सेठिया की सहृदयता पूर्ण प्रेरणा व सहकार से ग्रन्थ के सपादन-प्रकाशन मे गतिशीलता आई है, मैं हृदय से आभार स्वीकार करूँ— यह सर्वथा योग्य ही होगा।

इस भाग के साथ कर्मग्रन्थ के छह भागो मे जैन कर्मशास्त्र का समग्र विवेचन सपन्न हुआ है। छठा भाग सबसे बडा भी है और महत्त्वपूर्ण भी। इसमे पारिभाषिक शब्द-कोष, पिण्डप्रकृति सूचक शब्द-कोष तथा प्रयुक्त सहायक ग्रन्थ-सूची का समावेश हो जाने से इसकी उपयोगिता और भी बढ गई है।

विवेचन मे कही त्रुटि, सैद्धान्तिक भूल, अस्पष्टता तथा मुद्रण आदि मे अशुद्धि रही हो तो उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ और हस-बुद्धि पाठको से अपेक्षा है कि वे स्नेहपूर्वक सूचित कर अनुगृहीत करेगे। भूल सुधार एव प्रमाद-परिहार मे सहयोगी बनने वाले अभिनन्दनीय होते ही है। बस इसी अनुरोध के साथ—

विनीत

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

आमुख

जैनदर्शन के सपूर्ण चिन्तन, मनन और विवेचन का आधार आत्मा है। आत्मा सर्वतत्र स्वतत्र शक्ति है। अपने सुख-दु ख का निर्माता भी वही है और उसका फल भोग करने वाला भी वही है। आत्मा स्वय मे अमूर्त है, परम विशुद्ध है, किन्तु वह शरीर के साथ मूर्तिमान बनकर अशुद्ध दशा मे ससार मे परिभ्रमण कर रहा है। स्वय परम आनन्दस्वरूप होने पर भी सुख-दु ख के चक्र मे पिस रहा है। अजर-अमर होकर भी जन्म-मृत्यु के प्रवाह मे वह रहा है। आश्चर्य है कि जो आत्मा परम शक्तिसम्पन्न है, वही दीन-हीन, दु खी, दरिद्र के रूप मे ससार मे यातना और कष्ट भी भोग रहा है। इसका कारण क्या है ?

जैनदर्शन इस कारण की विवेचना करते हुए कहता है—आत्मा को ससार मे भटकाने वाला कर्म है। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है—**कम्म च जाई मरणस्स मूल**—भगवान श्री महावीर का यह कथन अक्षरश सत्य है, तथ्य है। कर्म के कारण ही यह विश्व विविध-विचित्र घटनाचक्रो मे प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है। ईश्वरवादी दर्शनो ने इस विश्ववैचित्र्य एव सुख-दु ख का कारण जहाँ ईश्वर को माना है, वहाँ जैनदर्शन ने समस्त सुख-दु ख एव विश्ववैचित्र्य का कारण मूलत जीव एव उसका मुख्य सहायक कर्म माना है। कर्म स्वतत्र रूप से कोई शक्ति नही है, वह स्वय मे पुद्गल है, जड है। किन्तु राग-द्वेष वश-वर्ती आत्मा के द्वारा कर्म किये जाने पर वे इतने बलवान और शक्तिसपन्न बन जाते हैं कि कर्त्ता को भी अपने वधन मे बाध लेते हैं। मालिक को भी नोकर की तरह नचाते हैं। यह कर्म की बडी विचित्र शक्ति है। हमारे जीवन और जगत के समस्त परिवर्तनो का यह मुख्य बीज कर्म क्या है, इसका स्वरूप क्या है ? इसके विविध परिणाम कैसे होते है ? यह बडा ही गम्भीर विषय है।

जैनदर्शन मे कर्म का बहुत ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कर्म का सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अत्यन्त गहन विवेचन जैन आगमो मे और उत्तरवर्ती ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। वह प्राकृत एव सस्कृत भाषा मे होने के कारण विद्वद्भोग्य तो है, पर साधारण जिज्ञासु के लिए दुर्बोध है। थोकडो मे कर्मसिद्धान्त के विविध स्वरूप का वर्णन प्राचीन आचार्यों ने गूथा है, कठस्थ करने पर साधारण तत्त्व-जिज्ञासु के लिए अच्छा ज्ञानदायक सिद्ध होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्राचीन ग्रन्थो मे कर्मग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीमद् देवेन्द्रसूरि रचित इसके पाच भाग अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इनमे जैनदर्शन-सम्मत समस्त कर्मवाद, गुणस्थान, मार्गणा, जीव, अजीव के भेद-प्रभेद आदि समस्त जैनदर्शन का विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। ग्रन्थ जटिल प्राकृत भाषा मे है और इसकी सस्कृत मे अनेक टीकाएँ भी प्रसिद्ध है। गुजराती मे भी इसका विवेचन काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी भाषा मे इस पर विवेचन प्रसिद्ध विद्वान् मनीषी प० सुखलाल जी ने लगभग ४० वर्ष पूर्व तैयार किया था।

वर्तमान मे कर्मग्रन्थ का हिन्दी विवेचन दुष्प्राप्य हो रहा था, फिर इस समय तक विवेचन की शैली मे भी काफी परिवर्तन आ गया। अनेक तत्त्व-जिज्ञासु मुनिवर एव श्रद्धालु श्रावक परमश्रद्धेय गुरुदेव मरुधरकेसरी जी महाराज साहब से कई वर्षों से प्रार्थना कर रहे थे कि कर्मग्रन्थ जैसे विशाल और गम्भीर ग्रन्थ का नये ढग से विवेचन एव प्रकाशन होना चाहिए। आप जैसे समर्थ शास्त्रज्ञ विद्वान एव महास्थविर सत ही इस अत्यन्त श्रमसाध्य एव व्यय-साध्य कार्य को सम्पन्न करा सकते है। गुरुदेव श्री का भी इस ओर आकर्षण था। शरीर काफी वृद्ध हो चुका है। इसमे भी लम्बे-लम्बे विहार और अनेक सस्थाओ कार्यक्रमो का आयोजन। व्यस्त जीवन मे आप १०-१२ घटा से अधिक [illegible]य तक आज भी शास्त्रस्वाध्याय, साहित्य-सर्जन आदि मे लीन रहते है।

[illegible] वर्ष गुरुदेव श्री ने इस कार्य को आगे बढाने का सकल्प किया। विवेचन [illegible]ना प्रारम्भ किया। विवेचन को भाषा-शैली आदि दृष्टियो से सुन्दर एव [illegible]कर बनाने तथा फुटनोट, आगमो के उद्धरण सकलन, भूमिका लेखन आदि कार्यो का दायित्व प्रसिद्ध विद्वान श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना को सौंपा गया। श्री सुराना जी गुरुदेव श्री के साहित्य एव विचारो से अतिनिकट सम्पर्क मे हैं। गुरुदेव के निर्देशन मे उन्होने अत्यधिक श्रम करके यह विद्वत्तापूर्ण तथा सर्व-साधारण जन के लिए उपयोगी विवेचन तैयार किया है। इस विवेचन मे एक

दीर्घकालीन अभाव की पूर्ति हो रही है। साथ ही समाज को एक सास्कृतिक एव दार्शनिक निधि नये रूप मे मिल रही है, यह अत्यधिक प्रसन्नता की बात है।

मुझे इस विषय मे विशेष रुचि है। मैं गुरुदेव को तथा सम्पादक बन्धुओ को इसकी सपूर्ति के लिए समय-समय पर प्रेरित करता रहा। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पचम भाग के पश्चात् अब छठा भाग आज जनता के समक्ष आ रहा है। इसकी मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।

पहले के पाँच भाग जिज्ञासु पाठको ने पसन्द किये हैं, उनके तत्त्वज्ञान-वृद्धि मे वे सहायक बने हैं, ऐसी सूचनाएँ मिली हैं। यह छठा और अन्तिम भाग पहले के पाँचो भागो से भी अधिक विस्तृत बना है। विषय गहन है और गहन विषय की स्पष्टता के लिए विस्तार भी आवश्यक हो जाता है। विद्वान् सम्पादक बधुओ ने काफी श्रम और अनेक ग्रन्थो के पर्यालोचन से विषय का तलस्पर्शी विवेचन किया है। आशा है, यह जिज्ञासु पाठको की ज्ञानवृद्धि का हेतुभूत बनेगा।

—सुकन मुनि

प्रकाशकीय

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति के विभिन्न उद्देश्यो मे से एक प्रमुख एव रचनात्मक उद्देश्य है—जैनधर्म एव दर्शन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करना। सस्था के मार्गदर्शक परमश्रद्धेय श्री मरुधरकेसरीजी महाराज स्वय एक महान विद्वान्, आशुकवि तथा जैन आगम तथा दर्शन के मर्मज्ञ है और उन्ही के मार्गदर्शन मे सस्था की विभिन्न लोकोपकारी प्रवृत्तियाँ चल रही है। गुरुदेवश्री साहित्य के मर्मज्ञ भी हैं, अनुरागी भी हैं। उनकी प्रेरणा से अब तक हमने प्रवचन, जीवनचरित्र, काव्य, आगम तथा गम्भीर विवेचनात्मक ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। अब विद्वानो एव तत्त्वजिज्ञासु पाठको के सामने हम उनका चिर प्रतीक्षित ग्रन्थ 'कर्मग्रन्थ' विवेचन युक्त प्रस्तुत कर रहे है।

कर्मग्रन्थ जैनदर्शन का एक महान् ग्रन्थ है। इसमे जैन तत्त्वज्ञान का सर्वांग विवेचन समाया हुआ है। पूज्य गुरुदेव श्री के निर्देशन मे प्रसिद्ध लेखक-सपादक श्रीयुत् श्रीचन्द जी सुराना एव उनके सहयोगी श्री देवकुमार जी जैन ने मिलकर इसका सुन्दर सम्पादन किया है। तपस्वीवर श्री रजतमुनि जी एव विद्याविनोदी श्री सुकनमुनिजी की प्रेरणा से यह विराट कार्य समय पर सुन्दर ढग से सम्पन्न हो रहा है। हम सभी विद्वानो, मुनिवरो एव सहयोगी उदार सज्जनो के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं कि हम इस महान् ग्रन्थ पाँचो भागो को पाठको के समक्ष रख सके। विद्वानो एव जिज्ञासु पाठको ने का स्वागत किया है। अब यह छठवाँ एव अन्तिम भाग भी पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

इसके साथ ही इस महान् कर्मग्रन्थ की समाप्ति हो गई है। अब सभी छहो भाग पाठको के समक्ष हैं। जिज्ञासुजन इनसे लाभ उठायेंगे, इसी विश्वास के साथ—

विनीत, मन्त्री—
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

प्रस्तावना

'सप्ततिका प्रकरण' नामक छठा कर्मग्रन्थ पाठको के समक्ष प्रस्तुत करने के साथ कर्मग्रन्थो के प्रकाशन का प्रयत्न पूर्ण हो रहा है। एतदर्थ 'श्रीमरुधर-केसरी साहित्य प्रकाशन समिति' के सचालको-सदस्यो का हम अभिनन्दन करते हैं कि समय, श्रम और व्ययसाध्य गौरवशाली साहित्य को प्रकाशित कर जैन वाङ्मय की श्रीवृद्धि का उन्होने स्तुत्य प्रयास किया है।

पूर्वप्रकाशित पांच कर्मग्रन्थो की प्रस्तावना मे कर्मसिद्धान्त के बारे मे यथा-सम्भव विचार व्यक्त किये हैं। यहाँ कर्मग्रन्थो का परिचय प्रस्तुत है।

कर्मग्रन्थो का महत्त्व

जैनसाहित्य मे कर्मग्रन्थो का महत्त्वपूर्ण स्थान होने के बारे मे इतना-सा सकेत कर देना पर्याप्त है कि जैनदर्शन मे सृष्टि के कारण के रूप मे काल-स्वभाव आदि को मान्य करने के साथ कर्मवाद पर विशेष जोर दिया है। कर्म-सिद्धान्त को समझे बिना जैनदर्शन के अन्तर्रहस्य का परिज्ञान सम्भव नही है और कर्मतत्त्व का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रारम्भिक मुख्य साधन कर्मग्रन्थो के सिवाय अन्य कोई नही है। कर्मप्रकृति, पचसग्रह आदि कर्मसाहित्य विषयक गम्भीर ग्रन्थो का अभ्यास करने के लिए कर्मग्रन्थो का अध्ययन करना अत्यावश्यक है। इसीलिए जैनसाहित्य मे कर्मग्रन्थो का स्थान अति गौरव भरा है।

कर्मग्रन्थो का परिचय

इस सप्ततिका प्रकरण का कर्मग्रन्थो मे क्रम छठवाँ है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। इस ग्रन्थ मे बहत्तर गाथाएँ होने से गाथाओ की सख्या के आधार से इसका नाम सप्ततिका रखा गया है। इसके कर्ता आदि के बारे मे यथाप्रसग विशेष रूप से जानकारी दी जा रही है। लेकिन इसके पूर्व श्रीमद्-देवेन्द्रसूरि विरचित पांच कर्मग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं।

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने क्रमश कर्मविपाक, कर्मस्तव, बधस्वामित्व, षडशीति और शतक नामक पाँच कर्मग्रन्थो की रचना की है। ये पाँचो नाम ग्रन्थ के विषय और उनकी गाथा सख्या को घ्यान मे रखकर ग्रन्थकार ने दिये हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय कर्मग्रन्थ के नाम उनके वर्ण्य विषय के आधार से तथा चतुर्थ और पचम कर्मग्रन्थ के नाम पडशीति और शतक उन-उन मे आगत गाथाओ की सख्या के आधार से रखे गये है। इस प्रकार से कर्मग्रन्थो के पृथक-पृथक नाम होने पर भी सामान्य जनता इन कर्मग्रन्थो को प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पचम कर्मग्रन्थ के नाम से जानती है।

प्रथम कर्मग्रन्थ के नाम से ज्ञात कर्मविपाक नामक कर्मग्रन्थ मे ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि कर्मों, उनके भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप अर्थात् विपाक अथवा फल का वर्णन दृष्टान्तपूर्वक किया गया है।

कर्मस्तव नामक द्वितीय कर्मग्रन्थ मे भगवान महावीर की स्तुति के द्वारा चौदह गुणस्थानो का स्वरूप और इन गुणस्थानो मे प्रथम कर्मग्रन्थ मे वर्णित कर्मप्रकृतियो के वन्ध, उदय और सत्ता का वर्णन किया गया है।

तीसरे बधस्वामित्व नामक कर्मग्रन्थ मे गत्यादि मार्गणाओ के आश्रय से जीवो के कर्मप्रकृति-विषयक बन्धस्वामित्व का वर्णन किया गया है। दूसरे कर्मग्रन्थ मे गुणस्थानो के आधार से बध का वर्णन किया गया है, जबकि इसमे गत्यादि मार्गणास्थानो के आधार से बन्धस्वामित्व का विचार किया गया है।

षडशीति नामक चतुर्थ कर्मग्रन्थ मे जीवस्थान, मार्गणास्थान, गुणस्थान, भाव और सख्या—इन पाँच विषयो का विस्तार से विवेचन किया गया है। पाँच विभागो मे से आदि के तीन विभागो मे अन्य सम्वन्धित विषयो का न किया गया है। अन्तिम दो विभागो, अर्थात् भाव और सख्या का वर्णन किसी विषय से मिश्रित—सम्बद्ध नही है। दोनो विषय स्वतन्त्र है।

शतक नामक पचम कर्मग्रन्थ मे प्रथम कर्मग्रन्थ मे वर्णित प्रकृतियो का वबधी, अध्रुववन्धिनी, ध्रुवोदय, अध्रुवोदय आदि अनेक प्रकार से वर्गीकरण करने के वाद उनका विपाक की अपेक्षा से वर्णन किया है। इसके बाद उक्त प्रकृतियो का प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग वन्ध का स्वरूप और उनके स्वामी का वर्णन किया गया है। अन्त मे उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि का विशेष रूप मे कथन किया है।

आधार और वर्णन का क्रम

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि के पाँच कर्मग्रन्थो की रचना के पहले आचार्य शिवशर्म, चन्द्रर्षि महत्तर आदि भिन्न-भिन्न आचार्यों द्वारा अलग-अलग समय मे कर्म-विषयक छह प्रकरणो की रचना की जा चुकी थी और उक्त छह प्रकरणो मे से पाँच के आधार से श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने पाँच कर्मग्रन्थो की रचना की है। इसीलिए ये कर्मग्रन्थ 'नवीन कर्मग्रन्थ' के नाम से जाने जाते है।

प्राचीन कर्मग्रन्थकारो ने अपने ग्रन्थो मे जिन विषयो का वर्णन किया है और वर्णन का जो क्रम रखा है, प्राय वही विषय और वर्णन का क्रम श्रीमद् देवेन्द्र सूरि ने रखा है। इनकी रचना मे मात्र प्राचीन कर्मग्रन्थो के आशय को ही नही लिया गया है, बल्कि नाम, विषय, वर्णन-शैली आदि का भी अनुसरण किया है।

नवीन कर्मग्रन्थो की विशेषता

प्राचीन कर्मग्रन्थकार आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थो मे जिन-जिन विषयो का वर्णन किया है, वे ही विषय नवीन कर्मग्रन्थकार आचार्य श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने ग्रन्थो मे वर्णित किये हैं। लेकिन श्री देवेन्द्रसूरि रचित कर्मग्रन्थो की यह विशेषता है कि प्राचीन कर्मग्रन्थकारो ने जिन विषयो को अधिक विस्तार से कहा है, जिससे कठस्थ करने वाले अभ्यासियो को अरुचि होना समव है, उनको श्री देवेन्द्रसूरि ने अपने कर्मग्रन्थो मे एक भी विषय को न छोडते हुए और साथ मे अन्य विषयो का समावेश करके सरल भाषा पद्धति के द्वारा अति सक्षेप मे प्रतिपादन किया है। इससे अभ्यास करने वालो को उदासीनता अथवा अरुचि भाव पैदा नही होता है। प्राचीन कर्मग्रन्थो की गाथा सख्या क्रम से १६८, ५७, ५४, ८६ और १०२ हैं और नवीन कर्मग्रन्थो की क्रमश ६०, ३४, २४, ८६ और १०० है। चौथे और पाचवें कर्मग्रन्थो की गाथा सख्या प्राचीन कर्मग्रन्थो जितनी देखकर किसी को यह नही समझ लेना चाहिए कि प्राचीन चौथे और पाँचवें कर्मग्रन्थ की अपेक्षा नवीन चतुर्थ और पचम कर्मग्रन्थ मे शाब्दिक अन्तर के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है, किन्तु श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने प्राचीन कर्म-ग्रन्थो के विषयो को जितना सक्षिप्त किया जा सकता था, उतना सक्षिप्त करने के बाद उनका षडशीति और शतक ये दोनो प्राचीन नाम रखने के विचार से कर्मग्रन्थो के अभ्यास करने वालो को सहायक अन्य विषयो का समावेश करके छियासी और सौ गाथाएँ पूरी की हैं। चतुर्थ कर्मग्रन्थ मे भेद-प्रभेदो के साथ

छह भावो का स्वरूप और भेद-प्रभेदो के वर्णन के साथ सख्यात, असख्यात और अनन्त इन तीन प्रकार की सख्याओ का वर्णन किया है तथा पचम कर्मग्रन्थ मे उद्धार, अद्धा और क्षेत्र इन तीन प्रकार के पल्योपमो का स्वरूप, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—ये चार प्रकार के सूक्ष्म और बादर पुद्गल परावर्तों का स्वरूप एव उपशमश्रेणि तथा क्षपकश्रेणि का स्वरूप आदि नवीन विषयो का समावेश किया है। इस प्रकार प्राचीन कर्मग्रन्थो की अपेक्षा श्री देवेन्द्रसूरि विरचित नवीन कर्मग्रन्थो की मुख्य विशेषता यह है कि इन कर्मग्रन्थो मे प्राचीन कर्मग्रन्थो के प्रत्येक वर्ण्य विषय का समावेश होने पर भी प्रमाण अत्यल्प है और उसके साथ अनेक नवीन विषयो का सग्रह किया गया है।

नवीन कर्मग्रन्थो की टीकाएँ

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने नवीन कर्मग्रन्थो की स्वोपज्ञ टीकाएँ की थी, किन्तु उनमे से तीसरे कर्मग्रन्थ की टीका नष्ट हो जाने से बाद मे अन्य किसी विद्वान आचार्य ने अवचूरि नामक टीका की रचना की।

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि की टीका-शैली इतनी मनोरजक है कि मूल गाथा के प्रत्येक पद या वाक्य का विवेचन किया गया है। इतना ही नही, बल्कि जिस पद का विस्तारपूर्वक अर्थ समझाने की आवश्यकता हुई, उसका उसी प्रमाण मे निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त एक विशेषता यह भी देखने मे आती है कि व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने के लिए आगम, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और पूर्वाचार्यों के प्रकरण ग्रन्थो मे से सम्बन्धित प्रमाणो तथा अन्यान्य दर्शनो के उद्धरणो को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार नवीन कर्मग्रन्थो की टीकाएँ इतनी विशद, सप्रमाण और कर्मतत्त्व के ज्ञान से युक्त है कि इनको [illegible]ने के बाद प्राचीन कर्मग्रन्थो और उनकी टीकाओ आदि को देखने की [illegible] प्राय शान्त हो जाती है। टीकाओ की भाषा सरल, सुबोध और [illegible] है।

पाँच कर्मग्रन्थो की सक्षेप मे जानकारी देने के बाद अब सप्ततिका [illegible] कर्मग्रन्थ) का विशेष परिचय देते है।

सप्ततिका परिचय

सप्ततिका के विचारणीय विषय का संक्षेप मे सकेत उसकी प्रथम गाथा मे किया गया है। इसमे आठ मूल कर्मों व अवान्तर भेदो के बन्धस्थानो, उदय-

स्थानो और सत्तास्थानो का स्वतत्र रूप से व जीवसमास, गुणस्थानो और मार्गणास्थानो के आश्रय से विवेचन किया गया है और अन्त मे उपशमविधि और क्षपणविधि बतलाई है ।

कर्मों की यथासभव दस अवस्थाएँ होती है। उनमे से तीन मुख्य हैं—बन्ध, उदय और सत्ता । शेष अवस्थाओ का इन तीन मे अन्तर्भाव हो जाता है । इसलिए यदि यह कहा जाये कि ग्रन्थ मे कर्मों की विविध अवस्थाओ, उनके भेदो का इसमे सागोपाग विवेचन किया गया है तो कोई अत्युक्ति नही होगी ।

ग्रन्थ का जितना परिमाण है, उसको देखते हुए वर्णन करने की शैली की प्रशसा ही करनी पडती है। सागर का जल गागर मे भर दिया गया है। इतने लघुकाय ग्रन्थ मे विशाल और गहन विषयो का विवेचन कर देना हर किसी का काम नही है । इससे ग्रन्थकर्ता और ग्रन्थ—दोनो की महानता सिद्ध होती है ।

पहली और दूसरी गाथा मे विषय की सूचना दी गई है। तीसरी गाथा मे आठ मूल कर्मों के सवेध भग बतलाकर चौथी और पाँचवीं गाथा मे क्रम से जीवसमास और गुणस्थानो में इनका विवेचन किया गया है। छठी गाथा में ज्ञानावरण और अन्तरायकर्म के अवान्तर भेदो के सवेध भग बतलाये हैं। सातवीं से नौवी गाथा के पूर्वार्द्ध तक ढाई गाथा मे दर्शनावरण के उत्तरभेदो के सवेध भग बतलाये हैं और नौवी गाथा के उत्तरार्द्ध मे वेदनीय आयु और गोत्र कर्म के सवेध भगो के कहने की सूचनामात्र करके मोहनीय के भग कहने की प्रतिज्ञा की गई है।

दसवी से लेकर तेईसवी गाथा तक मोहनीयकर्म के और चौबीसवी से लेकर बत्तीसवीं गाथा तक नामकर्म के बधादि स्थानों व उनके सवेध भगो का विचार किया गया है। इसके अनन्तर तेतीसवी से लेकर बावनवी गाथा तक अवान्तर प्रकृतियो के उक्त सवेध भगो को जीवसमासो और गुणस्थानो मे घटित करके बतलाया गया है । त्रेपनवी गाथा मे गति आदि मार्गणाओ के साथ सत् आदि आठ अनुयोगद्वारो मे उन्हे घटित करने की सूचना दी गई है।

इसके अनन्तर वर्ण्य विषय का क्रम बदलता है । चौवनवी गाथा मे उदय से उदीरणा के स्वामी की विशेषता को बतलाने के बाद पचपनवी गाथा मे ४१ प्रकृतियाँ बतलाई हैं, जिनमे विशेषता है । पश्चात् छप्पन से उनसठवी गाथा तक

प्रत्येक गुणस्थान मे बध प्रकृतियो की सख्या का सकेत किया है। इकसठवी गाथा मे तीर्थङ्कर नाम, देवायु और नरकायु इनका सत्त्व तीन-तीन गतियो मे ही होता है, किन्तु इनके सिवाय शेष प्रकृतियो की सत्ता सब गतियो मे पाई जाती है। इसके बाद की दो गाथाओ मे अनन्तानुबन्धी और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियो के उपशमन और क्षपण के स्वामी का निर्देशन करके चौसठवी गाथा मे क्रोधादि के क्षपण के विशेष नियम की सूचना दी है। इसके बाद पैंसठ से लेकर उनहत्तरवी गाथा तक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान मे प्रकृतियो के वेदन एव उदय सम्बन्धी विवेचन करने के अनन्तर सत्तरवी गाथा मे सिद्धो के सुख का वर्णन किया है।

इस प्रकार ग्रन्थ के वर्ण्य विषय का कथन हो जाने के पश्चात् दो गाथाओ मे उपसहार और लघुता प्रकट करते हुए ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

कर्म साहित्य मे सप्ततिका का स्थान

अब तक के प्राप्त प्रमाणो से यह कहा जा सकता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन परम्पराओ मे उपलब्ध कर्म-साहित्य का आलेखन अग्रायणीय पूर्व की पाँचवी वस्तु के चौथे प्राभृत और ज्ञानप्रवाद तथा कर्मप्रवाद पूर्व के आधार से हुआ है। अग्रायणीय पूर्व के आधार से षट्खडागम, कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका—इन ग्रन्थो का सकलन हुआ और ज्ञानप्रवाद पूर्व की दसवी वस्तु के तीसरे प्राभृत के आधार से कषायप्राभृत का सकलन किया गया है।

उक्त ग्रन्थो मे से कर्मप्रकृति ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा मे तथा कषायप्राभृत और षट्खडागम दिगम्बर परम्परा मे माने जाते है तथा कुछ पाठभेद के साथ शतक और सप्ततिका—ये दोनो ग्रन्थ दोनो परम्पराओ मे माने जाते है।

गाथाओ या श्लोको की सख्या के आधार से ग्रन्थ का नाम रखने की परि-
प्राचीन काल से चली आ रही है। जैसे कि आचार्य शिवशर्म कृत 'शतक',
र्य सिद्धसेन कृत द्वात्रिंशिका प्रकरण, आचार्य हरिभद्रसूरि कृत पचाशक
ण, विंशति-विंशतिका प्रकरण, षोडशक प्रकरण, अष्टक प्रकरण, आचार्य
वल्लभ कृत षडशीति प्रकरण आदि अनेकानेक रचनाओ को उदाहरण के
मे प्रस्तुत किया जा सकता है। सप्ततिका का नाम भी इसी आधार से रखा जान पडता है। इसे षष्ठ कर्मग्रन्थ भी कहने का कारण यह है कि वर्तमान मे कर्मग्रन्थो की गिनती के अनुसार इसका क्रम छठा आता है।

कर्मविषयक मूल साहित्य के रूप मे माने जाने वाले पाँच ग्रन्थो मे से सप्ततिका भी एक है। सप्ततिका मे अनेक स्थलो पर मत-भिन्नताओ का निर्देश किया गया है। जैसे कि एक मतभेद गाथा १६-२० और उसकी टीका मे उदय-विकल्प और पदवृन्दो की सख्या बतलाते समय तथा दूसरा मतभेद अयोगि केवली गुणस्थान मे नामकर्म की प्रकृतियो की सत्ता को लेकर आया है (गाथा ६६, ६७, ६८)। इससे यह प्रतीत होता है कि जब कर्मविषयक अनेक मतान्तर प्रचलित हो गए थे, तब इसकी रचना हुई होगी। लेकिन इसकी प्रथम गाथा मे इसे दृष्टिवाद अग की एक बूंद के समान बतलाया गया है तथा इसकी टीका करते हुए सभी टीकाकार अग्रायणीय पूर्व की पाँचवी वस्तु के चौथे प्राभृत से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। एतदर्थ इसकी मूल साहित्य मे गणना की गई है। दूसरी बात यह है कि सप्ततिका की गाथाओ मे कर्म सिद्धान्त का समस्त सार सकलित कर दिया है। इस पर जब विचार करते हैं, तब इसे मूल साहित्य मानना ही पडता है।

सप्ततिका की गाथा सख्या

यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'सप्ततिका' गाथाओ की सख्या के आधार से रखा गया है, लेकिन इसकी गाथाओ की सख्या को लेकर मतभिन्नता है। इस सस्करण मे ७२ गाथाएँ हैं। अन्तिम गाथाओ मे मूल प्रकरण के विषय की समाप्ति का सकेत किये जाने से यदि उन्हें गणना मे न लें तो इस प्रकरण का 'सप्ततिका' यह नाम सुसगत और सार्थक है। किन्तु अभी तक इसके जितने सस्करण देखने मे आये हैं, उन सबमें अलग-अलग सख्या दी गई है। श्री जैन श्रेयस्कर मडल महेसाना की ओर से प्रकाशित सस्करण मे इसकी सख्या ६१ दी है। प्रकरण रत्नाकर चौथे भाग मे प्रकाशित सस्करण मे ६४ है तथा आचार्य मलयगिरि की टीका के साथ श्री आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला भावनगर की ओर से प्रकाशित सस्करण मे इसकी सख्या ७२ दी है। चूर्णि के साथ प्रकाशित सस्करण मे ७१ गाथाओ का उल्लेख किया है।

इस प्रकार गाथाओ की सख्या मे भिन्नता देखने को मिलती है। गाथा सख्या की भिन्नता के बारे मे विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुजराती टीकाकारो द्वारा अन्तर्भाष्य गाथाओ को मूलगाथा के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है तथा कुछ गाथाएँ प्रकरण उपयोगी होने से मूलगाथा के रूप

मे मान ली गई है। परन्तु हमने श्री आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला के टीका सहित सप्ततिका को प्रमाण माना है और अन्त की दो गाथाएँ वर्ण्य विषय के बाद आई हैं, अत उनकी गणना नही करने पर ग्रन्थ का नाम सप्ततिका सार्थक सिद्ध होता है।

ग्रन्थकर्ता

नवीन पाँच कर्मग्रन्थ और उनकी स्वोपज्ञ टीका के प्रणेता आचार्य श्रीमद् देवेन्द्रसूरि का विस्तृत परिचय प्रथम कर्मग्रन्थ की प्रस्तावना मे दिया जा चुका है। अत यहाँ सप्ततिका के कर्ता के बारे मे ही विचार करते हैं।

सप्ततिका के रचयिता कौन थे, उनके माता-पिता कौन थे, उनके दीक्षा गुरु और विद्या गुरु कौन थे, अपने जीवन से किस भूमि को पवित्र बनाया था आदि प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने के कोई साधन उपलब्ध नही है। इस समय सप्ततिका और उसकी जो टीकाएँ प्राप्त है, वे भी कर्ता के नाम आदि की जानकारी कराने मे सहायता नही देती है।

सप्ततिका प्रकरण मूल की प्राचीन ताडपत्रीय प्रति मे चन्द्रर्षि महत्तर के नाम से गर्भित निम्नलिखित गाथा देखने को मिलती है—

गाहग्ग सयरीए चदमहत्तरमयाणुसारीए।
टीगाइ नियमियाण एगूणा होइ नउई उ ॥

लेकिन यह गाथा भी चन्द्रर्षि महत्तर को सप्ततिका के रचयिता होने की साक्षी नही देती है। इस गाथा से इतना ही ज्ञात होता है कि चन्द्रर्षि महत्तर के मत का अनुसरण करने वाली टीका के आधार से सप्ततिका की गाथाए (७० के बदले बढकर) नवासी (८९) हुई है। इस गाथा मे यही उल्लेख किया गया है क सप्ततिका मे गाथाओ की वृद्धि का कारण क्या है? किन्तु कर्त्ता के बारे मे ुछ भी नही कहा गया है। आचार्य मलयगिरि ने भी अपनी टीका के आदि और अन्त मे इसके बारे मे कुछ भी सकेत नही किया है। इस प्रकार सप्ततिका के कर्ता के बारे मे निश्चय रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है।

चन्द्रर्षि महत्तर आचार्य ने तो पचसग्रह की रचना की है और उसमे सग्रह किये गये अथवा गर्भित शतक, सप्ततिका, कषाय-प्राभृत, सत्कर्म और कर्म प्रकृति—ये पाँचो ग्रन्थ चन्द्रर्षि महत्तर से पूर्व हो गए आचार्य कृति रूप

होने से प्राचीन ही हैं। यदि वर्तमान की रूढ मान्यता के अनुसार सप्ततिकाकार और पचसग्रहकार आचार्य एक ही होते तो भाष्य, चूर्णि आदि के प्रणेताओ के ग्रन्थो मे जैसे शतक, सप्ततिका और कर्मप्रकृति आदि ग्रन्थो के नामो का साक्षी के रूप मे उल्लेख किया गया है, वैसे ही पचसग्रह के नाम का उल्लेख भी अवश्य किया जाना चाहिए था। परन्तु ऐसा उल्लेख कहीं भी देखने मे नही आया है। अतएव इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सप्ततिका के रचयिता पचसग्रहकार के बजाय अन्य कोई आचार्य ही हैं, जिनका नाम अज्ञात है और वे प्राचीनतम आचार्य हैं।

ऐसी स्थिति मे जब शतक की अन्तिम दो गाथाओ (१०४-१०५) से सप्ततिका की मगलगाथा और अन्तिम गाथा (७२) का मिलान करते हैं तो इस सम्भावना को बल मिलता है कि इन दोनो ग्रथो के सकलियता एक ही आचार्य हो। सप्ततिका और शतक की गाथाएँ इस प्रकार हैं—

(१). वोच्छ सुण सखेव नीसद दिट्ठिवायस्स।[1]

(२) कम्मप्पवाय सुयसागरस्स णिस्सदमेत्ताओ।[2]

(३) जो जत्थ अपडिपुन्नो अत्थो अप्पागमेण बद्धो त्ति।
त खमिऊण बहुसुया पूरेऊण परिकहंतु॥[3]

(४) बधविहाण समासो रइओ अप्प सुयमदमइणाउ -
त बध मोक्खणिउणा पूरेऊण परिकहेंति॥[4]

उक्त उद्धरणो मे से जैसे सप्ततिका की मगलगाथा मे इस प्रकरण को दृष्टिवाद अग की एक बूंद के समान बतलाया है, वैसे ही शतक की गाथा १०४ मे उसे कर्मप्रवाद श्रुतरूपी सागर की एक बूंद के समान बतलाया गया है, जैसे सप्ततिका की अन्तिम गाथा मे ग्रन्थकर्ता अपनी लघुता को प्रगट करते हुए सकेत करते हैं कि मुझ अल्पज्ञ ने त्रुटि रूप मे जो कुछ भी निबद्ध किया है, उसे बहुश्रुत जानकर पूरा करके कथन करें। वैसे ही शतक की १०५ वी गाथा

---

१ सप्ततिका, गाथा-सख्या, १

२ शतक, गाथा-सख्या, १०४

३ सप्ततिका, गाथा-सख्या, ७२

४ शतक, गाथा सख्या १०५

मे भी निर्देशित करते हैं कि अल्पश्रुत वाले अल्पज्ञ मैंने जो कुछ भी बधविधान का सार कहा है, उसे बधमोक्ष की विधि मे निपुण जन पूरा करके कथन करें।

इसके अतिरिक्त उक्त गाथाओ मे णिस्सद, अप्पागम, अप्पसुयमदमइ, पूरेऊण, परिकहतु—ये पद भी ध्यान देने योग्य हैं।

इन दोनो ग्रथो मे यह समानता अनायास ही नही है। ऐसी समानता उन्ही ग्रन्थो मे देखने को मिलती है या मिल सकती है, जो एक कर्तृक हो या एक-दूसरे के आधार से लिखे गये हो। इससे यह फलितार्थ निकलता है कि बहुत सम्भव है कि शतक और सप्ततिका एक ही आचार्य की कृति हो। शतक की चूर्णि मे आचार्य शिवशर्म को उसका कर्ता बतलाया है। ये वे ही आचार्य शिवशर्म हो सकते हैं, जो कर्मप्रकृति के कर्ता माने गए हैं। इस प्रकार विचार करने पर कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका—इन तीनो ग्रन्थो के एक ही कर्ता सिद्ध होते है।

लेकिन जब कर्मप्रकृति और सप्ततिका का मिलान करते हैं, तब दोनो की रचना एक आचार्य के द्वारा की गई हो, यह प्रमाणित नही होता है। क्योंकि इन दोनो ग्रन्थो मे विरुद्ध दो मतो का प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि सप्ततिका मे अनन्तानुबन्धी चतुष्क को उपशम प्रकृति बतलाया है, किन्तु कर्मप्रकृति के उपशमना प्रकरण मे अनन्तानुबन्धी चतुष्क की उपशम विधि और अन्तरकरण विधि का निषेध किया है। अतएव सप्ततिका के कर्ता के बारे मे निश्चय करना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

यह भी सम्भव है कि इनके सकलनकर्ता एक ही आचार्य हो और इनका ...न विभिन्न दो आधारो से किया गया हो। जो कुछ भी हो, किन्तु उक्त धार से तत्काल ही सप्ततिका के कर्ता शिवशर्म आचार्य हो, ऐसा निश्चित प मे नही कहा जा सकता है।

इस प्रकार सप्ततिका के कर्ता कौन हैं, आचार्य शिवशर्म हैं या आचार्य चन्द्रर्षि महत्तर हैं अथवा अन्य कोई महानुभाव हैं—निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि कोई भी इसके कर्ता हों, ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है और इसी कारण अनेक उत्तरवर्ती आचार्यों ने इस पर भाष्य, अन्त-

भाष्य, चूर्णि, टीका, वृत्ति आदि लिखकर ग्रन्थ के हार्द को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सप्ततिका की टीकाओ आदि का सकेत आगे किया जा रहा है।

रचना काल

ग्रन्थकर्ता और रचनाकाल—ये दोनो एक दूसरे पर आधारित हैं। एक का निर्णय हो जाने पर दूसरे के निर्णय करने मे सरलता होती है। पूर्व मे ग्रन्थकर्ता का निर्देश करते समय यह सम्भावना अवश्य प्रगट की गई है कि या तो आचार्य शिवशर्म सूरि ने इसकी रचना की है या इसके पहले लिखा गया हो। साधारणतया आचार्य शिवशर्म सूरि का काल विक्रम की पाँचवी शताब्दि माना गया है। इस हिसाब से विचार करने पर इसका रचनाकाल विक्रम की पाँचवी या इससे पूर्ववर्ती काल सिद्ध होता है। श्री जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण ने अपनी विशेषणवती मे अनेक स्थानो पर सप्ततिका का उल्लेख किया है और श्रीजिनभद्र गणिक्षमाश्रमण का समय विक्रम की सातवी शताब्दि निश्चित है। अतएव पूर्वोक्त काल यदि अनुमानित ही मान लिया जाए तो यह निश्चित है कि सप्ततिका की रचना सातवी शताब्दि से पूर्व हो गई थी।

इसके अलावा रचनाकाल के बारे मे निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहना सम्भव नही है। इतना ही कहा जा सकता है कि सप्ततिका की रचना सातवी शताब्दि के पूर्व हो चुकी थी और इस प्रकार मानने मे किसी भी प्रकार की शका नही करनी चाहिए।

सप्ततिका की टीकाएँ

पूर्व मे यह सकेत किया गया है कि सक्षेप में कर्म सिद्धान्त के विभिन्न वर्ण्य-विषयो का कथन करने से सप्ततिका को कर्म-साहित्य के मूल ग्रन्थो मे माना जा सकता है। इसीलिए इस पर अनेक उत्तरवर्ती आचार्यों ने भाष्य, टीका, चूर्णि आदि लिखकर इसके अन्तर्हार्द को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। अभी तक सप्ततिका की निम्नलिखित टीकाओं, भाष्य, चूर्णि आदि की जानकारी प्राप्त हुई है—

टीका का नाम	परिमाण	कर्ता	रचनाकाल
अन्तर्भाष्य गाथा	गाथा १०	अज्ञात	अज्ञात
भाष्य	गाथा १९१	अभयदेवसूरि	वि० १२-१३वी श
चूर्णि	पत्र १३२	अज्ञात	अज्ञात
चूर्णि	श्लोक २३००	चन्द्रर्षि महत्तर	अनु ७वी श.
वृत्ति	श्लोक ३७८०	मलयगिरिसूरि	वि० १२-१३वी श
भाष्यवृत्ति	श्लोक ४१५०	मेरुतु ग सूरि	वि० स० १४४९
टिप्पण	श्लोक ५७०	रामदेवगण	वि० १२वी. श
अवचूरि		गुणरत्न सूरि	वि० १५वी शता

इनमे से चन्द्रर्षि महत्तर की चूर्णि और आचार्य मलयगिरि की वृत्ति प्रकाशित हो चुकी है। इस हिन्दी व्याख्या मे आचार्य मलयगिरि सूरि की वृत्ति का उपयोग किया गया है।

टीकाकार आचार्य मलयगिरि

सप्ततिका के रचयिता के समान ही टीकाकार आचार्य मलयगिरि का परिचय भी उपलब्ध नही होता है कि उनकी जन्मभूमि, माता-पिता, गच्छ, दीक्षा-गुरु, विद्या-गुरु आदि कौन थे। उनके विद्याभ्यास, ग्रन्थरचना और विहार-के केन्द्रस्थान कहाँ थे। उनका शिष्य-परिवार था या नही, आदि के बारे कुछ भी नही कहा जा सकता है। परन्तु कुमारपाल प्रबन्ध मे आगत उल्लेख उनके आचार्य हेमचन्द्र और महाराज कुमारपाल के समकालीन होने का न लगाया जा सकता है।

आचार्य मलयगिरि ने अनेक ग्रन्थो की टीकाएँ लिखकर साहित्यकोष को पल्लवित किया है। श्री जैन आत्मानन्द ग्रन्थमाला, भावनगर द्वारा प्रकाशित टीका मे आचार्य मलयगिरि द्वारा रचित टीकाग्रन्थो की संख्या करीब २५ की

जानकारी मिलती है। इनमे से १७ ग्रन्थ तो मुद्रित हो चुके हैं और छह ग्रन्थ अलभ्य हैं।

उक्त टीकाओ को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने प्रत्येक विषय का प्रतिपादन वडी सरलता से किया है और जहाँ भी नये विषय का सकेत करते हैं, वहाँ उसकी पुष्टि के प्रमाण अवश्य देते हैं। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य के टीकाकारो मे जो स्थान वाचस्पति मिश्र का है, जैन साहित्य मे वही स्थान आचार्य मलयगिरि सूरि का है।

अन्य सप्ततिकाएँ

प्रस्तुत सप्ततिका के सिवाय एक सप्ततिका आचार्य चन्द्रर्पि महत्तर कृत पचसग्रह मे सकलित है। पचसग्रह एक सग्रहग्रन्थ है और यह पांच भागो मे विभक्त है। उसके अन्तिम प्रकरण का नाम सप्ततिका है।

पचसग्रह की सप्ततिका की अधिकतर गाथाएँ प्रस्तुत सप्ततिका से मिलती-जुलती हैं और पचसग्रह की रचना प्रस्तुत सप्ततिका के वहुत वाद हुई है तथा उसका नाम सप्ततिका होते हुए भी १५६ गाथाएँ हैं। इससे ज्ञात होता है कि पचसग्रह की सप्ततिका का आधार यही सप्ततिका रहा है।

एक अन्य सप्ततिका दिगम्वर परम्परा मे भी प्रचलित है, जो प्राकृत पच-सग्रह मे उसके अगरूप से पायी जाती है। प्राकृत पचसग्रह एक सग्रह ग्रन्थ है। इसमे अन्तिम प्रकरण सप्ततिका है। आचार्य अमितगति ने इसी के आधार से सस्कृत पचसग्रह की रचना की है, जो गद्य-पद्य का उभय रूप है और इसमे १२०० से अधिक गाथाएँ हैं।

इसके अन्तिम दो प्रकरण शतक और सप्ततिका कुछ पाठ-भेद के साथ श्वेताम्वर परम्परा मे प्रचलित शतक और सप्ततिका से मिलते-जुलते है। प्रस्तुत सप्ततिका मे ७२ और दिगम्वर परम्परा की सप्तिका मे ७१ गाथाएँ हैं। इनमे मे ४० गाथाओ के करीव तो एक जैसी हैं, १४-१५ गाथाओ मे कुछ पाठान्तर है और शेष गाथाएं अलग-अलग हैं। इसका कारण मान्यता-भेद और शैली का

भेद हो सकता है । फिर भी ये मान्यता-भेद सम्प्रदाय-भेद पर आधारित नही है । इसी प्रकार कही-कही वर्णन करने की शैली मे भेद होने से गाथाओ मे अन्तर आ गया है । यह अन्तर उपशमना और क्षपण प्रकरण मे देखने को मिलता है ।

इस प्रकार यद्यपि इन दोनो सप्ततिकाओ मे भेद पड जाता है, तो भी ये दोनो एक उद्‌गम स्थान से निकल कर और बीच-बीच मे दो धाराओ से विभक्त होती हुई अन्त मे एक रूप हो जाती है ।

सप्ततिका के बारे मे प्राय आवश्यक बातो पर प्रकाश डाला जा चुका है, अत अब और अधिक कहने का प्रसग नही है ।

इस प्रकार प्राक्कथनो के रूप मे कर्मसिद्धान्त और कर्मग्रन्थो के बारे मे अपने विचार व्यक्त किये हैं । विद्वद्‌वर्ग से सानुरोध आग्रह है कि कर्मसाहित्य का विशेष प्रचार एव अध्ययन अध्यापन के प्रति विशेष लक्ष्य देने की कृपा करें ।

—श्रीचन्द सुराना

—देवकुमार जैन

□

परिशिष्ट

तालिकाएँ

६

कर्मग्रन्थ

[सप्ततिका प्रकरण नामक छठा कर्मग्रन्थ]

श्री वीतरागाय नम

सप्ततिका प्रकरण

[षष्ठ कर्मग्रन्थ]

सप्ततिका प्रकरण के आधार, अभिधेय एव अर्थगाभीर्य को प्रदर्शित करने वाली प्रतिज्ञा गाथा—

सिद्धपएहिं महत्थं बन्धोदयसन्तपयडिठाणाणं।
वोच्छं सुण संखेवं नीसंदं दिट्ठिवायस्स ॥१॥

शब्दार्थ—सिद्धपएहिं—सिद्धपद वाले ग्रन्थो से, महत्थ—महान अर्थ वाले, बधोदयसतपयडिठाणाण—बध, उदय और सत्ता प्रकृतियो के स्थानो को, वोच्छ—कहूंगा, सुण—सुनो, सखेव—सक्षेप मे, नीसद—निस्यन्द रूप, विन्दु रूप, दिट्ठिवायस्स—दृष्टिवाद अग का।

गाथार्थ—सिद्धपद वाले ग्रन्थो के आधार से बध, उदय और सत्ता प्रकृतियो के स्थानो को सक्षेप मे कहूँगा, जिसे सुनो। यह सक्षेप कथन महान् अर्थ वाला और दृष्टिवाद अग रूपी महार्णव के निस्यन्द रूप—एक विन्दु के समान है।

विशेषार्थ—गाथा मे ग्रन्थ की प्रामाणिकता, वर्ण्य-विषय आदि का सकेत किया है। सर्वप्रथम ग्रन्थ की प्रामाणिकता का वोध कराने के लिये पद दिया है 'सिद्धपएहिं' यानी यह ग्रन्थ सिद्ध अर्थ के आधार से रचा गया है। इस ग्रन्थ मे वर्णित विपय मे किसी प्रकार से पूर्वापर विरोध नही है।

जिस ग्रन्थ, शास्त्र या प्रकरण का मूल आधार सर्वज्ञ वाणी होती है, वही ग्रन्थ विद्वानो के लिये आदरणीय है और उसकी प्रामाणिकता

अबाधित होती है। विद्वानो को निश्चिन्त होकर ऐसे ग्रन्थो का अध्ययन, मनन और चिन्तन करना चाहिये। इसीलिये आचार्य मलयगिरि ने गाथागत 'सिद्धपएहिं' सिद्धपद के निम्नलिखित दो अर्थ किये हैं—

जिन ग्रन्थो के सब पद सर्वज्ञोक्त अर्थ का अनुसरण करने वाले होने से सुप्रतिष्ठित है, जिनमे निहित अर्थगाम्भीर्य को किसी भी प्रकार से विकृत नही किया जा सकता है, अथवा शका पैदा नही होती हे, वे ग्रन्थ सिद्धपद कहे जाते है।[1] अथवा जिनागम मे जीवस्थान, गुणस्थान रूप पद प्रसिद्ध है, अतएव जीवस्थानो, गुणस्थानो का बोध कराने के लिये गाथा मे 'सिद्धपद' दिया गया है।[2]

उक्त दोनो अर्थों मे से प्रथम अर्थ के अनुसार 'सिद्धपद' शब्द कर्मप्रकृति आदि प्राभृतो का वाचक है, क्योकि इस सप्ततिका नामक प्रकरण का विषय उन ग्रथो के आधार से ग्रन्थकार ने सक्षेप रूप मे निबद्ध किया है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये गाथा के चौथे चरण मे सकेत दिया गया है—'नीसद दिट्ठिवायस्स'—दृष्टिवादरूपी महार्णव की एक बूँद के समान है। दृष्टिवादरूपी महार्णव की एक बूँद जैसा बतलाने का कारण यह है कि दृष्टिवाद नामक बारहवे अग के परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका यह पाँच भेद है। उनमे से पूर्वगत के उत्पादपूर्व आदि चौदह भेद है। उनमे दूसरे पूर्व का नाम अग्रायणीय है और उसके मुख्य चौदह अधिकार हैं, जिन्हे वस्तु

---

१ सिद्ध—प्रतिष्ठित चालयितुमशक्यमित्येकोऽर्थ। तत सिद्धानि पदानि येषु ग्रन्थेषु ते सिद्धपदा.।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १३९

२ स्वसमये सिद्धानि—प्रसिद्धानि यानि जीवस्थान-गुणस्थानरूपाणि पदानि तानि सिद्धपदानि, तेभ्य तान्याश्रित्य तेषु विषय इत्यर्थ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १३९

कहते हैं। उनमे से पाँचवी वस्तु के वीस उप-अधिकार हैं जिन्हे प्राभृत कहते हैं और इनमे से चौथे प्राभृत का नाम कर्मप्रकृति है। इसी कर्म-प्रकृति का आधार लेकर इस सप्ततिका प्रकरण की रचना हुई है।

उक्त कथन मे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रकरण सर्वज्ञ देव द्वारा कहे गये अर्थ का अनुसरण करने वाला होने से प्रामाणिक है। क्योकि सर्वज्ञदेव अर्थ का उपदेश देते हैं, तदनन्तर उसकी अवधारणा करके गणधरो द्वारा वह द्वादश अगो मे निवद्ध किया जाता है। अन्य आचार्य उन वारह अगो को साक्षात् पढकर या परम्परा से जानकर ग्रथ रचना करते हैं। यह प्रकरण भी गणधर देवो द्वारा निवद्ध सर्वज्ञ देव की वाणी के आधार से रचा गया है।

'सिद्धपद' का दूसरा अर्थ गुणस्थान, जीवस्थान लेने का तात्पर्य यह है कि इनका आधार लिये विना कर्मप्रकृतियो के वध, उदय और सत्ता का वर्णन नही किया जा सकता है। अत उनका और उनमे वध, उदय, सत्ता स्थानो एव उनके सवेध भगो का वोध कराने के लिये 'सिद्धपद' का अर्थ जीवस्थान और गुणस्थान भी माना जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यद्यपि हम यह जान लेते है कि इस सप्ततिका नामक प्रकरण मे कर्मप्रकृति प्राभृत आदि के विपय का सक्षेप किया गया है, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि इसमे अर्थगाम्भीर्य नही है। यद्यपि ऐसे वहुत से आख्यान, आलापक और सग्रहणी आदि ग्रन्थ हैं जो सक्षिप्त होकर भी अर्थगौरव से रहित होते हैं, किन्तु यह ग्रन्थ उनमे से नही है। अर्थात् ग्रथ को सक्षिप्त अवश्य किया गया है लेकिन इस सक्षेप रूप मे अर्थगाभीर्य पूर्णरूप से भरा हुआ है। विशेपताओ मे किसी प्रकार की न्यूनता नही आई है। इसी वात का ज्ञान कराने के लिये ग्रन्थकार ने गाथा मे विशेपण रूप से 'महत्थ' महार्थ पद दिया है।

ग्रन्थकार ने ग्रथ की विशेपताओ को वतलाने के वाद विपय का

निर्देश करते हुए कहा है—'बधोदयसतपयडिठाणाण वोच्छ'—वध, उदय और सत्ता प्रकृति स्थानो का कथन किया जा रहा है। जिनके लक्षण इस प्रकार है—लोहपिंड के प्रत्येक कण मे जैसे अग्नि प्रविष्ट हो जाती है, वैसे ही कर्म-परमाणुओ का आत्मप्रदेशो के साथ परस्पर जो एकक्षेत्रावगाही सम्वन्ध होता है, उसे बध कहते है।[1] विपाक अवस्था को प्राप्त हुए कर्म-परमाणुओ के भोग को उदय कहते हैं।[2] बध-समय से या सक्रमण-समय से लेकर जब तक उन कर्म-परमाणुओ का अन्य प्रकृतिरूप से सक्रमण नही होता या जव तक उनकी निर्जरा नही होती, तब तक उनका आत्मा के साथ सबद्ध रहने को सत्ता कहते है।[3]

स्थान शब्द समुदायवाची है, अत प्रकृतिस्थान पद से दो, तीन, आदि प्रकृतियो के समुदाय को ग्रहण करना चाहिये।[4] ये प्रकृति-स्थान बध, उदय और सत्व के भेद से तीन प्रकार के है। जिनका इस ग्रन्थ मे विवेचन किया जा रहा है।

गाथा मे आगत 'सुण' क्रियापद द्वारा ग्रन्थकार ने यह ध्वनित किया है कि आचार्य शिष्यो को सम्वोधित एव सावधान करके शास्त्र का व्याख्यान करे। क्योकि विना सावधान किये ही अध्ययन-

---

१ तत्र वधो नाम—कर्मपरमाणूनामात्मप्रदेशै. सह वह्न्यय पिण्डवदन्योऽन्यानुगम। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४०

२ कर्मपरमाणूनामेव विपाकप्राप्तानामनुभवनमुदय। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४०

३ वन्धसमयात् सक्रमेणात्मलाभसमयाद्वा आरभ्य यावत् ते कर्मपरमाणवो नान्यत्र सक्रम्यन्ते यावद् वा न क्षयमुपगच्छन्ति तावत् तेपा स्वस्वरूपेण य सद्भाव. सा सत्ता। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४०

४ प्रकृतीना स्थानानि—समुदाया प्रकृतिस्थानानि द्वित्र्यादिप्रकृतिसमुदाया इत्यर्थ, स्थानशब्दोऽत्र समुदायवाची।—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४०

पठन-पाठन किये जाने की स्थिति मे उसका लाभ शिष्य न उठा सके और स्वय आचार्य खेदखिन्न हो जाये। अत वैसी स्थिति न बने और शिष्य आचार्य के व्याख्यान को यथाविधि हृदयगम कर सके, इसी बात को बतलाने के लिये गाथा मे 'सुण' यह क्रियापद दिया गया है।

इस प्रकार से ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय आदि का बोध कराने के पश्चात् अब ग्रन्थ प्रारम्भ करते है। ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय बन्ध, उदय और सत्व प्रकृतिस्थानो के सवेध रूप सक्षेप मे कहना है। अत शिष्य आचार्य के समक्ष अपनी जिज्ञासा पूर्ति के लिये प्रश्न करते हैं कि—

कइ बंधंतो वेयइ कइ कइ वा पयडिसतठाणाणि।
मूलुत्तरपगईसुं भंगविगप्पा उ बोधव्वा ॥२॥

शब्दार्थ—कइ—कितनी प्रकृतियो का, बधतो—बध करने वाला, वेयइ—वेदन करता है, कइ-कइ—कितनी-कितनी, वा—अथवा, पयडिसतठाणाणि—प्रकृतियो का सत्तास्थान, मूलुत्तरपगईसु—मूल और उत्तर प्रकृतियो के विषय मे, भगविगप्पा—भगो के विकल्प, उ—और, बोधव्वा—जानना चाहिये।

गाथार्थ—कितनी प्रकृतियो का वध करने वाले जीव के कितनी प्रकृतियो का वेदन होता है तथा कितनी प्रकृतियो का वध और वेदन करने वाले जीव के कितनी प्रकृतियो का सत्व होता है ? तो मूल और उत्तर प्रकृतियो के विषय मे अनेक भग-विकल्प जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय वध आदि प्रकृतिस्थानो का कथन करना है। अत शिष्य शका प्रस्तुत करता है कि कितनी प्रकृतियों का वध होते समय कितनी प्रकृतियो का उदय होना है आदि। शिष्य की उक्त शका का समाधान करते हुए आचार्य उत्तर देते हैं कि मूल और उत्तर प्रकृतियो के विषय मे अनेक भग जानना चाहिये। अर्थात् कर्मो की मूल और उत्तर प्रकृतियो मे अनेक प्रकार के भग-विकल्प

बनते हैं, किन्तु वाचाशक्ति की मर्यादा होने के कारण जिनका पूर्ण-रूपेण कथन किया जाना सम्भव नही होने से क्रमश: मूल और उत्तर प्रकृतियो मे सामान्यतया उन विकल्पो का कथन करते है।

इस प्रकार इस गाथा के वाच्यार्थ पर विचार करने पर दो बातो की सूचना मिलती है। प्रथम यह कि इस प्रकरण मे मुख्यतया पहले मूल प्रकृतियो और इसके बाद उत्तर प्रकृतियों के बन्ध-प्रकृतिस्थानो, उदय-प्रकृतिस्थानो और सत्व-प्रकृतिस्थानो का तथा उनके परस्पर सवेध[1] और उनसे उत्पन्न हुए भगों का विचार किया गया है। दूसरी बात यह है कि उन भग-विकल्पो को यथास्थान जीवस्थानो और गुण-स्थानो मे घटित करके बतलाया गया है।

इस विषय-विभाग को ध्यान मे रखकर टीका मे सबसे पहले आठ मूल प्रकृतियो के बध-प्रकृतिस्थानो, उदय-प्रकृतिस्थानो और सत्व-प्रकृतिस्थानो का कथन किया गया है। क्योंकि इनका कथन किये बिना आगे की गाथा मे बतलाये गये इन स्थानो के सवेध का सरलता से ज्ञान नही हो सकता है। साथ ही प्रसगानुसार इन स्थानो के स्वामी और काल का निर्देश किया गया है, जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

बधस्थान, स्वामी और उनका काल

कर्मों की मूल प्रकृतियो के निम्नलिखित आठ भेद है—१ ज्ञाना-वरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय। इनके स्वरूप, लक्षण पहले बतलाये जा चुके हैं। मूल कर्म प्रकृतियो के आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह

---

१ सवेध परस्परमेककालागमाविरोधेन मीलनम्।

—कर्मप्रकृति बन्धोदय०, पृ० ६५

प्रकृतिक और एक प्रकृतिक इस प्रकार कुल चार बंधस्थान होते हैं।[1]

इनमे से आठ प्रकृतिक बधस्थान मे सब मूल प्रकृतियो का, सप्त प्रकृतिक बधस्थान मे आयुकर्म के बिना सात का, छह प्रकृतिक बधस्थान मे आयु और मोहनीय कर्म के बिना छह का और एक प्रकृतिक बधस्थान मे सिर्फ एक वेदनीय कर्म का ग्रहण होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि आयुकर्म का बध करने वाले जीव के आठो कर्मो का, मोहनीय कर्म को बाधने वाले जीव के आठो का या आयु के बिना सात का, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र और अतराय कर्म का बध करने वाले जीव के आठ का, सात का या छह का तथा एक वेदनीय कर्म का बध करने वाले जीव के आठ का, सात का, छह का या एक वेदनीय कर्म का बध होता है।[2]

अब उक्त प्रकृतिक बध करने वालो का कथन करते हैं।

आयुकर्म का बध सातवें अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक होता है किन्तु मिश्र गुणस्थान मे आयुबध नही होने का नियम होने से मिश्र गुणस्थान के बिना शेष छह गुणस्थान वाले जीव आयुबध के समय आठ प्रकृतिक बधस्थान के स्वामी होते है। मोहनीय कर्म का बध नौवे गुणस्थान तक होता है अत पहले से लेकर नौवें गुणस्थान तक के जीव सात प्रकृतिक बधस्थान के स्वामी है। किन्तु जिनके आयुकर्म का भी बध होता हो वे सात प्रकृतिक बधस्थान के स्वामी नही होते

---

१ तत्र मूलप्रकृतीनामुक्तस्वरूपाणा बध प्रतीत्य चत्वारि प्रकृतिस्थानानि। तद्यथा—अष्टौ, सप्त, षड्, एका च।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४१

२ आउम्मि अट्ठ मोहेऽट्ठसत्त एक्क च छाइ वा तइए।
बज्झतयम्मि बज्झति सेसएसु छ सत्तऽट्ठ॥

—पचसग्रह सप्ततिका, गा० २

हैं, आठ प्रकृतिक बधस्थान के स्वामी माने जाते है। आयु और मोहनीय कर्म के बिना शेष छह कर्मो का बन्ध केवल दसवे गुणस्थान—सूक्ष्मसंपराय मे होता है। अत सूक्ष्मसपराय गुणस्थान वाले जीव छह प्रकृतिक बधस्थान के स्वामी है। वेदनीय कर्म का बध ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे गुणस्थान मे होता है, अत· उक्त तीन गुणस्थान वाले जीव एक प्रकृतिक बधस्थान के स्वामी है।[1]

इन बधस्थानो का काल इस प्रकार है कि आठ प्रकृतिक बधस्थान आयुकर्म के बध के समय होता है और आयुकर्म का जघन्य व उत्कृष्ट बधकाल अन्तर्मुहूर्त है। अत. आठ प्रकृतिक बधस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जानना चाहिये।

सात प्रकृतिक बधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि जो अप्रमत्तसंयत जीव आठ मूल प्रकृतियो का बन्ध करके सात प्रकृतियो के बध का प्रारम्भ करता है, वह यदि उपशम श्रेणि पर आरोहण करके अन्तर्मुहूर्त काल मे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है तो उसके सात प्रकृतिक बधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है। इसका कारण यह है कि सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे छह प्रकृतिक स्थान का बध होने लगता है तथा सात प्रकृतिक बधस्थान

---

1 छसु सगविहमट्ठविह कम्म बधति तिसु य सत्तविह।
छव्विहमेकट्ठाणे तिसु एक्कमबधगो एक्को॥—गो० कर्मकांड ४५२

—मिश्र गुणस्थान के बिना अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त छह गुणस्थानो मे जीव आयु के बिना सात और आयु सहित आठ प्रकार के कर्मो को बाधते है। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन गुणस्थानो मे आयु के बिना सात प्रकार के ही कर्म बाधते है। सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे आयु, मोह के बिना छह प्रकार के कर्मो का बन्ध होता है। उपशान्तमोह आदि तीन गुणस्थानो मे एक वेदनीय कर्म का ही बन्ध होता है और अयोगि गुणस्थान बन्धरहित है अर्थात् इसमे किसी प्रकृति का बन्ध नही होता है।

का उत्कृष्ट काल छह माह और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर हैं। क्योकि जब एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण आयु वाले किसी मनुष्य या तिर्यंच के आयु का एक त्रिभाग शेष रहने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक परभव सम्बन्धी आयु का बध होता है, अनन्तर भुज्यमान आयु के समाप्त हो जाने पर वह जीव तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु वाले देवो मे या नारको मे उत्पन्न होकर और वहाँ आयु के छह माह शेष रहने पर पुन परभव सम्बन्धी आयु का बध करता है, तब उसके सात प्रकृतिक बधस्थान का उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

छह प्रकृतिक बधस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसका कारण यह है कि छह प्रकृतिक बधस्थान का स्वामी सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव है। अत उक्त गुणस्थान वाला जो उपशामक जीव उपशम श्रेणि पर चढते समय या उतरते समय एक समय तक सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान मे रहता है और मर कर दूसरे समय मे अविरत सम्यग्दृष्टि देव हो जाता है, उसके छह प्रकृतिक बधस्थान का जघन्यकाल एक समय होता है तथा छह प्रकृतिक बधस्थान का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट काल सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान के उत्कृष्ट काल की अपेक्षा बताया है। क्योकि सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

एक प्रकृतिक बधस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण है। जिसका स्पष्टीकरण यह है कि जो उपशम श्रेणि वाला जीव उपशान्तमोह गुणस्थान मे एक समय तक रहता है और मर कर दूसरे समय मे देव हो जाता है, उस उपशान्तमोह वाले जीव के एक प्रकृतिक बधस्थान का जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है तथा एक पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाला जो मनुष्य सात माह गर्भ मे रहकर और तदनन्तर जन्म लेकर आठ वर्ष प्रमाण

काल व्यतीत होने पर सयम धारण करके एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षीणमोह होकर सयोगिकेवली हो जाता है, उसके एक प्रकृतिक बधस्थान का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष, सात माह और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण प्राप्त होता है। बन्धस्थानो के भेद, स्वामी और काल प्रदर्शक विवरण इस प्रकार है—

बधस्थान	मूल प्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृतिक	सब	मिश्र गुण के बिना अप्रमत्त गुणस्थान तक	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
सात प्रकृतिक	आयु के बिना	आदि के नौ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	एक अन्तर्मुहूर्त और छह माह कम तथा पूर्व कोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर
छह प्रकृतिक	मोह व आयु के बिना	सूक्ष्म-सपराय	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
एक प्रकृतिक	वेदनीय	११, १२, १३वा गुणस्थान	एक समय	देशोन पूर्वकोटि

उदयस्थान, स्वामी और काल

बध प्रकृतिस्थानो का कथन करने के पश्चात् अब उदय की अपेक्षा से प्रकृतिस्थानो का निरूपण करते हैं कि आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक, इस प्रकार मूल प्रकृतियो की अपेक्षा तीन उदयस्थान होते है।[1]

---

1 उदय प्रति त्रीणि प्रकृतिस्थानानि, तद्यथा—अष्टौ सप्त चत्वारि ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४२

आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे सब मूल प्रकृतियो का, सात प्रकृतिक उदयस्थान मे मोहनीय कर्म के बिना सात मूल प्रकृतियो का और चार प्रकृतिक उदयस्थान मे चार अघाती कर्मो का ग्रहण होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मोहनीय के उदय रहते आठो कर्मो का उदय होता है। मोहनीय के बिना शेष तीन घाती कर्मो का उदय रहते आठ या सात कर्मो का उदय होता है। आठ कर्मो का उदय सूक्ष्मसपराय नामक दसवे गुणस्थान तक होता है और सात का उदय उपशान्तमोह या क्षीणमोह गुणस्थान मे होता है। चार अघाती कर्मो का उदय रहते आठ, सात या चार का उदय होता है। इनमे से आठ का उदय सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक, सात का उदय उपशान्तमोह या क्षीणमोह गुणस्थान मे और चार का उदय सयोगिकेवली तथा अयोगिकेवली गुणस्थान मे होता है।[1]

उक्त उदयस्थानो के स्वामी इस प्रकार समझना चाहिये कि मोहनीय कर्म का उदय दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक होता है अत आठ प्रकृतिक उदयस्थान के स्वामी प्रारम्भ से दस गुणस्थान तक के जीव है। मोहनीय के सिवाय शेष तीन घाती कर्मो का उदय बारहवे गुणस्थान तक होता है अत सात प्रकृतिक उदयस्थान के

---

१ (क) मोहस्सुदए अट्ठ वि सत्त य लब्भन्ति सेसयाणुदए।
सन्तोइणाणि अघाइयाण अड सत्त चउरो य॥

—पचसग्रह सप्ततिका, गा० ३

(ख) तत्र मोहनीयस्योदयेऽष्टानामप्युदय, मोहनीयवर्जाना त्रयाणा घातिकर्मणामुदये अष्टाना सप्ताना वा। तत्राष्टाना सूक्ष्मसपरायगुणस्थानक यावत्, सप्तानामुपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा, वेदनीयाऽऽयु नामगोत्राणामुदयेऽष्टाना सप्ताना चतसृणा वा उदय। तत्राष्टाना सूक्ष्मसपराय यावत्, सप्तानामुपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा, चतसृणामेतासामेव वेदनीयादीना सयोगिकेवलिनि अयोगिकेवलिनि च।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

स्वामी ग्यारहवे और बारहवे गुणस्थान के जीव हैं। चार अघाती कर्मों का उदय तेरहवे सयोगिकेवली और चौदहवे अयोगिकेवली गुणस्थान तक होता है। अतएव चार प्रकृतिक उदयस्थान के स्वामी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीव है।[1]

इन तीन उदयस्थानो मे से आठ प्रकृतिक उदयस्थान के काल के तीन विकल्प है—१ अनादि-अनन्त, २ अनादि-सान्त और ३ सादि-सान्त। इनमे से अभव्यो के अनादि-अनन्त, भव्यो के अनादि-सान्त और उपशान्तमोह गुणस्थान से गिरे हुए जीवो की अपेक्षा सादि-सान्त काल होता है।[2]

सादि-सान्त विकल्प की अपेक्षा आठ प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपार्धपुद्गल परावर्त प्रमाण है। जो जीव उपशमश्रेणि से गिरकर पुन॰ अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर उपशमश्रेणि पर चढकर उपशममोही हो जाता है, उस जीव के आठ प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है और जो जीव अपार्ध पुद्गल परावर्त काल के प्रारम्भ में उपशान्तमोही और अन्त मे क्षीणमोही हुआ है, उसके आठ प्रकृतिक

---

१ अट्ठुदओ सुहुमो त्ति य मोहेण विणा हु सतखीणेसु।
घादिदराण चउक्कस्सुदओ केवलिदुगे नियमा॥
—गो० कर्मकांड, गा० ४५४

—सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक आठ प्रकृतियो का उदय है। उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय इन दो गुणस्थानो मे मोहनीय के विना सात का उदय है तथा सयोगि और अयोगि इन दोनो मे चार अघातिया कर्मों का उदय नियम से जानना चाहिये।

२ तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टौ, तासा चोदयोऽभव्यानधिकृत्य अनाद्यपर्यवसित, भव्यानधिकृत्यानादिसपर्यवसान, उपशान्तमोहगुणस्थानकात् प्रतिपतितानधिकृत्य पुन सादिसपर्यवसान। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४२

उदयस्थान का उत्कृष्टकाल कुछ कम अपार्ध पुद्गल परावर्त होता है।

सात प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सात मूल प्रकृतियो का उदय उपशान्त-मोह और क्षीणमोह इन दो गुणस्थानो मे होता है। परन्तु क्षीणमोह गुणस्थान मे न तो मरण होता है और न उससे पतन होता है और क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती जीव नियम मे तीन घाती कर्मों का क्षय करके सयोगिकेवली हो जाता है। लेकिन उपशान्तमोह गुणस्थान मे जीव का मरण भी होता है और उससे प्रतिपात भी होता है। अत जो जीव एक समय तक उपशान्तमोह गुणस्थान मे रहकर और दूसरे समय मे मरकर अविरति सम्यग्दृष्टि देव हो जाता है, उसके सात प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल एक समय माना जाता है तथा उपशान्तमोह या क्षीणमोह गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अत सात प्रकृतिक उदयस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त माना जाता है।

चार प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्व कोटि प्रमाण है। जो जीव सयोगि-केवली होकर एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है, उसकी अपेक्षा चार प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है और उत्कृष्टकाल एक प्रकृति बधस्थान काल की तरह देशोन पूर्व कोटि प्रमाण समझना चाहिये।[1] अर्थात् जैसे एक प्रकृतिक बधस्थान का उत्कृष्टकाल बतलाया है कि एक पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाला मनुष्य सात माह गर्भ मे रहकर और तदनन्तर

१ घातिकर्मवर्जाश्चतस्र प्रकृतय तासामुदयो जघन्येनान्तर्मौहूर्तिक उत्कर्षेण तु देशोनपूर्वकोटिप्रमाण। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४२

जन्म लेकर आठ वर्ष प्रमाण काल के व्यतीत होने पर सयम प्राप्त करके एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षीणमोह, सयोगिकेवली हो जाता है तो वैसे ही आठ वर्ष, सात माह कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण समझना चाहिये। यहाँ इतनी विशेषता है कि इसमे क्षीणमोह गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त घटा कर उतना काल लेना चाहिये।

उदयस्थानो के स्वामी, काल आदि का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	मूल प्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृति	सभी	आदि के दस गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	कुछ कम अपार्ध पुद्गल परावर्त
सात प्रकृति	मोह के बिना	११वाँ, १२वाँ गुणस्थान	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
चार प्रकृति	चार अघाती	१३वाँ, १४वाँ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि

सत्तास्थान, स्वामी और काल

बन्ध और उदयस्थानो को बतलाने के बाद अब सत्तास्थानो को बतलाते है। सत्ता प्रकृतिस्थान तीन है—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक।[1] आठ प्रकृतिक सत्तास्थान मे ज्ञानावरण आदि अन्तरायपर्यन्त सब मूल प्रकृतियो का, सात प्रकृतिक सत्तास्थान मे मोहनीय के सिवाय शेष सात प्रकृतियो और चार प्रकृतिक सत्तास्थान मे चार अघाती कर्मो का ग्रहण किया जाता है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि मोहनीय कर्म के सद्भाव मे आठो कर्मो की, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अतराय की विद्यमानता मे आठो

---

१ सत्ता प्रति त्रीणि प्रकृतिस्थानानि। तद्यथा—अष्टौ, सप्त चतस्र।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

कर्मों की या मोहनीय के बिना सात कर्मों की तथा वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार अघाती कर्मों के रहते हुए आठों की, मोहनीय के बिना सात की या चार अघाती कर्मों की सत्ता पाई जाती है।[1]

इन सत्तास्थानों के स्वामी इस प्रकार हैं—

चार अघाती कर्मों की सत्ता सयोगि और अयोगि केवलियों के होती है। अतः चार प्रकृतिक सत्तास्थान के स्वामी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती होते हैं।[2] मोहनीय के बिना शेष सात कर्मों की सत्ता बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान में पाई जाती है, अतः सात प्रकृतिक सत्तास्थान के स्वामी क्षीणमोह गुणस्थान वाले जीव हैं। आठ कर्मों की सत्ता पहले से लेकर ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थान तक पाई जाती है, अतः आठ प्रकृतिक सत्तास्थान के स्वामी आदि के ग्यारह गुणस्थान वाले जीव हैं।[3]

---

१ मोहनीये सत्यष्टानामपि सत्ता, ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां सत्तायां अष्टानां सप्तानां वा सत्ता। वेदनीयाऽऽयुर्नामगोत्राणां सत्तायामष्टानां सप्तानां चतसृणां वा सत्ता। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

२ चतसृणां सत्ता वेदनीयादीनामेव सा, च सयोगिकेवलिगुणस्थानके अयोगिकेवलिगुणस्थानके च द्रष्टव्या। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

३ (क) तत्राष्टानामुपशान्तमोहगुणस्थानकं यावत् मोहनीये क्षीणे सप्तानां, सा च क्षीणमोहगुणस्थानके। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

(ख) संतो त्ति अट्ठसत्ता खीणे सत्तेव होंति सत्ताणि।
जोगिम्मि अजोगिम्मि य चत्तारि हवंति सत्ताणि॥

—गो० कर्मकांड, गा० ४५७

उपशान्तकषाय गुणस्थान पर्यन्त आठों प्रकृतियों की सत्ता है। क्षीणकषाय गुणस्थान में मोहनीय के बिना सात कर्मों की ही सत्ता है और सयोगिकेवली व अयोगिकेवली इन दोनों में चार अघातिया कर्मों की सत्ता है।

इन तीन सत्तास्थानो मे से आठ प्रकृतिक सत्तास्थान का काल अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनन्त है, क्योकि अभव्य के सिर्फ एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थान मे किसी भी मूल प्रकृति का क्षय नही होता है। भव्य जीवो की अपेक्षा आठ प्रकृतिक सत्तास्थान का काल अनादि-सान्त है, क्योकि क्षपक सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान मे ही मोहनीय कर्म का समूल उच्छेद कर देता है और उसके वाद क्षीणमोह गुणस्थान मे सात प्रकृतिक सत्तास्थान की प्राप्ति होती है और क्षीणमोह गुणस्थान से प्रतिपतन नही होता है। जिससे यह सिद्ध हुआ कि भव्य जीवो की अपेक्षा आठ प्रकृतिक सत्तास्थान अनादि-सात है।[1]

सात प्रकृतिक सत्तास्थान बारहवे क्षीणमोह गुणस्थान मे होता है और क्षीणमोह गुणस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। अत सात प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है।[2]

चार प्रकृतिक सत्तास्थान सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानो मे पाया जाता है और इन गुणस्थानो का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण है। अत चार प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण समझना चाहिये।

१ तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टौ, एतासा चाष्टाना सत्ता अभव्यानधिकृत्य अनाद्यपर्यवसाना, भव्यानधिकृत्य अनादिसपर्यवसाना।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

२ मोहनीये क्षीणे सप्ताना सत्ता, सा च जघन्योत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तप्रमाणा, सा हि क्षीणमोहे, क्षीणमोहगुणस्थानक चान्तर्मुहूर्तप्रमाणमिति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

यहाँ कुछ कम का मतलब आठ वर्ष, सात मास और अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।[1] सत्तास्थानों के स्वामी, काल आदि का विवरण इस प्रकार है—

सत्तास्थान	मूलप्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृतिक	सभी	आदि के ११ गुणस्थान	अनादि-सान्त	अनादि-अनन्त
सात प्रकृतिक	मोहनीय के बिना	क्षीणमोह गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
चार प्रकृतिक	४ अघाति	१३वां, १४वां गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि

इस प्रकार मूल प्रकृतियों के पृथक्-पृथक् बन्ध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानों को समझना चाहिये। अब आगे की गाथा में मूलकर्मों के संवेध भंगों का कथन करते हैं।

मूलकर्मों के संवेध भंग

> अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयसंताइं।
> एगविहे तिविगप्पो एगविगप्पो अबंधम्मि ॥३॥[2]

---

१ घातिकर्मचतुष्टयक्षये च चतुर्गुणा सत्ता, सा च जघन्येनान्तर्मुहूर्तप्रमाणा, उत्कर्षेण पुनर्देशोनपूर्वकोटिमाना। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

२ तुलना कीजिये—

अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा।
एयविहे तिवियप्पो एयवियप्पो अबंधम्मि ॥ —गो० कर्मकाण्ड, ६२८

—मूल प्रकृतियों में से ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के बन्ध वाले अथवा सात प्रकार के बन्ध वाले या छह प्रकार के बन्ध वाले जीवों के उदय और सत्त्व आठ-आठ प्रकार का जानना। जिनके एक प्रकार मूल प्रकृति का बंध है उनके तीन भेद होते हैं। जिनके एक प्रकृति का भी बन्ध नहीं होता उनके उदय और सत्त्व चार-चार प्रकार के होने से एक ही विकल्प है।

शब्दार्थ—अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु—अष्टविध, सप्तविध, षड्-विध बध के समय, **अट्ठेव**—आठो कर्म की, **उदयसंताइ**—उदय और सत्ता, **एगविहे**—एकविध बध के समय, **तिविगप्पो**—तीन विकल्प, **एगविगप्पो**—एक विकल्प, **अबधम्मि**—अबन्ध दशा मे, बध न होने पर।

गाथार्थ—आठ, सात और छह प्रकार के कर्मो का बध होने के समय उदय और सत्ता आठो कर्म की होती है। एक-विध (एक का) बध होते समय उदय व सत्ता की अपेक्षा तीन विकल्प होते हैं तथा बध न होने पर उदय और सत्ता की अपेक्षा एक ही विकल्प होता है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे मूल प्रकृतियो के बध, उदय और सत्ता के सवेध भगो का कथन किया गया है।

आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और छह प्रकृतिक बध होने के समय आठो कर्मो का उदय और आठों कर्मों की सत्ता होती है—'अट्ठेव उदयसंताइ'। अर्थात् सातवे अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीव मिश्र गुणस्थान को छोडकर आयुबध के समय आठो कर्मों का बध कर सकते हैं अत उनके आठ प्रकृतिक बध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता होती है। अनिवृत्तिबादर सपराय गुणस्थान तक के जीव आयुकर्म के बिना शेष सात कर्मो का बध करते है किन्तु इनके उदय और सत्ता आठो कर्मों की हो सकती है और सूक्ष्मसपराय सयत आयु व मोहनीय कर्म के बिना छह कर्मो का बध करते हैं लेकिन इनके भी आठ कर्मों का उदय और सत्ता होती है।

इस प्रकार से कर्मों की बध प्रकृतियो मे भिन्नता होने पर उदय और सत्ता एक जैसी मानने का कारण यह है कि उपर्युक्त सभी जीव सराग होते है और सरागता का कारण मोहनीय कर्म का उदय है और जब मोहनीय कर्म का उदय है तब उसकी सत्ता अवश्य ही

होगी। इसीलिये आठ, सात और छह प्रकार के कर्मों का बंध होते समय आठों कर्मों का उदय और सत्ता होती है।[1]

इस कथन से निम्नलिखित तीन भंग प्राप्त होते हैं—

१ आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता।

२ सात प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता।

३ छह प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता।

इन भंगों का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

पहला भंग आयुकर्म के बंध के समय पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पाया जाता है। शेष गुणस्थानों में नहीं, क्योंकि अन्य गुणस्थानों में आयुकर्म का बंध नहीं होता है। किन्तु मिश्र गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होने से उसको यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये। अर्थात् मिश्र गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होता अतः वहाँ पहला भंग सम्भव नहीं है। इसका काल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

दूसरा भंग पहले गुणस्थान से लेकर नौवें अनिवृत्तिबादर संपराय गुणस्थान तक होता है। यद्यपि तीसरे मिश्र, आठवें अपूर्वकरण,

---

१ तत्राष्टविधबन्धका अप्रमत्तान्ता, सप्तविधबन्धका अनिवृत्तिबादरसम्परायपर्यवसाना, षड्विधबन्धकाः सूक्ष्मसम्परायाः, एते च सर्वेऽपि सरागाः। सरागत्वं च मोहनीयोदयाद् उपजायते, उदये च सत्यवश्यं सत्ता, ततो मोहनीयोदये सत्तासम्भवाद् अष्टविध—सप्तविध—षड्विधबन्धकेष्वष्टानामुदये सत्तायां चाष्टौ प्राप्यन्ते। एतेन च त्रयो भंगा दर्शिताः। तद्यथा—अष्टविधो बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा सत्ता। एष विकल्प आयुर्बन्धकाले। सप्तविधो बन्धोऽष्टविध उदयोऽष्टविधा सत्ता, एष विकल्प आयुर्बन्धाभावे। तथा षड्विधो बन्धोऽष्टविध उदयोऽष्टविधा सत्ता, एष विकल्पः सूक्ष्मसम्परायाणाम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

नौवे अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे आयुकर्म का बध नहीं होता अत· वहाँ तो यह दूसरा भग ही होता है किन्तु मिथ्यादृष्टि आदि अन्य गुणस्थानवर्ती जीवों के भी सर्वदा आयुकर्म का बध नही होता, अत: वहाँ भी जब आयुकर्म का बध नही होता है तव दूसरा भग बन जाता है। इस भग का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट छह माह और अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर है।

तीसरा भग सूक्ष्मसपराय गुणस्थानवर्ती जीव को ही होता है। क्योंकि इनके आयु और मोहनीय कर्म के बिना शेष छह कर्मो का ही बध होता है। इसका काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

यह तीनो भंग बधस्थानो की प्रधानता से वनते हैं। अत· इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्व मे बताये वधस्थानो के काल के अनुरूप बतलाया है।

एक प्रकार के अर्थात् एक वेदनीय कर्म का बध होने पर तीन विकल्प होते हैं—'एगविहे तिविगप्पो'। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

वेदनीय कर्म का बध ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे—उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली, इन तीन गुणस्थानो मे होता है। [illegible]न्तु उपशान्तमोह गुणस्थान मे सात का उदय और आठ की सत्ता, [illegible]ह गुणस्थान मे सात का उदय और सात की सत्ता, सयोगि[illegible]ी गुणस्थान मे एक का वध और चार का उदय, चार की सत्ता पाई जाती है। अत. एक—वेदनीय कर्म का वध होने की स्थिति मे उदय और सत्ता की अपेक्षा तीन भग इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

१ एक प्रकृतिक वध, सात प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता।

२ एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय और सात प्रकृतिक सत्ता।

३ एक प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता।

इनमें से पहला भंग उपशान्तमोह गुणस्थान में होता है। क्योंकि वहां मोहनीय कर्म के बिना सात कर्मों का उदय होता है, किन्तु सत्ता आठों कर्मों की होती है। इसका काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

दूसरा भंग क्षीणमोह गुणस्थान में होता है। क्योंकि मोहनीय कर्म का समूल क्षय क्षपक सूक्ष्मसंपराय संयत के हो जाता है। जिससे क्षीणमोह गुणस्थान में उदय और सत्ता सात कर्मों की पाई जाती है। इसका काल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

तीसरा भंग सयोगिकेवली गुणस्थान में होता है। क्योंकि वहां बंध तो सिर्फ एक वेदनीय कर्म का ही होता है। किन्तु उदय और सत्ता चार अघाती कर्मों की पाई जाती है। इसका काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि प्रमाण समझना चाहिये।

इस प्रकार उक्त तीन भंग क्रमशः ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान की प्रधानता से होते हैं।

'एगविगप्पो अबंधम्मि' अर्थात् अबन्धदशा में सिर्फ एक ही विकल्प—भंग होता है। वह इस प्रकार समझना चाहिये कि अयोगिकेवली गुणस्थान में किसी भी कर्म का बंध नहीं होता है किन्तु वहां उदय और सत्ता चार अघाती कर्मों की पाई जाती है। इसीलिये वहां चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता, यह एक ही भंग होता है।[1]

---

[1] 'अबन्धे' इत्यबन्धके एक एव विकल्प, स चायम्—चतुर्विध उदयश्चतुर्विधा सत्ता। एष चायोगिकेवलिगुणस्थाने प्राप्यते, तत्र हि योगाभावाद् बन्धो न भवति उदयसत्ते चाघातिकर्मणां भवत।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ०

इस भग का जघन्य और उत्कृष्ट काल अयोगिकेवली गुणस्थान के समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण समझना चाहिये।

इस प्रकार मूल प्रकृतियो के बध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानो की अपेक्षा सवेध भग सात होते है। स्वामी, काल, सहित उनका विवरण पृष्ठ २३ की तालिका मे दिया गया है।

मूल प्रकृतियो की अपेक्षा बन्ध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानो के परस्पर सवेध भगो को बतलाने के पश्चात् अब इन विकल्पो को जीवस्थानों मे बतलाते हैं।

सत्तट्ठबंधअट्ठुदयसंत तेरससु जीवठाणेसु।
एगम्मि पंच भंगा दो भंगा हुंति केवलिणो ॥४॥

शब्दार्थ—**सत्तट्ठबंध**—सात और आठ का बध, **अट्ठुदयसत**—आठ का उदय, आठ की सत्ता, **तेरससु**—तेरह मे, **जीवठाणेसु**—जीवस्थानो मे, **एगम्मि**—एक (पर्याप्त सज्ञी) जीवस्थान मे, **पचभगा**—पाँच भग, **दो भंगा**—दो भग, **हुति**—होते हैं, **केवलिणो**—केवली के।

गाथार्थ—आदि के तेरह जीवस्थानो मे सात प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक बध मे आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्व यह दो-दो भग होते हैं। एक—सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे आदि के पाँच भग तथा केवलज्ञानी के अन्त के दो भग होते है।

विशेषार्थ—सवेध भगो को जीवस्थानो मे वतलाया है। जीवस्थान स्वरूप और भेद चौथे कर्मग्रन्थ मे वतलाये जा चुके हैं। जिनका संक्षिप्त साराश यह है कि जीव अनन्त हैं और उनकी जातियाँ वहुत हैं, लेकिन उनका समान पर्याय रूप धर्मो के द्वारा सग्रह करने को जीवस्थान कहते है, और उसके चौदह भेद किये हैं—

१ अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ३ अपर्याप्त वादर एकेन्द्रिय, ४ पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय, ५ अपर्याप्त

क्रम संख्या	बंधस्थान	उदय स्थान	सत्ता-स्थान	स्वामी	काल	
					जघन्य	उत्कृष्ट
१	आठ प्रकृ०	आठ प्रकृ०	आठ प्रकृ०	मिश्र के सिवाय अप्र० गुणस्थान तक ६ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
२	सात प्रकृ०	आठ प्रकृ०	आठ प्रकृ०	आदि के ९ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	छह माह और अन्त० कम पूर्व-कोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर
३	छह प्रकृ०	आठ प्रकृ०	आठ प्रकृ०	सूक्ष्म-सम्पराय	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
४	एक प्रकृ०	सात प्रकृ०	आठ प्रकृ०	उपशान्त-मोह	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
५	एक प्रकृ०	सात प्रकृ०	सात प्रकृ०	क्षीणमोह	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
६	एक प्रकृ०	चार प्रकृ०	चार प्रकृ०	सयोगि-केवली	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्व-कोटि
७	०	चार प्रकृ०	चार प्रकृ०	अयोगि-केवली	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त

इस भग का जघन्य और उत्कृष्ट काल अयोगिकेवली गुणस्थान के समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण समझना चाहिये।

इस प्रकार मूल प्रकृतियो के बध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानो की अपेक्षा सवेध भग सात होते है। स्वामी, काल, सहित उनका विवरण पृष्ठ २३ की तालिका मे दिया गया है।

मूल प्रकृतियो की अपेक्षा बन्ध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानो के परस्पर सवेध भगो को बतलाने के पश्चात् अब इन विकल्पो को जीवस्थानो मे बतलाते हैं।

सत्तट्ठबंधअट्ठुदयसंत तेरससु जीवठाणेसु।
एगम्मि पंच भंगा दो भंगा हुंति केवलिणो ॥४॥

शब्दार्थ—**सत्तट्ठबध**—सात और आठ का बध, **अट्ठुदयसत**—आठ का उदय, आठ की सत्ता, **तेरससु**—तेरह मे, **जीवठाणेसु**—जीवस्थानो मे, **एगम्मि**—एक (पर्याप्त सज्ञी) जीवस्थान मे, **पचभगा**—पाँच भग, **दो भंगा**—दो भग, **हुति**—होते हैं, **केवलिणो**—केवली के।

गाथार्थ—आदि के तेरह जीवस्थानो मे सात प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक बध मे आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्व यह दो-दो भग होते हैं। एक—सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे आदि के पाँच भग तथा केवलज्ञानी के अन्त के दो भग होते है।

—सवेध भगो को जीवस्थानो मे बतलाया है। जीवस्थान स्वरूप और भेद चौथे कर्मग्रन्थ मे बतलाये जा चुके है। जिनका सक्षिप्त साराश यह है कि जीव अनन्त है और उनकी जातियाँ बहुत हैं, लेकिन उनका समान पर्याय रूप धर्मों के द्वारा सग्रह करने को जीवस्थान कहते है, और उसके चौदह भेद किये हैं—

१ अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ३ अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, ४ पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, ५ अपर्याप्त

क्रम संख्या	बंधस्थान	उदय स्थान	सत्ता-स्थान	स्वामी	काल	
					जघन्य	उत्कृष्ट
१	आठ प्रकृ०	आठ प्रकृ०	आठ प्रकृ०	मिश्र के सिवाय अप्र० गुणस्थान तक ६ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
२	सात प्रकृ०	आठ प्रकृ०	आठ प्रकृ०	आदि के ६ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	छह मास और अन्त० कम पूर्व-कोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर
३	छह प्रकृ०	आठ प्रकृ०	आठ प्रकृ०	सूक्ष्म-सम्पराय	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
४	एक प्रकृ०	सात प्रकृ०	आठ प्रकृ०	उपशान्त-मोह	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
५	एक प्रकृ०	सात प्रकृ०	सात प्रकृ०	क्षीणमोह	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
६	एक प्रकृ०	चार प्रकृ०	चार प्रकृ०	सयोगि-केवली	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्व-कोटि
७	०	चार प्रकृ०	चार प्रकृ०	अयोगि-केवली	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त

द्वीन्द्रिय, ६ पर्याप्त द्वीन्द्रिय, ७ अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, ८ पर्याप्त त्रीन्द्रिय, ९ अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, १० पर्याप्त चतुरिन्द्रिय, ११ अपर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय, १२ पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय, १३ अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय, १४ पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय ।

जीवस्थान के उक्त चौदह भेदो मे से आदि के तेरह जीवस्थानो मे दो-दो भग होते है—२ सात प्रकृतिक बध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता, २ आठ प्रकृतिक बध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता । इन दोनो भगो को बताने के लिये गाथा मे कहा है—'सत्तट्ठबधअट्ठुदयसत तेरससु जीवठाणेसु' ।

इन तेरह जीवस्थानो मे दो भग इस कारण होते है कि इन जीवो के दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय की उपशमना अथवा क्षपणा की योग्यता नही पाई जाती है और अधिकतर मिथ्यात्व गुणस्थान ही सम्भव है । यद्यपि इनमे से कुछ जीवस्थानो मे दूसरा गुणस्थान भी हो सकता है, लेकिन उससे भगो मे अन्तर नही पडता है ।

उक्त दो भग-विकल्पो मे से सात प्रकृतिक बध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता वाला पहला भग जब आयुकर्म का वन्ध नही होता है तव पाया जाता है तथा आठ प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता वाला दूसरा भग आयु-र्म के वन्ध के समय होता है । इनमे से पहले भग का काल प्रत्येक [illegible]स्थान के काल के वरावर यथायोग्य समझना चाहिये और [illegible]रे भग का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, क्योकि आ[illegible]कर्म के वन्ध का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।[1]

---

१ सप्नविधो वन्ध अष्टविध उदय. अष्टविधा सत्ता, एप विकल्प आयुर्वन्धकाल मुक्त्वा शेपकाल सर्वदैव लभ्यते, अष्टविधो वन्ध अष्टविध उदय अष्टविधा सत्ता, एप विकल्प आयुर्वन्धकाले, एप चान्तर्मौहूर्तिक , आयुर्वन्धकालस्य जघन्येनोत्कर्पेण चान्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४४

आदि के तेरह जीवस्थानों के दो-दो भंगों का विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

जीवस्थान	बन्ध	उदय	सत्ता
सू० ए० अ०	७/८	८	८
सू० ए० प०	७/८	८	८
बा० ए० अप०	७/८	८	८
बा० ए० प०	७/८	८	८
द्वी० अप०	७/८	८	८
द्वी० प०	७/८	८	८
त्री० अप०	७/८	८	८
त्री० प०	७/८	८	८
च० अप०	७/८	८	८
च० प०	७/८	८	८
अस० अप०	७/८	८	८
अस० प०	७/८	८	८
स० अप०	७/८	८	८

'एगम्मि पचभंगा' अर्थात् पूर्वोक्त तेरह जीवस्थानों से शेष रहे एक चौदहवें जीवस्थान मे पांच भंग होते हैं। इन पांच भंगो मे पूर्वोक्त दो भंग—१ सात प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय व सत्ता, २ आठ प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता तो होते ही हैं। साथ मे १ छह प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता, २ एक प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता, ३ एक प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक उदय और सात प्रकृतिक सत्ता यह तीन भंग और होते हैं। इस प्रकार पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय के कुल पांच भंग समझने चाहिये।

पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय के पाँच भग इस प्रकार होते है—

बन्ध	८	७	६	१	१
उदय	८	८	८	७	७
सत्ता	८	८	८	८	७

इन पाच भगो मे से पहला भग अनिवृत्ति गुणस्थान तक, दूसरा भग अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक, तीसरा भंग उपशमश्रेणि या क्षपकश्रेणि मे विद्यमान सूक्ष्मसपराय सयत के, चौथा भग उपशान्तमोह गुणस्थान मे और पांचवा भग क्षीणमोह गुणस्थान मे होता है।

यद्यपि केवली जिन भी पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय है और उनके भी पाँच भग मानना चाहिये। लेकिन उनके भग अलग से बताने का कारण यह है कि केवली जीवो के क्षायोपशमिक ज्ञान नही रहते है अत॰ वे सज्ञी नही होते है। इसीलिये उनके सज्ञित्व का निषेध करने के लिये गाथा मे उनके भगो का पृथक् से निर्देश किया है—'दो भगा हुति केवलिणो'। उनके एक प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता—यह एक भग तथा चार प्रकृतिक उदय व चार प्रकृतिक सत्ता, लेकिन बध एक भी प्रकृति का नही, यह दूसरा भग ही होता है। पहला भग सयोगिकेवली के पाया जाता है, वहाँ सिर्फ एक वेदनीय कर्म का ही बध होता है, किन्तु उदय और सत्ता चार अघाति कर्मों की रहती है। दूसरा भग अयोगिकेवली के होता है। क्योकि के एक भी कर्म का बध न होकर सिर्फ चार अघाति कर्मों का व सत्ता पाई जाती है।

जीवस्थानों में भंगों का विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

बंध प्रकृति	उदय प्रकृति	सत्ता प्रकृति	जीवस्थान	काल	
				जघन्य	उत्कृष्ट
८	८	८	१४	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
७	८	८	१४	"	यथायोग्य
६	८	८	संज्ञी पर्याप्त	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
१	७	८	संज्ञी पर्याप्त	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
१	७	७	"	"	"
१	४	४	सयोगि केवली	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि
०	४	[illegible]	अयोगि केवली	पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण कालप्रमाण	पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण कालप्रमाण

इस प्रकार से जीवस्थानों में मूल कर्मों के संवेध भंग समझना चाहिये। अब गुणस्थानों में संवेध भंगों को बतलाते हैं।

गुणस्थानों में मूलकर्मों के संवेध भंग

अट्ठसु एगविगप्पो छस्सु वि गुणसंनिएसु दुविगप्पो।
पत्तेयं पत्तेयं बंधोदयसंतकम्माणं ॥५॥

शब्दार्थ—अट्ठसु—आठ गुणस्थानों में, एगविगप्पो—एक विकल्प, छस्सु—छह में, वि—और, गुणसंनिएसु—गुणस्थानों में, दुविगप्पो—दो विकल्प, पत्तेयं-पत्तेयं—प्रत्येक के, बंधोदयसंतकम्माणं—बंध, उदय और सत्ता प्रकृति स्थानों के।

गाथार्थ—आठ गुणस्थानों में प्रत्येक का बंध, उदय और सत्ता रूप कर्मों का एक-एक भंग होता है और छह गुणस्थानों में प्रत्येक के दो-दो भंग होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में चौदह गुणस्थानों में पाये जाने वाले सं भंगों का कथन किया है।

मोह और योग के निमित्त से ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप आत्मा के गुणो की जो तरतमरूप अवस्थाविशेष होती है, उसे गुणस्थान कहते है। अर्थात् गुण+स्थान से निष्पन्न शब्द गुणस्थान है और गुण का मतलब है आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुण और स्थान यानि उन गुणो की मोह के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के कारण होने वाली तरतम रूप अवस्थाये विशेष।

गुणस्थान के चौदह भेद होते है। जिनके नाम इस प्रकार हैं—१ मिथ्यात्व, २ सासादन सम्यग्दृष्टि, ३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र), ४ अविरत सम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिबादर, १० सूक्ष्मसपराय, ११ उपशान्तमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगिकेवली, १४ अयोगिकेवली। इन चौदह भेदो मे आदि के बारह भेद मोहनीय कर्म के उदय, उपशम आदि के निमित्त से होते है तथा तेरहवॉ सयोगिकेवली और चौदहवाँ अयोगिकेवली यह दो अन्तिम गुणस्थान योग के निमित्त से होते हैं। सयोगिकेवली गुणस्थान योग सद्भाव की अपेक्षा से और अयोगिकेवली गुणस्थान योग के अभाव की अपेक्षा से होता है।

उक्त चौदह गुणस्थानो मे से आठ गुणस्थानो मे बध, उदय और सत्ता रूप कर्मो का अलग-अलग एक-एक भग होता है—'अट्ठसु एगविगप्पो'। जिसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र), अपूर्वकरण, अनिवृत्तिबादर, सूक्ष्मसपराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली, इन आठ गुणस्थानो मे बन्ध, उदय और सत्ता प्रकृति स्थानो का एक-एक विकल्प होता है। इनमे एक-एक विकल्प होने का कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिबादर इन तीन गुणस्थानो मे आयुकर्म के योग्य अध्यवसाय नही होने के कारण सात प्रकृतिक बध, आठ [illegible] उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता यह एक ही भग होता है।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे छह प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता यह एक भग होता है। क्योंकि इस गुणस्थान मे बादर कषाय का उदय न होने से आयु और मोहनीय कर्म का बंध नही होता है किन्तु शेष छह कर्मों का ही बन्ध होता है।

उपशान्तमोह गुणस्थान मे मोहनीय कर्म के उपशान्त होने से सात कर्मो का ही उदय होता है और एक प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक उदय व आठ प्रकृतिक सत्ता, यह एक भग पाया जाता है।

क्षीणमोह गुणस्थान मे एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय और सात प्रकृतिक सत्ता यह एक ही भग होता है। क्योंकि सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान मे ही मोहनीय कर्म का समूलोच्छेद हो जाने से इसका उदय और सत्व नही है।

सयोगिकेवली गुणस्थान मे एक प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता, यह एक भग होता है। क्योंकि इस गुणस्थान मे चार घातिकर्मों का उदय व सत्ता नही रहती है।

अयोगिकेवली गुणस्थान मे योग का अभाव हो जाने से किसी भी कर्म का बंध नही होता है, किन्तु चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता रूप एक भग होता है।

इस प्रकार से आठ गुणस्थानो मे भग-विकल्पो को बतलाने के बाद अब शेष रहे छह गुणस्थानो के भग-विकल्पो को कहते है कि—'छस्सु वि गुणसन्निएसु दुविगप्पो'—छह गुणस्थानो मे दो-दो विकल्प होते हैं। उन छह गुणस्थानो के नाम इस प्रकार हैं—मिथ्यात्व, सासादन, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत। इनमे पाये जाने वाले विकल्प यह है—१ आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता तथा २ सात प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता। इन दोनो भगो मे से

पहला भंग आयुकर्म के बधकाल मे होता है तथा दूसरा विकल्प आयुकर्म के बधकाल के अतिरिक्त सर्वदा पाया जाता है।[1]

चौदह गुणस्थानो के भगो की सग्राहक गाथाये निम्न है एव विवरण पृष्ठ ३१ की तालिका मे दिया गया है।

मिस्स अपुव्वा वायर सगवधा छच्च वधए सुहमो।
उवसताई एग अबधगोऽजोगि एगेग॥
मिच्छासायणअविरय देसपमत्त अपमत्तया चेव।
सत्तऽट्ठ वधगा इह, उदया सता य पुण एए॥
जा सुहुमो ता अट्ठ उ उदए सते य होंति पयडीओ।
सत्तट्ठुवसंते खीणि सत्त चत्तारि सेसेसु॥[2]

इस प्रकार मूल प्रकृतियो की अपेक्षा वध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानो के सवेध भगो और उनके स्वामियो का कथन करने के पश्चात् अब उत्तर प्रकृतियो की अपेक्षा वध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानो के सवेध भगो का कथन करते है। पहले ज्ञानावरण और अतराय कर्म के सवेध भग वतलाते है।

उत्तर प्रकृतियो के संवेध भग

ज्ञानावरण, अन्तराय कर्म

बंधोदयसंतंसा नाणावरणतराइए पच।
बंधोवरमे वि तहा उदसंता हुंति पंचेव॥६॥[3]

---

१ अष्टविधो बन्ध अष्टविध उदय अष्टविधा सत्ता, एष विकल्प आयुर्बन्धकाले, एतेषा ह्यायुर्बन्धयोग्याध्यवसायस्थानसम्भवाद् आयुर्बन्ध उपपद्यते। तथा सप्तविधो बन्ध अष्टविध उदय अष्टविधा सत्ता एष विकल्प आयुर्बन्धकाल मुक्त्वा शेषकाल सर्वदा लभ्यते। —**सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४५**

२ रामदेवगणि रचित सप्ततिका टिप्पण, गा० ८, ९, १०।

३ तुलना कीजिये—
वधोदयकम्मसा णाणावरणतरायिए पच।
बंधोपरमेवि तहा उदयसा होंति पचेव॥ —**गो० कर्मकाड ६३०**

गुण०	मि०		सा०		मि०	अवि०		देश०		प्रमत्त०		अप्रमत्त		अपूर्व०	अनि०	सूक्ष्म०	उपशा०	क्षीण	स०के०	अ०के०
बन्ध	८	७	८	७	७	८	७	८	७	८	७	८	७	७	७	६	१	१	१	०
उदय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
सत्ता	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	४	४
विकल्प	२		२		१	२		२		२		२		१	१	१	१	१	१	१

मूल प्रकृतियो के गुणस्थानो मे पाये जाने वाले बन्ध, उदय, सत्ता के संवेध भंगो का ज्ञापक विवरण इस प्रकार है—

भंगक्रम	बन्ध	उदय	सत्ता	गुणस्थान	काल — जघन्य	काल — उत्कृष्ट
१	८	८	८	१,२,४,५,६,७,	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त छह माह कम तेतीस सागर अन्त-र्मु० न्यून पूर्वकोटि त्रिभाग अधिक
२	७	८	८	१,२,३,४,५,६,७,८,९	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
३	६	८	८	दसवाँ	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
४	१	७	८	ग्यारहवाँ	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
५	१	७	७	बारहवाँ	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
	१	४	४	सयोगिकेवली	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि
	०	४	४	अयोगिकेवली	पंच ह्रस्व स्वर उच्चारण प्रमाण	पंच ह्रस्व स्वर उच्चारण प्रमाण

शब्दार्थ—**बधोदयसंतसा**—बध, उदय और सत्ता रूप अश, **नाणावरणंतराइए**—ज्ञानावरण और अतराय कर्म मे, **पच**—पाच, **बंधोवरमे**—बध के अभाव मे, **वि**—भी, **तहा**—तथा, **उदसता**—उदय और सत्ता, **हुंति**—होती है, **पचेव**—पाच की।

गाथार्थ—ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म मे बध, उदय और सत्ता रूप अश पाँच प्रकृतियो के होते हैं। बध के अभाव मे भी उदय और सत्ता पाँच प्रकृत्यात्मक ही होती है।

विशेषार्थ—पूर्व मे मूल प्रकृतियो के सामान्य तथा जीवस्थान व गुणस्थानो की अपेक्षा सवेध भगो को बतलाया गया है। अब इस गाथा से उन मूल कर्मो की उत्तर प्रकृतियो के सवेध भगो का कथन प्रारम्भ करते हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय यह आठ मूल कर्मप्रकृतियाँ है। इनके क्रमश पाच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पाच भेद होते है। जो उन मूल कर्मप्रकृतियो की उत्तर प्रकृतिया कहलाती हैं। इनके नाम आदि का विवेचन प्रथम कर्मग्रन्थ मे किया गया है।

इस गाथा मे ज्ञानावरण और अतराय कर्म की उत्तर प्रकतियो के भगो को बतलाया है।

ज्ञानावरण की पाचो उत्तर प्रकृतिया तथा अतराय की पाचो उत्तर प्रकृतिया कुल मिलाकर इन दस प्रकृतियो का बध दसवें सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक होता है तथा इनका बध-विच्छेद दसवे गुणस्थान के अन्त मे तथा उदय व सत्ता का विच्छेद बारहवे गुणस्थान के अन्त मे होता है।

ज्ञानावरण और अतराय कर्म की पाच-पाच प्रकृति रूप वध, उदय और सत्व सूक्ष्मसपराय गुणस्थान पर्यन्त है और वध का अभाव होने पर भी उन दोनो की उपशान्तमोह और क्षीणमोह मे उदय तथा सत्व रूप प्रकृतिया पाच-पाच ही हैं।

अत इन दोनो कर्मों मे से प्रत्येक का दसवे गुणस्थान तक पाच प्रकृतिक बध, पाच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता, यह एक भग होता है तथा ग्यारहवे और बारहवे गुणस्थान मे पाच प्रकृतिक उदय, पाच प्रकृतिक सत्ता यह एक भग होता है। इस प्रकार पाचो ज्ञानावरण, पाचो अन्तराय की अपेक्षा कुल दो सवेध भग होते हैं।

उक्त दो भगो मे से पाच प्रकृतिक बध, पाच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता इस भग के काल के अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प प्राप्त होते है। इनमे से अनादि-अनन्त विकल्प अभव्यो की अपेक्षा है। जो अनादि मिथ्यादृष्टि या उपशान्तमोह गुणस्थान को प्राप्त नही हुआ। सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग् दर्शन और चारित्र को प्राप्त करके तथा श्रेणि पर आरोहण करके उपशान्तमोह या क्षीणमोह हो जाते हैं, उनके अनादि-सान्त विकल्प होता है। उपशान्तमोह गुणस्थान से पतित जीवो की अपेक्षा सादि-सान्त विकल्प है।

पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, इस दूसरे विकल्प का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि यह भग उपशान्तमोह गुणस्थान मे होता है और उपशान्तमोह गुणस्थान का जघन्य काल एक समय है, अत इस भग का भी जघन्य काल एक समय माना है। उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अत इस भग का भी उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त माना गया है।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के सवेधभगो का विवरण जीवस्थान और गुणस्थान व समय सहित इस प्रकार समझना चाहिये—

भग क्रम	वध	उदय	सत्ता	गुणस्थान	जीवस्थान	काल जघन्य	काल उत्कृष्ट
१	५	५	५	१ से १० गुणस्थान	१४	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त[1]
२	०	५	५	११ वाँ १२ वाँ	१ सज्ञी पर्याप्त	एक समय	अन्तर्मुहूर्त

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतियो के सवेध भग बतलाने के बाद अव दर्शनावरण कर्म के सवेध भगो को वतलाते हैं ।

दर्शनावरण कर्म

बंधस्स य संतस्स य पगइट्ठाणाइं तिन्नि तुल्लाइं ।
उदयट्ठाणाइं दुवे चउ पणगं दंसणावरणं ॥७॥

शब्दार्थ—**बंधस्स**—वध के, **य**—और, **संतस्स**—सत्ता के, **य**—और, **पगइट्ठाणाइं**—प्रकृतिस्थान, **तिन्नि**—तीन, **तुल्लाइ**—समान, **उदयट्ठाणाइ**—उदयस्थान, **दुवे**—दो, **चउ**—चार, **पणग**—पाच, **दसणावरणे**—दर्शनावरण कर्म मे ।

---

१ पहले भग का जो उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त बतलाया है, वह काल के सादि-सान्त विकल्प की अपेक्षा बताया है। क्योकि जो जीव उपशान्तमोह गुणस्थान से च्युत होकर अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर उपशान्तमोह या क्षीणमोह हो जाता है, उसके उक्त भग का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तथा जो अपार्ध पुद्गल परावर्त काल के प्रारभ मे सम्यग्दृष्टि होकर और उपशमश्रेणि चढकर उपशान्तमोह हो जाता है। अनन्तर जब ससार मे रहने का काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहता है तब क्षपकश्रेणि पर चढकर क्षीणमोह हो जाता है, उसके उक्त भग का उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है ।

गाथार्थ—दर्शनावरण कर्म के बध और सत्ता के प्रकृति-स्थान तीन एक समान होते है। उदयस्थान चार तथा पाच प्रकृतिक इस प्रकार दो होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा मे दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियो के सवेध भग बतलाये हैं। दर्शनावरण कर्म की कुल उत्तर प्रकृतियाँ नौ है। जिनके बधस्थान तीन होते हैं—नौ प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। इसी प्रकार सत्तास्थान के भी उक्त तीन प्रकार होते हैं—नौ प्रकृतिक, छह प्रकृतिक, चार प्रकृतिक। जिसका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नौ प्रकृतिक बधस्थान मे दर्शनावरण कर्म की सब प्रकृतियो का बध होता है। छह प्रकृतिक बधस्थान मे स्त्यानर्द्धित्रिक को छोडकर शेष छह प्रकृतियो का तथा चार प्रकृतिक बधस्थान मे पाच निद्राओ को छोडकर शेष चक्षुदर्शनावरण आदि केवलदर्शनावरण पर्यन्त चार प्रकृतियो का बध होता है।[1]

उक्त तीन बधस्थानो मे से नौ प्रकृतिक बधस्थान पहले और दूसरे—मिथ्यात्व, सासादन—गुणस्थान मे होता है। छह प्रकृतिक बध-स्थान तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर आठवे अपूर्वकरण गुणस्थान के पहले भाग तक तथा चार प्रकृतिक बधस्थान अपूर्वकरण गुणस्थान के दूसरे समय से लेकर दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक होता है।[2]

---

१ तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायो नव, ता एव नव स्त्यानर्द्धित्रिकहीना षट्, एताश्च निद्रा-प्रचलाहीनाश्चतस्र। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

२ तत्र नवप्रकृत्यात्मक बधस्थान मिथ्यादृष्टौ सासादने वा। षट्प्रकृत्यात्मक बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्यापूर्वकरणस्य प्रथम भाग यावत्। चतुष्प्रकृत्यात्मक तु बधस्थानमपूर्वकरणद्वितीयभागादारभ्य सूक्ष्मसपराय यावत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

नौ प्रकृतिक बधस्थान के काल की अपेक्षा तीन विकल्प है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमे अनादि-अनन्त विकल्प अभव्यो मे होता है, क्योकि अभव्यो के नौ प्रकृतिक बधस्थान का कभी भी विच्छेद नही पाया जाता है। अनादि-सान्त विकल्प भव्यो मे होता है, क्योकि भव्यों के नौ प्रकृतिक बधस्थान का कालान्तर मे विच्छेद पाया जाता है तथा सादि-सान्त विकल्प सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीवों के पाया जाता है। इस सादि-सान्त विकल्प का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त है। जिसे इस प्रकार समझना चाहिए कि सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ जो जीव अन्तर्मुहूर्त काल के पश्चात् सम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके नौ प्रकृतिक बधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है तथा जो जीव अपार्ध पुद्गल परावर्त काल के प्रारम्भ मे सम्यग्दृष्टि होकर और अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है, अनन्तर अपार्ध पुद्गल परावर्त काल मे अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जो पुन सम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है।

छह प्रकृतिक बधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल एक सौ बत्तीस सागर है। वह इस प्रकार है कि जो जीव सकल सयम के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर उपशम या क्षपक श्रेणि पर चढकर अपूर्वकरण के प्रथम भाग को व्यतीत करके चार प्रकृतिक वध करने लगता है, उसके छह प्रकृतिक वधस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त होता है, अथवा जो उपशम सम्यग्दृष्टि स्वल्पकाल तक उपशम सम्यक्त्व मे रहकर पुन मिथ्यात्व मे चला जाता है, उसके भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है। उत्कृष्ट काल एक सौ वत्तीस सागर इस प्रकार समझना चाहिये कि

मध्य मे सम्यग्‌मिथ्यात्व से अन्तरित होकर सम्यक्त्व के साथ रहने का उत्कृष्टकाल इतना ही है, अनन्तर वह जीव या तो मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है या क्षपकश्रेणि पर आरोहण कर सयोगिकेवली होकर सिद्ध हो जाता है।

चार प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। जिस जीव ने अपूर्वकरण के द्वितीय भाग मे प्रविष्ट होकर एक समय तक चार प्रकृतियो का बंध किया और मरकर दूसरे समय मे देव हो गया, उसके चार प्रकृतिक बंध का जघन्यकाल एक समय देखा जाता है। उपशमश्रेणि या क्षपकश्रेणि के पूरे काल का योग अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, अतः इसका भी उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त से अधिक नही होना है।

दर्शनावरण के तीन बंधस्थानो को बतलाने के बाद अब तीन सत्तास्थानो को स्पष्ट करते हैं—

नौ प्रकृतिक सत्तास्थान मे दर्शनावरण कर्म की सभी प्रकृतियो की सत्ता होती है। यह स्थान उपशान्तमोह गुणस्थान तक होता है। छह प्रकृतिक सत्तास्थान मे स्त्यानर्द्धित्रिक को छोडकर शेष छह प्रकृतियो की सत्ता होती है। यह सत्तास्थान क्षपक अनिवृत्तिबादर-संपराय के दूसरे भाग से लेकर क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है। चार प्रकृतिक सत्तास्थान क्षीणमोह गुणस्थान के अंतिम समय मे होता है।

नौ प्रकृतिक सत्तास्थान के काल की अपेक्षा अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त, यह दो विकल्प हैं। इनमे पहला विकल्प अभव्यो की अपेक्षा है और दूसरा विकल्प भव्यो मे देखा जाता है, क्योकि कालान्तर मे इनके उक्त स्थान का विच्छेद हो जाता है। सादि-सान्त विकल्प यहाँ सम्भव नही, क्योकि नौ प्रकृतिक सत्तास्थान का विच्छेद

क्षपकश्रेणि मे होता है और क्षपकश्रेणि से जीव का प्रतिपात नही होता है।

छह प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि यह स्थान क्षपक अनिवृत्ति के दूसरे भाग से लेकर क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है और उसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

चार प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय है। क्योकि यह स्थान क्षीणमोह गुणस्थान के अतिम समय मे पाया जाता है।

दर्शनावरण कर्म के उदयस्थान दो हैं—चार प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक—'उदयट्ठाणाइ दुवे चउ पणग'। चार प्रकृतिक उदयस्थान—चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण—का उदय क्षीणमोह गुणस्थान तक सदैव पाया जाता है। इसीलिए इन चारो का समुदाय रूप एक उदयस्थान है। इन चार मे निद्रा आदि पाचो मे से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर पाच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। निद्रादिक ध्रुवोदया प्रकृतिया नही है, क्योकि उदययोग्य काल के प्राप्त होने पर उनका उदय होता है। अत यह पाँच प्रकृतिक उदयस्थान कदाचित् प्राप्त होता है।

दर्शनावरण के चार और पाँच प्रकृतिक, यह दो ही उदयस्थान होने तथा छह, सात आदि प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि निद्राओ मे दो या दो से अधिक प्रकृतियो का एक साथ उदय नही होता है, किन्तु एक काल मे एक ही प्रकृति का उदय होता है।[1]

---

१ न हि निद्रादयो द्वित्रादिका युगपदुदयमायान्ति किन्त्वेकस्मिन् काले एकैवान्यतमा काचित्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५७

दर्शनावरण कर्म के वन्ध, उदय, सत्ता स्थानो का विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

वध	९	६	४
उदय	४		५
सत्ता	९	६	४

अव दर्शनावरण कर्म के वध, उदय और सत्ता स्थानो के परस्पर सवेध से उत्पन्न भगो का कथन करते हैं।

वीयावरणे नववंधगेसु चउ पच उदय नव संता।
छच्चउवंधे चेवं चउ बन्धुदए छलसा य ॥८॥
उवरयबंधे चउ पण नवंस चउरुदय छच्च चउसता।[1]

---

१ तुलना कीजिये—

विदियावरणे णववधगेसु चदुपचउदय णवसत्ता।
छव्वधगेसु एव तह चदुवधे छडसा य ॥
उवरदवधे चदुपचउदय णव छच्च सत्त चदु जुगल।

—गो० कर्मकाड गा० ६३१, ६३२

दूसरे आवरण (दर्शनावरण) की ९ प्रकृतियो के वध करने वाले के उदय ५ का या ४ का और सत्ता ९ की होती है। इसी प्रकार ६ प्रकृतियो के वधक के भी उदय और सत्व जानना। चार प्रकृतियो के वध करने वाले के पूर्वोक्त प्रकार उदय चार या पाच का, सत्व नौ का तथा छह का भी सत्व पाया जाता है। जिसके वध का अभाव है, उसके उदय तो चार व पाच का है और सत्व नौ का व छह का है तथा उदय-सत्व दोनो ही चार-चार के भी हैं।

शब्दार्थ—**बीयावरणे**—दूसरे आवरण—दर्शनावरण मे, **नव-बधगेसु**—नौ के वध के समय, **चउपच**—चार या पाँच का, **उदय**—उदय, **नवसता**—नौ प्रकृतियो की सत्ता, **छच्चउबधे**—छह और चार के वध मे, **चेवं**—पूर्वोक्त प्रकार से उदय और सत्ता, **चउबधुदए**—चार के वध और चार के उदय मे, **छलसा**—छह की सत्ता, **य**—और, **उवरयबधे**—वध का विच्छेद होने पर, **चउपण**—चार अथवा पाँच का उदय, **नवस**—नौ की सत्ता, **चउरुदय**—चार का उदय, **छ**—छह, **च**—और, **चउसता**—चार की सत्ता ।

गाथार्थ—दर्शनावरण की नौ प्रकृतियो का बध होते समय चार या पाँच प्रकृतियो का उदय तथा नौ प्रकृतियो की सत्ता होती है। छह और चार प्रकृतियो का बध होते समय उदय और सत्ता पूर्ववत् होती है। चार प्रकृतियो का वध और उदय रहते सत्ता छह प्रकृतियो की होती है एव वधविच्छेद हो जाने पर चार या पाँच प्रकृतियो का उदय रहते सत्ता नौ की होती है। चार प्रकृतियो का उदय रहने पर सत्ता छह और चार की होती है।

विशेषार्थ—गाथा मे दर्शनावरण कर्म के सवेध भगो का विवेचन किया गया है।

दर्शनावरण की नौ उत्तर प्रकृतियो का वध पहले और दूसरे—मिथ्यात्व व सासादन—गुणस्थान मे होता है, तव चार या पाँच प्रकृतियो का उदय तथा नौ प्रकृतियो की सत्ता होती है—'वीयावरणे नव ववगेसु चउ पच उदय नव सता'। चार प्रकृतिक उदयस्थान मे चक्षुदर्शनावरण आदि केवलदर्शनावरण पर्यन्त चार ध्रुवोदयी प्रकृतियो का ग्रहण किया गया है तथा पाँच प्रकृतिक उदयस्थान उक्त चार प्रकृतियो के साथ किसी एक निद्रा को मिला देने से प्राप्त होता है। इस प्रकार दर्शनावरण कर्म के नौ प्रकृतिक वध, नौ प्रकृतिक सत्ता रहते उदय की अपेक्षा दो भग प्राप्त होते हैं—

१ नौ प्रकृतिक वध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता। यह भग पाच निद्राओ मे से किसी के उदय के विना होता है।

२ नौ प्रकृतिक वध, पाच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता। यह भग निद्रादिक मे से किसी एक निद्रा के उदय के सद्भाव मे होता है।

छह प्रकृतिक वध और चार प्रकृतिक वध के समय भी उदय और सत्ता पूर्ववत् समझना चाहिए। अर्थात् छह प्रकृतिक वध, चार या पाच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक वध, चार या पाच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता। इनमे से छह प्रकृतिक वध, चार या पाच प्रकृतिक उदय, नौ प्रकृतिक सत्तास्थान, तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर उपशामक अपूर्वकरण (आठवे) गुणस्थान के पहले भाग तक के जीवो मे होता है और दूसरा चार प्रकृतिक वध, चार या पाँच प्रकृतिक उदय, नौ प्रकृतिक सत्तास्थान उपशामक अपूर्वकरण गुणस्थान के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक के जीवो के होता है। इन दोनो स्थानो की अपेक्षा कुल चार भग इस प्रकार होते हैं—

१—छह प्रकृतिक वध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

२—छह प्रकृतिक वध, पाच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

३—चार प्रकृतिक वध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

४—चार प्रकृतिक वध, पाच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

उक्त चार भगो मे से क्षपकश्रेणि मे कुछ विशेषता है। क्योंकि

क्षपक जीव अत्यन्त विशुद्ध होता है, अत उसके निद्रा और प्रचला प्रकृति का उदय नही होता है, जिससे उसमे पहला और तीसरा यह दो भग प्राप्त होते है। पहला भग—छह प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता—क्षपक जीवो के अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग तक होता है तथा तीसरा भग—चार प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता—क्षपक जीवो के नौवे अनिवृत्तिबादरसपराय गुणस्थान के सख्यात भागो तक होता है।

क्षपक जीवो के लिये एक और विशेषता समझना चाहिये कि अनिवृत्तिबादर सपराय गुणस्थान मे स्त्यानर्द्धित्रिक का क्षय हो जाने से आगे नौ प्रकृतियो का सत्व नही रहता है। अत अनिवृत्तिबादर-सपराय गुणस्थान के सख्यात भागो से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्तिम समय तक चार प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक और भग होता है—'चउबधुदए छलसा य'। यह भग उपर्युक्त चार भगो से पृथक् है।

इस प्रकार दर्शनावरण की उत्तर प्रकृतियो का यथासभव बध रहते हुए कितने भग सभव है, इसका विचार किया। अब उदय और सत्ता की अपेक्षा दर्शनावरण कर्म के सभव भगो का विचार करते है।

किन्तु क्षीणमोह गुणस्थान मे स्त्यानर्द्धित्रिक का अभाव है, क्योकि इनका क्षय क्षपक अनिवृत्तिकरण मे हो जाता है तथा क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय मे निद्रा और प्रचला का भी क्षय हो जाता है, जिससे अन्तिम समय मे चार प्रकृतियो की सत्ता रहती है। क्षपकश्रेणि मे निद्रा आदि का उदय नही होता है। अत यहाँ निम्नलिखित दो भग होते हैं।

१—चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता। यह भग क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय मे पाया जाता है।

२—चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता। यह भग क्षीणमोह गुणस्थान के अन्तिम समय मे होता है।

इन दोनो भगो का सकेत करने के लिए गाथा मे कहा है—'चउरुदय छच्च चउसता'।

दर्शनावरण कर्म के भगो सम्बन्धी मतान्तर

यहा दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियो के ग्यारह सवेध भग वतलाये है। उनमे निम्नलिखित तीन भग भी सम्मिलित है—

(१) चार प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता।

(२) चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता।

(३) चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता।

इन तीनो भगो मे से पहला भग क्षपकश्रेणि के नौवें और दसवे—अनिवृत्तिवादर, सूक्ष्मसपराय—गुणस्थान मे होता है तथा दूसरा व तीसरा भग क्षीणमोह गुणस्थान मे होता है। इससे यह प्रतीत होता है—इस ग्रन्थ के कर्त्ता का यही मत रहा है कि क्षपकश्रेणि मे निद्रा और प्रचला का उदय नही होता है। आचार्य मलयगिरि ने सप्ततिका प्रकरण की टीका मे सत्कर्म ग्रन्थ का यह गाथाश उद्धृत किया है—

निद्दादुगस्स उदओ खीणगखवगे परिच्चज्ज।

क्षपकश्रेणि और क्षीणमोह गुणस्थान मे निद्राद्विक का उदय नही होता है। कर्मप्रकृति[1] तथा पचसग्रह के कर्ताओ का भी यही मत है। किन्तु पचसग्रह के कर्ता क्षपकश्रेणि और क्षीणमोह गुणस्थान मे पाच प्रकृति का भी उदय होता है, इस मत से परिचित थे और उसका उल्लेख उन्होने "**पचण्ह वि केइ इच्छति**"[2] इस पद से किया है। आचार्य मलयगिरि ने इसे कर्मस्तवकार का मत बताया है।[3] इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि कर्मस्तवकार के सिवाय प्राय सभी कार्मग्रन्थिको का यही मत रहा है कि क्षपकश्रेणि और क्षीणमोह गुणस्थान मे निद्राद्विक का उदय नही होता है।

दिगम्बर परम्परा मे सर्वत्र विकल्प वाला मत पाया जाता है। कषायपाहुड चूर्णि मे इतना सकेत किया गया है कि "क्षपकश्रेणि पर चढने वाला जीव आयु और वेदनीय कर्म को छोडकर उदयप्राप्त शेष सब कर्मो की उदीरणा करता है।[4] इस पर टीका करते हुए वीरसेन स्वामी ने जयधवला क्षपणाधिकार मे लिखा है कि क्षपकश्रेणि वाला जीव पाँच ज्ञानावरण और चार दर्शनावरण का नियम से वेदक है किन्तु निद्रा और प्रचला का कदाचित् वेदक है, क्योकि इनका कदाचित् अव्यक्त उदय होने मे कोई विरोध नही आता है।[5] अमिति-

---

१ निद्दापयलाण खीणरागखवगे परिच्चज्ज। —**कर्मप्रकृति उ० गा० १०**

२ पचसग्रह सप्ततिका गा० १४

३ कर्मस्तवकारमतेन पञ्चानामप्युदयो भवति।

—**पंचसंग्रह सप्ततिका टीका, गा० १४**

४ आउगवेदणीयवज्जाण वेदिज्जमाणाणकम्माण पवेसगो।

—**कषायपाहुड चूर्णि (यतिवृषभ)**

५ पचण्ह णाणावरणीयाण चदुण्ह दसणावरणीयाण णियमा वेदगो, णिद्दापयलाण सिया, तासिमवत्तोदयस्स कदाइ सभवे विरोहाभावादो।

—**जयधवला (क्षपणाधिकार)**

गति आचार्य ने भी अपने पचसग्रह मे यही मत स्वीकार किया है कि क्षपकश्रेणि और क्षीणमोह मे दर्शनावरण की चार या पाच प्रकृतियो का उदय होता है।[1] गो० कर्मकाड मे भी उसी मत को स्वीकार किया गया है।[2]

इस प्रकार दिगम्बर परम्परा की मान्यतानुसार चार प्रकृतिक वन्ध, पाँच प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक भग नौवें, दसवें गुणस्थान मे तथा पाँच प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता यह एक भग क्षीणमोह गुणस्थान मे बढ जाता है। इसलिये दर्शनावरण कर्म के सवेध भग वतलाने के प्रसग मे इन दोनो भगो को मिलाने से तेरह भंग दिगम्बर परम्परा मे माने जाते हैं, लेकिन श्वेताम्बर परम्परा मे ग्यारह तथा मतान्तर मे तेरह भगो के दो विकल्प है।

दर्शनावरण कर्म के वन्ध, उदय, सत्ता के सवेध ११ अथवा १३ भंगो का विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

क्रम	वध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	९	४	९	१,२
२	९	५	९	१,२
३	६	४	९	३,४,५,६,७,८
४	६	५	९	३,४,५,६,७,८
५	४	४	९	८,९,१०[3]

१ द्वयोर्नव द्वयो षट्क चतुर्षु च चतुष्टयम्।
पञ्च पञ्चसु शून्यानि भङ्गा सन्ति त्रयोदश ॥
—पचसग्रह, अमितिगति, श्लोक ३८८

२ गो० कर्मकाड गा० ६३१, ६३२, जो पृ० ३९ पर उद्धृत हैं।

३ पाचवा भग उपशम और क्षपक दोनो श्रेणि मे होता है, लेकिन इतनी विशेषता है कि क्षपकश्रेणि मे इसे नौवे गुणस्थान के सख्यात भा[ग तक] ही जानना। आगे क्षपकश्रेणि में सातवा भग प्रारम्भ हो जाता है,

६	४	५	९	८,९,१० उपशमश्रेणि
७	४	४	६	९ १० क्षपक
८	४	५	६	९,१० मतान्तर से[1]
९	०	४	९	११ उपशामक
१०	०	५	९	११ उपशामक
११	०	४	६	१२ द्विचरम समय पर्यन्त
१२	०	५	६	मतान्तर से
१३	०	४	४	१२ चरम समय मे

दर्शनावरण कर्म के सवेध भगो का कथन करने के अनन्तर अव वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के सवेध भग वतलाते हैं—

वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म

वेयणियाउयगोए विभज्ज[2] मोह पर वोच्छं ॥९॥

---

१ इन भगो मे आठवा और बारहवा भग कर्मस्तव के अभिप्राय के अनुसार बतलाया है और शेष ग्यारह भग इस ग्रन्थ के अनुसार समझना चाहिये ।

२ किन्ही विद्वान ने वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगो की सख्या बतलाने के लिये मूल प्रकरण के अनुसधान मे निम्नलिखित गाथा प्रक्षिप्त की है—

(क) गोयम्मि सत्त भगा अट्ठ य भगा हवति वेयणिए ।
पण नव नव पण भगा आउचउक्के वि कमसोउ ॥

यह गाथा मूल प्रकरण मे नही है ।

(ख) वेयणिये अडभगा गोदे सत्तेव होंति भगा हु ।
पण णव णव पण भगा आउचउक्केसु विसरित्था ॥

—गो० कर्मकांड ६५१

वेदनीय के आठ और गोत्र के सात भग होते हैं तथा चारो आयुओ क्रम से पाँच, नौ, नौ और पाच भग होते है ।

शब्दार्थ—वेयणियाउयगोए—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के, विभज्ज—बधादिस्थान और उनके सवेध भग कहकर, मोह—मोहनीय कर्म के, पर—पश्चात्, वोच्छ—कथन करेंगे।

गाथार्थ—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के वधादि स्थान और उनके सवेध भग कहकर वाद मे मोहनीय कर्म के बन्धादि स्थानो का कथन करेगे।

विशेषार्थ—गाथा मे वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म मे विभाग करने की सूचना दी है, लेकिन किस कर्म के अपनी उत्तर प्रकृतियो की अपेक्षा कितने बधादि स्थान और उनके कितने सवेध भग होते है, इसको नही वताया है। किन्तु टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने अपनी टीका मे इनके भगो का विस्तृत विचार किया है। अत टीका के अनुसार वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगो को यहाँ प्रस्तुत करते है।

वेदनीय कर्म के सवेध भग

वेदनीय कर्म के दो भेद है—साता और असाता। ये दोनो प्रकृतियाँ परस्पर विरोधिनी हैं, अत इनमे से एक काल मे किसी एक का वध और किसी एक का उदय होता है। एक साथ दोनो का वध और उदय सभव नही है। लेकिन किसी एक प्रकृति की सत्ता का विच्छेद होने तक सत्ता दोनो प्रकृतियो की पाई जाती है तथा किसी एक प्रकृति की सत्ता व्युच्छिन्न हो जाने पर किसी एक ही प्रकृति की सत्ता पाई जाती है।[1] अर्थात् वेदनीय कर्म का उत्तर प्रकृतियो की अपेक्षा

---

१ तत्र वेदनीयस्य सामान्येनैक वधस्थानम्, तद्यथा—सातमसात वा, द्वयो परस्परविरुद्धत्वेन युगपद्वन्धाभावात्। उदयस्थानमपि एकम्, तद्यथा—सातमसात वा, द्वयोर्युगपदुदयाभावात् परस्परविरुद्धत्वात्। सत्तास्थाने द्वे, तद्यथा—द्वे एक च। तत्र यावदेकमन्यतरद् न क्षीयते तावद् द्वे अपि सती, अन्यतरस्मिश्च क्षीणे एकमिति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५९

वधस्थान और उदयस्थान सर्वत्र एक प्रकृतिक होता है किन्तु सत्ता-स्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, इस प्रकार दो होते हैं।

वेदनीय कर्म के सवेध भग इस प्रकार है—१ असाता का बध, असाता का उदय और दोनो की सत्ता, २, असाता का बध, साता का उदय और दोनो की सत्ता, ३ साता का बध, साता का उदय और दोनो की सत्ता और ४. साता का बध, असाता का उदय और दोनो की सत्ता।

उक्त चार भग बध रहते हुए होते है। इनमे से आदि के दो पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान तक होते हैं। क्योकि प्रमत्तसयत गुणस्थान मे असाता का वधविच्छेद हो जाने से आगे इसका बध नही होता है। जिससे सातवे अप्रमत्तसयत आदि गुणस्थानो मे आदि के दो भग प्राप्त नही होते है। अत के दो भग अर्थात् तीसरा और चौथा भग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगि-केवली गुणस्थान तक होते है। क्योकि साता वेदनीय का वध तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान तक ही होता है। बध का अभाव होने पर उदय व सत्ता की अपेक्षा निम्नलिखित चार भग होते है—

१. असाता का उदय और दोनो की सत्ता।
२ साता का उदय और दोनो की सत्ता।
३ असाता का उदय और असाता की सत्ता।
४ साता का उदय और साता की सत्ता।

इनमे से आदि के दो भग अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक होते है। क्योकि अयोगिकेवली के द्विचरम समय तक दोनो की सत्ता पाई जाती है। अन्त के दो भग—तीसरा और चौथा–चरम समय मे होता है। जिसके द्विचरम समय मे साता का क्षय होता है उसके अन्तिम समय मे तीसरा भग—असाता का उदय, असाता की सत्ता—पाया जाता है तथा जिसके द्विचरम समय मे असाता का क्षय

हो गया है, उसके अन्तिम समय मे—साता का उदय, साता की सत्ता यह चौथा भग पाया जाता है। इस प्रकार वेदनीय कर्म के कुल आठ भग होते हैं।[1] जिनका विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

भग क्रम	वध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अ०	अ०	सा० असा० २	१, २, ३, ४, ५, ६,
२	अ०	सा०	२	१, २, ३, ४, ५, ६,
३	सा०	अ०	२	१ से १३ तक
४	सा०	सा०	२	१ से १३ तक
५	०	असा०	२	१४ द्विचरम समयपर्यन्त
६	०	सा०	२	१४ द्विचरम समयपर्यन्त
७	०	अ०	अ०	१४ चरम समय मे
८	०	सा०	सा०	१४ चरम समय मे

आयुकर्म के सवेध भंग

अव गाथा मे बताये गये क्रम के अनुसार आयुकर्म के वधादि स्थान और उनके सवेध भगो का विचार करते है। आयुकर्म के चार भेदो मे क्रम से पाँच, नौ, नौ, पाँच भग होते है। अर्थात् नरकायु के

---

१ (क) तेरसमछट्ठुएएसु सायासायाण वधवोच्छेओ।
सतउइण्णाइ पुणो सायासायाइ सव्वेसु ॥
वधइ उइण्णय चि य इयर वा दो वि सत चउभगो।
सत मुइण्णमवधे दो दोण्णि दुसत इइ अट्ठ ॥
—पचसग्रह सप्ततिका गा० १७, १८

(ख) सादासादेक्कदर वधुदया होति सभवट्ठाणे।
दोसत्त जोगित्ति य चरिमे उदयागद सत्त ॥
छट्ठोत्ति चारि भगा दो भगा होति जाव जोगिजिणे।
चउभगाऽजोगिजिणे ठाण पडि वेयणीयस्स ॥
—गो० कर्मकाड, गा० ६३३, ६३४

पाँच, तिर्यंचायु के नौ, मनुष्यायु के नौ और देवायु के पाच सवेध भग होते हैं। जिनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

एक पर्याय मे किसी एक आयु का उदय और उसके उदय मे बँधने योग्य किसी एक आयु का ही वध होता है, दो या दो से अधिक का नही। इसलिये बध और उदय की अपेक्षा आयु का एक प्रकृतिक बधस्थान और एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है किन्तु सत्तास्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक इस प्रकार दो होते है। क्योकि जिसने परभव की आयु का बध कर लिया है, उसके दो प्रकृतिक तथा जिसने परभव की आयु का बध नही किया है, उसके एक प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।[1]

अब आयुकर्म के सवेध भगो को वतलाते है। आयुकर्म की तीन अवस्थाएँ होती है—

१ परभव सम्बन्धी आयुकर्म के बधकाल से पूर्व की अवस्था।

२ परभव सम्बन्धी आयु के बधकाल की अवस्था।

३ परभव सम्बन्धी आयुबध के उत्तर-काल की अवस्था।[2]

इन तीनो अवस्थाओ को क्रमश अबन्धकाल, बधकाल और उपरतकाल कहते है। सर्वप्रथम नरकायु के सवेध भगो का विचार करते हैं।

---

१ आयुषि सामान्येनैक बधस्थान चतुर्णामन्यतमत्, परस्परविरुद्धत्वेन युगपद द्वित्रायुषा बन्धाभावत्। उदयस्थानमप्येकम्, तदपि चतुर्णामन्यतमत्, युगपद् द्वित्रायुषा उदयाभावात्। द्वे सत्तास्थाने, तद्यथा—द्वे एक च। तत्रैक चतुर्णामन्यतमत् यावदन्यत् परभवायुर्न बध्यते, परभवायुषि च बद्धे यावदन्यत्रे परभवे नोत्पद्यते तावद् द्वे सती।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

२ तत्रायुषस्तिस्रोऽवस्था, तद्यथा—परभवायुर्बन्धकालात् पूर्वावस्था परभवायुर्बन्धकालावस्था परभवायुर्बन्धोत्तरकालावस्था च।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

नरकायु के सवेध भग—नारकियों के अवन्धकाल मे नरकायु का उदय और नरकायु का सत्त्व, यह एक भग होता है। नारको मे पहले चार गुणस्थान होते है, शेष गुणस्थान नही होने से यह भग प्रारम्भ के चार गुणस्थानो मे सम्भव है।

बधकाल मे १ तिर्यचायु का वध, नरकायु का उदय तथा तिर्यंच-नरकायु का सत्त्व एव २ मनुष्य-आयु का बध, नरकायु का उदय और मनुष्य-नरकायु का सत्त्व, यह दो भग होते हैं। नारक जीव के देव आयु के बध का नियम नही होने से[1] उक्त दो विकल्प ही सम्भव है। इनमे से पहला भग मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे होता है, क्योकि तिर्यचायु का वध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है तथा दूसरा भग मिश्र गुणस्थान मे आयु वध का नियम न होने से, उसको छोडकर मिथ्यात्व, सासादन और अविरत सम्यग्दृष्टि इन तीन गुण-स्थानो मे होता है। क्योकि नारको के उक्त तीन गुणस्थानो मे मनुष्य-आयु का वध पाया जाता है।

उपरतबधकाल मे १ नरकायु का उदय और नरक-तिर्यंचायु का सत्त्व तथा २ नरकायु का उदय, नरक-मनुष्यायु का सत्त्व, यह दो भग होते है। नारको के यह दोनो भग आदि के चार गुणस्थानो मे सम्भव है। क्योकि तिर्यचायु के बधकाल के पश्चात् नारक अविरत सम्यग्-दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो सकता है। अविरत सम्यग्दृष्टि नारक के भी मनुष्यायु का बध होता है और बध के पश्चात ऐसा जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को भी प्राप्त हो सकता है, जिससे दूसरा भग भी प्रारम्भ के चार गुणस्थानो मे सम्भव है।

---

१ इह नारका देवायु नारकायुश्च भवप्रत्ययादेव न बध्नन्ति तत्रोत्पत्त्यभावात

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० ९

इस प्रकार नरकगति में आयु के अबन्ध मे एक, बंध मे दो और उपरतबध मे दो, कुल मिलाकर पाँच भग होते हैं।

नरकगति की आयुबंध सम्बन्धी विशेषता

नारक जीवो के उक्त पाँच भग होने के प्रसग मे इतना विशेष जानना चाहिये कि नारक भवस्वभाव से ही नरकायु और देवायु का वध नही करते है। क्योकि नारक मर कर नरक और देव पर्याय मे उत्पन्न नही होते है, ऐसा नियम है।[1] आशय यह है कि तिर्यंच और मनुष्य गति के जीव तो मरकर चारो गतियो मे उत्पन्न होते हैं किन्तु देव और नारक मरकर पुन· देव और नरक गति मे उत्पन्न नही होते है, वे तो केवल तिर्यंच और मनुष्य गति मे ही उत्पन्न होते हैं। नरकगति के आयुकर्म के सवेध भगो का विवरण इस प्रकार है—

भग क्रम	काल	वध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अवधकाल	०	नरक	नरक	१, २, ३, ४
२	वधकाल	तिर्यंच	नरक	न० ति०	१, २
३	वधकाल	मनुष्य	नरक	न० म०	१, २, ४
४	उप० वधकाल	०	नरक	न० ति०	१, २, ३, ४
५	उप० वधकाल	०	नरक	न० म०	१, २, ३, ४

देवायु के सवेध भग—यद्यपि नरकगति के पश्चात तिर्यंचगति के आयुकर्म के संवेध भगो का कथन करना चाहिये था। लेकिन जिस प्रकार नरकगति मे अवन्ध, वन्ध और उपरतवध की अपेक्षा पाँच भग व उनके गुणस्थान वतलाये है, उसी प्रकार देवगति मे भी होते

१ "देवा नारगा वा देवेसु नारगेसु वि न उववज्जति इति"। ततो नारकाणा परभवायुर्वन्धकाले वन्धोत्तरकाले च देवायु-नारकायुर्भ्याम् विकल्पाभावात् सर्वसन्यया पंचैव विकल्पा भवन्ति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६०

है। परन्तु इतनी विशेषता है कि नरकायु के स्थान मे सर्वत्र देवायु कहना चाहिये। जैसे देवायु का उदय, देवायु की सत्ता आदि।[1] देवायु के पाँच भगो का कथन इस प्रकार होगा—

१ देवायु का उदय और देवायु की सत्ता (अवन्धकाल)।

२ तिर्यंचायु का बध, देवायु का उदय और तिर्यंच-देवायु की सत्ता (बधकाल)।

३ मनुष्यायु का बध, देवायु का उदय और मनुष्य-देवायु की सत्ता (बधकाल)।

४ देवायु का उदय और देव-तिर्यचायु का सत्त्व (उपरत-बधकाल)।

५ देवायु का उदय और देव-मनुष्यायु का सत्त्व (उपरत-बधकाल) उक्त भगो का विवरण इस प्रकार है—

भगक्रम	काल	बध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अवन्धकाल	०	देव	देव	१,२,३,४
२	बधकाल	तिर्यंच	देव	ति०, देव	१,२
३	बधकाल	मनुष्य	देव	देव, म०	१,२,४
४	उप० बधकाल	०	देव	दे० ति०	१,२,३,४
५	उप० बधकाल	०	देव	दे० म०	१,२,३,४

तिर्यंचायु के सवेध भग—तिर्यंचगति मे आयुकर्म के सवेध भग-विकल्प नौ होते हैं। जिनका कथन इस प्रकार है कि अबन्धकाल मे तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंचायु की सत्ता यह एक भग होता है, जो

---

१ एव देवानामपि पच विकल्पा भावनीया। नवर नारकायु स्थाने देवायुरिति वक्तव्यम्। तद्यथा—देवायुष उदयो, देवायुष सत्ता इत्यादि।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६०

प्रारंभ के पाँच गुणस्थानो मे पाया जाता है। क्योकि तिर्यंचगति मे आदि के पाँच गुणस्थान ही होते है, शेष गुणस्थान नही होते है।

तिर्यचगति मे बन्धकाल के समय निम्नलिखित चार भग होते है—१ नरकायु का बध, तिर्यचायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता। २ तिर्यंचायु का बध, तिर्यंचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता, ३ मनुष्यायु का वन्ध, तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता तथा—४ देवायु का वन्ध, तिर्यचायु का उदय और देव-तिर्यचायु की सत्ता।

इनमे से पहला भग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे होता है, क्योकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्यत्र नरकायु का बध नही होता है। दूसरा भग मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानो मे होता है, क्योकि तिर्यचायु का बध सासादन गुणस्थान तक ही होता है। तीसरा भग भी पहले और दूसरे गुणस्थान—मिथ्यात्व और सासादन तक होता है, क्योकि तिर्यच जीव मनुष्यायु का बध मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान मे ही करते है, अविरत सम्यग्दृष्टि और देश-विरत गुणस्थान मे नही। चौथा भग तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान को छोडकर पाँचवे देशविरत गुणस्थान तक चार गुणस्थानो मे होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे आयुकर्म का बध न होने से उसका यहा ग्रहण नही किया गया है।

इसी प्रकार उपरतबधकाल मे भी चार भग होते है। जो इस प्रकार है—१ तिर्यचायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता, २ तिर्यचायु का उदय और तिर्यंच-तिर्यंचायु की सत्ता, ३ तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता और ४ तिर्यंचायु का उदय था देव-तिर्यंचायु की सत्ता।

ये चारो भग प्रारम्भ के पाँच गुणस्थानो मे होते है, क्योकि स तिर्यच ने नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु का बध कर लिया

है, उसके अन्य गुणस्थानो का पाया जाना सम्भव है। इस प्रकार तिर्यंचगति मे अवन्ध, बध और उपरतबध की अपेक्षा कुल नौ भग होते हैं। तिर्यंचगति मे आयुकर्म के भगो का विवरण इस प्रकार है—

भग-क्रम	काल	बध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अवन्ध	०	तिर्यंच	तिर्यंच	१,२,३,४,५
२	बध	नरक	तिर्यंच	न० ति०	१
३	बधकाल	तिर्यंच	तिर्यंच	तिर्यंच ति०	१,२
४	,,	मनुष्य	तिर्यंच	म० ति०	१,२
५	,,	देव	तिर्यंच	देव ति०	१,२,४,५
६	उप० बध	०	तिर्यंच	ति० न०	१,२,३,४,५
७	,,	०	तिर्यंच	तिर्यंच ति०	१,२,३,४,५
८	,,	०	तिर्यंच	ति० म०	१,२,३,४,५
९	,,	०	तिर्यंच	ति० दे०	१,२,३,४,५

मनुष्यायु के सवेध भग—नरक, देव और तिर्यंचायु के सवेध भगो का कथन किया जा चुका है। अव शेष रही मनुष्यायु के भगो को बतलाते है। मनुष्यायु के भी नौ भग है। जो इस प्रकार समझना चाहिये—

मनुष्यगति मे अवन्धकाल मे एक ही भग—मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता—होता है। यह भग पहले से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक सभी गुणस्थानो मे होता है। क्योकि मनुष्यगति मे यथासम्भव सभी चौदह गुणस्थान होते हैं।

बधकाल मे—१ नरकायु का बध, मनुष्यायु का उदय और नरक-मनुष्यायु की सत्ता। २ तिर्यचायु का बध, मनुष्यायु का उदय और तिर्यच-मनुष्यायु की सत्ता ३ मनुष्यायु का बध, मनुष्यायु का उदय और मनुष्य-मनुष्यायु की सत्ता तथा ४ देवायु का बध, मनुष्यायु का उदय और देव-मनुष्यायु की सत्ता, यह चार भग होते हैं।

इनमे से पहला भग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्यत्र नरकायु का बध सम्भव नही है। तिर्यचायु का बध दूसरे गुणस्थान तक होता है, अत दूसरा भग मिथ्यात्व, सासादन इन दो गुणस्थानो मे होता है। तीसरा भग भी मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानो मे ही पाया जाता है, क्योकि मनुष्य तिर्यचायु के समान मनुष्यायु का बन्ध भी दूसरे गुणस्थान तक ही करते है। चौथा भग मिश्र गुणस्थान को छोडकर अप्रमत्तसयत सातवे गुणस्थान तक छह गुणस्थानो मे होता है। क्योकि मनुष्यगति मे देवायु का बध अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक पाया जाता है।

उपरतबधकाल मे—१ मनुष्यायु का उदय और नरक-मनुष्यायु का सत्त्व, २ मनुष्यायु का उदय और तिर्यंच-मनुष्यायु का सत्त्व, ३ मनुष्यायु का उदय और मनुष्य-मनुष्यायु का सत्त्व तथा ४ मनुष्यायु का उदय और देव-मनुष्यायु का सत्त्व, यह चार भग होते है।

उक्त चार भगो मे से आदि के तीन भग सातवे अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक पाये जाते है। क्योकि यद्यपि मनुष्यगति मे नरकायु का वध पहले गुणस्थान मे, तिर्यचायु का वध दूसरे गुणस्थान तक तथा इसी प्रकार मनुष्यायु का वध भी दूसरे गुणस्थान तक ही होता है, तथापि वध करने के वाद ऐसे जीव सयम को तो धारण कर सकते हैं, किन्तु श्रेणि-आरोहण नही करते है। इसलिये उपरतवध की अपेक्षा नरक, तिर्यच और मनुष्य आयु इन तीन आयुयो का सत्त्व अप्रमत्त गुणस्थान तक वतलाया है। चौथा भग प्रारम्भ के ग्यारह गुणस्थानो तक पाया जाना सम्भव है, क्योकि देवायु का जिस ष्य ने वध कर लिया है, उसके उपशमश्रेणि पर आरोहण सम्भव । इस प्रकार मनुष्यगति मे अवन्ध, वध और उपरतवध की अपेक्षा आयुकर्म के कुल नौ भग होते है।

मनुष्यगति के उपरतबध भंगो की विशेषता

तिर्यंचगति मे उपरतबध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु की सत्ता पाँचवे गुणस्थान तक तथा मनुष्यगति मे उपरत-बध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यचायु और मनुष्यायु की सत्ता सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक बतलाई है। इस सम्बन्ध मे मतभिन्नता है।

देवेन्द्रसूरि ने दूसरे कर्मग्रन्थ 'कर्मस्तव' के सत्ताधिकार मे लिखा है कि दूसरे और तीसरे गुणस्थान के सिवाय पहले से लेकर ग्यारहवे गुणस्थान तक १४८ प्रकृतियो की सत्ता सम्भव है[१] तथा आगे इसी ग्रन्थ मे यह भी लिखा है कि चौथे से सातवे गुणस्थान पर्यन्त चार गुणस्थानो मे अनन्तानुबधीचतुष्क की विसयोजना और दर्शनमोहत्रिक का क्षय हो जाने पर १४१ की सत्ता होती है और अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानो मे अनन्तानुबधीचतुष्क, नरकायु और तिर्यंचायु इन छह प्रकृतियो के बिना १४२ प्रकृतियो की सत्ता होती है।[२]

उक्त कथन का साराश यह है कि १ उपरतबध की अपेक्षा चारो आयुयो की सत्ता ग्यारहवे गुणस्थान तक सम्भव है और २ उपरतबध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु की सत्ता सातवे गुणस्थान तक पाई जाती है। इस प्रकार दो मत फलित होते है।

पचसग्रह सप्ततिका-सग्रह नामक प्रकरण की गाथा १०६ तथा बृहत्कर्मस्तव भाष्य से दूसरे मत की पुष्टि होती है, किन्तु पचसग्रह के इसी प्रकरण की छठी गाथा मे इन दोनो से भिन्न एक अन्य मत भी दिया है कि नरकायु की सत्ता चौथे गुणस्थान तक, तिर्यचायु की

---

१ गाथा २५, द्वितीय कर्मग्रन्थ।

२ गाथा २६, द्वितीय कर्मग्रन्थ।

सत्ता पाँचवे गुणस्थान तक, देवायु की सत्ता ग्यारहवे गुणस्थान तक और मनुष्यायु की सत्ता चौदहवे गुणस्थान तक पाई जाती है। गो० कर्मकाड मे भी इसी मत को माना है। अन्य दिगम्बर ग्रन्थो मे भी यही एक मत पाया जाता है।

यहाँ जो वर्णन किया गया है वह दूसरे मत—उपरतबध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यचायु और मनुष्यायु की सत्ता सातवे गुणस्थान तक पाई जाती है—के अनुसार किया है। आचार्य मलयगिरि ने इसी मत के अनुसार सप्ततिका प्रकरण टीका मे विवेचन किया है—"बन्धे तु व्यवच्छिन्ने मनुष्यायुष उदयो नारक-मनुष्यायुषी सती, एष विकल्पोऽप्रमत्तगुणस्थानक यावत्, नारकायुर्बन्धानन्तर सयमप्रतिपत्तेरपि सम्भवात्। मनुष्यायुप उदयस्तिर्यड्-मनुष्यायुषी सती, एषोऽपि विकल्पोऽप्रमत्तगुणस्थानक यावत्। मनुष्यायुष उदयो मनुष्य-मनुष्यायुषी सती, एपोऽपि विकल्प· प्राग्वत्। मनुष्यायुप उदयो देव-मनुष्यायुषी सती, एष विकल्प उपशान्तमोहगुणस्थानक यावत्, देवायुषि बद्धेऽप्युपशमश्रेण्यारोह सम्भवात्।" —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६०

श्वेताम्बर कर्म साहित्य मे इसी मत की मुख्यता है। मनुष्यगति के नौ सवेध भगो का विवरण निम्न प्रकार समझना चाहिये—

भंग क्रम	काल	बध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अबन्ध	०	मनुष्य	मनुष्य	सभी चौदह गुण०
२	बधकाल	नरक	,,	नरक, मनुष्य	१
३	,,	तिर्यंच	,,	म० तिर्य०	१,२
४	,,	मनुष्य	,,	म० म०	१,२
५	,,	देव	,,	म० दे०	१,२,४,५,६,७
६	उप० बन्ध	०	,,	म० न०	१,२,३,४,५,६,७
७	,,	०	,,	म० ति०	१,२,३,४,५,६,७
८	,,	०	,,	म० म०	१,२,३,४,५,६,७
९	,,	०	,,	म० दे०	१ से ११ गुण० तक

इस प्रकार चारो गतियो के ५+९+९+५=२८, कुल मिलाकर आयुकर्म के अट्ठाईस भग होते है।[1] प्रत्येक गति मे आयु के भग लाने के लिये गो० कर्मकाड गा० ६४५ मे एक नियम सूत्र दिया है—

एक्काउस्स तिभगा सम्भवआउहिं ताडिदे णाणा ।
जीवे इगिभवभगा रूऊणगुगूणमसरित्थे ॥

इसका साराश यह है कि जिस गति मे जितनी आयुयो का बध होता है, उस सख्या को तीन से गुण कर दे और जहाँ जो लब्ध आये उसमे से एक कम बधने वाली आयुयो की सख्या घटा दे तो प्रत्येक गति मे आयु के अबन्ध, बध और उपरतबध की अपेक्षा कुल भग प्राप्त हो जाते है। जैसे कि—देव और नारक मे दो-दो आयु का ही बध सम्भव है, अत उन दोनो मे छह-छह भग होते हैं। अब इनमे एक-एक कम बधने वाली आयुयो की सख्या को कम कर दिया तो नरकगति के पाँच भग और देवगति के पाँच भग आ जाते हैं। मनुष्य और तिर्यंचगति मे चार आयुयो का बध होता है। अत चार को तीन से गुणा करने पर बारह होते है। अब इनमे से एक कम बधने वाली आयुयो की सख्या तीन को घटा दे तो मनुष्य और तिर्यंचगति के नौ-नौ भग आ जाते हैं। अतएव देव, नारक मे पाँच-पाँच और मनुष्य, तिर्यंच मे नौ-नौ भग अपुनरुक्त समझना चाहिये।

उक्त अपुनरुक्त भग नरकादि गति मे चारो आयुयो के क्रम से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे समझना चाहिये। दूसरे गुणस्थान मे नरकायु के बिना बध रूप भग होते है, अत वहाँ ५,८,८,५ भग जानना। पूर्व मे जो आयुबध की अपेक्षा भग कहे गये है, वे सब कम

---

१ नारयसुराउउदओ चउ पचम तिरि मणुस्स चोद्दसम ।
आसम्मदेसजोगी उवसता सतयाऊण ॥
अब्बधे इगि सत दो दो बद्धाउ वज्झमाणाण ।
चउसु वि एक्कस्सुदओ पण नव नव पच इइ भेया ॥
—पचसग्रह सप्ततिका ८,९

करने पर मिश्र गुणस्थान मे नरकादि गतियो मे क्रम से ३,५,५,३, भग होते है और चौथे गुणस्थान मे देव, नरक गति मे तो तिर्यचायु का बध रूप भग नही होने से चार-चार भग है तथा मनुष्य-तिर्यच-गति मे आयु बध की अपेक्षा नरक, तिर्यंच, मनुष्य आयु बधरूप तीन भग न होने से छह-छह भग है, क्योकि इनके बध का अभाव सासादन गुणस्थान मे हो जाता है। देशविरत गुणस्थान मे तिर्यच और मनुष्यो के बध, अबध और उपरतबध की अपेक्षा तीन-तीन भग होते है। छठवे, सातवे गुणस्थान मे मनुष्य के ही और देवायु के बध की ही अपेक्षा तीन-तीन भङ्ग होते है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि सात गुणस्थानो मे सब मिलाकर अपुनरुक्त भङ्ग क्रम से २८,२६,१६, २०,६,३,३ है।[1]

वेदनीय और आयु कर्म के सवेध भङ्गो का विचार करने के अनन्तर अब गोत्रकर्म के भङ्गो का विचार करते है।

गोत्रकर्म के संवेध भंग

गोत्र कर्म के दो भेद है—उच्चगोत्र, नीचगोत्र। इनमे से एक जीव के एक काल मे किसी एक का बध और किसी एक का उदय होता है। क्योकि दोनो का बध या उदय परस्पर विरुद्ध है। जब उच्च गोत्र का बध होता है तब नीच गोत्र का बध नही और नीच गोत्र के बध के समय उच्च गोत्र का बध नही होता है।

---

१ इन भगो के अतिरिक्त गो० कर्मकाड मे उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि की अपेक्षा मनुष्यगति मे आयुकर्म के कुछ और भग बतलाये हैं कि उपशमश्रेणि मे देवायु का भी बध न होने से देवायु के अबन्ध, उपरत-बध की अपेक्षा दो-दो भग हैं तथा क्षपकश्रेणि मे उपरतबध के भी न होने से अबन्ध की अपेक्षा एक-एक ही भग है। अत उपशमश्रेणि वाले चार गुणस्थानो मे दो-दो भग और उसके बाद क्षपकश्रेणि मे अपूर्वकरण से लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तक एक-एक भग कहा गया है।

इसी प्रकार उदय के बारे मे समझना चाहिये। दोनो मे से एक समय मे एक का बध या उदय होने का कारण इनका परस्पर विरोधनी प्रकृतियाँ होना है, किन्तु सत्ता दोनो प्रकृतियो की एक साथ पाई जा सकती है। दोनो की एक साथ सत्ता पाये जाने मे कोई विरोध नही है।[1] लेकिन इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीव उच्चगोत्र की उद्वलना भी करते हैं, अत उद्वलना करने वाले इन जीवो के अथवा जब ये जीव अन्य एकेन्द्रिय आदि मे उत्पन्न हो जाते हैं तब उनके भी कुछ काल के लिये सिर्फ एक नीचगोत्र की ही सत्ता पाई जाती है। उसके बाद उच्चगोत्र को बाधने पर दोनो की सत्ता होती है।[2] अयोगिकेवली भी अपने उपान्त्य समय मे नीचगोत्र का क्षय कर देते हैं, उस समय उनके सिर्फ एक उच्चगोत्र की ही सत्ता पाई जाती है।

गोत्रकर्म के बध, उदय और सत्ता स्थानो के सम्बन्ध मे उक्त कथन का साराश यह है कि अपेक्षा से गोत्रकर्म का बधस्थान भी एक प्रकृतिक होता है, उदयस्थान भी एक प्रकृतिक होता है, किन्तु सत्तास्थान दो प्रकृतिक भी होता है और एक प्रकृतिक भी होता है।[3]

---

१ णीचुच्चाणेगदर बधुदया होति सभवट्ठाणे।
दोसत्ता जोगित्ति य चरिमे उच्च हवे सत्त ॥—**गो० कर्मकाड, गाथा ६३५**

२ उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाउम्मि य णीचमेव सत्त तु।
सेसिगिवियले सयले णीच च दुग च सत्त तु ॥
उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सेसे य वियलसयलेसु।
उप्पण्णपढमकाले णीच एय हवे सत्त ॥

—गो० कर्मकाड गा० ६३६, ६३७,

३ तथा गोत्रे सामान्येनैक बन्धस्थानम्, तद्यथा—उच्चैर्गोत्र, नीचैर्गोत्र वा, द्वयो परस्पर विरुद्धत्वेन युगपद्वन्धाभावात्। उदयस्थानमप्येकम्, तदपि द्वयोरन्यतरत्, परस्परविरुद्धत्वेन युगपद् द्वयोरुदयाभावात्।

गोत्रकर्म के सामान्य से भग बतलाने के पश्चात् अब इन स्थानों के सवेध भङ्ग बतलाते है। गोत्रकर्म के सात सवेध भङ्ग इस प्रकार है—

१. नीचगोत्र का बध, नीचगोत्र का उदय और नीचगोत्र की सत्ता।
२ नीचगोत्र का बध, नीचगोत्र का उदय और नीच-उच्च गोत्र की सत्ता।
३ नीचगोत्र का बध, उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
४ उच्चगोत्र का बध, नीचगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
५ उच्च गोत्र का बध, उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
६ उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
७ उच्चगोत्र का उदय और उच्चगोत्र की सत्ता।

इनमे से पहला भङ्ग उच्चगोत्र की उद्वलना करने वाले अग्नि-कायिक और वायुकायिक जीवो के होता है तथा ऐसे जीव एकेन्द्रिय, विकलत्रय और पचेन्द्रिय तिर्यचो मे उत्पन्न होते हैं तो उनके भी अन्तर्मुहूर्त काल तक के लिये होता है। क्योकि अन्तर्मुहूर्त काल के पश्चात् इन एकेन्द्रिय आदि जीवो के उच्चगोत्र का वध नियम से हो जाता है। दूसरा और तीसरा भङ्ग मिथ्यादृष्टि और सासादन इन दो गुणस्थानो मे पाया जाता है, क्योकि नीचगोत्र का बधविच्छेद

द्वे सत्तास्थाने, तद्यथा—द्वे एक च। तत्र उच्चैर्गोत्र-नीचैर्गोत्रे समुदिते द्वे, तेजस्कायिक-वायुकायिकावस्थाया उच्चैर्गोत्रे उद्वलिते एकम्, अथवा नीचैर्गोत्रेऽयोगिकेवलिद्विचरमसमये क्षीणे एकम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६१

दूसरे गुणस्थान मे हो जाता है। इन दोनो भगो का सम्बन्ध नीच-गोत्र के बध से है, अत इनका सद्भाव पहले और दूसरे गुणस्थान मे बताया है, आगे तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो मे नही बताया है। चौथा भङ्ग आदि के पाँच गुणस्थानो मे सम्भव है क्योकि नीचगोत्र का उदय पाँचवे गुणस्थान तक सम्भव है, अत' प्रमत्तसयत आदि आगे के गुणस्थानो मे इसका अभाव बतलाया है। उच्चगोत्र का बध दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक होता है, अत पाँचवा भङ्ग आदि के दस गुणस्थानो मे सम्भव है, क्योकि इस भङ्ग मे उच्चगोत्र का बध विवक्षित है। जिससे आगे के गुणस्थानो मे इसका निषेध किया है। छठा भङ्ग—उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता—उपशान्तमोह गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक होता है। क्योकि नीचगोत्र की सत्ता यही तक पाई जाती है और इस भङ्ग मे नीचगोत्र की सत्ता गर्भित है। सातवाँ भङ्ग अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय मे होता है। क्योकि उच्चगोत्र का उदय और उच्चगोत्र की सत्ता अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय मे पाई जाती है और इस भङ्ग मे उच्चगोत्र का उदय और सत्ता सकलित है।

गोत्रकर्म के उक्त सात भगो का विवरण इस प्रकार है—

भगक्रम	बध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	नीच	नीच	नीच	१
२	नीच	नीच	नीच-उच्च	१,२
३	नीच	उच्च	,, ,,	१,२
४	उच्च	नीच	,, ,,	१,२,३,४,५
५	उच्च	उच्च	,, ,,	१ से १० गुणस्थान
६	०	,,	,, ,,	११,१२,१३ व १४ द्विचरम समय
७	०	,,	उच्च	१४ वें का चरम समय

गुणस्थानो की अपेक्षा गोत्रकर्म के भङ्ग मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान मे क्रम से पाँच और चार होते हैं। मिश्र आदि तीन गुणस्थानो मे दो-दो भङ्ग है। प्रमत्त आदि आठ गुणस्थानो मे गोत्र-कर्म का एक-एक भङ्ग है और अयोगिकेवली गुणस्थान मे दो भङ्ग होते है।[1]

इस प्रकार से वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगो को वतलाने के पश्चात अव पूर्व सूचनानुसार—मोह पर वोच्छ—मोहनीय कर्म के बधस्थानो आदि का कथन करते हैं।

मोहनीय कर्म

बावीस एक्कबीसा, सत्तरसा तेरसेव नव पंच।
चउ तिग दुगं च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥१०॥[2]

शब्दार्थ—बावीस—वाईस, एक्कवीसा—इक्कीस, सत्तरसा—सत्रह, तेरसेव—तेरह, नव—नौ, पच—पाच, चउ—चार, तिग—

---

१ (क) बधइ ऊइण्णय चि य इयर वा दो वि सत चऊ भगा।
नीएसु तिसु वि पढमो अबधगे दोण्णि उच्चुदए॥
—**पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० १६**

(ख) मिच्छादि गोदभगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठठाणेसु।
एकेक्का जोगिजिणे दो भगा होंति णियमेण॥
—**गो० कर्मकाड, गा० ६३८**

२ तुलना कीजिये—

(क) बावीसमेक्कवीस सत्तारस तेरसेव णव पच।
चदुतियदुग च एक्क बधट्ठाणाणि मोहस्स॥
—**गो० कर्मकाड ४६३**

(ख) दुगइगवीसा सत्तर तेरस नव पच चउर ति दु एगो।
बधो इगि दुग चउत्थय पणउणवमेसु मोहस्स॥
—**पंचसग्रह सप्ततिका, गा० १८**

तीन, दुग—दो, च—और, एक्क—एक प्रकृतिक, वधट्ठाणाणि—वध-स्थान, मोहस्स—मोहनीय कर्म के।

गाथार्थ—मोहनीय कर्म के बाईस प्रकृतिक, इक्कीस प्रकृतिक, सत्रह प्रकृतिक, तेरह प्रकृतिक, नौ प्रकृतिक, पाच प्रकृतिक, चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, इस प्रकार दस बधस्थान है।

विशेषार्थ—गाथा मे 'मोहस्स वधट्ठाणाणि' मोहनीय कर्म के वध-स्थानो का वर्णन किया जा रहा है। वे बधस्थान बाईस, इक्कीस आदि प्रकृतिक कुल मिलाकर दस हैं। जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ अट्ठाईस है। इनमे दर्शन मोह-नीय की सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व यह तीन प्रकृतियाँ हैं। इनमे से सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनो का वध नही होने से कुल बधयोग्य छब्बीस प्रकृतियाँ रहती हैं और उनमे से कुछ प्रकृतियो का बध के समय परस्पर विरोधनी होने तथा गुणस्थानो मे विच्छेद होते जाने के कारण बाईस प्रकृतिक आदि दस बधस्थान[1] मोहनीय कर्म की प्रकृतियो के होते हैं।

---

१ मोहनीय कर्म के बाईम प्रकृतिक आदि दस वधस्थानो मे प्रकृतियो की सग्राहक गाथायें इस प्रकार हैं—

मिच्छ कसायसोलस भयकुच्छा तिण्हवेयमन्नयर।
हासरइ इयरजुयल च वधपयडी य बावीस॥
इगवीसा मिच्छविणा नपुवधविणा उ सासणे वधे।
अणरहिया सत्तरस न बन्धि थिइ तुरि अठाणम्मि॥
वियसपरायऊणा तेरस तह तइयऊण नव वन्धे।
भय-कुच्छ-जुगल चाए पण वधे बायरे ठाणे॥
तह पुरिस कोहऽहकार-मायालोभस्स वधवोच्छेए।
चउ-ति-दुग एग वधे कमेण मोहस्स दसठाणा॥

—षष्ठ कर्मग्रन्थ प्राकृत टिप्पण, रामदेवगणि विरचित, गाथा २२ से २

मोहनीय कर्म के दस बधस्थानो मे से पहला स्थान बाईस प्रकृतिक है। इसका कारण यह है कि तीन वेदो का एक साथ बध नही होता है, किन्तु एक काल मे एक ही वेद का बध होता है। चाहे वह पुरुष-वेद का हो, स्त्रीवेद का हो या नपुसकवेद का हो तथा हास्य-रति युगल और अरति-शोक युगल, इन दोनो युगलो मे से एक समय मे एक युगल का बध होगा। दोनो युगल एक साथ बध को प्राप्त नही होते है। अत छब्बीस प्रकृतियो मे से दो वेद और दो युगलो मे से किसी एक युगल के कम करने पर बाईस प्रकृतियाँ शेष रहती है। इन बाईस प्रकृतियो का बध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे होता है।

उक्त बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे से मिथ्यात्व को कम कर देने पर इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान होता है। यह स्थान सासादन गुण-स्थान मे होता है। क्योकि मिथ्यात्व का विच्छेद पहले मिथ्यात्व गुण-स्थान मे हो जाता है। यद्यपि दूसरे सासादन गुणस्थान मे नपुसक-वेद का भी बध नही होता है, लेकिन पुरुपवेद या स्त्रीवेद के बध से उसकी पूर्ति हो जाने से सख्या इक्कीस ही रहती है।

अनन्तानुबन्धी कपाय चतुष्क का बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है। अत इक्कीस प्रकृतियो मे से अनन्तानुबन्धी चतुष्क को कम कर देने से मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि—तीसरे, चौथे—गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बधस्थान प्राप्त होता है। यद्यपि इन गुणस्थानो मे स्त्रीवेद का बध नही होता है, तथापि पुरुपवेद का वहाँ बध होते रहने से सत्रह प्रकृतिक बधस्थान बन जाता है।

देशविरति गुणस्थान मे तेरह प्रकृतिक बधस्थान होता है। 'क्योकि अप्रत्याख्यानावरण कपाय चतुष्क का बन्ध चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक ही होता है। अत सत्रह प्रकृतिक बधस्थान मे से अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क को कम कर देने पर पाँचवे देशविरत गुणस्थान मे तेरह प्रकृतिक बधस्थान प्राप्त होता है।

प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क का बध पाँचवें देशविरति गुणस्थान तक होता है। अत पूर्वोक्त तेरह प्रकृतियो मे से प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क को कम कर देने पर छठवें, सातवे और आठवे—प्रमत्त-सयत, अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण—गुणस्थान मे नौ प्रकृतिक बन्धस्थान होता है। यद्यपि अरति-शोक युगल का बध छठे गुणस्थान तक ही होता है, लेकिन सातवें और आठवे गुणस्थान मे इनकी पूर्ति हास्य व रति से हो जाने के कारण नौ प्रकृतिक बधस्थान ही रहता है।

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियो का बध आठवें गुणस्थान के अतिम समय तक होता है। अत पूर्वोक्त नौ प्रकृतिक बधस्थान मे से इन चार प्रकृतियो को कम कर देने पर नौवे अनि-वृत्तिबादर सपराय गुणस्थान के प्रथम भाग मे पाँच प्रकृतिक बध-स्थान होता है। दूसरे भाग मे पुरुषवेद का बन्ध नही होता, अत वहाँ चार प्रकृतिक, तीसरे भाग मे सज्वलन क्रोध का बध नही होता है अत वहाँ तीन प्रकृतिक, चौथे भाग मे सज्वलन मान का बध नही होने से दो प्रकृतिक और पाँचवे भाग मे सज्वलन माया का बध नही होने से एक प्रकृतिक बधस्थान होता है। इस प्रकार नौवें अनिवृत्ति-बादर सपराय गुणस्थान के पाँच भागो मे पाँच प्रकृतिक, चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, ये पाँच बधस्थान होते है।

इसके आगे दसवें सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे एक प्रकृतिक बध-स्थान का भी अभाव है। क्योकि वहाँ मोहनीय कर्म के बध के कारण-भूत बादर कषाय नही पाया जाता है। इस प्रकार मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियो के कुल दस बधस्थान हैं।

दस बधस्थानो का समय व स्वामी

बाईस प्रकृतिक बधस्थान का स्वामी—[illegible] गुणस्थानवर्ती

जीव है। इस बधस्थान के काल की अपेक्षा तीन भङ्ग हैं—अनादि-अनन्त, अनादि सान्त और सादि-सान्त। इनमे से अनादि-अनन्त विकल्प अभव्यो की अपेक्षा होता है। क्योकि उनके बाईस प्रकृतिक बधस्थान का कभी अभाव नही पाया जाता है। भव्यो की अपेक्षा अनादि-सान्त विकल्प है। क्योकि कालान्तर मे उनके बाईस प्रकृतिक बधस्थान का बधविच्छेद सम्भव है तथा जो जीव सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए है और कालान्तर मे पुन सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाते है, उनके सादि-सान्त विकल्प पाया जाता है। क्योकि यह विकल्प कादाचित्क है, अत इसका आदि भी पाया जाता है और अन्त भी। इस सादि-सान्त विकल्प की अपेक्षा बाईस प्रकृतिक बधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त प्रमाण होता है।

इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान का स्वामी सासादन गुणस्थानवर्ती जीव है। सासादन गुणस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवली है, अत इस बधस्थान का भी उक्त काल-प्रमाण समझना चाहिये। सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के स्वामी तीसरे और चौथे गुणस्थानवर्ती जीव है। इस स्थान का जघन्यकाल अन्त-र्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। तेरह प्रकृतिक बधस्थान का स्वामी देशविरत गुणस्थानवर्ती जीव है और देश-विरत गुणस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होने से तेरह प्रकृतिक बधस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल उतना समझना चाहिये। नौ प्रकृतिक बधस्थान छठवें, सातवे और आठवे गुणस्थान मे पाया जाता है। इस बधस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। यद्यपि छठे, सातवे और आठवे गुणस्थान का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त से अधिक नही है, फिर भी परिवर्तन क्रम से छठे और

सातवे गुणस्थान मे एक जीव देशोन पूर्वकोटि प्रमाण रह सकता है। इसीलिये नौ प्रकृतिक बधस्थान का उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण है। पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बधस्थान नौवे अनिवृत्तिबादर सपराय गुणस्थान के पाँच भागो मे होते है और इन सभी प्रत्येक बधस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि नौवे गुणस्थान के प्रत्येक भाग का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मोहनीय कर्म के दस बधस्थानो का स्वामी व काल सहित विवरण इस प्रकार है—

बधस्थान	गुणस्थान	काल	
		जघन्य	उत्कृष्ट
२२ प्र०	पहला	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अपा
२१ प्र०	दूसरा	एक समय	छह आवली
१७ प्र०	३,४ था	अन्तर्मुहूर्त	साधिक ३३ सागर
१३ प्र०	५ वाँ	,,	देशोन पूर्वकोटि
९ प्र०	६,७, ८ वाँ	,,	,,
५ ,,	नौवे का पहला भाग	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
४ ,,	,, ,, दूसरा भाग	,,	,,
३ ,,	,, ,, तीसरा भाग	,,	,,
२ ,,	,, ,, चौथा भाग	,,	,,
१ ,,	,, ,, पाँचवाँ भाग	,,	,,

मोहनीय कर्म के दस बधस्थानो को बतलाने के बाद अब उदयस्थानो का कथन करते हैं।

एक्क व दो व चउरो एत्तो एक्काहिया दसुक्कोसा।
ओहेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणा नव हवंति ॥११॥[1]

---

१ तुलना कीजिये—
दस णव अट्ठ य सत्त य छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्क च।
उदयट्ठाणा मोहे णव चेव य होंति णियमेण ॥
—गो० कर्मकांड, गा० ४७५

शब्दार्थ—**एक्कं**—एक, **व**—और, **दो**—दो, **व**—और, **चउरो**—चार, **एत्तो**—इससे आगे, **एक्काहिया**—एक-एक प्रकृति अधिक, **दस**—दस तक, **उक्कोसा**—उत्कृष्ट से, **ओहेण**—सामान्य से, **मोहणिज्जे**—मोहनीय कर्म मे, **उदयट्ठाणा**—उदयस्थान, **नव**—नौ, **हवंति**—होते है ।

गाथार्थ—एक, दो और चार और चार से आगे एक-एक प्रकृति अधिक उत्कृष्ट दस प्रकृति तक के नौ उदयस्थान मोहनीय कर्म के सामान्य से होते है ।

विशेषार्थ—गाथा मे मोहनीय कर्म के उदयस्थानो की सख्या बतलाई है कि वे नौ होते है। इन उदयस्थानो की सख्या एक, दो, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक है ।

ये उदयस्थान पश्चादानुपूर्वी के क्रम से बतलाये है । गणनानुपूर्वी के तीन प्रकार है—१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चादानुपूर्वी और ३ यत्रतत्रानुपूर्वी ।[1] इनकी व्याख्या इस प्रकार है कि जो पदार्थ जिस क्रम से उत्पन्न हुआ हो या जिस क्रम से सूत्रकार के द्वारा स्थापित किया गया हो, उसकी उसी क्रम से गणना करना पूर्वानुपूर्वी है । विलोमक्रम से अर्थात् अन्त से लेकर आदि तक गणना करना पश्चादानुपूर्वी है और अपनी इच्छानुसार जहाँ कही से अपने इच्छित पदार्थ को प्रथम मानकर गणना करना यत्रतत्रानुपूर्वी कहलाता है । यहा ग्रन्थकार ने उक्त तीन गणना की आनुपूर्वियो मे से पश्चादानुपूर्वी के क्रम से मोहनीय कर्म के उदयस्थान गिनाये है ।

मोहनीय कर्म का उदय दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक होता है । अत पश्चादानुपूर्वी गणना क्रम से एक प्रकृतिक उदयस्थान सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे होता है क्योकि वहाँ सज्वलन लोभ का उदय है । वह इस प्रकार समझना चाहिये कि नौवे गुणस्थान के अपगत वेद

---

१ गणणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता त जहा—पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी ।
—अनुयोगद्वार सूत्र ११६

के प्रथम समय से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अतिम समय तक सज्वलन लोभ का उदय पाया जाता है, जिससे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे एक प्रकृतिक उदयस्थान वतलाया है।

उक्त एक प्रकृतिक उदयस्थान मे तीन वेदो मे से किसी एक वेद को मिला देने पर दो प्रकृतिक उदयस्थान होता है जो नौवें अनिवृत्ति-बादर सपराय गुणस्थान के प्रथम समय से लेकर सवेदभाग के अतिम समय तक होता है।

इस दो प्रकृतिक उदयस्थान मे हास्य-रति युगल अथवा अरति-शोक युगल मे से किसी एक युगल को मिलाने से चार प्रकृतिक उदय-स्थान होता है। तीन प्रकृतिक उदयस्थान इसलिये नही होता है कि दो प्रकृतिक उदयस्थान मे हास्य-रति या अरति-शोक युगलो मे से किसी एक युगल के मिलाने से जोड (योग) चार होता है। अत चार प्रकृतिक उदयस्थान बताया है। इस चार प्रकृतिक उदयस्थान मे भय प्रकृति को मिलाने से पाच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसमे जुगुप्सा प्रकृति के मिलाने से छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है। ये तीनो उदयस्थान छठे, सातवे और आठवे गुणस्थान मे होते हैं।

इस छह प्रकृतिक उदयस्थान मे प्रत्याख्यानावरण कपाय चतुष्क की किसी एक प्रकृति को मिलाने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जो पाचवें गुणस्थान मे होता है। इसमे अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क की किसी एक प्रकृति को मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान चौथे और तीसरे गुणस्थान मे होता है। इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे अनन्तानुवधी कषाय चतुष्क की किसी प्रकृति को मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह स्थान दूसरे गुणस्थान मे होता है और इस नौ प्रकृतिक

उदयस्थान मे मिथ्यात्व को मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे होता है।[1]

मोहनीय कर्म के उक्त नौ उदयस्थान सामान्य से बतलाये है। क्योकि तीसरे मिश्र गुणस्थान मे मिश्र मोहनीय का और चौथे से सातवे गुणस्थान तक वेदक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व मोहनीय का उदय हो जाता है। इसलिये सभी विकल्पो को न बतलाकर यहां तो सूचना मात्र की है। विशेष विस्तार से वर्णन आगे किया जा रहा है। प्रत्येक उदयस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

मोहनीय कर्म के उदयस्थानो का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	गुणस्थान	काल	
		जघन्य	उत्कृष्ट
१ प्र०	नौवे का अवेद भाग व दसवा	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
२ ,,	नौवें का सवेद भाग	,,	,,
४ ,,	६, ७, ८	,,	,,
५ ,,	६, ७, ८	,,	,,
६ ,,	६, ७, ८	,,	,,
७ ,,	पाचवा	,,	,,
८ ,,	४, ३	,,	,,
९ ,,	२	,,	,,
१० ,,	१	,,	,,

१ मोहनीय कर्म के नौ उदयस्थानो की सग्रहणीय गाथाये इस प्रकार है—

(क) एगयर सपराय वेयजुय दोण्णि जुयलजुय चउरो।
पच्चक्खाणेगयरे छट्ढे पचेव पयडीओ ॥

मोहनीय कर्म के उदयस्थानो को वतलाने के पश्चात् अब सत्तास्थानो का कथन करते है।

अट्ठगसत्तगछच्चउतिगदुगएगाहिया भवे वीसा।
तेरस बारिक्कारस इत्तो पंचाइ एक्कूणा ॥१२॥
संतस्स पगइठाणाइं ताणि मोहस्स हुंति पन्नरस।
बन्धोदयसंते पुण भंगविगप्पा बहू जाण ॥१३॥

शब्दार्थ—**अट्ठग-सत्तग-छच्चउतिग-दुग-एगाहिया**—आठ, सात, छह, चार, तीन, दो, और एक अधिक, **भवे**—होते हैं, **बीसा**—बीस, **तेरस**—तेरह, **बारिक्कारस**—बारह और ग्यारह प्रकृति का, **इत्तो**—इसके बाद, **पचाइ**—पाच प्रकृति से लेकर, **एक्कूणा**—एक-एक प्रकृति न्यून।

सतस्स—सत्ता के, **पगइठाणाइ**—प्रकृति स्थान, **ताणि**—वे, **मोहस्स**—मोहनीय कर्म के, **हुति**—होते हैं, **पन्नरस**—पन्द्रह, **बधोदयसते**—वध, उदय और सत्ता स्थान, **पुण**—तथा, **भगविगप्पा**—भगविकल्प, **बहू**—अनेक, **जाण**—जानो।

गाथार्थ—मोहनीय कर्म के बीस के बाद क्रमश आठ, सात, छह, चार, तीन, दो और एक अधिक सख्या वाले तथा तेरह, बारह, ग्यारह और इसके बाद पाँच से लेकर एक-एक प्रकृति के कम, इस प्रकार सत्ता प्रकृतियो के पन्द्रह स्थान होते हैं। इन बधस्थानो, उदयस्थानो और सत्तास्थानो की अपेक्षा भगो के अनेक विकल्प होते है।

छ विइय एगयरेण छूढे सत्त य दुगुछि भय अट्ठ।
अणि नव मिच्छे दसग सामन्नेण तु नव उदया ॥
—रामदेवगणिकृत षष्ठ कर्मग्रन्थ प्राकृत टिप्पण, गा० २६, २७,

(ख) इगि दुग चउ एगुत्तरआदसग उदयमाहु मोहस्स।
सजलणवेयहासरइभयदुगुछतिकसायदिट्ठी य ॥
—पचसग्रह सप्ततिका गा० २३

विशेषार्थ—उक्त दो गाथाओ मे मोहनीय कर्म की प्रकृतियो के सत्तास्थानो मे प्रकृतियो की सख्या बतलाई है कि अमुक सत्तास्थान इतनी प्रकृतियो का होता है। सत्तास्थानो के भेदो का सकेत करने के बाद बध, उदय और सत्ता स्थानो के सवेध भगो की अनेकता की सूचना दी है। जिनका वर्णन आगे यथाप्रसग किया जा रहा है।

मोहनीय कर्म के कितने सत्तास्थान होते है, इसका सकेत करते हुए ग्रथकार ने बताया है कि 'सतस्स पगडठाणाइ ताणि मोहस्स हुति पन्नरस'—मोहनीय कर्म प्रकृतियो के सत्तास्थान पन्द्रह होते हैं। ये पन्द्रह सत्तास्थान कितनी-कितनी प्रकृतियो के है, उनका स्पष्टीकरण क्रमश इस प्रकार है—अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक।[1] कुल मिलाकर ये पन्द्रह सत्तास्थान[2] होते है।

---

१ (क) अट्ठगसत्तगछच्चकचउतिगदुगएक्कगाहिया वीसा।
तेरस बारेक्कारस सते पचाइ जा एक॥
—पचसग्रह सप्ततिका गा० ३५

(ख) अट्ठयसत्तयछक्कय चदुतिदुगेगाधिगाणि वीसाणि।
तेरस बारेयार पणादि एगूणय सत्त॥
—गो० कर्मकाड गा० ५०८

२ इन पन्द्रह सत्तास्थानो मे से प्रत्येक स्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियो की सग्रह गाथायें इस प्रकार है—

नव नोकसाय सोलस कसाय दसणतिग ति अडवीसा।
सम्मत्तुव्वलणेण मिच्छे मीसे य सगवीसा॥
छव्वीसा पुण दुविहा मीसुव्वलणें अणाइ मिच्छत्ते।
सम्मद्दिट्ठऽडवीसा अणक्खए होइ चउवीसा॥
मिच्छे मीसे सम्मे खीणे ति-दुवीस एक्कवीसा य।
अट्ठकसाए तेरस नपुक्खए होइ बारसग॥
थीवेयि खीणिगारस हासाइ पचचउ पुरिसखीणे।
कोहे माणे माया लोभे खीणे य कमसो उ॥
तिगु दुग एग असत मोहे पन्नरस सतठाणाणि।
—षष्ठ कर्मग्रन्थ प्राकृत टिप्पण, गा० २८-३२

इनमे से अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे मोहनीय कर्म की सब प्रकृतियो का ग्रहण किया गया है। यह स्थान मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर ग्यारहवे उपशान्तमोह गुणस्थान तक पाया जाता है। इस स्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ बत्तीस सागर है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

छब्बीस प्रकृतियो की सत्ता वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव जब उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्ता प्राप्त कर लेता है और अन्तर्मुहूर्तकाल के भीतर वेदक सम्यक्त्व पूर्वक अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना करके चौबीस प्रकृति की सत्ता वाला हो जाता है, तब अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तथा उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ बत्तीस सागर इस प्रकार समझना चाहिये कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके अट्ठाईस प्रकृति की सत्ता वाला हुआ, अनन्तर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करके प्रथम छियासठ सागर काल तक सम्यक्त्व के साथ परिभ्रमण किया और फिर अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यग्मिथ्यात्व मे रहकर फिर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करके दूसरी बार छियासठ सागर सम्यक्त्व के साथ परिभ्रमण किया। अन्त मे मिथ्यात्व को प्राप्त करके सम्यक्त्व प्रकृति के सबसे उत्कृष्ट पल्य के असख्यातवें भाग प्रमाण काल के द्वारा सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वलना करके सत्ताईस प्रकृतिक सत्ता वाला हुआ। इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य के असख्यातवे भाग से अधिक एक सौ बत्तीस सागर होता है। ऐसा जीव यद्यपि मिथ्यात्व मे न जाकर क्षपक श्रेणि पर भी चढता है और अन्य सत्तास्थानो को प्राप्त करता है। परन्तु इससे उक्त उत्कृष्ट काल प्राप्त नही होता है, अत यहाँ उसका उल्लेख नही किया है।

अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना : जयधवला

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना करने से जब चौबीस प्रकृतिक सत्ता वाला होता है, तब प्राप्त होता है। वेदक सम्यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी कपाय चतुष्क की विसयोजना करने मे श्वेताम्बर और दिगम्बर आचार्य एकमत है। किन्तु इसके अतिरिक्त जयधवला टीका मे एक मत का उल्लेख और किया गया है। वहाँ बताया गया है कि उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना करते है, इस विषय मे दो मत है। एक मत का यह मानना है कि उपशम सम्यक्त्व का काल थोडा है और अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना का काल बडा है, अत उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना नही करता है तथा दूसरा मत है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क के विसयोजना काल से उपशम सम्यक्त्व का काल बडा है इसलिये उपशम सम्यग्दृष्टि जीव भी अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना करता है। जिन उच्चारणा वृत्तियो के आधार से जयधवला टीका लिखी गई है, उनमे इस दूसरे मत को प्रधानता दी है।

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल, मतभिन्नता

पचसग्रह के सप्ततिका-सग्रह की गाथा ४५ व उसकी टीका मे अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य का असख्यातवा भाग अधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है। लेकिन दिगम्बर परम्परा मे उसका उत्कृष्ट काल पल्य के तीन असख्यातवें भाग अधिक एक सौ वत्तीस सागर वतलाया है। इस मतभेद का स्पष्टीकरण है—

श्वेताम्वर साहित्य मे वताया है कि छब्वीस प्रकृतिक सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि ही मिथ्यात्व का उपशम करके उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। तदनुसार केवल सम्यक्त्व की उद्वलना के अतिम काल मे जीव

भाग काल के द्वारा सम्यक्त्व की उद्वलना करके २७ प्रकृतियो की सत्ता वाला हुआ। इस प्रकार २८ प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल पल्य के तीन असख्यातवे भाग अधिक १३२ सागर प्राप्त होता है।

इस प्रकार से कुछ मतभिन्नताओ का सकेत करने के वाद मोहनीय कर्म के सत्ताईस प्रकृतिक आदि शेप सत्तास्थानो को स्पष्ट करते है।

उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वलना हो जाने पर सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि को होता है तथा इसका काल पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण है। इसका कारण यह है कि सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वलना हो जाने के पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वलना मे पल्य का असख्यातवा भाग काल लगता है और जब तक सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वलना होती रहती है तब तक वह जीव सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान वाला रहता है। इसीलिये सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का काल पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण बताया है।

सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से उद्वलना द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति को घटा देने पर छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान भी मिथ्यादृष्टि जीव को होता है। काल की दृष्टि से इस स्थान के तीन विकल्प है—१ अनादि-अनन्त, २ अनादि-सान्त, सादि-सान्त। इनमे से अनादि-अनन्त विकल्प अभव्यो की अपेक्षा क्योकि उनके छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का आदि और अन्त पाया जाता है। अनादि-सान्त विकल्प भव्यो के पाया जाता है। क्योकि अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव के छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान आदि रहित अवश्य है, लेकिन जब वह सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है

तब उसके इस स्थान का अन्त देखा जाता है। सादि-सान्त विकल्प सादि मिथ्यादृष्टि जीव के होता है। क्योकि अट्ठाईस प्रकृतिक सत्ता वाले जिस सादि मिथ्यादृष्टि जीव ने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना करके छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान को प्राप्त किया है, उसके इस छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का पुन नाश देखा जाता है।

छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान के काल के उक्त तीन विकल्पो मे से सादि-सान्त विकल्प का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त है। जो इस प्रकार फलित होता है—जो छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान को प्राप्त कर लेने के बाद त्रिकरण द्वारा अन्तर्मुहूर्त मे सम्यक्त्व को प्राप्त करके पुन: अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्ता वाला हो गया, उसके उक्त स्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तथा कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और मिथ्यात्व मे जाकर उसने पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण काल के द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना करके छब्बीस प्रकृतियो के सत्त्व को प्राप्त किया, पुन वह शेष अपार्ध पुद्गल परावर्त काल तक मिथ्यादृष्टि रहा किन्तु जब ससार मे रहने का काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहा तब पुन वह सम्यग्दृष्टि हो गया तो इस प्रकार छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य का असख्यातवा भाग कम अपार्ध पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है।

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियो मे से अनन्तानुवन्धी कषाय चतुष्क की विसयोजना हो जाने पर चौवीस प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। यह स्थान तीसरे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल एक सौ वत्तीस सागर है। जघन्यकाल तव प्राप्त होता है जव जीव ने अनन्तानुवन्धी चतुष्क की विसयोजना करके चौवीस प्रकृतिक सत्ता-

स्थान प्राप्त किया और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर मिथ्यात्व का क्षय कर देता है तो उसके चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है तथा अनन्तानुबधी की विसयोजना करने के बाद जो वेदक सम्यग्दृष्टि ६६ सागर तक वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व के साथ रहा, फिर अन्तर्मुहूर्त के लिये सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ और इसके बाद पुन ६६ सागर काल तक वेदक सम्यग्दृष्टि रहा। अनन्तर मिथ्यात्व की क्षपणा की। इस प्रकार अनन्तानुबन्धी की विसयोजना होने के समय से लेकर मिथ्यात्व की क्षपणा होने तक के काल का योग एक सौ बत्तीस सागर होता है। इसीलिये चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल एक सौ बत्तीस सागर बताया है।

चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से मिथ्यात्व के क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और यह स्थान चौथे से लेकर सातवे गुणस्थान तक पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व की क्षपणा का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होने से इस स्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

तेईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से सम्यग्मिथ्यात्व के क्षय हो जाने से बाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान भी चौथे से लेकर सातवे गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योकि सम्यक्त्व की क्षपणा मे इतना काल लगता है।

बाईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति का क्षय हो जाने पर इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह चौथे से लेकर ग्यारहवे गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर प्रमाण है। जघन्य-काल अन्तर्मुहूर्त इसलिये माना जाता है कि क्षायिक सम्यग्दर्शन को

प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षपक श्रेणी पर चढकर मध्य की आठ कषायो का क्षय होना सम्भव है। उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर इसलिये है कि उक्त समयप्रमाण तक जीव इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान के साथ रह सकता है।

इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, इन आठ प्रकृतियो का क्षय हो जाने पर तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान क्षपक श्रेणी के नौवें गुणस्थान मे प्राप्त होता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योकि तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान से बारह प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त करने मे अन्तर्मुहूर्त काल लगता है।

इस तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान मे से नपुसक वेद के क्षय हो जाने पर बारह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह भी नौवे गुणस्थान मे प्राप्त होता है और इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि बारह प्रकृतिक सत्तास्थान से ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान के प्राप्त होने मे अन्तर्मुहूर्त काल लगता है।

जो जीव नपुसक वेद के उदय के साथ क्षपक श्रेणी पर चढता है, उसके नपुसक वेद की क्षपणा के साथ स्त्रीवेद का भी क्षय होता है। अत ऐसे जीव के बारह प्रकृतिक सत्तास्थान नही पाया जाता है। जिसने नपुसक वेद के क्षय से बारह प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त किया, उसके स्त्रीवेद का क्षय हो जाने पर ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसकी प्राप्ति नौवे गुणस्थान मे होती है। इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योकि हास्यादि छह नोकषायो के क्षय होने मे अन्तर्मुहूर्त समय लगता है।

ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान से छह नोकषायो के क्षय हो जाने पर पाच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल

दो समय कम दो आवली प्रमाण है। क्योकि छह नोकपायो के क्षय होने पर पुरुपवेद का दो समय कम दो आवली काल तक सत्त्व देखा जाता है। इसके वाद पुरुपवेद का क्षय हो जाने से चार प्रकृतिक, चार प्रकृतिक मे से सज्वलन क्रोध का क्षय होने पर तीन प्रकृतिक और तीन प्रकृतिक मे से सज्वलन मान का क्षय हो जाने पर दो प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। ये नौवे गुणस्थान मे प्राप्त होते हैं। इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

दो प्रकृतिक सत्तास्थान मे से सज्वलन माया का क्षय होने पर एक प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह नौवे और दसवे गुणस्थान मे प्राप्त होता है तथा इसका काल जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मोहनीय कर्म के उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक आदि पन्द्रह सत्तास्थानो का क्रम आचार्य मलयगिरि ने सक्षेप मे वतलाया है। उपयोगी होने से उक्त अश यहाँ अविकल रूप मे प्रस्तुत करते है—

'तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टाविंशति । तत सम्यक्त्वे उद्वलिते सप्तविंशति.। ततोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वेउद्वलिते षड्विंशति', अनादिमिथ्यादृष्टेर्वा षड्विंशति. । अष्टाविंशतिसत्कर्मणोऽनन्तानुवन्धिचतुष्टयक्षये चतुर्विंशतिः। ततोऽपि मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशति'। ततोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशति'। तत. सम्यक्त्वे क्षपिते एकविंशतिः। ततोऽष्टस्वप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसज्ञेषु कषायेषु क्षीणेषु त्रयोदश'। ततो नपुसक वेदे क्षपिते द्वादश। ततोऽपि स्त्रीवेदे क्षपिते एकादश। तत. षट्सु नोकषायेषु क्षीणेषु पञ्च। ततोऽपि पुरुषवेदे क्षीणे चतस्रः। ततोऽपि सज्वलनक्रोधे क्षपिते तिस्र। ततोऽपि संज्वलनमाने क्षपिते द्वे। ततोऽपि सज्वलन मायाया क्षपितायामेका प्रकृतिः सतीति।'[1]

सत्तास्थानों के स्वामी और काल सम्बन्धी दिगम्बर साहित्य का मत

श्वेताम्बर कार्मग्रन्थिक मत के समान ही दिगम्बर कर्मसाहित्य

---

१ सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६३

मे भी मोहनीय कर्म के अट्ठाईस प्रकृतिक आदि पन्द्रह सत्तास्थान माने हैं। उनके स्वामी और काल के बारे मे भी दोनो साहित्य मे अधिकतर समानता है। लेकिन कुछ स्थानो के बारे मे दिगम्बर साहित्य मे भिन्न मत देखने मे आता है। जिसको पाठको की जानकारी के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान के काल के बारे मे दिगम्बर साहित्य के मत का पूर्व मे उल्लेख किया गया है। शेष स्थानो के बारे मे यहाँ बतलाते हैं।

श्वेताम्बर साहित्य मे सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का स्वामी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव को बतलाया है। लेकिन दिगम्बर परम्परा के अनुसार कषायप्राभृत की चूर्णि मे इस स्थान का स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव ही बतलाया है—

सत्तावीसाए विहत्तिओ को होदि ? मिच्छाइट्ठी।

पचसग्रह के सप्ततिका सग्रह की गाथा ४५ की टीका मे सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का काल पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण बतलाया है। लेकिन जयधवला मे सकेत है कि सत्ताईस प्रकृतियो की सत्तावाला भी उपशम सम्यग्दृष्टि हो सकता है। कषायप्राभृत की चूर्णि से भी इसकी पुष्टि होती है। तदनुसार सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल एक समय भी बन जाता है। क्योकि सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान के प्राप्त होने के दूसरे समय मे ही जिसने उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया, उसके सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान एक समय तक ही देखा जाता है।

श्वेताम्बर साहित्य मे सादि-सान्त छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बताया है। लेकिन कषायप्राभृत की चूर्णि मे उक्त स्थान का जघन्य काल एक समय बताया है—

'छव्वीसविहत्ती केवचिर कालादो ? जहण्णेण एगसमओ।'

इसका तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व की उद्‌वलना मे अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर जो त्रिकरण क्रिया का प्रारम्भ कर देता है, और उद्‌वलना होने के वाद एक समय का अन्तराल देकर जो उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है, उसके छव्वीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है।

कर्मग्रन्थ मे चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल एक सौ वत्तीस सागर वताया है, जवकि कपायप्राभृत की चूर्णि मे उक्त स्थान का उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ वत्तीस सागर वताया है—

'चउवीसविहत्ती केवच्चिर कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।'

इसका स्पष्टीकरण जयधवला टीका मे किया गया है कि उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके जिसने अनन्तानुवन्धी की विसयोजना की। अनन्तर छियासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्व के साथ रहा, फिर अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्‌मिथ्यादृष्टि रहा। अनन्तर मिथ्यात्व की क्षपणा की। इस प्रकार अनन्तानुवन्धी की विसयोजना हो चुकने के समय से लेकर मिथ्यात्व की क्षपणा होने तक के काल का योग साधिक एक सौ बत्तीस सागर होता है।

इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर दोनो परम्पराओ मे समान रूप से माना है। कषायप्राभृत चूर्णि मे लिखा है—

'एक्कवीसाए विहत्ती केवच्चिरं कालादो ? जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।'

इस उत्कृष्ट काल का जयधवला मे स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि कोई सम्यग्दृष्टि देव या नारक मर कर एक पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यो मे उत्पन्न हुआ। अनन्तर आठ वर्ष के वाद अन्त-

मुहूर्त मे उसने क्षायिक सम्यग्दर्शन को उत्पन्न किया। फिर आयु के अन्त मे मर कर वह तेतीस सागर की आयु वाले देवो मे उत्पन्न हुआ। इसके बाद तेतीस सागर आयु को पूरा करके एक पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यो मे उत्पन्न हुआ और वहाँ जीवन भर इक्कीस प्रकृतियों की सत्ता के साथ रहकर जब जीवन मे अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब क्षपक श्रेणि पर चढकर तेरह आदि सत्तास्थानो को प्राप्त हुआ। उसके आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटि वर्ष अधिक तेतीस सागर काल तक इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है।

इस प्रकार दिगम्बर साहित्य मे साधिक तेतीस सागर प्रमाण का स्पष्टीकरण किया गया है।

श्वेताम्बर साहित्य मे बारह प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। जबकि दिगम्बर साहित्य मे बारह प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल एक समय बताया है। जैसा कि कषायप्राभृत चूर्णि मे उल्लेख किया गया है—

णवरि बारसण्ह विहत्ती केवचिर कालादो? जहण्णेण एगसमओ।

इसकी व्याख्या जयधवला टीका मे इस प्रकार की गई है कि नपुसक वेद के उदय से क्षपक श्रेणि पर चढा हुआ जीव उपान्त समय मे स्त्रीवेद और नपुसक वेद के सब सत्कर्म का पुरुषवेद रूप मे सक्रमण कर देता है और तदनन्तर एक समय के लिए बारह प्रकृतिक सत्तास्थान वाला हो जाता है, क्योकि इस समय नपुसक वेद की उदय स्थिति का विनाश नही होता है।

इस प्रकार से कुछ सत्तास्थानो के स्वामी तथा समय के बारे मे मतभिन्नता जानना चाहिए। तुलनात्मक अध्ययन करने वालो के लिये यह जिज्ञासा का विषय है।

मोहनीय कर्म के पन्द्रह सत्तास्थानो का गुणस्थान, काल सहित विवरण इस प्रकार है—

सत्ता स्थान	गुणस्थान	जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल
२८	१ से ११	अन्तर्मुहूर्त	साधिक १३२ सागर
२७	पहला व तीसरा	पल्य का अस० भाग	पल्य का असख्यातवा भाग
२६	१	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अपार्ध पुद्० परावर्त
२४	३ से ११	अन्तर्मुहूर्त	१३२ सागर
२३	४ से ७	,,	अन्तर्मुहूर्त
२२	४ से ७	,,	,,
२१	४ से ११	,,	साधिक ३३ सागर
१३	९ वाँ	,,	अन्तर्मुहूर्त
१२	,,	,,	,,
११	,,	,,	,,
५	,,	दो समय कम दो आवली	दो समय कम दो आवली
४	,,	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
३	,,	,,	,,
२	,,	,,	,,
१	नौवाँ व दसवाँ	,,	,,

इस प्रकार मोहनीय कर्म के पश्चादानुपूर्वी से वन्ध और सत्ता स्थानो तथा पूर्वानुपूर्वी से उदयस्थानो को वतलाने के वाद अव इनके भग और अवान्तर विकल्पो का निर्देश करते हैं। सबसे पहले वन्धस्थानो का निरूपण करते है।

छब्बावीसे चउ इगवीसे सत्तरस तेरसे दो दो।
नवबंधगे वि दोन्नि उ एक्केक्कमओ पर भंगा ॥१४॥

शब्दार्थ—छ—छह, व्वावीसे—वाईस के वन्धस्थान के, चउ—चार, इगवीसे—इक्कीस के वन्धस्थान के, सत्तरस—सत्रह के वधस्थान के, तेरसे—तेरह के वधस्थान के, दो-दो—दो-दो, नववधगे—नौ के वन्धस्थान के, वि—भी, दोन्निउ—दो विकल्प, एक्केक्क—एक-एक, अओ—इससे, पर—आगे, भंगा—भग।

गाथार्थ—वाईस प्रकृतिक वन्धस्थान के छह, इक्कीस प्रकृतिक वधस्थान के चार, सत्रह और तेरह प्रकृतिक बधस्थान के दो-दो, नौ प्रकृतिक वधस्थान के भी दो भग हैं। इसके आगे पॉच प्रकृतिक आदि वधस्थानो मे से प्रत्येक का एक-एक भग है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे मोहनीय कर्म के वधस्थानो मे से प्रत्येक स्थान के यथासभव वनने वाले भगो की सख्या का निर्देश किया है।

पूर्व मे मोहनीय कर्म के वाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक, इस प्रकार से दस वधस्थान वतलाये हैं। उनमे से यहाँ प्रत्येक स्थान के होने वाले भग-विकल्पो को वतलाते हुए सर्वप्रथम वाईस प्रकृतिक वधस्थान के छह भग वतलाये हैं—छव्वावीसे। अनन्तर क्रमश इक्कीस प्रकृतिक वधस्थान के चार भग, सत्रह प्रकृतिक वधस्थान के दो भग, तेरह प्रकृतिक वधस्थान

के दो भग, नौ प्रकृतिक बधस्थान के दो भंग, पाँच प्रकृतिक बध-स्थान का एक भग, चार प्रकृतिक बधस्थान का एक भङ्ग, तीन प्रकृतिक बधस्थान का एक भग, दो प्रकृतिक बधस्थान का एक भग और एक प्रकृतिक बधस्थान का एक भग होता है।[१] जिसका स्पष्टी-करण नीचे किया जा रहा है।

बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, हास्य-रति युगल और शोक-अरति युगल, इन दो युगलो मे से कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन बाईस प्रकृतियो का ग्रहण होता है। यहाँ छह भग होते है। जो इस प्रकार है कि हास्य-रति युगल और शोक-अरति युगल, इन दो युगलो मे से किसी एक युगल को मिलाने से बाईस प्रकृतिक बधस्थान होता है। अत ये दो भग हुए। एक भग हास्य-रति युगल सहित वाला और दूसरा भग अरति-शोक युगल सहित वाला। ये दोनो भग भी तीनो वेदो के विकल्प से प्राप्त होते है, अत दो को तीन से गुणित कर देने पर छह भग हो जाते है।[२]

उक्त बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे से मिथ्यात्व को घटा देने पर इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान होता है। क्योकि नपुसक वेद का बध मिथ्यात्व के उदयकाल मे होता है और सासादन सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का उदय नही होता है। स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दो

---

१ छब्बावीसे चदु इगिवीसे दो द्दो हवति छट्ठो त्ति।
एक्केक्कमदोमगो बधट्ठाणेसु मोहस्स ॥
—गो० कर्मकाण्ड, गा० ४६७

२ हासरइअरइसोगाण बधया आणव दुहा सव्वे।
वेयविभज्जता पुण दुगइगवीसा छहा चउहा ॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० २०

वेदो मे से कोई एक वेद कहना चाहिए। अत यहाँ दो युगलो को दो वेदो से गुणित कर देने पर चार भग होते है।

इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे से अनन्तानुबधी चतुष्क को घटा देने पर सत्रह प्रकृतिक बधस्थान होता है। इसके बन्धक तीसरे और चौथे गुणस्थानवर्ती जीव हैं। अनन्तानुबधी कषाय का उदय नही होने से इनको स्त्रीवेद का बध नही होता है। अत यहाँ हास्य-रति युगल और शोक-अरति युगल, इन दो युगलो के विकल्प से दो भग होते हैं।

तेरह प्रकृतिक बधस्थान मे भी दो भग होते हैं। यह बधस्थान सत्रह प्रकृतिक बधस्थान मे से अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क के कम करने से प्राप्त होता है। यहाँ पुरुषवेद का ही बध होता है अत दो युगलो के निमित्त से दो ही भग प्राप्त होते हैं।

तेरह प्रकृतिक बधस्थान मे से प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के कम करने पर नौ प्रकृतिक बधस्थान होता है। यह स्थान छठे, सातवे और आठवे—प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण—गुणस्थान मे पाया जाता है। यहाँ इतनी विशेपता है कि अरति और शोक का बध प्रमत्तसयत गुणस्थान तक ही होता है, आगे नही। अत प्रमत्त-सयत गुणस्थान मे इस स्थान के दो भग होते हैं, जो पूर्वोक्त हैं तथा अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण मे हास्य-रनि रूप एक ही भग पाया जाता है।[1]

पांच प्रकृतिक बधस्थान उक्त नौ प्रकृतिक बधस्थान मे से हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन चार प्रकृतियो को कम करने से होता है। यहाँ

---

१ नवबधके द्वौ भगौ तौ च प्रमत्ते द्वावपि द्रष्टव्यौ, अप्रमत्ताऽपूर्वकरणयो-स्त्वेक एव भग तत्रारति-शोकरूपस्य युगलस्य बन्धासम्भवात्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६४

एक ही भग होता है। क्योकि इसमे बधने वाली प्रकृतियो के विकल्प नही हैं। इसी प्रकार बधने वाली प्रकृतियो के विकल्प नही होने से चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बधस्थानो मे भी एक-एक ही विकल्प होता है—एक्केक्कमओ पर भगा।

इस प्रकार मोहनीय कर्म के दस बधस्थानो के कुल भग ६+४+२+२+२+१+१+१+१+१=२१ होते है।

मोहनीय कर्म के दस बधस्थानो का निर्देश करने के बाद अब आगे की तीन गाथाओ मे इन बधस्थानो मे से प्रत्येक मे प्राप्त होने वाले उदयस्थानो को बतलाते है।

मोहनीय कर्म के बधस्थानो में उदयस्थान

दस बावीसे नव इक्कवीस सत्ताइ उदयठाणाइं।
छाई नव सत्तरसे तेरे पंचाइ अट्ठेव ॥१५॥
चत्तारिमाइ नवबंधगेसु उक्कोस सत्त उदयंसा।
पंचविहबंधगे पुण उदओ दोण्हं मुणेयव्वो ॥१६॥
इत्तो चउबंधाई इक्केक्कुदया हवंति सव्वे वि।
बंधोवरमे वि तहा उदयाभावे वि वा होज्जा ॥१७॥

शब्दार्थ—दस—दस पर्यन्त, बावीसे—बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे, नव—नौ तक, इक्कवीस—इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे, सत्ताइ—सात से लेकर, उदयठाणाइं—उदयस्थान, छाई नव—छह से नौ तक, सत्तरसे—सत्रह प्रकृतिक वधस्थान मे, तेरे—तेरह प्रकृतिक वधस्थान मे, पचाइ—पाच से लेकर, अट्ठेव—आठ तक।

चत्तारिमाइ—चार से लेकर, नवबधगेसु—नौ प्रकृतिक बधस्थानो मे, उक्कोस—उत्कृष्ट, सत्त—सात तक, उदयसा—उदयस्थान, पंचविहबधगे—पाँच प्रकृतिक वधस्थान मे, पुण—तथा, उदओ—उदय, दोण्ह—दो प्रकृति का, मुणेयव्वो—जानना चाहिए।

इत्तो—इसके वाद, **चउवधाई**—चार आदि प्रकृतिक वधस्थानो मे, **इक्केक्कुदया**—एक-एक प्रकृति के उदय वाले, **हवंति**—होते हैं, **सव्वेवि**—सभी, **वधोवरमे**—वध के अभाव मे, **वि**—भी, **तहा**—उसी प्रकार, **उदयाभावे**—उदय के अभाव मे, **वि**—भी, **वा**—विकल्प, **होज्जा**—होते हैं।

गाथार्थ—वाईस प्रकृतिक वधस्थान मे सात से लेकर दस तक, इक्कीस प्रकृतिक वधस्थान मे सात से लेकर नौ तक, सत्रह प्रकृतिक वधस्थान मे छह से लेकर नौ तक और तेरह प्रकतिक वधस्थान मे पाँच से लेकर आठ तक—

नौ प्रकृतिक वधस्थान मे चार से लेकर उत्कृष्ट सात प्रकृतियो तक के चार उदयस्थान होते है तथा पाँच प्रकृतिक वधस्थान मे दो प्रकृतियो का उदय जानना चाहिये।

इसके वाद (पाँच प्रकृतिक वधस्थान के वाद) चार आदि (४,३,२,१) प्रकृतिक वधस्थानो मे एक प्रकृति का उदय होता है। वध के अभाव मे भी इसी प्रकार एक प्रकृति का उदय होता है। उदय के अभाव में भी मोहनीय की सत्ता विकल्प से होती है।

विशेषार्थ—पूर्व मे मोहनीय कर्म के वाईस, इक्कीस आदि प्रकृतिक दस वधस्थान वतलाये हैं। यहाँ तीन [illegible] स्थानों मे से प्रत्येक मे कितनी-कितनी प्रकृतियों का उदय होता है इसको स्पष्ट किया है।

सात प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है कि एक मिथ्यात्व, दूसरी अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि मे से कोई एक, तीसरी प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि मे से कोई एक, चौथी सज्वलन क्रोध आदि मे से कोई एक, पाँचवी हास्य, छठी रति अथवा हास्य, रति के स्थान पर अरति, शोक और सातवी तीनो वेदो मे से कोई एक वेद, इन सात प्रकृतियो का उदय बाईस प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव को नियम से होता है।

यहाँ चौबीस भग होते है। वे इस प्रकार हैं—क्रोध,मान, माया और लोभ, ये चारो प्रकृतियाॅ उदय की अपेक्षा परस्पर विरोधनी होने से इनका उदय एक साथ नही होता है। अत क्रोधादिक के उदय रहते मानादिक का उदय नही होता किन्तु किसी एक प्रकार के क्रोध का उदय रहते, उससे आगे के दूसरे प्रकार के सभी क्रोधो का उदय अवश्य होता है। जैसे कि अनन्तानुबधी क्रोध का उदय रहते अप्रत्याख्यानावरण आदि चारो प्रकार के क्रोधो का उदय एक साथ होता है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध के उदय रहते प्रत्याख्यानावरण आदि तीनो प्रकार के क्रोधो का उदय रहता है। प्रत्याख्यानावरण क्रोध के उदय रहते दोनो प्रकार के क्रोधो का उदय एक साथ रहता है और सज्वलन क्रोध का उदय रहते हुए एक ही क्रोध उदय रहता है। इस तरह यहाॅ सात प्रकृतिक उदयस्थान मे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि तीनो क्रोधो का उदय होता है। इसी प्रकार अप्रत्यख्यानावरण मान का उदय रहते तीन मान का उदय होता है, अप्रत्याख्यानावरण माया का उदय रहते तीन माया का उदय होता है तथा अप्रत्याख्यानावरण लोभ का उदय रहते तीन लोभ का उदय होता है।

उक्त क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार भगो का उदय स्त्रीवेद के साथ होता है और यदि स्त्रीवेद के बजाय पुरुषवेद का

मे से किसी एक को मिलाने से तीसरा आठ प्रकृतियो का उदय, इस तरह आठ प्रकृतिक उदयस्थान के तीन प्रकार समझना चाहिए। अत: इन भगो की तीन चौवीसियाँ होती है। वे इस प्रकार है—

पूर्वोक्त सात प्रकृतियो के उदय मे भय का उदय मिलाने पर आठ प्रकृतियो के उदय के साथ भगो की पहली चौबीसी हुई। पूर्वोक्त सात प्रकृतियो के उदय मे जुगुप्सा का उदय मिलाने पर आठ के उदय के साथ भगो की दूसरी चौवीसी तथा पूर्वोक्त सात प्रकृतियो के उदय मे अनन्तानुबधी क्रोधादि मे से किसी एक प्रकृति के उदय को मिलाने पर आठ के उदय के साथ भगो की तीसरी चौवीसी प्राप्त होती है।

इस प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते भगो की तीन चौवीसी होती है।

सात प्रकृतिक उदयस्थान मे और भय व जुगुप्सा के उदय से प्राप्त होने वाले आठ प्रकृतिक उदयस्थानो मे अनन्तानुवन्धी कपाय चतुष्क को ग्रहण न करने तथा वन्धावलि के वाद ही अनन्तानुवन्धी के उदय को मानने के सम्बन्ध मे जिज्ञासाओ का समाधान करते है। उक्त जिज्ञासाओ सम्बन्धी आचार्य मलयगिरि कृत टीका का अश इस प्रकार है—

"ननु मिथ्यादृष्टेरवश्यमनन्तानुवन्धिनामुदय सम्भवति तत् कथमिह मिथ्यादृष्टि सप्तोदये अष्टोदये वा कस्मिश्चिदनन्तानुवन्ध्युदयरहित प्रोक्त.? उच्यते—इह सम्यग्दृष्टिना सता केनचित् प्रथमतोऽनन्तानुवन्धिनो विसंयोजिता, एतावतैव च स विश्रान्तो न मिथ्यात्वादिक्षयाय उद्युक्तवान् तथाविध-सामग्र्यभावात्, तत कालान्तरे मिथ्यात्व गत सन् मिथ्यात्वप्रत्ययतो भूयोऽप्यनन्तानुवन्धिनो वध्नाति, ततोवन्धावलिका यावत् नाद्याप्यतिक्रामति तावत् तेषामुदयो न भवति, वन्धावलिकाया त्वतिक्रान्ताया भवेदिति।[1]

---

१ सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६५

प्रश्न—जबकि मिथ्यादृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी चतुष्क का उदय नियम से होता है, तब यहाँ सात प्रकृतिक उदयस्थान मे तथा भय या जुगुप्सा मे से किसी एक के उदय से प्राप्त होने वाले पूर्वोक्त दो प्रकार के आठ प्रकृतिक उदयस्थानो मे उसे अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित क्यो बताया है ?

समाधान—जो सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना करके रह गया। क्षपणा के योग्य सामग्री न मिलने से उसने मिथ्यात्व आदि का क्षय नही किया। अनन्तर कालान्तर मे वह मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ अत वहाँ उसने मिथ्यात्व के निमित्त से पुन अनन्तानुबन्धी चतुष्क का बन्ध किया। ऐसे जीव के एक आवलिका प्रमाणकाल तक अनन्तानुबन्धी का उदय नही होता किन्तु आवलिका के व्यतीत हो जाने पर नियम से होता है। अत मिथ्यादृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी के उदय मे रहित स्थान बन जाते है। इसी कारण से सात प्रकृतिक उदयस्थान मे और भय या जुगुप्सा के उदय से प्राप्त होने वाले आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे अनन्तानुबन्धी का उदय नही बताया है।

"ननु कथ बन्धावलिकातिक्रमेऽप्युदय सभवति ? यतोऽबाधाकालक्षये सत्युदय, अबाधाकालश्चानन्तानुबन्धिना जघन्येनान्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षेण तु चत्वारि वर्ष सहस्राणीति, नैष दोष, यतो बन्धसमयादारभ्य तेषा तावत् सत्ता भवति, सत्ताया च सत्या बन्धे प्रवर्तमाने पतद्ग्रहता, पतद्ग्रहताया च शेष समानजातीयप्रकृतिदलिक सङ्क्रान्ति सक्रमच्च दलिक पतद्ग्रहप्रकृतिरूपतया परिणमते, तत सक्रमावलिकायामतीतायामुदय, ततो बन्धावलिकायामतीतायामुदयोऽभिधीयमानो न विरुध्यते।[1]

प्रश्न—किसी भी कर्म का उदय अबाधाकाल के क्षय होने पर होता है और अनन्तानुबन्धी चतुष्क का जघन्य अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त

---

१ [illegible]

तथा उत्कृष्ट अबाधाकाल चार हजार वर्ष है। अतः बधावलि के बाद ही अनन्तानुबन्धी का उदय कैसे सम्भव है ?

समाधान—बध समय से ही अनन्तानुबन्धी की सत्ता हो जाती है और सत्ता के हो जाने पर प्रवर्तमान बन्ध मे पतद्ग्रहता आ जाती है और पतद्ग्रहपने को प्राप्त हो जाने पर शेष समान जातीय प्रकृति दलिको का सक्रमण होता है जो पतद्ग्रह प्रकृति रूप से परिणत हो जाता है जिसका सक्रमावलि के बाद उदय होता है। अत आवलिका के बाद अनन्तानुबन्धी का उदय होने लगता है, अत यह कहना विरोध को प्राप्त नही होता है।

उक्त शका समाधान का यह तात्पर्य है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क विसयोजना प्रकृति है और वैसे तो विसयोजना क्षय ही है, किन्तु विसयोजना और क्षय मे यह अन्तर है कि विसयोजना के हो जाने पर कालान्तर मे योग्य सामग्री के मिलने पर विसयोजित प्रकृति की पुन सत्ता हो सकती है किन्तु क्षय को प्राप्त प्रकृति की पुन सत्ता नही होती है। सत्ता दो प्रकार से होती है—बध से और सक्रम से, किन्तु बध और सक्रम मे अन्योन्य सम्बन्ध है। जिस समय जिसका बध होता है, उस समय उसमे अन्य सजातीय प्रकृति दलिक का सक्रमण होता है। ऐसी प्रकृति को पतद्ग्रह प्रकृति कहते है। पतद्ग्रह प्रकृति का अर्थ है आकर पडने वाले कर्मदल को ग्रहण करने वाली प्रकृति। ऐसा नियम है कि सक्रम से प्राप्त हुए कर्म-दल का सक्रमावलि के बाद उदय होता है। जिससे अनन्तानुबन्धी का एक आवली के बाद उदय मानने मे कोई आपत्ति नही है। यद्यपि नवीन बधावलि के बाद अबाधाकाल के भीतर भी अपकर्षण हो सकता है और यदि ऐसी प्रकृति उदय-प्राप्त हुई हो तो उस अपकर्षित कर्मदल का उदय-समय से निरपेक्ष भी हो सकता है, अत नवीन वधे हुए कर्मदल का

प्रयोग विशेष से अबाधाकाल के भीतर भी उदीरणोदय हो सकता है, इसमे कोई बाधा नही आती है।

पहले जो सात प्रकृतिक उदयस्थान बताया है, उसमे भय और जुगुप्सा के या भय और अनन्तानुबन्धी के अथवा जुगुप्सा और अनन्तानुबन्धी के मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकार से प्राप्त होता है। इन तीन विकल्पो मे भी पूर्वोक्त क्रम से भगो की एक-एक चौबीसी होती है। इस प्रकार नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी भगो की तीन चौबीसी जानना चाहिए।

पूर्वोक्त सात प्रकृतिक उदयस्थान मे एक साथ भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबन्धी के मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से भगो की एक चौबीसी होती है।

इस प्रकार सात प्रकृतिक उदयस्थान की एक चौबीसी, आठ प्रकृतिक उदयस्थान की तीन, नौ प्रकृतिक उदयस्थान की तीन और दस प्रकृतिक उदयस्थान की एक चौबीसी होती है। कुल मिला-कर बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे आठ चौबीसी होती है—सर्वसख्या द्वाविशतिबधे अष्टौ चतुर्विशतय ।

बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे उदयस्थानो का निर्देश करने के बाद अब इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे उदयस्थान बतलाते हैं कि—'नव इक्कवीस सत्ताइ उदयठाणाइ'—अर्थात् इक्कीस प्रकृतिक बध-स्थान मे सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक ये तीन उदय-स्थान हैं। वे इस प्रकार हैं—इनमे अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन प्रकार की क्रोधादि चार कषायो मे से कोई एक जाति की चार कषाये, तीन वेदो मे से कोई एक वेद और दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन सात प्रकृतियो का उदय इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे नियम से होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त

क्रम से भगो की एक चौबीसी प्राप्त होती है। इस सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय के या जुगुप्सा के मिला देने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से प्राप्त होता है। इस प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान के दो विकल्प होते है। यहाँ एक विकल्प मे एक चौबीसी और दूसरे विकल्प मे एक चौबीसी, इस प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की दो चौबीसी होती हैं। नौ प्रकृतिक उदयस्थान पूर्वोक्त सात प्रकृतिक उदयस्थान मे युगपद भय और जुगुप्सा को मिलाने से प्राप्त होता है। यह एक ही प्रकार का होने से इसमे भगो की एक चौबीसी प्राप्त होती है।

इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे सात प्रकृतिक उदयस्थान की एक, आठ प्रकृतिक उदयस्थान की दो और नौ प्रकृतिक उदयस्थान की एक, कुल मिलाकर भगो की चार चौबीसी होती है।

यह इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के ही होता है और सासादन सम्यग्दृष्टि के दो भेद है—श्रेणिगत और अश्रेणिगत। जो जीव उपशमश्रेणि से गिर कर सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है, उसे श्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं तथा जो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणि चढा ही नही किन्तु अनन्तानुबन्धी के उदय से सासादन भाव को प्राप्त हो गया, वह अश्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है। यहाँ जो इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान मे सात, आठ और नौ प्रकृतिक, यह तीन उदयस्थान बतलाये हैं वे अश्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा समझना चाहिये।[1]

---

१ अय चैकविंशतिबध सासादने प्राप्यते। सासादनश्च द्विधा, श्रेणिगतोऽश्रेणिगतश्च। तत्राश्रेणिगत सासादनमाश्रित्यामूनि सप्तादीनि उदयस्थानान्यवगन्तव्यानि। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

श्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के विषय मे दो कथन पाये जाते हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि जिसके अनन्तानुबंधी की सत्ता है, ऐसा जीव भी उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है। इन आचार्यों के मत से अनन्तानुबन्धी की भी उपशमना होती है।[1] जिसकी पुष्टि निम्नलिखित गाथा से होती है—

"अणदसणपुंसित्थीवेयछक्क च पुरिसावेय च।[2]

अर्थात् पहले अनन्तानुबन्धी कषाय का उपशम करता है। उसके बाद दर्शन मोहनीय का उपशम करता है, फिर क्रमश नपुसक वेद, स्त्रीवेद, छह नोकषाय और पुरुषवेद का उपशम करता है।

ऐसा जीव श्रेणि से गिरकर सासादन भाव को भी प्राप्त होता है, अत इसके भी पूर्वोक्त तीन उदयस्थान होते हैं।

किन्तु अन्य आचार्यो का मत है कि जिसने अनन्तानुबधी की विसयोजना कर दी, ऐसा जीव ही उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, अनन्तानुबधी की सत्ता वाला नही। इनके मत से ऐसा जीव उपशम-श्रेणि से गिरकर सासादन भाव को प्राप्त नही होता है, क्योकि उसके अनन्तानुबधी का उदय सभव नही है और सासादन सम्यक्त्व की

---

१ (क) केचिदाहु—अनन्तानुबधिसत्कर्मसहितोऽप्युपशमश्रेणि प्रतिपद्यते, तेषा मतेनानन्तानुबधिनामप्युपशमना भवति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

(ख) दिगम्बर परम्परा म अनन्तानुबधी की उपशमना वाले मत का षट्-खडागम, कषायप्राभृत और उसकी टीकाओ मे उल्लेख नही मिलता है किन्तु गो० कर्मकाण्ड मे इस मत का उल्लेख किया गया है। वहा उपशमश्रेणि मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक, तीन सत्तास्थान बतलाये हैं—अडचउरेक्कावीस उवसमसेढिम्मि ॥५११॥

२ आवश्यक नियुक्ति, गा० ११६

प्राप्ति तो अनन्तानुबधी के उदय से होती है, अन्यथा नही। कहा भी है—**अणंताणुबधुदयरहियस्स सासणभावो न सभवइ।**

अर्थात् अनन्तानुबधी के उदय के बिना सासादन सम्यक्त्व की प्राप्ति होना सभव नही है।

जिज्ञासु प्रश्न करता है कि—

अथोच्यते—यदा मिथ्यात्व प्रत्यभिमुखो न चाद्यापि मिथ्यात्व प्रतिपद्यते तदानीमनन्तानुवन्ध्युदयरहितोऽपि सासादनस्तेषा मतेन भविष्यतीति किमत्रा-युक्तम् ? तदयुक्तम्, एवं सति तस्य षडादीनि नवपर्यन्तानि चत्वार्युदयस्थानानि भवेयुः, न च भवन्ति, सूत्रे प्रतिषेधात्, तैरप्यनभ्युपगमाच्च, तस्मादनन्तानु-वन्ध्युदयरहित सासादनो न भवतीत्यवश्य प्रत्येयम्।[1]

प्रश्न—जिस समय कोई एक जीव मिथ्यात्व के अभिमुख तो होता है किन्तु मिथ्यात्व को प्राप्त नही होता है, उस समय उन आचार्यों के मतानुसार उसके अनन्तानुबधी के उदय के विना भी सासादन गुण-स्थान की प्राप्ति हो जायेगी। ऐसा मान लिया जाना उचित है।

समाधान—यह मानना ठीक नही है, क्योकि ऐसा मानने पर उसके छह प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान प्राप्त होते हैं। किन्तु आगम मे ऐसा वताया नही है और वे आचार्य भी ऐसा नही मानते है। इससे सिद्ध है कि अनन्तानुवधी के उदय के विना सासादन सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होती है।

"अनन्तानुवधी की विसयोजना करके जो जीव उपशमश्रेणि पर चढता है, वह गिर कर सासादन गुणस्थान को प्राप्त नही होता।" यह कथन आचार्य मलयगिरि की टीका के अनुसार किया गया है, तथापि कर्मप्रकृति आदि के निम्न प्रमाणो से ऐसा ज्ञात होता है कि ऐसा जीव भी सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है। जैसा कि कर्म-प्रकृति की चूर्णि मे लिखा है—

चरित्तुवसमण काउंकामो जति वेयगसम्मद्दिट्ठी तो पुव्वं अणताणुबंधिणो

[1] सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

नियमा विसजोएति । एएण कारणेण विरयाण अणताणुबधिविसजोयणा भणति ।[1]

अर्थात् जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव चारित्र मोहनीय की उपशमना करता है, वह नियम से अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना करता है और इसी कारण से विरत जीवो के अनन्तानुवन्धी की विसयोजना कही गई है । आगे उसी के मूल मे लिखा है—

आसाण वा वि गच्छेज्जा ।[2]

अर्थात्—ऐसा जीव उपशमश्रेणि से उतर कर सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त होता है । उक्त उल्लेखो से ज्ञात होता है कि कर्मप्रकृति कर्त्ता का यही मत रहा है कि अनन्तानुवधी की विसयोजना किये विना उपशमश्रेणि पर आरोहण करना सभव नही है और वहाँ से उतरने वाला जीव सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त करता है । पचसग्रह के उपशमना प्रकरण से भी कर्मप्रकृति के मत की पुष्टि होती है । लेकिन उसके सक्रमप्रकरण मे इसका समर्थन नही होता है । वहाँ सासादन गुणस्थान मे २१ मे २५ का ही सक्रमण वतलाया है ।[3]

सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के रहते—'छाई नव सत्तरसे'—छह

---

१ कर्मप्रकृति चूर्णि उपशम गाथा ३०

२ कर्मप्रकृति उपशम गा० ६२

३ दिगम्बर सम्प्रदाय मे षट्खडागम और कषायप्राभृत की परम्परायें है । षट्खडागम की परम्परा के अनुसार उपशमश्रेणि से च्युत हुआ जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त नही होता है । वीरसेन स्वामी ने धवला टीका मे भगवान पुष्पदन्त भूतवलि के उपदेश का इसी रूप से उल्लेख किया है—"भूदवलि भयवतस्सुवएसेण उवसमसेढीदो ओदिण्णो ण सासणत्त पडिवज्जदि ।
—जीव० चू० पृ० ३३१

प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है।

सत्रह प्रकृतिक बधस्थान तीसरे मिश्र और चौथे अविरत सम्यक्दृष्टि इन दो गुणस्थानो मे होता है। उनमे से मिश्र गुणस्थान मे सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक, नौ प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान होते हैं।[1]

सात प्रकृतिक उदयस्थान मे अनन्तानुबधी को छोडकर अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन प्रकारो के क्रोधादि कपाय चतुष्को मे से कोई एक क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल और सम्यग्मिथ्यात्व, इन सात प्रकृतियो का नियम से उदय रहता है।[2] यहाँ भी पहले के समान भगो की एक चौबीसी प्राप्त होती है। इस सात प्रकृतिक उदयस्थान में भय या जुगुप्सा के मिलाने से आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह स्थान दो प्रकार

किन्तु कषायप्राभृत की परम्परा के अनुसार जो जीव उपशमश्रेणि पर चढा है, वह उससे च्युत होकर सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त हो सकता है। तथापि कषायप्राभृत की चूर्णि मे अनन्तानुबधी उपशमना प्रकृति है, इसका निषेध किया गया है और साथ मे यह भी लिखा है कि वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना किये बिना कषायो को उपशमाता नही है। मूल कषायप्राभृत से भी इस मत की पुष्टि होती है।

१ सप्तदशबन्धका हि द्वये सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽविरतसम्यग्दृष्ट्यश्च। तत्र सम्यग्मिथ्यादृष्टीना त्रीणि उदयस्थानानि तद्यथा—सप्त, अष्ट, नव।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

२ तत्रानन्तानुबन्धिवर्जा. त्रयोऽन्यतमे क्रोधादय; त्रयाणा वेदानामन्यतमो वेद, द्वयोर्युगलयोरन्यतरद् युगलम्, सम्यग्मिथ्यात्व चेति सप्ताना प्रकृतीनामुदय सम्यग्मिथ्यादृष्टिषु ध्रुव।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

से प्राप्त होता है अत यहाँ दो चौवीसी प्राप्त होती हैं। उक्त सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा को युगपद् मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ विकल्प न होने से एक चौवीसी होती है।

इस प्रकार मिश्र गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक वधस्थान के रहते सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौवीसी, आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की दो चौवीसी और नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौवीसी, कुल मिलाकर चार चौवीसी प्राप्त होती हैं।

मिश्र गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक वध मे उदयस्थानो के विकल्प वतलाने के वाद अव चौथे गुणस्थान मे उदयस्थान वतलाते है। चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक वध होते हुए छह प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिए कि—

अनन्तानुवधी को छोडकर शेप तीन कपाय प्रकारो के क्रोधादि चतुष्क मे से कोई एक कपाय, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन छह प्रकृतियो का अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे निश्चित रूप से उदय होने से छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसमे भगो की एक चौवीसी होती है।

इस छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भय या जुगुप्सा या सम्यक्त्व-मोहनीय इन तीन प्रकृतियो मे से किसी एक प्रकृति के मिलाने पर सात प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकार से प्राप्त होता है। यहाँ एक-एक भेद मे एक-एक चौवीसी होती है, अत सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की तीन चौवीसी प्राप्त होती है।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान पूर्वोक्त छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा अथवा भय और सम्यक्त्वमोहनीय अथवा जुगुप्सा

और सम्यक्त्वमोहनीय इन दो प्रकृतियो के मिलाने से प्राप्त होता है। इस स्थान के तीन प्रकार से प्राप्त होने के कारण प्रत्येक भेद मे भगो की एक-एक चौवीसी होती है। जिससे आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की तीन चौवीसी हुई।

उक्त छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जगुप्सा और सम्यक्त्व-मोहनीय, इन तीनो प्रकृतियो को एक साथ मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस स्थान मे विकल्प न होने से भगो की एक चौबीसी बनती है।

इस प्रकार चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बधस्थान मे छह प्रकृतिक उदयस्थान की भगो की एक चौवीसी, सात प्रकृतिक उदयस्थान की भगो की तीन चौवीसी, आठ प्रकृतिक उदय-स्थान की भगो की तीन चौवीसी और नौ प्रकृतिक उदयस्थान की भगो की एक चौवीसी, इस प्रकार कुल मिलाकर भगो की आठ चौवीसी प्राप्त हुई। जिसमे से चार चौवीसी सम्यक्त्वमोहनीय के उदय विना की होती है और चार चौवीसी सम्यक्त्वमोहनीय के उदय सहित की होती है। इनमे से जो सम्यक्त्वमोहनीय के उदय विना की होती है, वे उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवो के जानना चाहिये और जो सम्यक्त्वमोहनीय के उदय सहित की होती हैं, वे वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के जानना चाहिये।

अब तेरह प्रकृतिक बंधस्थान के उदयस्थानो के विकल्पो को बतलाते है कि 'तेरे पचाइ अट्ठेव'—तेरह प्रकृतिक बधस्थान के रहते पाँच प्रकृतिक, छह प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है। उनमे से पहला पाँच प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार होता है कि प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन प्रकारो के क्रोधादि कषाय चतुष्क मे से कोई एक-एक कषाय, तीन वेदो मे से कोई एक

वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन पाँच प्रकृतियो का सदैव उदय रहता है। यह स्थान पाँचवे गुणस्थान मे होता है। इसमे भगो की एक चौवीसी होती है। पाँच प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा व सम्यक्त्व मोहनीय, इन तीन प्रकृतियो मे से कोई एक प्रकृति को मिलाने से छह प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है। तीन प्रकार से इस स्थान के होने से तीन चौवीसी होती हैं। अनन्तर पाँच प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा या भय और सम्यक्त्वमोहनीय या जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय, इन दो प्रकृतियो को मिलाने पर सात प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है। इस उदयस्थान को तीन प्रकार से प्राप्त होने के कारण तीन चौवीसी प्राप्त हो जाती है। आठ प्रकृतिक उदयस्थान पाँच प्रकृतिक उदयस्थान के साथ भय, जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय को युगपद मिलाने से होता है। इस स्थान मे विकल्प न होने से यहाँ भगो की एक चौवीसी होती है।

इस प्रकार पाँचवे गुणस्थान मे तेरह प्रकृतिक वधस्थान के रहते उदयस्थानो की अपेक्षा एक, तीन, तीन, एक, कुल मिलाकर भगो की आठ चौवीसी होती है। जिनमे चार चौवीसी उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवो तथा चार चौवीसी वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के होती है। वेदक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वमोहनीय के उदय वाली चार चौवीसी होती है।

अभी तक वाईस, इक्कीस, सत्रह और तेरह प्रकृतिक वधस्थानो मे उदयस्थानो का निर्देश किया है। अव आगे नौ प्रकृतिक आदि वधस्थानो मे उदयस्थानो का स्पष्टीकरण करते हैं।

'चत्तारिमाइ नववधगेसु उक्कोस सत्त उदयसा' अर्थात् नौ प्रकृतिक वधस्थान मे उदयस्थान चार से प्रारम्भ होकर सात तक होते हैं। यानि नौ प्रकृतिक वधस्थान मे चार प्रकृतिक, पाँच प्रकृतिक, छह प्रकृ-

तिक और सात प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान है। यह बधस्थान छठे, सातवे और आठवे गुणस्थानो मे होता है।

चार प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं कि सज्वलन कषाय चतुष्क मे से कोई एक कषाय, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन चार प्रकृतियो का उदय क्षायिक सम्यग्दृष्टियो, औपशमिक सम्यग्दृष्टियो को छठे आदि गुण-स्थानो मे नियम से होता है। विकल्प नही होने से इसमे एक चौबीसी होती है। इसमे भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्वमोहनीय इन तीन प्रकृतियो मे से किसी एक प्रकृति को क्रम से मिलाने पर पाँच प्रकृतिक उदय-स्थान तीन प्रकार से प्राप्त होता है। इसमे तीन विकल्प है और एक विकल्प की भगो की एक चौबीसी होने से भगो की तीन चौबीसी प्राप्त होती है। पूर्वोक्त चार प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा, भय और सम्यक्त्वमोहनीय या जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय इन दो-दो प्रकृतियो को क्रम से मिलाने पर छह प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकार से प्राप्त होता है और तीन विकल्प होने से एक-एक भेद मे भगो की एक-एक चौबीसी प्राप्त होती है, जिससे छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल तीन चौबीसी प्राप्त हुईं। फिर चार प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय इन तीनो को एक साथ मिलाने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह सात प्रकृतिक उदयस्थान एक ही प्रकार का है, अत यहा भगो की एक चौबीसी प्राप्त होती है।

इस प्रकार नौ प्रकृतिक बधस्थान मे उदयस्थानो की अपेक्षा चार प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौबीसी, पाँच प्रकृतिक उदय-स्थानो मे भगो की तीन चौबीसी, छह प्रकृतिक उदयस्थानो मे भगो की तीन चौबीसी और सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौबीसी होने से कुल मिलाकर आठ चौबीसी प्राप्त होती है। इनमे से चार

चौबीसी उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवो के और चार चौबीसी वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के होती हैं।

पाँच प्रकृतिक बधस्थान मे सज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इनमे से कोई एक तथा तीन वेदो मे से कोई एक वेद, इस प्रकार दो प्रकृतियो का एक उदयस्थान होता है—'पचविहबधगे पुण उदओ दोण्ह।' इस स्थान मे चारो कषायो को तीनो वेदो से गुणित करने पर बारह भग होते है। ये बारह भग नौवे गुणस्थान के पाँच भागो मे से पहले भाग मे होते हैं।

पांच प्रकृतिक बधस्थान के बाद के जो चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बधस्थान है, उनमे एक-एक प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। अर्थात् इन उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे एक-एक प्रकृति का उदय होता है—'इत्तो चउबधाई इक्केक्कुदया हवति सव्वे वि।' जिसका स्पष्टीकरण नीचे करते है।

पांच प्रकृतिक बधस्थान मे से पुरुषवेद का बधविच्छेद और उदयविच्छेद एक साथ होता है, अत चार प्रकृतिक बध के समय चार सज्वलनो मे से किसी एक प्रकृति का उदय होता है। इस प्रकार यहाँ चार भग प्राप्त होते हैं। क्योकि कोई जीव सज्वलन क्रोध के उदय से श्रेणि आरोहण करते हैं, कोई सज्वलन मान के उदय से, कोई सज्वलन माया के उदय मे और कोई सज्वलन लोभ के उदय मे श्रेणि चढते हैं। इस प्रकार चार भग होते हैं।

यहाँ पर कितने ही आचार्य यह मानते है कि चार प्रकृतिक बध के सक्रम के समय तीन वेदो मे से किसी एक वेद का उदय होता है। अत उनके मत मे चार प्रकृतिक बध के प्रथम काल मे दो प्रकृतियो का उदय होता है और इस प्रकार चार कषायो को तीन वेदो से गुणित

करने पर बारह भग होते है।[1] इसी बात की पुष्टि पचसग्रह की मूल टीका मे भी की गई है—

"चतुर्विधबन्धकस्यात्याद्यविभागे त्रयाणां वेदानामन्यतमस्य वेदस्योदय केचिदिच्छन्ति, अतश्चतुर्विधबधकस्यापि द्वादश द्विकोदयान् जानीहि।

अर्थात्—कितने ही आचार्य चार प्रकृतियो का बन्ध करने वाले जीवो के पहले भाग मे तीन वेदो मे से किसी एक वेद का उदय मानते है, अत· चार प्रकृतियो का बन्ध करने वाले जीव के भी दो प्रकृतियो के उदय से बारह भग जानना चाहिए।

इस प्रकार उन आचार्यो के मत से दो प्रकृतियो के उदय मे चौबीस भग हुए। बारह भग तो पॉच प्रकृतिक बन्धस्थान के समय के और बारह भग चार प्रकृतिक बन्धस्थान के समय के, इस प्रकार चौबीस भग हुए।

सज्वलन क्रोध के बन्धविच्छेद हो जाने पर तीन प्रकृतिक बन्ध और एक प्रकृतिक उदय होता है। यहॉ तीन भग होते है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहॉ सज्वलन क्रोध को छोडकर शेष तीन प्रकृतियो मे से किसी एक प्रकृति का उदय कहना चाहिए, क्योकि सज्वलन क्रोध के उदय मे सज्वलन क्रोध का बन्ध अवश्य होता है। कहा भी है—**जे वेयइ ते बधई**—जीव जिसका वेदन करता है, उसका वन्ध अवश्य करता है।

इसलिए जब सज्वलन क्रोध का वन्धविच्छेद हो गया तो उसका उदयविच्छेद भी हो जाता है। इसलिए तीन प्रकृतिक वन्ध के समय

---

१ इह केचिच्चतुर्विधवधमक्रमकाले त्रयाणा वेदानामन्यतमस्य वेदस्योदय-मिच्छन्ति ततस्तन्मतेन चतुर्विधवधकस्यापि प्रथमकाले द्वादश द्विकोदयभगा लभ्यन्ते। **—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६८**

सज्वलन मान आदि तीनो मे से किसी एक प्रकृति का उदय होता है, ऐसा कहना चाहिए।

सज्वलन मान के बन्धविच्छेद हो जाने पर दो प्रकृतिक बन्ध और एक प्रकृतिक उदय होता है। किन्तु वह उदय सज्वलन माया और लोभ मे से किसी एक का होता है, अत यहाँ दो भग प्राप्त होते हैं। सज्वलन माया के बन्धविच्छेद हो जाने पर एक सज्वलन लोभ का बन्ध होता है और उसी का उदय। यह एक प्रकृतिक बन्ध और उदय-स्थान है। अत यहाँ उसमे एक भग होता है।

यद्यपि चार प्रकृतिक बन्धस्थान आदि मे सज्वलन क्रोध आदि का उदय होता है, अत भगो मे कोई विशेषता उत्पन्न नही होती है, फिर भी बन्धस्थानो के भेद से उनमे भेद मानकर पृथक्-पृथक कथन किया गया है।

इसी प्रकार से बन्ध के अभाव मे भी सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे मोहनीय कर्म की एक प्रकृति का उदय समझना चाहिये—'बधोवरमे वि तहा' इसलिये एक भग यह हुआ। इस प्रकार चार प्रकृतिक बन्ध-स्थान आदि मे कुल भग ४+३+२+१+१=११ हुए।

अनन्तर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्त मे मोहनीय का उदय-विच्छेद हो जाने पर भी उपशान्तमोह गुणस्थान मे उसका सत्व पाया जाता है। यहाँ बन्धस्थान और उदयस्थानो के परस्पर सवेध का विचार किया जा रहा है, जिससे गाथा मे सत्वस्थान के उल्लेख की आवश्यकता नही थी, फिर भी प्रसगवश यहाँ उसका भी सकेत किया गया है—'उदयाभावे वि वा होज्जा'—मोहनीय कर्म की सत्ता विकल्प से होती है।

अब आगे की गाथा मे दस से लेकर एक पर्यन्त उदयस्थानो मे कितने भग सम्भव है, उनका निर्देश करते है।

एक्कग छक्केक्कारस दस सत्त चउक्क एक्कगा चेव ।
एए चउवीसगया चउवीस दुगेक्कमिक्कारा ॥१८॥

शब्दार्थ—एक्कग—एक, छक्केक्कारस—छह, ग्यारह, दस—दस, सत्त—सात, चउक्क—चार, एक्कगा—एक, चेव—निश्चय से, एए—ये भंग, चउवीसगया—चौबीस की संख्या वाले होते हैं, चउवीस—चौबीस, दुग—दो के उदय होने पर, इक्कमिक्कारा—एक के उदय में ग्यारह भंग।

गाथार्थ—दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानों में क्रम से एक, छह, ग्यारह, दस, सात, चार और एक, इतने चौबीस विकल्प रूप भंग होते हैं तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान में चौबीस और एक प्रकृतिक उदयस्थान में ग्यारह भंग होते हैं।

नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे 'छक्क'—भगो की कुल छह चौवीसी होती है। वे इस प्रकार हैं—बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान है, उसकी तीन चौवीसी होती हैं। इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसकी एक चौवीसी, मिश्र गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौवीसी और चौथे गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बध के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौवीसी। इस प्रकार नौ प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की कुल छह चौवीसी हुई।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की ग्यारह चौवीसी होती हैं—'इक्कारस'। वे इस प्रकार है—बाईस प्रकृतिक बधस्थान के समय जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं, उसके भगो की तीन चौवीसी, इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान है उसके भगो की दो चौवीसी, मिश्र गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के समय जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की दो चौवीसी, चौथे गुणस्थान मे जो सत्रह प्रकृतिक बधस्थान हैं, उसमे आठ प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की कुल तीन चौवीसी और पाचवे गुणस्थान मे तेरह प्रकृतिक बधस्थान के समय आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौवीसी। इस प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल ग्यारह चौवीसी हुई।

सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल दस चौवीसी होती हैं। वे इस प्रकार हैं—बाईस प्रकृतिक बधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है उसकी एक चौवीसी। इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है उसके भगो की एक चौवीसी, मिश्र गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के समय होने वाले सात प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की एक चौवीसी, चौथे गुण-

स्थान मे जो सत्रह प्रकृतिक बधस्थान है, उसके सात प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की तीन चौबीसी, तेरह प्रकृतिक बधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की तीन चौबीसी और नौ प्रकृतिक बधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौबीसी होती है। इस प्रकार सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल दस चौबीसी होती हैं।

छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल सात चौबीसी इस प्रकार होती है—अविरत सम्यग्दृष्टि के सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के समय जो छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौबीसी, तेरह प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक बधस्थान मे जो छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की तीन-तीन चौबीसी होती है। इस प्रकार छह प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की कुल सात चौबीसी हुई।

पाच प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल चार चौबीसी होती है। वे इस प्रकार है—तेरह प्रकृतिक बधस्थान मे जो पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौबीसी और नौ प्रकृतिक बधस्थान मे जो पाँच प्रकृतिक उदयस्थान है, उसके भङ्गो की कुल तीन चौबीसी होती है। इस प्रकार पाँच प्रकृतिक उदयस्थान मे भङ्गो की कुल चार चौबीसी होती है।

नौ प्रकृतिक बधस्थान के समय चार प्रकृतिक उदय के भङ्गो की एक चौबीसी होती है।

इस प्रकार दस से लेकर चार पर्यन्त उदयस्थानो के भगो की कुल सख्या १+६+११+१०+७+४+१=४० चौबीसी होती है।

पाँच प्रकृतिक वध के समय दो प्रकृतिक उदय के बारह भग होते है और चार प्रकृतिक वध के समय भी दो प्रकृतिक उदय सभव है, ऐसा कुछ आचार्यो का मत है, अत इस प्रकार दो प्रकृतिक उदयस्थान के बारह भग हुए। जिससे दो प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की एक

चौबीसी होती है तथा चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बंधस्थान के तथा अबन्ध के समय एक प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमश चार, तीन, दो, एक और एक भग होते हैं। इनका जोड ग्यारह है। अत एक प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ग्यारह भग होते हैं।

इस प्रकार से गाथा मे मोहनीय कर्म के सब उदयस्थानो मे भगो की चौबीसी और फुटकर भगो को स्पष्ट किया गया है।

सप्ततिका नामक षष्ठ कर्मग्रन्थ के टबे मे इस गाथा का चौथा चरण दो प्रकार से निर्दिष्ट किया गया है। स्वमत से 'बार दुगिक्कमि इक्कारा' और मतान्तर से 'चउवीस दुगिक्कमिक्कारा' निर्दिष्ट किया है। प्रथम पाठ के अनुसार स्वमत से दो प्रकृतिक उदयस्थान मे बारह भग और दूसरे पाठ के अनुसार मतान्तर से दो प्रकृतिक उदयस्थान मे चौबीस भग प्राप्त होते हैं। आचार्य मलयगिरि ने अपनी टीका मे इसी अभिप्राय की पुष्टि इस प्रकार की है—

"द्विकोदये चतुर्विंशतिरेका भगकानाम्, एतच्च मतान्तरेणोक्तम्, अन्यथा स्वमते द्वादशैव भगा वेदितव्या।"

अर्थात् दो प्रकृतिक उदयस्थान मे चौबीस भग होते हैं। सो यह कथन अन्य आचार्यों के अभिप्रायानुसार किया गया है। स्वमत से तो दो प्रकृतिक उदयस्थान मे बारह ही भग होते है।

यहाँ गाथा १६ मे पाँच प्रकृतिक बंधस्थान के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान और गाथा १७ मे चार प्रकृतिक बंधस्थान के समय एक प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है। इसमे जो स्वमत से बारह और मतान्तर से चौबीस भगो का निर्देश किया है, उसकी पुष्टि होती है। पचसग्रह सप्ततिका प्रकरण और गो० कर्मकाड मे भी इन मतभेदो का निर्देश किया गया है।

बधस्थान उदयस्थानो के सवेध भगो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग
पहला	२२	६	७, ८, ९, १०	८ चौबीसी
दूसरा	२१	४	७, ८, ९	४ ,,
तीसरा	१७	२	७, ८, ९	४ ,,
चौथा	१७	२	६, ७, ८, ९	८ ,,
पाँचवाँ	१३	२	५, ६, ७, ८	८ ,,
६ से ८	९	२	४, ५, ६, ७	८ ,,
नौवाँ	५	१	२	१२ भग
,,	४	१	२	१२ ,,
,,	४	१	१	४ ,,
,,	३	१	१	३ ,,
,,	२	१	१	२ ,,
,,	१	१	१	१ ,,
दसवाँ	०	०	१	१ ,,

अब आगे की गाथा मे इन भगो की एव पदवृन्दो की सख्या बतलाते हैं।

नवपंचाणउइसएहुदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा।[1]
अउणत्तरिएगुत्तरिपयविंदसएहिं विन्नेया ॥[2]**१९॥**

---

१ चउबधगे वि बारस दुगोदया जाण तेहि छूढेहिं।
बन्धगभेएणेव पचूणासहस्समुदयाण ॥ —पंचसग्रह सप्ततिका, गा० २९

२ सप्ततिका प्रकरण नामक षष्ठ कर्मग्रन्थ के टबे मे यह गाथा 'नवतेसीयसएहिं' इत्यादि के बाद दी गई है।

शब्दार्थ—नवपंचाणउइसए—नौ सौ पचानवै, उदयविगप्पेहिं—उदयविकल्पों से, मोहिया—मोहित हुए, जीवा—जीव, अउणत्तरिएगुत्तरि—उनहत्तर सौ इकहत्तर, पयविंदसएहिं—पदवृन्दों सहित, विन्नेया—जानना चाहिये।

गाथार्थ—समस्त संसारी जीवों को नौ सौ पचानवै उदयविकल्पों तथा उनहत्तर सौ इकहत्तर पदवृन्दों से मोहित जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्व में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंगों और उन उदयस्थानों के भंगों की कहाँ कितनी चौबीसी होती हैं, यह बतलाया गया है। अब इस गाथा में उनकी कुल संख्या एवं उनके पदवृन्दों को स्पष्ट किया जा रहा है।

प्रत्येक चौबीसी में चौबीस भंग होते हैं और पहले जो उदयस्थानों की चौबीसी बतलाई हैं, उनकी कुल संख्या इकतालीस है। अतः इकतालीस को चौबीस से गुणित करने पर कुल संख्या नौ-सौ चौरासी प्राप्त होती है—४१ × २४ = ९८४। इस संख्या में एक प्रकृतिक उदयस्थान के भंग सम्मिलित नहीं हैं। वे भंग ग्यारह हैं। अतः उन ग्यारह भंगों को मिलाने पर भंगों की कुल संख्या नौ सौ पचानवै होती है। इन भंगों में से किसी-न-किसी एक भंग का उदय दसवें गुणस्थान तक के जीवों के अवश्य होता है। यहाँ दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक के जीवों को ही ग्रहण करने का कारण यह है कि मोहनीय कर्म का उदय वहीं तक पाया जाता है। यद्यपि ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानवर्ती जीव का जब उस स्थान से पतन होता है तब उसको भी मोहनीय कर्म का उदय हो जाता है लेकिन कम-से-कम एक समय और अधिक-से-अधिक अन्तर्मुहूर्त के लिये मोहनीय कर्म का उदय न रहने से उसका ग्रहण नहीं करके दसवें गुणस्थान तक के जीवों

प्रकृतिक वध के सक्रमकाल के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान मे वारह भग वतलाये थे, उनको सम्मिलित करके यह उदयस्थानो की सख्या और पदसख्या वताई है। अर्थात् उदयस्थानो मे से मतान्तर वाले बारह भग कम कर दिये जाये तो ९८३ उदयविकल्प होते हैं और द्वि-प्रकृतिक उदयस्थान के वारह-वारह भग कम कर दिये जायें तो पदो की कुल सख्या ६९४७ होती है। विशेप स्पष्टीकरण आगे की गाथा मे किया जा रहा है। अव वारह भगो को छोडकर उदयस्थानो की सख्या और पदसख्या का निर्देश करते हैं।

नवतेसोयसएहिं उदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा।
अउणत्तरिसीयाला पर्यावदसएहिं विन्नेया ॥२०॥

शब्दार्थ—**नवतेसीयसएहिं**—नौ सौ तिरासी, **उदयविगप्पेहिं**—उदयविकल्पो से, **मोहिया**—मोहित हुए, **जीवा**—जीव, **अउणत्तरिसीयाला**—उनहत्तर सौ सैंतालीस, **पर्यावदसएहिं**—पदो के समूह, **विन्नेया**—जानना चाहिये।

गाथार्थ—ससारी जीव नौसौ तिरासी उदयविकल्पो से और उनहत्तर सौ सैंतालीस पद समुदायो से मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा मे मतान्तर की अपेक्षा उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या वतलाई है। इस गाथा मे स्वमत से उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या का स्पष्टीकरण करते है।

पिछली गाथा मे उदयविकल्प ९९५ और पदवृन्द ६९७१ वतलाये हैं और इस गाथा मे उदयविकल्प ९८३ और पदवृन्द ६९४७ कहे है। इसका कारण यह है—चार प्रकृतिक बध के सक्रम के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यदि इस मतान्तर को मुख्यता न दी जाये और उनके मत से दो प्रकृतिक उदयस्थान के उदयविकल्प और

उक्त नौसौ पचानवै भगो मे से यथासभव किसी न किसी एक भग से मोहित होना कहा गया है।

मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि प्रत्येक प्रकृति को पद कहते हैं और उनके समुदाय का नाम पदवृन्द है। इसी का दूसरा नाम प्रकृतिविकल्प भी है। अर्थात् दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानो मे जितनी प्रकृतियो का ग्रहण किया गया है, वे सब पद हैं और उनके भेद से जितने भग होगे, वे सब पदवृन्द या प्रकृतिविकल्प कहलाते हैं। यहाँ उनके कुल भेद ६९७१ बतलाये है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

दस प्रकृतिक उदयस्थान एक है, अत उसकी दस प्रकृतियाँ हुई। नौ प्रकृतिक उदयस्थान छह हैं अत उनकी ९×६=५४ प्रकृतियाँ हुई। आठ प्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह है अत उनकी अठासी प्रकृतियाँ हुई। सात प्रकृतिक उदयस्थान दस हैं अत· उनकी सत्तर प्रकृतियाँ हुई। छह प्रकृतिक उदयस्थान सात है अत उनकी बयालीस प्रकृतियाँ हुई। पाच प्रकृतिक उदयस्थान चार है अत उनकी बीस प्रकृतियाँ हुई। चार प्रकृतिक उदयस्थान के एक होने से उसकी चार प्रकृतियाँ हुई और दो प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत उसकी दो प्रकृतियाँ हुई। इन सब प्रकृतियो को मिलाने पर १०+५४+८८+७०+४२+२०+४+२=कुल जोड २९० होता है।

उक्त २९० प्रकृतियो मे से प्रत्येक मे चौबीस-चौबीस भग प्राप्त होते हैं अत: २९० को २४ से गुणित करने पर कुल ६९६० होते हैं। इस सख्या मे एक प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह भग सम्मिलित नही है। अत· उन ग्यारह भगो के मिलाने पर कुल सख्या ६९७१ हो जाती है। यहाँ यह विशेष जानना चाहिये कि पहले जो मतान्तर से चार

उक्त नौसौ पचानवै भगो मे से यथासभव किसी न किसी एक भग से मोहित होना कहा गया है ।

मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि प्रत्येक प्रकृति को पद कहते हैं और उनके समुदाय का नाम पदवृन्द है। इसी का दूसरा नाम प्रकृतिविकल्प भी है। अर्थात् दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानो मे जितनी प्रकृतियो का ग्रहण किया गया है, वे सब पद हैं और उनके भेद से जितने भग होगे, वे सब पदवृन्द या प्रकृतिविकल्प कहलाते हैं। यहाँ उनके कुल भेद ६९७१ बतलाये है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

दस प्रकृतिक उदयस्थान एक है, अत· उसकी दस प्रकृतियाँ हुई। नौ प्रकृतिक उदयस्थान छह हैं अत उनकी ९×६=५४ प्रकृतियाँ हुईं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह है अत उनकी अठासी प्रकृतियाँ हुईं। सात प्रकृतिक उदयस्थान दस हैं अत. उनकी सत्तर प्रकृतियाँ हुईं। छह प्रकृतिक उदयस्थान सात है अत उनकी बयालीस प्रकृतियाँ हुईं। पाच प्रकृतिक उदयस्थान चार है अत उनकी बीस प्रकृतियाँ हुईं। चार प्रकृतिक उदयस्थान के एक होने से उसकी चार प्रकृतियाँ हुईं और दो प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत उसकी दो प्रकृतियाँ हुईं। इन सब प्रकृतियो को मिलाने पर १०+५४+८८+७०+४२+२०+४+२=कुल जोड २९० होता है।

उक्त २९० प्रकृतियो मे से प्रत्येक मे चौबीस-चौबीस भग प्राप्त होते हैं अत· २९० को २४ से गुणित करने पर कुल ६९६० होते हैं। इस सख्या मे एक प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह भग सम्मिलित नही हैं। अत· उन ग्यारह भगो के मिलाने पर कुल सख्या ६९७१ हो जाती है। यहाँ यह विशेष जानना चाहिये कि पहले जो मतान्तर से चार

प्रकृतिक बध के सक्रमकाल के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान मे वारह भग वतलाये थे, उनको सम्मिलित करके यह उदयस्थानो की सख्या और पदसख्या बताई है। अर्थात् उदयस्थानो मे से मतान्तर वाले बारह भग कम कर दिये जाये तो ९८३ उदयविकल्प होते हैं और द्वि-प्रकृतिक उदयस्थान के वारह-वारह भग कम कर दिये जायें तो पदो की कुल सख्या ६९४७ होती है। विशेष स्पष्टीकरण आगे की गाथा मे किया जा रहा है। अव वारह भगो को छोडकर उदयस्थानो की सख्या और पदसख्या का निर्देश करते हैं।

नवतेसोयसर्एहिं उदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा।
अउणत्तरिसीयाला पर्यविदसर्एहिं विन्नेया ॥२०॥

शब्दार्थ—**नवतेसीयसर्एहिं**—नौ सौ तिरासी, **उदयविगप्पेहिं**—उदयविकल्पो से, **मोहिया**—मोहित हुए, **जीवा**—जीव, **अउणत्तरि-सीयाला**—उनहत्तर सौ सैंतालीस, **पर्यविदसर्एहिं**—पदो के समूह, **विन्नेया**—जानना चाहिये।

गाथार्थ—ससारी जीव नौसौ तिरासी उदयविकल्पो से और उनहत्तर सौ सैंतालीस पद समुदायो से मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा मे मतान्तर की अपेक्षा उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या वतलाई है। इस गाथा मे स्वमत से उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या का स्पष्टीकरण करते हैं।

पिछली गाथा मे उदयविकल्प ९९५ और पदवृन्द ६९७१ वतलाये हैं और इस गाथा मे उदयविकल्प ९८३ और पदवृन्द ६९४७ कहे हैं। इसका कारण यह है—चार प्रकृतिक बध के सक्रम के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यदि इस मतान्तर को मुख्यता न दी जाये और उनके मत से दो प्रकृतिक उदयस्थान के उदयविकल्प और

उक्त नौसौ पचानवै भगों मे से यथासभव किसी न किसी एक भग से मोहित होना कहा गया है।

मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि प्रत्येक प्रकृति को पद कहते है और उनके समुदाय का नाम पदवृन्द है। इसी का दूसरा नाम प्रकृतिविकल्प भी है। अर्थात् दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानो मे जितनी प्रकृतियो का ग्रहण किया गया है, वे सब पद हैं और उनके भेद से जितने भग होगे, वे सब पदवृन्द या प्रकृतिविकल्प कहलाते हैं। यहाँ उनके कुल भेद ६९७१ बतलाये है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

दस प्रकृतिक उदयस्थान एक है, अत· उसकी दस प्रकृतियाँ हुईं। नौ प्रकृतिक उदयस्थान छह है अत उनकी ९×६=५४ प्रकृतियाँ हुईं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह हैं अत उनकी अठासी प्रकृतियाँ हुईं। सात प्रकृतिक उदयस्थान दस हैं अत· उनकी सत्तर प्रकृतियाँ हुईं। छह प्रकृतिक उदयस्थान सात हैं अत उनकी बयालीस प्रकृतियाँ हुईं। पाच प्रकृतिक उदयस्थान चार है अत उनकी बीस प्रकृतियाँ हुईं। चार प्रकृतिक उदयस्थान के एक होने से उसकी चार प्रकृतियाँ हुईं और दो प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत उसकी दो प्रकृतियाँ हुईं। इन सब प्रकृतियो को मिलाने पर १०+५४+८८+७०+४२+२०+४+२=कुल जोड २९० होता है।

उक्त २९० प्रकृतियो मे से प्रत्येक मे चौबीस-चौबीस भग प्राप्त होते हैं अत. २९० को २४ से गुणित करने पर कुल ६९६० होते हैं। इस सख्या मे एक प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह भग सम्मिलित नही हैं। अत· उन ग्यारह भगो के मिलाने पर कुल सख्या ६९७१ हो जाती है। यहाँ यह विशेष जानना चाहिये कि पहले जो मतान्तर से चार

प्रकृतिक बध के सक्रमकाल के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान मे बारह भग बतलाये थे, उनको सम्मिलित करके यह उदयस्थानो की सख्या और पदसख्या बताई है। अर्थात् उदयस्थानो मे से मतान्तर वाले बारह भग कम कर दिये जाये तो ९८३ उदयविकल्प होते हैं और द्वि-प्रकृतिक उदयस्थान के बारह-बारह भग कम कर दिये जायें तो पदो की कुल सख्या ६९४७ होती है। विशेष स्पष्टीकरण आगे की गाथा मे किया जा रहा है। अब बारह भगो को छोडकर उदयस्थानो की सख्या और पदसख्या का निर्देश करते हैं।

नवतेसीयसएहिं उदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा।
अउणत्तरिसीयाला पयविंदसएहिं विन्नेया ॥२०॥

शब्दार्थ—**नवतेसीयसएहिं**—नौ सौ तिरासी, **उदयविगप्पेहिं**—उदयविकल्पो से, **मोहिया**—मोहित हुए, **जीवा**—जीव, **अउणत्तरिसीयाला**—उनहत्तर सौ सैतालीस, **पयविंदसएहिं**—पदो के समूह, **विन्नेया**—जानना चाहिये।

गाथार्थ—ससारी जीव नौसौ तिरासी उदयविकल्पो से और उनहत्तर सौ सैतालीस पद समुदायो से मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा मे मतान्तर की अपेक्षा उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या बतलाई है। इस गाथा मे स्वमत से उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या का स्पष्टीकरण करते हैं।

पिछली गाथा मे उदयविकल्प ९९५ और पदवृन्द ६९७१ बतलाये हैं और इस गाथा मे उदयविकल्प ९८३ और पदवृन्द ६९४७ कहे है। इसका कारण यह है—चार प्रकृतिक बध के सक्रम के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यदि इस मतान्तर को मुख्यता न दी जाये और उनके मत से दो प्रकृतिक उदयस्थान के उदयविकल्प और

पदवृन्दो को छोड दिया जाये तो क्रमश उनकी सख्या ६८३ और ६६४७ होती है।

यहाँ मोहनीय कर्म के उदयविकल्प दो प्रकार से वताये है, एक ६६५ और दूसरे ६८३। इनमे से ६६५ उदयविकल्पो मे दो प्रकृतिक उदयस्थान के २४ भग तथा ६८३ उदयविकल्पो मे दो प्रकृतिक उदयस्थान के १२ भग लिये है। पचसग्रह सप्ततिका मे भी ये उदयविकल्प बतलाये है, किन्तु वहाँ तीन प्रकार से बतलाये है। पहले प्रकार मे यहाँ वाले ६६५, दूसरे मे यहॉ वाले ६८३ प्रकार से कुछ अन्तर पड जाता है। इसका कारण यह है कि यहाँ एक प्रकृतिक उदय के बन्धाबन्ध की अपेक्षा ग्यारह भग लिये है और पचसग्रह सप्ततिका मे उदय की अपेक्षा प्रकृति भेद से चार भग लिये है, जिससे ६८३ मे से ७ घटा देने पर कुल ६७६ उदय-विकल्प रह जाते हैं। तीसरे प्रकार से उदय-विकल्प गिनाते हुए गुणस्थान भेद से उनकी सख्या १२६५ कर दी है।

गो० कर्मकाण्ड मे भी इनकी सख्या वतलाई है। किन्तु वहाँ इनके दो भेद कर दिये है—पुनरुक्त भग और अपुनरुक्त भग। पुनरुक्त भग १२८३ गिनाये हैं। इनमे से १२६५ तो वही है जो पचसग्रह सप्ततिका मे गिनाये हैं और चार प्रकृतिक बध मे दो प्रकृतिक उदय की अपेक्षा १२ भग और लिये है तथा पचसग्रह सप्ततिका मे एक प्रकृतिक उदय के जो पाँच भग लिये है, वे यहाँ ११ कर दिये गये हैं। इस प्रकार पचसग्रह सप्ततिका से १८ भग बढ जाने से कर्मकाण्ड मे उनकी सख्या १२८३ हो गई तथा कर्मकाण्ड मे अपुनरुक्त भग ६७७ गिनाये हैं। सो क प्रकृतिक उदय का गुणस्थान भेद से एक भग अधिक कर दिया या है। जिससे ६७६ के स्थान पर ६७७ भग हो जाते है।

इसी प्रकार यहाँ मोहनीय के पदवृन्द दो प्रकार से बतलाये हैं—

६९७१ और ६९४७। जब चार प्रकृतिक वन्ध के समय कुछ काल तक दो प्रकृतिक उदय होता है, तब इस मत को स्वीकार कर लेने पर ६९७१ पदवृन्द होते हैं और इस मत को छोडने पर ६९४७ पदवृन्द होते हैं। पचसग्रह सप्ततिका मे ये दोनो सख्याये वतलाई हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त साथ ही चार प्रकार के पदवृन्द और वतलाये हैं। उनमे पहला प्रकार ६९४० का है, जिसमे वन्धावन्ध के भेद से एक प्रकृतिक उदय के ११ भग न होकर कुल ४ भग लिये जाते है। इस प्रकार ६९४७ मे से ७ भग कम होकर ६९४० सख्या होती है। शेष तीन प्रकार के पदवृन्द गुणस्थान भेद से वताये है जो क्रमश ८४७७, ८४८३ और ८५०७ होते हैं।

गो० कर्मकाण्ड मे पदवृन्द को प्रकृतिविकल्प सज्ञा दी है। उदय-विकल्पो की तरह ये प्रकृतिविकल्प भी पुनरुक्त और अपुनरुक्त दो प्रकार के वताये हैं। पुनरुक्त उदयविकल्पो की अपेक्षा इनकी सख्या ८५०७ और अपुनरुक्त उदयविकल्पो की अपेक्षा इनकी सख्या ६९४१ वताई है। पचसग्रह सप्ततिका मे जो ६९४० पदवृन्द वतलाये हैं, उनमे गुणस्थान भेद से १ भग और मिला देने पर ६९४१ प्रकृतिविकल्प हो जाते हैं। क्योकि पचसग्रह सप्ततिका मे एक प्रकृतिक उदयस्थान के कुल चार भग लिये गये हैं और कर्मकाण्ड[1] मे गुणस्थान भेद से पाँच लिये गये हैं। जिससे एक भग वढ जाता है।

ऊपर जो कथन किया गया है उसमे जो सख्याओ का अन्तर दिखता है, वह विवक्षाभेदकृत है, मान्यताभेद नही है।

इस प्रकार से स्वमत और मतान्तर तथा अन्य कार्मग्रन्थिको के

---

१ मोहनीय कर्म के उदयस्थानो, उनके विकल्पो और प्रकृतिविकल्पो की जानकारी के लिए गो० कर्मकाड गा० ४७५ से ४८९ तक देखिए।

मतो से उदयविकल्पो और प्रकृतिविकल्पो के भगो का कथन करने के बाद अब उदयस्थानो के काल का निर्देश करते है।

दस आदिक जितने उदयस्थान और उनके भग बतलाये है, उनका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।[1]

चार प्रकृतिक उदयस्थान से लेकर दस प्रकृतिक उदयस्थान तक के प्रत्येक उदयस्थान मे किसी एक वेद और किसी एक युगल का उदय होता है और वेद तथा युगल का एक मुहूर्त के भीतर अवश्य ही परिवर्तन हो जाता है। इसी बात को पचसग्रह की मूल टीका मे भी बतलाया है—

"वेदेन युगलेन वा अवश्य मुहूर्तादारतः परावर्तितव्यम्।"

अर्थात् एक मुहूर्त के भीतर किसी एक वेद और किसी एक युगल का अवश्य परिवर्तन होता है।

इससे निश्चित होता है कि इन चार प्रकृतिक आदि उदयस्थानो का और उनके भगो का जो उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, वह ठीक है। दो और एक प्रकृतिक उदयस्थान भी अधिक-से-अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक पाये जाते है। अत उनका भी उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही है।

इन सब उदयस्थानो का जघन्यकाल एक समय इस प्रकार समझना चाहिये कि जब कोई जीव किसी विवक्षित उदयस्थान मे या उसके किसी एक विवक्षित भग मे एक समय तक रहकर दूसरे समय मे मर कर या परिवर्तन क्रम से किसी अन्य गुणस्थान को प्राप्त होता है तब उसके गुणस्थान मे भेद हो जाता है, बन्धस्थान भी बदल जाता है और [illegible] के अनुसार उसके उदयस्थान और उसके भगो मे भी अन्तर [illegible] जाता है। अत· सब उदयस्थानो और उसके सब भगो का जघन्य-[illegible]ल एक समय प्राप्त होता है।

---

१ इह दशादय उदयास्तद्भगाश्च जघन्यत एकसामयिका उत्कर्षत आन्तर्मौहूर्तिका। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७०

मोहनीय कर्म के उदयविकल्पो और पदविकल्पो का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	चौवीसी सख्या	चौवीसी के कुल भगो की सख्या	उदयपद	पदविकल्प
दस के उदय मे	१	२४	१०	२४०
नौ „ „ „	६	१४४	५४	१२९६
आठ „ „ „	११	२६४	८८	२११२
सात „ „ „	१०	२४०	७०	१६८०
छह „ „ „	७	१६८	४२	१००८
पाँच „ „ „	४	९६	२०	४८०
चार „ „ „	१	२४	४	९६
दो „ „ „	०	सिर्फ १२ भग	०	२४
एक „ „ „	०	„ ११ „	०	११
कुल योग	४०	९८३	२८८	६९४७
मतान्तर से दो के उदय मे	१	२४ (१२ भग पूर्व मे मिलने से, यहाँ सिर्फ १२ भग लेना)	२	४८ (२४ भग पहले के लिए अत यहाँ २४ भग लेना)
	४१	९९५	२९०	६९७१

इस प्रकार से बन्धस्थानो का उदयस्थानो के साथ परस्पर सवेध

भगो का कथन करने के अनन्तर अब आगे सत्तास्थानो के साथ बन्ध-स्थानो का कथन करते है।

तिन्नेव य बावीसे इगवीसे अट्ठवीस सत्तरसे।
छ च्चेव तेरनवबंधगेसु पंचेव ठाणाइं ॥२१॥
पंचविहचउविहेसुं छ छक्क सेसेसु जाण पंचेव।
पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि य बंधवोच्छेए ॥२२॥

शब्दार्थ—**तिन्नेव**—तीन सत्तास्थान, **य**—और, **बावीसे**—बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान मे, **इगवीसे**—इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान मे, **अट्ठवीस**—अट्ठाईस का सत्तास्थान, **सत्तरसे**—सत्रह के बन्धस्थान मे, **छच्चेव**—छह का, **तेरनवबधगेसु**—तेरह और नौ प्रकृतिक बन्ध-स्थान मे, **पचेव**—पाँच ही, **ठाणाणि**—सत्तास्थान।

पचविह—पाँच प्रकृतिक बन्धस्थान मे, **चउविहेसु**—चार प्रकृतिक बन्धस्थान मे, **छ छक्क**—छह-छह, **सेसेसु**—बाकी के बन्ध-स्थानो मे, **जाण**—जानो, **पचेव**—पाँच ही, **पत्तेय-पत्तेय**—प्रत्येक मे, (एक-एक मे), **चत्तारि**—चार, **य**—और, **बधवोच्छेए**—बन्ध का विच्छेद होने पर भी।

गाथार्थ—बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान मे तीन, इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान मे अट्ठाईस प्रकृति वाला एक, सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान मे छह, तेरह प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक बन्धस्थान मे पाच-पाच सत्तास्थान होते है।

पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक बन्धस्थानो मे छह-छह सत्तास्थान तथा शेष रहे बधस्थानो मे से प्रत्येक के पाच-पाच सत्तास्थान जानना चाहिये और बन्ध का विच्छेद हो जाने पर चार सत्तास्थान होते है।

विशेषार्थ—पहले १५, १६ और १७वी गाथा मे मोहनीय कर्म के बन्धस्थानो और उदयस्थानो के परस्पर सवेध का कथन कर आये हैं।

अब यहाँ दो गाथाओ मे मोहनीय कर्म के बन्धस्थान और सत्तास्थानो के परस्पर सवेध का निर्देश किया गया है। साथ ही बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो के परस्पर सवेध का कथन करना आवश्यक होने से बन्धस्थान और सत्तास्थानो के परस्पर सवेव को वतलाते हुए प्राप्त होने वाले उदयस्थानो का भी उल्लेख करेंगे।

मोहनीय कर्म के बाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक कुल दस बन्धस्थान हैं। उनमे क्रमश सत्तास्थानो का स्पष्टीकरण करते हैं।

'तिन्नेव य बावीसे'—बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान के समय तीन सत्तास्थान होते हैं २८, २७ और २६ प्रकृतिक। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—बाईस प्रकृतियो का बन्ध मिथ्यादृष्टि जीव को होता है और उसके उदयस्थान चार होते हैं—७, ८, ९ और १० प्रकृतिक। इनमे से ७ प्रकृतिक उदयस्थान के समय २८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। क्योकि सात प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धी के उदय के बिना ही होता है और मिथ्यात्व मे अनन्तानुबन्धी के उदय का अभाव उसी जीव के होता है, जिसने पहले सम्यग्दृष्टि रहते अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना की और कालान्तर मे परिणामवश मिथ्यात्व मे जाकर मिथ्यात्व के निमित्त से पुन अनन्तानुबन्धी के बन्ध का प्रारम्भ किया हो। उसके एक आवली प्रमाण काल तक अनन्तानुबन्धी का उदय नही होता है। किन्तु ऐसे जीव के नियम से अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है। जिससे सात प्रकृतिक उदयस्थान मे एक अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान ही होता है।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी उक्त तीनो सत्तास्थान होते है। क्योकि आठ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार का होता है—१

नुवन्धी के उदय से रहित और २ अनन्तानुबन्धी के उदय से सहित ।[1] इनमे से जो अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित वाला आठ प्रकृतिक उदयस्थान है, उसमे एक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान ही प्राप्त होता है। इसका स्पष्टीकरण सात प्रकृतिक उदयस्थान के प्रसग मे ऊपर किया गया है तथा जो अनन्तानुबन्धी के उदय सहित आठ प्रकृतिक उदयस्थान है, उसमे उक्त तीनो ही सत्तास्थान बन जाते है। वे इस प्रकार है—१ जब तक सम्यक्त्व की उद्वलना नही होती तब तक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। २ सम्यक्त्व की उद्वलना हो जाने पर सत्ताईस प्रकृतिक और ३ सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना हो जाने पर छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को भी होता है।[2]

नौ प्रकृतिक उदयस्थान भी अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित और अनन्तानुबन्धी के उदय से सहित होता है। अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे तो एक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है, किन्तु जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धी के उदय सहित है उसमे तीनो सत्तास्थान पूर्वोक्त प्रकार से बन जाते है।

दस प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धी के उदय वाले को ही होता है। अन्यथा दस प्रकृतिक उदयस्थान ही नही बनता है। अत उसमे २८, २७ और २६ प्रकृतिक तीनो सत्तास्थान प्राप्त हो जाते है।

इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान के समय सत्तास्थान एक अट्ठाईस

---

१ यतोऽष्टोदयो द्विधा—अनन्तानुबन्ध्युदयरहितोऽनन्तानुबन्ध्युदयसहितश्च ।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७१

२ तत्र यावद् नाद्यापि सम्यक्त्वमुद्वलयति तावदष्टाविंशति, सम्यक्त्वे उद्वलिते सप्तविंशति, सम्यग्मिथ्यात्वेऽप्युद्वलिते षड्विंशति अनादिमिथ्यादृष्टेर्वा षड्विंशति ।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७१

प्रकृतिक ही होता है—इगवीसे अट्ठवीस। इसका कारण यह है कि इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान सासादन सम्यग्दृष्टि को ही होता है और सासादन सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व से च्युत हुए जीव को होता है, किन्तु ऐसे जीव के दर्शनमोहनीय के तीनो भेदो की सत्ता अवश्य पाई जाती है, क्योकि यह जीव सम्यक्त्व गुण के निमित्त से मिथ्यात्व के तीन भाग कर देता है, जिन्हें क्रमश मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व कहते हैं। अत इसके दर्शन मोहनीय के उक्त तीनो भेदो की सत्ता नियम से पाई जाती है। यहाँ उदयस्थान सात, आठ और नौ प्रकृतिक, ये तीन होते हैं। अत इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान के समय तीन उदयस्थानो के रहते हुए एक अट्ठाईस प्रकृतिक ही सत्तास्थान होता है।[1]

सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान के समय छह सत्तास्थान होते है—'सत्तरसे छच्चेव' जो २८, २७, २६ २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक होते हैं। सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानो मे होता है।

इनमे से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो के ७, ८ और ९ प्रकृतिक यह तीन उदयस्थान होते हैं और अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो के चार उदयस्थान होते हैं—६, ७, ८ और ९ प्रकृतिक।[2] इनमे से छह प्रकृतिक

---

१ एकविंशति बन्धो हि सासादनसम्यग्दृष्टेर्भवति, सासादनत्व च जीवस्यौपशमिकसम्यक्त्वात् प्रच्यवमानस्योपजायते, सम्यक्त्वगुणेन च मिथ्यात्व त्रिधाकृतम्, तद्यथा—सम्यक्त्व मिश्र मिथ्यात्व च, ततो दर्शनत्रिकस्यापि सत्कर्मतया प्राप्यमाणत्वाद् एकविंशतिबधे त्रिष्वप्युदयस्थानेष्वष्टाविंशतिरेक सत्तास्थान भवति। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७१

२ सप्तदशबन्धो हि द्वयाना भवति, तद्यथा—सम्यग्मिथ्यादृष्टिनामविरतसम्यग्दृष्टीना च। तत्र सम्यग्मिथ्यादृष्टीना त्रीण्युदयस्थानानि, तद्यथा—सप्त अष्टौ नव। अविरतसम्यग्दृष्टिना चत्वारि, तद्यथा—षट् सप्त अष्टौ नव। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ०

उदयस्थान उपशम सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवो को ही प्राप्त होता है। उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते है। अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान प्रथमोपशम सम्यक्त्व के समय होता है तथा जिसने अनन्तानुबधी की उद्वलना की उस औपशमिक अविरत सम्यग्दृष्टि के चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव के इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योकि अनन्तानुबधी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियो के क्षय होने पर ही उसकी प्राप्ति होती है।[1] इस प्रकार छह प्रकृतिक उदयस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो के सात प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २७ और २४ ये तीन सत्तास्थान होते है। इनमे से अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्ता वाला जो जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, उसके अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, किन्तु जिस मिथ्यादृष्टि ने सम्यक्त्व की उद्वलना करके सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान को प्राप्त कर लिया किन्तु अभी सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना नही की, वह यदि मिथ्यात्व से निवृत्त होकर परिणामो के निमित्त से सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान[2] को प्राप्त होता है तो उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव

---

१ क्षायिकसम्यग्दृष्टीना त्वेकविंशतिरेव, क्षायिक हि सम्यक्त्व सप्तकक्षये भवति, सप्तकक्षये च जन्तुरेकविंशतिसत्कर्मेति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७२

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टि के २७ प्रकृतिक सत्तास्थान होने के मत का उल्लेख दिगम्बर परम्परा मे देखने मे नही आया है। गो० कर्मकाड मे वेदककाल का निर्देश किया गया है, उस काल मे कोई भी मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो सकता है, पर यह काल सम्यक्त्व की उद्वलना के चालू रहते हुए निकल जाता है। अत वहा २७ प्रकृतिक सत्ता वाले को न तो वेदक सम्यक्त्व की प्राप्ति बतलाई है और न सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की।

के सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा सम्यग्दृष्टि रहते हुए जिसने अनन्तानुबन्धी की विसयोजना की है, वह यदि परिणामवशात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को प्राप्त करता है तो उसके चौवीस प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। ऐसा जीव चारो गतियो मे पाया जाता है। क्योकि चारो गतियो का सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुवन्धी की विसयोजना करता है।[1]

कर्मप्रकृति मे कहा भी है—

> "**चउगइया पज्जत्ता तिन्नि वि सजोयणे विजोयति।**
> **करणेहिं तीहिं सहिया णतरकरण उवसमो वा॥**"[2]

अर्थात् चारो गति के पर्याप्त जीव तीन करणो को प्राप्त होकर अनन्तानुबधी की विसयोजना करते हैं, किन्तु इनके अनन्तानुबंधी का अन्तरकरण और उपशम नही होता है।

यहाँ विशेषता इतनी है कि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में चारों गति के जीव, देशविरति मे तिर्यंच और मनुष्य जीव तथा सर्वविरति मे केवल मनुष्य जीव अनन्तानुवन्धी चतुष्क की विसंयोजना करते हैं।[3] अनन्तानुबधी की विसयोजना करने के बाद कितने ही जीव परिणामों के वश से सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को भी प्राप्त होते हैं। जिससे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो के चौवीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है यह सिद्ध हुआ।

और २४ प्रकृतिक तो उपशम सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के होते हैं, किन्तु यह विशेषता है कि २४ प्रकृतिक सत्तास्थान, जिसने अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना कर दी है, उसको होता है।[1] २३ और २२ प्रकृतिक सत्तास्थान वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के ही होते है। क्योकि आठ वर्ष या इससे अधिक आयु वाला जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव क्षपणा के लिये उद्यत होता है, उसके अनन्तानुबधी चतुष्क और मिथ्यात्व का क्षय हो जाने पर २३ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और फिर उसी के सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय हो जाने पर २२ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह २२ प्रकृतिक सत्ता वाला जीव सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करते समय जब उसके अन्तिम भाग मे रहता है और कदाचित् उसने पहले परभव सम्बन्धी आयु का बध कर लिया हो तो मर कर चारो गतियो मे उत्पन्न होता है।[2] कहा भी है—

"पट्ठवगो उ मणूसो निट्ठवगो चउसु वि गईसु।

अर्थात् दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ केवल मनुष्य ही करता है, किन्तु उसकी समाप्ति चारो गतियो मे होती है।

इस प्रकार २२ प्रकृतिक सत्तास्थान चारो गतियो मे प्राप्त होता है किन्तु २१ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव को ही प्राप्त होता है। क्योकि अनन्तानुबधी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक, इन सात प्रकृतियो का क्षय होने पर ही क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है।

इसी प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए भी सम्यग्मिथ्या-

---

१ नवरमनन्तानुबन्धिविसयोजनानन्तर सा अवगन्तव्या।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७२

२ स च द्वाविशतिसत्कर्मा सम्यक्त्व क्षपयन् तच्चरमग्रासे वर्तमान कश्चित् पूर्वबद्धायुष्क कालमपि करोति, काल च कृत्वा चतसृणा गतीनामन्यतमस्या गतावुत्पद्यते। **—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृष्ठ १७२**

दृष्टि और अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो के क्रमश· पूर्वोक्त तीन और पाच सत्तास्थान होते हैं। नौ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए भी इसी प्रकार जानना चाहिये, लेकिन इतनी विशेषता है कि अविरतो के नौ प्रकृतिक उदयस्थान वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के ही होता है और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान पाये जाते हैं, अत· यहाँ भी उक्त चार सत्तास्थान होते है।

सत्रह प्रकृतिक बधस्थान सम्बन्धी उक्त कथन का साराश यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि के १७ प्रकृतिक एक बधस्थान और ७, ८, ९ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान तथा २८, २७ और २४ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि मे उपशम सम्यग्दृष्टि के १७ प्रकृतिक एक बधस्थान और ६, ७, ८ प्रकृतिक तीन उदयस्थान तथा २८ और २४ प्रकृतिक दो सत्तास्थान होते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के एक १७ प्रकृतिक बधस्थान तथा ६, ७ और ८ प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान तथा २१ प्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है। वेदक सम्यग्दृष्टि के १७ प्रकृतिक एक बधस्थान तथा ७, ८ और ९ प्रकृतिक तीन उदयस्थान तथा २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक चार सत्तास्थान होते है। सवेध भगो का पूर्व मे निर्देश किया जा चुका है, अत यहा किसके कितने बधादि स्थान होते हैं, इसका निर्देश मात्र किया है।

तेरह और नौ प्रकृतिक बधस्थान के रहते पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं—'तेर नवबधगेसु पचेव ठाणाइ'। वे पाँच सत्तास्थान २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक होते है। पहले तेरह प्रकृतिक बधस्थान के सत्तास्थानो को स्पष्ट करते हैं।

तेरह प्रकृतियो का बध देशविरतो को होता है और देशविरत दो प्रकार के होते हैं—तिर्यंच और मनुष्य।[1] तिर्यंच देशविरतो को

---

१ तत्र त्रयोदशबन्धका देशविरता ते च द्विधा—तिर्यंचो मनुष्याश्च।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १

उनके चारो ही उदयस्थानो मे २८ और २४ प्रकृतिक, ये दो सत्ता-स्थान होते हैं। २८ प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि, इन दोनो प्रकार के ही तिर्यच देशविरतो के होता है। उसमे भी जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने के समय ही देश-विरत को प्राप्त कर लेता है, उसी देशविरत के उपशम सम्यक्त्व के रहते हुए २८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। क्योकि अन्तरकरण काल मे विद्यमान कोई भी औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव देशविरत को प्राप्त करता है और कोई मनुष्य सर्वविरत को भी प्राप्त करता है, ऐसा नियम है। जैसाकि शतक बृहच्चूर्णि मे कहा भी है—

उवसमसम्मद्दिट्ठी अन्तरकरणे ठिओ कोई देसविरइ कोई पमत्तापमत्तभाव पि गच्छइ, सासायणो पुण न किमवि लहई।

अर्थात् अन्तरकरण मे स्थित कोई उपशम सम्यग्दृष्टि जीव देशविरति को प्राप्त होता है और कोई प्रमत्तसयम और अप्रमत्तभाव को भी प्राप्त होता है, परन्तु सासादन सम्यग्दृष्टि जीव इनमे से किसी को भी प्राप्त नही होता है।

इस प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को देशविरति गुणस्थान की प्राप्ति के बारे मे बताया कि वह कैसे प्राप्त होता है। किन्तु वेदक सम्यक्त्व के साथ देशविरति होने मे कोई विशेष बाधा नही है। जिससे देशविरति गुणस्थान मे वेदक सम्यग्दृष्टि के २८ प्रकृतिक सत्ता-स्थान बन ही जाता है। किन्तु २४ प्रकृतिक सत्तास्थान अनन्तानुबधी की विसयोजना करने वाले तिर्यचो के होता है, और वे वेदक सम्यग्-दृष्टि होते है। क्योकि तिर्यचगति मे औपशमिक सम्यग्दृष्टि[1] के

---

1 जयधवला टीका मे स्वामी का निर्देश करते समय चारो गतियो के जीवो को २४ प्रकृतिक सत्तास्थान का स्वामी बतलाया है। इसके अनुसार प्रत्येक गति का उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी की विसयोजना कर सकता है। कर्मप्रकृति के उपशमना प्रकरण गा० ३१ से भी इसी मत की पुष्टि होती है। वहाँ चारो गति के जीवो को अनन्तानुबधी की विसयोजना करने वाला बताया है।

२४ प्रकृतिक सत्तास्थान की प्राप्ति सभव नही है। इन दो सत्तास्थानो के अतिरिक्त तिर्यंच देशविरत के शेष २३ आदि सब सत्तास्थान नही होते हैं, क्योकि वे क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जीवो के ही होते हैं और तिर्यंच क्षायिक सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नही करते हैं। इसे तो केवल मनुष्य ही उत्पन्न करते हैं।[1]

तेईस प्रकृतिक आदि सत्तास्थान तिर्यंचो के नही मानने को लेकर जिज्ञासु प्रश्न पूछता है—

"अथ मनुष्या क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पाद्य यदा तिर्यक्षूत्पद्यन्ते तदा तिरश्चोऽप्येकविंशति प्राप्यत एव, तत् कथमुच्यते शेषाणि त्रयोविंशत्यादीनि सर्वाण्यपि न सम्भवन्ति ? इति तद् अयुक्तम्, यत क्षायिकसम्यग्दृष्टिस्तिर्यक्षु न सख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये समुत्पद्यते, किन्त्वसख्येयवर्षायुष्केषु, न च तत्र देशविरति, तदभावाच्च न त्रयोदशबन्धकत्वम्। अत्र त्रयोदशबन्धे सत्तास्थानानि चिन्त्यमानानि वर्तन्ते तत एकविंशतिरपि त्रयोदशबन्धे तिर्यक्षु न प्राप्यते।

प्रश्न—यह ठीक है कि तिर्यंचो के २३ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता है, तथापि जब मनुष्य क्षायिक सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करते हुए या उत्पन्न करके तिर्यंचो मे उत्पन्न होते है तब तिर्यंचो के भी २२ और २१ प्रकृतिक सत्तास्थान पाये जाते है। अत यह कहना युक्त नही है कि तिर्यचो के २३ आदि प्रकृतिक सत्तास्थान नही होते है।

उत्तर—यद्यपि यह ठीक है कि क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाला २२ प्रकृतिक सत्ता वाला जीव या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर तिर्यंचो मे उत्पन्न होता है, किन्तु यह जीव सख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यचो मे उत्पन्न न होकर असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचो

---

१ शेषाणि तु सर्वाण्यपि त्रयोविंशत्यादीनि सत्तास्थानानि तिरश्चा न सम्भवन्ति, तानि हि क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयत प्राप्यन्ते, न च तिर्यंच क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयन्ति, किन्तु मनुष्या एव।

—**सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७३**

मे ही उत्पन्न होता है और उनके देशविरति नही होती है और देशविरति के न होने से उनके तेरह प्रकृतिक बधस्थान नही पाया जाता है। परन्तु यहाँ तेरह प्रकृतिक बधस्थान मे सत्तास्थानो का विचार किया जा रहा है। अत ऊपर जो यह कहा गया है कि तिर्यंचो के २३ आदि प्रकृतिक सत्तास्थान नही होते है, वह १३ प्रकृतिक बधस्थान की अपेक्षा से ठीक ही कहा गया है। चूर्णि मे भी कहा है—

एगवीसा तिरिक्खेसु संजयाऽसजएसु न संभवइ। कह? भण्णइ—सखेज्जवासाउएसु तिरिक्खेसु खाइगसम्मद्दिट्ठी न उववज्जइ असंखेज्जवासाउएसु उववज्जेज्जा, तस्स देसविरई नत्थि।

अर्थात्—तिर्यंच सयतासयतो के २१ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता, क्योकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचो मे उत्पन्न नही होता है। असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचो मे उत्पन्न होता है, किन्तु वहाँ उनके देशविरति नही होती है।

इस प्रकार से तिर्यंचो की अपेक्षा विचार करने के बाद अब मनुष्यो की अपेक्षा विचार करते है।

जो देशविरत मनुष्य है, उनके पाँच प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। छह प्रकृतिक और सात प्रकृतिक उदयस्थान के रहते प्रत्येक मे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते है। आठ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते है। उदयस्थानगत प्रकृतियो को ध्यान मे रखने से इनके कारणो का निश्चय सुगमतापूर्वक हो जाता है। अर्थात् जैसे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे कथन किया गया है, वैसे ही यहाँ भी समझ लेना चाहिये। अत अलग से कथन न करके किस उदयस्थान मे कितने सत्तास्थान होते है, इसका सिर्फ सकेतमात्र किया गया है।

नौ प्रकृतिक बधस्थान प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत जीवो के होता है। इनके ४, ५, ६ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। चार प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। क्योकि यह उदयस्थान उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि को ही प्राप्त होता है। पाँच प्रकृतिक और छह प्रकृतिक उदयस्थान के रहते पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं। क्योकि ये उदयस्थान तीनो प्रकार के सम्यग्दृष्टियो—औपशमिक, क्षायिक और वेदक को सभव हैं। किन्तु सात प्रकृतिक उदयस्थान वेदक सम्यग्दृष्टियो के सभव होने से यहाँ २१ प्रकृतिक सत्तास्थान सभव न होकर शेष चार ही सत्तास्थान होते हैं।[1]

'पचविह चउविहेसु छ छक्क'—पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक बधस्थान मे छह-छह सत्तास्थान होते है। अर्थात् पाँच प्रकृतिक बध-स्थान के छह सत्तास्थान है और चार प्रकृनिक बधस्थान के भी छह सत्तास्थान हैं। लेकिन दोनो के सत्तास्थानो की प्रकृतियो की सख्या मे अन्तर है जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

सर्वप्रथम पाँच प्रकृतिक बधस्थान के सत्तास्थानो को बतलाते हैं। पांच प्रकृतिक बधस्थान के छह सत्तास्थानो की सख्या इस प्रकार है—२८, २४, २१, १३, १२ और ११।[2] इनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

---

१ एव नवबधकानामपि प्रमत्ताऽप्रमत्ताना प्रत्येक चतुष्कोदये त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानानि, तद्यथा—अष्टाविंशति चतुर्विंशति एकविंशतिश्च। पचकोदये षट्कोदये च प्रत्येक पच पच सत्तास्थानानि। सप्तोदये त्वेकविंशति-वर्जानि शेषाणि चत्वारि सत्तास्थानानि वाच्यानि।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

२ तत्र पचविधे बन्धे अमूनि, तद्यथा—अष्टाविंशति चतुर्विंशति एकविंशति त्रयोदश द्वादश एकादश च। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

पाँच प्रकृतिक बधस्थान उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि मे अनि-वृत्तिवादर जीवो के पुरुषवेद के बधकाल तक होता है और पुरुषवेद के बध के समय तक छह नोकषायो की सत्ता पाई जाती है, अत पाँच प्रकृतिक बधस्थान मे पाँच आदि सत्तास्थान नही पाये जाते है।[1] अब रहे शेष सत्तास्थान सो उपशमश्रेणि की अपेक्षा यहाँ २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान पाये जाते हैं। २८ और २४ प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि को उपशम-श्रेणि मे और २१ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि को उपशम-श्रेणि मे पाया जाता है।[2] क्षपकश्रेणि मे भी जब तक आठ कषायो का क्षय नही होता तब तक २१ प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। अर्थात् उपशमश्रेणि की अपेक्षा २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। लेकिन इतनी विशेषता है कि २८ और २४ प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को ही उपशमश्रेणि मे होते है, किन्तु २१ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव को उपशमश्रेणि मे भी होता है और क्षपकश्रेणि मे भी आठ कषायो के क्षय न होने तक पाया जाता है।[3]

---

१ पचादीनि तु सत्तास्थानानि पचविधबन्धे न प्राप्यन्ते, यत पचविधबन्ध पुरुपवेदे बध्यमाने भवति, यावच्च पुरुषवेदस्य बधस्तावत् षड् नोकषाया सन्त एवेति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

२ तत्राष्टाविंशति चतुर्विंशतिश्चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्याम्। एक-विंशतिरुपशमश्रेण्या क्षायिकसम्यग्दृष्टे।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

३ क्षपकश्रेण्या पुनरष्टौ कषाया यावद् न क्षीयन्ते तावदेकविंशति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

क्षपकश्रेणि मे १३, १२ और ११ प्रकृतिक सत्तास्थान तो होते ही है और उनके साथ २१ प्रकृतिक सत्तास्थान को और मिला देने पर क्षपकश्रेणि मे २१, १३, १२ और ११, ये चार सत्तास्थान होते है। आठ कषायो के क्षय न होने तक २१ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और आठ कपायो के क्षय हो जाने पर १३ प्रकृतिक सत्तास्थान। इसमे से नपुसक वेद का क्षय हो जाने पर १२ प्रकृतिक तथा बारह प्रकृतिक सत्तास्थान मे से स्त्रीवेद का क्षय हो जाने पर ११ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

इस प्रकार पाँच प्रकृतिक वन्धस्थान मे २८, २४, २१, १३, १२ और ११ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते है। अव चार प्रकृतिक बन्धस्थान के छह सत्तास्थानो को स्पष्ट करते है।

चार प्रकृतिक बन्धस्थान मे २८, २४, २१, ११, ५ और ४ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं।[1] चार प्रकृतिक बन्धस्थान भी उपशम-श्रेणि और क्षपकश्रेणि दोनो मे होता है। उपशमश्रेणि मे पाये जाने वाले २८, २४ और २१ प्रकृतिक सत्तास्थानो का पहले जो स्पष्टीकरण किया गया, वैसा यहाँ भी समझ लेना चाहिए। अव रहा क्षपकश्रेणि का विचार, सो उसके लिये यह नियम है कि जो जीव नपुसकवेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणि पर चढता है, वह नपुसकवेद और स्त्री-वेद का क्षय एक साथ करता है और इसके साथ ही पुरुषवेद का बन्धविच्छेद हो जाता है। तदनन्तर इसके पुरुषवेद और हास्यादि षट्क का एक साथ क्षय होता है। यदि कोई जीव स्त्रीवेद के उदय

---

१ चतुर्विधबन्धे पुनरमुनि षट् सत्तास्थानानि, तद्यथा—अष्टाविंशति, चतुर्विंशति एकविंशति, एकादश, पच, चतस्र।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, प्र० १७४

के साथ क्षपकश्रेणि पर चढता है तो वह जीव पहले नपुसक वेद का क्षय करता है, तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल मे स्त्रीवेद का क्षय करता है, फिर पुरुपवेद और हास्यादि पट्क का एक साथ क्षय होता है। किन्तु इसके भी स्त्रीवेद की क्षपणा के समय पुरुप-वेद का बधविच्छेद हो जाता है। इस प्रकार स्त्रीवेद और नपुसकवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढे हुए जीव के या तो स्त्रीवेद की क्षपणा के अन्तिम समय मे या स्त्रीवेद और नपुसकवेद की क्षपणा के अतिम समय मे पुरुपवेद का बन्धविच्छेद हो जाता है, जिससे इस जीव के चार प्रकृतिक बधस्थान मे वेद के उदय के बिना एक प्रकृति का उदय रहते ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है तथा यह जीव पुरुपवेद और हास्यादि पट्क का क्षय एक साथ करता है। अत इसके पॉच प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त न होकर चार प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। किन्तु जो जीव पुरुप-वेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढता है, उसके छह नोकषायो के क्षय होने के समय ही पुरुषवेद का बधविच्छेद होता है, जिससे उसके चार प्रकृतिक बधस्थान मे ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता किन्तु पाच प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। इसके यह सत्तास्थान दो समय कम दो आवली काल तक रहकर,[1] अनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक चार प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है।

---

१ कषायप्राभृत की चूर्णि मे पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य और उत्कृष्ट दोनो प्रकार का काल एक समय कम दो आवली प्रमाण बतलाया है—

"पचण्ह विहत्तिओ केविचिर कालादो ?. जहण्णुक्कस्सेण दो आवलियाओ समयूणाओ ॥"

इस प्रकार चार प्रकृतिक बधस्थान मे २८, २४, २१, ११, ५ और ४ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं, यह सिद्ध हुआ।[1]

तीन, दो और एक प्रकृतिक बधस्थानो मे से प्रत्येक मे पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं—'सेसेसु जाण पचेव पत्तेय पत्तेय'। जिनका स्पष्टीकरण करते हैं।

तीन प्रकृतिक बधस्थान के पाँच सत्तास्थान इस प्रकार हैं—२८, २४, २१, ४ और ३ प्रकृतिक। यह तो सर्वत्र सुनिश्चित है कि उपशमश्रेणि की अपेक्षा प्रत्येक बधस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं, अत शेष रहे ४ और ३ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षपकश्रेणि की अपेक्षा समझना चाहिये। अत अब क्षपकश्रेणि की अपेक्षा यहाँ विचार करना है। इस सम्बन्ध मे ऐसा नियम है कि सज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति एक आवलिका प्रमाण शेष रहने पर बध, उदय और उदीरणा, इन तीनो का एक साथ विच्छेद हो जाता है और तदनन्तर तीन प्रकृतिक बध होता है, किन्तु उस समय सज्वलन क्रोध के एक आवलिका प्रमाण स्थितिगत दलिक को और दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्ध को छोडकर अन्य सबका क्षय हो जाता है। यद्यपि यह भी दो समय कम दो आवली प्रमाण काल के द्वारा क्षय को प्राप्त

---

१ गो० कर्मकाड गा० ६६३ मे चार प्रकृतिक बधस्थान मे दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक ये दो उदयस्थान तथा २८, २४, २१, १३, १२, ११, ५ और ४ प्रकृतिक, ये आठ सत्तास्थान बतलाये हैं। इसका कारण बताते हुए गा० ४८४ मे लिखा है कि जो जीव स्त्रीवेद व नपुसकवेद के साथ श्रेणि पर चढता है, उसके स्त्रीवेद या नपुसक वेद के उदय के द्विचरम समय मे पुरुषवेद का बधविच्छेद हो जाता है। इसी कारण कर्मकाड मे चार प्रकृतिक बधस्थान के समय १३ और १२ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान और बताये हैं।

होगा किन्तु जब तक क्षय नही हुआ तब तक तीन प्रकृतिक बधस्थान मे चार प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है और इसके क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतिक बधस्थान मे तीन प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है, जो अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है।

इस प्रकार तीन प्रकृतिक बधस्थान मे २८, २४, २१, ४ और ३ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते है। द्विप्रकृतिक बधस्थान मे पाँच सत्तास्थान इस प्रकार है–२८, २४, २१, ३ और २ प्रकृतिक। सज्वलन मान की भी इसी प्रकार प्रथम स्थिति एक आवली प्रमाण शेष रहने पर बध, उदय और उदीरणा, इन तीनो का एक साथ विच्छेद हो जाता है, उस समय दो प्रकृतिक बधस्थान प्राप्त होता है, पर उस समय सज्वलन मान के एक आवली प्रमाण प्रथम स्थितिगत दलिक को और दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्ध को छोडकर अन्य सब का क्षय हो जाता है। यद्यपि वह शेप सत्कर्म दो समय कम दो आवली प्रमाण काल के द्वारा क्षय को प्राप्त होगा किन्तु जब तक इसका क्षय नही हुआ, तब तक दो प्रकृतिक बधस्थान मे तीन प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। पश्चात् इसके क्षय हो जाने पर दो प्रकृतिक बधस्थान मे दो प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

इस प्रकार दो प्रकृतिक बधस्थान मे २८, २४, २१, ३ और २ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते है।

एक प्रकृतिक बंधस्थान मे होने वाले पॉच सत्तास्थान इस प्रकार है—२८, २४, २१, २ और १ प्रकृतिक। इनमे से २८, २४ और २१ प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझ लेना चाहिये।

२ और १ प्रकृतिक सत्तास्थानो का विवरण इस प्रकार है कि इसी ह सज्वलन माया की प्रथम स्थिति एक आवली प्रमाण शेष रहने बध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद हो जाता है और

उसके वाद एक प्रकृतिक बध होता है, परन्तु उस समय सज्वलन माया के एक आवली प्रमाण प्रथम स्थितिगत दलिक को और दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्ध को छोडकर शेष सबका क्षय हो जाता है। यद्यपि यह शेष सत्कर्म भी दो समय कम दो आवली प्रमाण काल के द्वारा क्षय को प्राप्त होगा, किन्तु जव तक इसका क्षय नही हुआ तब तक एक प्रकृतिक बधस्थान मे दो प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है। पश्चात् इसका क्षय हो जाने पर एक प्रकृतिक बधस्थान मे सिर्फ एक सज्वलन लोभ की सत्ता रहती है।

इस प्रकार एक प्रकृतिक बधस्थान मे २८, २४, २१, २ और १ प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते है। अब बध के अभाव मे भी विद्य-मान सत्तास्थानो का विचार करते है। इसके लिये गाथा मे कहा गया है—'चत्तारि य बधवोच्छेए'—अर्थात् बध के अभाव मे चार सत्तास्थान होते है। वे चार सत्तास्थान इस प्रकार है—२८, २४, २१ और १ प्रकृतिक। बध का अभाव दसवें सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे होता है। जो उपशमश्रेणि पर चढकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान को प्राप्त होता है, यद्यपि उसको मोहनीय कर्म का बध तो नही होता, किन्तु उसके २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान सभव हैं तथा जो क्षपक-श्रेणि पर आरोहण करके सूक्ष्मसपराय गुणस्थान को प्राप्त करता है, उसके सज्वलन लोभ की सत्ता पाई जाती है। इसीलिये बध के अभाव मे २८, २४, २१ और १ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान माने जाते हैं।[1]

इस प्रकार से मोहनीय कर्म के बध, उदय और सत्तास्थानो के सवेध भगो का निर्देश किया गया। उनके समस्त विवरण का स्पष्टी-करण इस प्रकार है—

---

१ वन्धाभावे सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने चत्वारि सत्तास्थानानि तद्यथा— विंशति चतुर्विंशति एकविंशति एका च। तत्राद्यानि त्रीणि उ श्रेण्याम्। एका तु सज्वलनलोभरूपा प्रकृति क्षपकश्रेण्याम्।

—सप्ततिका प्रकरण ८

स	[illegible]स्थान	भंग	उदयस्थान		उदय चौबीसी		उदयभंग		उदयपद		उदय पद-वृन्द सख्या		सत्तास्थान	
				जोड		जोड		जोड		जोड		जोड		
१	२२	६	७		१		२४		७		१६८		१	२८
			८	४	३	८	७२	१९२	२४	६८	५७६	१६३२	३	२८, २७, २६
			९		३		७२		२७		६४८		३	२८, २७, २६
			१०		१		२४		१०		२४०		३	२८, २७, २६
२	२१	४	७		१		२४		७		१६८		१	२८
			८	३	२	४	४८	९६	१६	३२	३८४	७६८	१	२८
			९		१		२४		९		२१६		१	२८
३–४	१७	२	६		१		२४		६		१४४		३	२८, २४, २१
			७	४	४	१२	९६		२८		६७२		६	२८, २७, २४, २३, २२, २१
			८		५		१२०	२८८	४०	९२	९६०	२२०८	६	२८,२७,२४,२३,२२,२१
			९		२		४८		१८		४३२		५	२८,२७,२४,२३,२२
५	१३	२	५		१		२४		५		१२०		३	२८, २४, २१
			६	४	३	८	७२	१९२	१८	५२	४३२	१२४८	५	२८,२४,२३,२२,२१
			७		३		७२		२१		५०४		५	२८,२४,२३,२२,२१
			८		१		२४		८		१९२		४	२८, २४, २३, २२
६ ७ ८	९	२	४		१		२४		४		९६		३	२८, २४, २१
			५	४	३	८	७२	१९२	१५	४४	३६०	१०५६	५	२८,२४,२३,२२,२१
			६		३		७२		१८		४३२		५	२८,२४,२३,२२,२१
			७		१		२४		७		१६८		४	२८, २४. २३, २२

गुण-स्थान	बंध-स्थान	भंग	उदयस्थान		उदय चौबीसी		उदयभंग		उदयपद		उदय पद-वृन्द संख्या		सत्तास्थान	
				जोड		जोड		जोड		जोड		जोड		
९	५	१	२	१	×	×	१२	१२	×	×	२४	२४	६	२८,२४,२१,१३,१२,११
,,	४	१	१	×	×	×	४	४	×	×	४	४	६	२८, २४, २१, ११, ५,४
,,	३	१	१	×	×	×	३	३	×	×	३	३	५	२८, २४, २१, ४, ३
,,	२	१	१	×	×	×	२	२	×	×	२	२	५	२८, २४, २१, ३, २
,,	१	१	१	×	×	×	१	१	×	×	१	१	५	२८, २४, २१, २, १
१०	०	०	१	×	×	×	१	१	×		१	१	४	२८, २४, २१, १
११	०	×	०	×	×	×	×	×	×	×	×	×	३	२८, २४, २१
कुल जोड		२१		२५		४०		९८३		२८८		६९४७	१०१	

नोट—जिन आचार्यों का मत है कि चार प्रकृतिक बंधस्थान में दो और एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उनके मत से १२ उदयपद और २४ उदयपदवृन्द बढ़कर उनकी संख्या क्रम से ९९५ और ६९७१ हो जाती है।

अब मोहनीय कर्म के कथन का उपसहार करके नामकर्म को कहने की प्रतिज्ञा करते है।

दसनवपन्नरसाइं बंधोदयसन्तपयडिठाणाइं ।
भणियाइं मोहणिज्जे इत्तो नामं परं वोच्छं ।।२३।।[1]

शब्दार्थ—दसनवपन्नरसाइ—दस, नौ और पन्द्रह, बधोदयसन्तपयडिठाणाइ—बध, उदय और सत्ता प्रकृतियो के स्थान, **भणियाइ**—कहे, **मोहणिज्जे**—मोहनीय कर्म के, **इत्तो**—इससे, **नामं**—नामकर्म के, **पर**—आगे, **वोच्छ**—कहते है।

गाथार्थ—मोहनीय कर्म के वध, उदय और सत्ता प्रकृतियो के स्थान क्रमश दस, नौ और पन्द्रह कहे। अब आगे नामकर्म का कथन करते है।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्म के वन्ध, उदय और सत्तास्थानो के कथन का उपसहार करते हुए गाथा मे सकेत किया गया है कि मोहनीय कर्म के वधस्थान दस, उदयस्थान नौ और सत्तास्थान पन्द्रह होते है। जिनमे और जिनके सवेध भगो का कथन किया जा चुका है। अब आगे की गाथा से नामकर्म के बध, उदय और सत्ता के सवेध भगो का कथन प्रारम्भ करते है।

नामकर्म

सबसे पहले नामकर्म के बधस्थानो का निर्देश करते है—

तेवीस पण्णवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा ।
तीसेगतीसमेक्कं बंधट्ठाणाणि नामस्स ।।२४।।[2]

---

१ तुलना कीजिए—
दसणवपण्णरसाइ बधोदय सत्तपयडिठाणाणि ।
भणिदाणि मोहणिज्जे एत्तो णाम पर वोच्छ ।। **गो० कर्मकाड ५१८**

२ तुलना कीजिए—
(क) णामस्स कम्मस्स अट्ठ ट्ठाणाणि एक्कतीसाए तीसाए एगूणतीसाए अट्ठवीसाए छब्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एक्किस्से ट्ठाण चेदि।
जीव० चू० ठा०, सू० ६०

शब्दार्थ—तेवीस—तेईस, पणवीसा—पच्चीस, छव्वीसा—छव्वीस, अट्ठवीस—अट्ठाईस, गुणतीसा—उनतीस, तीसेगतीस—तीस, इकतीस, एक्क—एक, बंधट्ठाणाणि—बंधस्थान, णामस्स—नामकर्म के।

गाथार्थ—नामकर्म के तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस और एक प्रकृतिक, ये आठ बंधस्थान होते है।

विशेषार्थ—गाथा मे नामकर्म के आठ बंधस्थान होने के साथ-साथ वे स्थान कितने प्रकृतिक संख्या वाले है, इसका संकेत किया गया है कि वे बंधस्थान १ तेईस प्रकृतिक, २ पच्चीस प्रकृतिक, ३ छब्बीस प्रकृतिक, ४ अट्ठाईस प्रकृतिक, ५ उनतीस प्रकृतिक, ६ तीस प्रकृतिक, ७ इकतीस प्रकृतिक और ८ एक प्रकृतिक हैं।

वैसे तो नामकर्म की उत्तर प्रकृतियाँ तिरानवै हैं। किन्तु इन सबका एक साथ किसी भी जीव को बंध नही होता है, अतएव उनमे से कितनी प्रकृतियो का एक साथ बंध होता है, इसका विचार आठ बंधस्थानो के द्वारा किया गया है। इनमे भी कोई तिर्यंचगति के, कोई मनुष्यगति के, कोई देवगति के और कोई नरकगति के योग्य बंधस्थान है और इसमे भी इनके अनेक अवान्तर भेद हो जाते हैं। जिससे इन अवान्तर भेदो के साथ उनका विचार यहाँ करते हैं।

तिर्यंचगति मे एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव होते हैं।

(ख) तेवीसा पणुवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा।
तीसेगतीस एगो बंधट्ठाणाइ नामेऽट्ठ ॥
—पंच० सप्ततिका, गा० ५५

(ग) तेवीस पणवीस छव्वीस अट्ठवीसमुगतीस।
तीसेक्कतीसमेव एक्को बंधो दुसेढिम्मि ॥
—गो० कर्मकांड, गा०

तिर्यंचगति के योग्य बध करने वाले जीवो के सामान्य से २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक पॉच बधस्थान होते है।[1] उनमे से भी एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के २३, २५ और २६ प्रकृतिक, ये तीन बधस्थान होते है।[2]

उनमे से २३ प्रकृतिक बधस्थान मे तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुडसस्थान, वर्ण, रस, गध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात नाम, स्थावर नाम, सूक्ष्म और बादर मे से कोई एक, अपर्याप्त नाम, प्रत्येक और साधारण इनमे से कोई एक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति और निर्माण, इन तेईस प्रकृतियो का बध होता है। इन तेईस प्रकृतियो के समुदाय को तेईस प्रकृतिक बधस्थान कहते हैं और यह बधस्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य को होता है।

यहाँ चार भग प्राप्त होते है। ऊपर बताया है कि बादर और सूक्ष्म मे से किसी एक का तथा प्रत्येक और साधारण मे से किसी एक का बध होता है। अत' यदि किसी ने एक बार बादर के साथ प्रत्येक का और दूसरी बार बादर के साथ साधारण का बध किया। इसी

१—(क) तत्र तिर्यग्गतिप्रायोग्य बघ्नन सामान्येन पच बधस्थानानि, तद्यथा त्रयोविंशति पचविंशति षड्विंशति एकोनत्रिंशत् त्रिंशत्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७६

(ख) तिरिक्खगदिणामाए पचट्ठाणाणि तीसाए एगूणतीसाए छब्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए ट्ठाण चेदि।

—जी० चू०, ठा०, सू० ६३

२ तत्राप्येकेन्द्रियप्रायोग्य बघ्नतस्त्रीणि बन्धस्थानानि, तद्यथा—त्रयोविंशति' पचविंशति पड्विंशति।

सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७६

प्रकार किसी ने एक बार सूक्ष्म के साथ साधारण का बध किया और दूसरी बार सूक्ष्म के साथ प्रत्येक का बध किया तो इस प्रकार तेईस प्रकृतिक बधस्थान मे चार भग हो जाते हैं।

पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान मे तिर्यंचगति, तिर्यचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुडसस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, स्थावर, बादर और सूक्ष्म मे से कोई एक, पर्याप्त, प्रत्येक और साधारण मे से कोई एक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक, दुर्भग, अनादेय और निर्माण, इन पच्चीस प्रकृतियो का बध होता है। इन पच्चीस प्रकृतियो के समुदाय को एक पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान कहते हैं। यह बधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच, मनुष्य और देव के होता है।

इस बधस्थान मे बीस भग होते है। वे इस प्रकार हैं—जब कोई जीव बादर, पर्याप्त और प्रत्येक का बध करता है, तब उसके स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का बध होने के कारण आठ भग होते है तथा जब कोई जीव बादर, पर्याप्त और साधारण का बध करता है, तब उसके यश कीर्ति का बध न होकर अयश कीर्ति का ही बध होता है—

नो सुहुमतिगेण जस

अर्थात् सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त इन तीन मे से किसी एक का भी बध होते समय यश कीर्ति का बध नही होता है। जिससे यहाँ यश.कीर्ति और अयश कीर्ति के निमित्त से

वाले भग सभव नही है। अब रहे स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभ, ये दो युगल। सो इनका विकल्प से बध सभव है यानी स्थिर के साथ एक बार शुभ का, एक बार अशुभ का तथा इसी प्रकार अस्थिर के साथ भी एक बार शुभ का तथा एक बार अशुभ का बध सभव है, अत यहाँ कुल चार भग होते है। जब कोई जीव सूक्ष्म और पर्याप्त का बध करता है, तब उसके यश कीर्ति और अयश कीर्ति इनमे से एक अयश कीर्ति का ही बध होता है किन्तु प्रत्येक और साधारण मे से किसी एक का, स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का तथा शुभ और अशुभ मे से किसी एक का बध होने के कारण आठ भग होते है। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान मे ८+४+८=२० भग होते है।

छब्बीस प्रकृतियो के समुदाय को छब्बीस प्रकृतिक बधस्थान कहते है। यह बधस्थान पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के साथ बध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यच, मनुष्य और देव को होता है। छब्बीस प्रकृतिक बधस्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार है—तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस, कार्मण शरीर, हुडसस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्वास, स्थावर, आतप और उद्योत मे से कोई एक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, दुर्भग, अनादेय, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक तथा निर्माण।

इस बधस्थान मे सोलह भग होते है। ये भग आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति का, स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का बध होने के कारण बनते है। आतप और उद्योत

वाले भग सभव नही है। अब रहे स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभ, ये दो युगल। सो इनका विकल्प से बध सभव है यानी स्थिर के साथ एक बार शुभ का, एक बार अशुभ का तथा इसी प्रकार अस्थिर के साथ भी एक बार शुभ का तथा एक बार अशुभ का बध सभव है, अत यहाँ कुल चार भग होते है। जब कोई जीव सूक्ष्म और पर्याप्त का बध करता है, तब उसके यश कीर्ति और अयश कीर्ति इनमे से एक अयश कीर्ति का ही बध होता है किन्तु प्रत्येक और साधारण मे से किसी एक का, स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का तथा शुभ और अशुभ मे से किसी एक का बध होने के कारण आठ भग होते है। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान मे ८+४+८=२० भग होते है।

छब्बीस प्रकृतियो के समुदाय को छब्बीस प्रकृतिक बधस्थान कहते है। यह बधस्थान पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के साथ बध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच, मनुष्य और देव को होता है। छब्बीस प्रकृतिक बधस्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार है—तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस, कार्मण शरीर, हुडसस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्वास, स्थावर, आतप और उद्योत मे से कोई एक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, दुर्भग, अनादेय, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक तथा निर्माण।

इस बधस्थान मे सोलह भग होते है। ये भग आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति का, स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का बध होने के कारण बनते है। आतप और उद्योत

के साथ सूक्ष्म और साधारण का बध नही होता है। इसलिये यहाँ सूक्ष्म और साधारण के निमित्त से प्राप्त होने वाले भग नही कहे गये हैं।

इस प्रकार एकेन्द्रिय प्रायोग्य २३, २५ और २६ प्रकृतिक, इन तीन बधस्थानो के कुल भग ४+२०+१६=४० होते हैं। कहा भी है—

चत्तारि वीस सोलस भगा एगिदियाण चत्ताला।

अर्थात्—एकेन्द्रिय सम्बन्धी २३ प्रकृतिक बधस्थान के चार, २५ प्रकृतिक बधस्थान के बीस और २६ प्रकृतिक बधस्थान के सोलह भग होते हैं। ये सब मिलकर चालीस हो जाते है।

एकेन्द्रिय प्रायोग्य बधस्थानो का कथन करने के अनन्तर द्वीन्द्रियो के बधस्थानो को बतलाते हैं।

द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाले जीव के २५, २९ और ३० प्रकृतिक, ये तीन बधस्थान होते हैं।[1]

जिनका विवरण इस प्रकार है—पच्चीस प्रकृतियो के समुदाय रूप बधस्थान को पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान कहते हैं। इस स्थान के बधक अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच होते हैं। पच्चीस प्रकृतियो के बधस्थान की प्रकृतियो के नाम इस प्रकार है—

तिर्यचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुडसस्थान, सेवार्त सहनन, औदारिक अगोपाग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति और निर्माण। यहाँ अपर्याप्त प्रकृति के साथ केवल अशुभ प्रकृतियो का ही बध होता है, शुभ प्रकृतियो का नही, जिससे एक ही भग होता है।

---

१ द्वीन्द्रियप्रायोग्य बध्नतो बधस्थानानि त्रीणि, तद्यथा—पचविंशति एकोनत्रिंशत् त्रिंशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७७

उक्त पच्चीस प्रकृतियो मे से अपर्याप्त को कम करके पराघात, उच्छ्‌वास, अप्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त और दु स्वर, इन पाँच प्रकृतिया को मिला देने पर उनतीस प्रकृतिक बधस्थान होता है। उनतीस प्रकृतियो का कथन इस प्रकार करना चाहिये—तिर्यचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक अगोपाग, हुडसस्थान, सेवार्त सहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्‌वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक, निर्माण। ये उनतीस प्रकृतियाँ उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे होती है। यह बधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव को होता है।

इस बधस्थान मे स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश कीर्ति अयश कीर्ति, इन तीनो युगलो मे से प्रत्येक प्रकृति का विकल्प से बध होता है, अत आठ भङ्ग प्राप्त होते है।

इन उनतीस प्रकृतियो मे उद्योत प्रकृति को मिला देने पर तीस प्रकृतिक बधस्थान होता है। इस स्थान को भी पर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाला मिथ्यादृष्टि ही बाधता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते है। इस प्रकार १+८+८=१७ भङ्ग होते हैं।

त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के भी पूर्वोक्त प्रकार से तीन-तीन बधस्थान होते है। लेकिन इतनी विशेषता समझना चाहिए कि त्रीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो मे त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो मे चतुरिन्द्रिय जाति कहना चाहिए। भङ्ग भी प्रत्येक के सत्रह-सत्रह है, अर्थात् त्रीन्द्रिय के सत्रह और चतुरिन्द्रिय के सत्रह भङ्ग होते है। इस प्रकार से [illegible]त्रिक के इक्यावन भङ्ग होते हैं। कहा भी है—

एगऽट्ठ अट्ठ विगलिंदियाण इगवण्ण तिण्ह पि।

अर्थात्—विकलत्रयो मे से प्रत्येक मे बधने वाले जो २५, २९ और ३० प्रकृतिक बधस्थान हैं, उनमे से प्रत्येक मे क्रमश एक, आठ और आठ भग होते हैं तथा तीनो के मिलाकर कुल इक्यावन भग होते है।

अब तक एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के तिर्यंचगति के बध-स्थानो का कथन किया गया। अब तिर्यंचगति पचेन्द्रिय के योग्य बधस्थानो को बतलाते है।

तिर्यंचगति पचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बन्ध करने वाले जीव के २५, २९ और ३० प्रकृतिक, ये तीन बधस्थान होते हैं।[1] इनमे से २५ प्रकृतिक बधस्थान तो वही है जो द्वीन्द्रिय के योग्य पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान बतला आये है। किन्तु वहा जो द्वीन्द्रियजाति कही है उसके स्थान पर पचेन्द्रिय जाति कहना चाहिये। यहाँ एक भग होता है।

उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे उनतीस प्रकृतिया इस प्रकार है—तिर्यचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, पचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिक अगोपाग, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह सस्थानो मे से कोई एक सस्थान, छह सहननो मे से कोई एक सहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति मे से कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, सुस्वर और दु स्वर मे से कोई एक, आदेय अनादेय मे से कोई एक, यश कीर्ति-अयश कीर्ति मे से कोई एक तथा निर्माण। यह बधस्थान पर्याप्त तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो को बाधने वाले चारो गति

---

१ तिर्यग्गतिपचेन्द्रियप्रायोग्य बन्धतस्त्रीणि बधस्थानानि, तद्यथा—पचविंशति, एकोनत्रिंशत् त्रिशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७७

के मिथ्यादृष्टि जीव को होता है। यदि इस बधस्थान का बधक सासादन सम्यग्दृष्टि होता है तो उसके आदि के पाँच सहननो मे से किसी एक सहनन का तथा आदि के पाँच सस्थानो मे से किसी एक सस्थान का बध होता है। क्योकि हुण्डसस्थान और सेवार्त सहनन को सासादन सम्यग्दृष्टि जीव नही बाँधता है—

हुड असपत्त व सासणो न बधइ।

अर्थात्—सासादन सम्यग्दृष्टि जीव हुडसस्थान और असप्राप्त-सहनन को नही बाँधता है।

इस उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे सामान्य से छह सस्थानो मे से किसी एक सस्थान का, छह सहननो मे से किसी एक सहनन का, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति मे से किसी एक विहायोगति का, स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का, सुभग और दुर्भग मे से किसी एक का, सुस्वर और दु स्वर मे से किसी एक का, आदेय और अनादेय मे से किसी एक का, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का बध होता है। अत इन सब सख्याओ को गुणित कर देने पर—६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८ भग प्राप्त होते है।

इस स्थान का बधक सासादन सम्यग्दृष्टि भी होता है, किन्तु उसके पाँच सहनन और पाँच सस्थान का बध होता है, इसलिये उसके ५×५×२×२×२×२×२×२×२=३२०० भग प्राप्त होते हैं। किन्तु इनका अन्तर्भाव पूर्वोक्त भगो मे ही हो जाने से इन्हे अलग से नही गिनाया है।

उक्त उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे एक उद्योत प्रकृति को मिला देने पर तीस प्रकृतिक बधस्थान होता है। जिस प्रकार उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा

विशेपता है, उसी प्रकार यहाँ भी वही विशेपता समझना चाहिये। यहाँ भी सामान्य से ४६०८ भग होते हैं—

'गुणतीसे तीसे वि य भगा अट्ठाहिया छयालसया।
पंचिदियतिरिजोगे पणवीसे बधि भगिक्को ॥

अर्थात्—पचेन्द्रिय तिर्यच के योग्य उनतीस और तीस प्रकृतिक बधस्थान मे ४६०८ और ४६०८ और पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान मे एक भग होता है।

इस प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच के योग्य तीनो वन्धस्थानो के कुल भग ४६०८+४६०८+१=९२१७ होते हैं।

पचेन्द्रिय तिर्यंच के उक्त ९२१७ भगो मे एकेन्द्रिय के योग्य बध-स्थानो के ४०, द्वीन्द्रिय के योग्य वन्धस्थानो के १७, त्रीन्द्रिय के योग्य बधस्थानो के १७ और चतुरिन्द्रिय के योग्य बधस्थानो के १७ भग मिलाने पर तिर्यंचगति सम्वन्धी बधस्थानो के कुल भग ९२१७+४० +१७+१७+१७=९३०८ होते है।

इस प्रकार से तिर्यंचगति योग्य बधस्थानो और उनके भगो को वतलाने के वाद अब मनुष्यगति के बधस्थानो और उनके भगो का कथन करते है।

मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाले जीवो के २५, २९ और ३० प्रकृतिक बधस्थान होते है।[1]

पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान वही है जो अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य बध करने वाले जीवो को वतलाया है। किन्तु इतनी विशेपता समझना

---

१ (क) मनुष्यगति प्रायोग्य वध्नतस्त्रीणि बधस्थानानि, तद्यथा—पचविंशति एकोनत्रिंशत् त्रिंशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७८

(ख) मणुसगदिणामाए तिण्णि ट्ठाणाणि तीसाए एगुणतीसाए पणुवीसाए ट्ठाण चेदि। —जी० चू० ट्ठा०, सूत्र ८४

चाहिये कि यहाँ तिर्यंचगति, तिर्यचानुपूर्वी और द्वीन्द्रिय के स्थान पर मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और पचेन्द्रिय कहना चाहिये ।

उनतीस प्रकृतिक बधस्थान तीन प्रकार का है—एक मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से, दूसरा सासादन सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से और तीसरा सम्यग्मिथ्यादृष्टि या अविरत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से। इनमे से मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि के तिर्यंचप्रायोग्य उनतीस प्रकृतिक बधस्थान बताया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिये, किन्तु यहाँ तिर्यंचगतिप्रायोग्य प्रकृतियो के बदले मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियो को मिला देना चाहिये ।

तीसरे प्रकार के उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वज्रऋषभनाराच सहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश - कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक तथा निर्माण, इन उनतीस प्रकृतियो का बध होता है। इन तीनो प्रकार के उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे सामान्य से ४६०८ भग होते है। यद्यपि गुणस्थान के भेद से यहाँ भगो मे भेद हो जाता है, किन्तु गुणस्थान भेद की विवक्षा न करके यहाँ ४६०८ भग कहे गये है ।

उक्त उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे तीर्थंकर नाम को मिला देने पर तीस प्रकृतिक बधस्थान होता है। इस बधस्थान मे स्थिर और

---

१ एकोनत्रिंशत् त्रिधा—एका मिथ्यादृष्टीन् वधकानाश्रित्य वेदितव्या, द्वितीया सासादनान्, तृतीया सम्यग्मिथ्यादृष्टीन् अविरतसम्यग्दृष्टीन् वा ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७८

अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का बध होने से इन सब सख्याओ को गुणित करने पर २×२×२=८ भग प्राप्त होते हैं। अर्थात् तीस प्रकृतिक बधस्थान के आठ भग होते है।

इस प्रकार मनुष्यगति के योग्य २५, २९ और ३० प्रकृतिक बध-स्थानो मे कुल भग १+४६०८+८=४६१७ होते है—

पणुवीसयम्मि एक्को छायालसया अडुत्तर गुतीसे।
मणुतीसेऽट्ठ उ सव्वे छायालसया उ सत्तरसा॥

अर्थात्—मनुष्यगति के योग्य पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान मे एक, उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे ४६०८ और तीस प्रकृतिक बधस्थान मे ८ भग होते हैं। ये कुल भग ४६१७ होते हैं।

अब देवगति योग्य बधस्थानो का कथन करते है। देवगति के योग्य प्रकृतियो के बधक जीवो के २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये चार बधस्थान होते है।[1]

अट्ठाईस प्रकृतिक बधस्थान मे—देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय-जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्-वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, सुभग, आदेय, सुस्वर, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक तथा निर्माण, इन अट्ठाईस प्रकृतियो का बध होता है। इसीलिये इनके समुदाय को एक बधस्थान कहते हैं। यह बधस्थान देवगति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत और सर्वविरत जीवो को होता है।

---

१ देवगतिप्रायोग्य बध्नतश्चत्वारि बन्धस्थानानि, तद्यथा—अष्टाविंशति एकोनत्रिंशत् त्रिशद् एकत्रिंशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७९

इस बधस्थान मे स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का बध होता है। अत उक्त सख्याओ को परस्पर गुणित करने पर २×२×२=८ भग प्राप्त होते है।

उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक बधस्थान मे तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक बधस्थान होता है। तीर्थंकर प्रकृति का बध अविरत सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानो मे होता है। जिससे यह बधस्थान अविरत सम्यग्दृष्टि आदि जीवो के ही बनता है। यहा भी २८ प्रकृतिक बधस्थान के समान ही आठ भग होते है।

तीस प्रकृतियो के समुदाय को तीस प्रकृतिक बधस्थान कहते है। इस बधस्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार है—देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, आहारकद्विक, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ, स्थिर, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति और निर्माण। इसका बधक अप्रमत्तसयत या अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती को जानना चाहिये।[1] इस स्थान मे सब शुभ कर्मों का बध होता है, अत यहा एक ही भग होता है।

अर्थात्—देवगति के योग्य २८, २६, ३० और ३१ प्रकृतिक बध-स्थानो मे क्रमश आठ, आठ, एक और एक, कुल अठारह भग होते हैं।

अभी तक तिर्यंच, मनुष्य और देव गति योग्य बवस्थानो और उनके भगो का कथन किया गया। अव नरकगति के बघस्थानो व उनके भगो को वतलाते हैं।

नरकगति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के एक अट्ठाईस प्रकृतिक बधस्थान होता है। इसमे अट्ठाईस प्रकृतियाँ होती है, अत उनका समुदाय रूप एक बधस्थान है। यह बन्धस्थान मिथ्या-दृष्टि के ही होता है। इसमे सब अशुभ प्रकृतियो का ही बध होने से यहाँ एक ही भग होता है। अट्ठाईस प्रकृतिक बधस्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार है—नरकगति, नरकानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, तैजस शरीर,कार्मण शरीर, हुड सस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायो-गति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति और निर्माण।

इन तेईस आदि उपर्युक्त बधस्थानो के अतिरिक्त एक और बध-स्थान है जो देवगति के योग्य प्रकृतियो का बधविच्छेद हो जाने पर अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो मे होता है। इस एक प्रकृतिक बध-स्थान मे सिर्फ यश कीर्ति नामकर्म का बध होता है।[1]

अब किस बधस्थान मे कुल कितने भग होते हैं, इसका विचार करते हैं—

---

१ एक तु बधस्थान यश कीर्तिलक्षणम् तच्च देवगतिप्रायोग्यबन्धे व्यवच्छिन्ने अपूर्वकरणादीना त्रयाणामवगन्तव्यम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७६

चउ पणवीसा सोलस नव बाणउईसया य अडयाला ।
एयालुत्तर छायालसया एक्केक्क बंधविही ॥२५॥

शब्दार्थ—**चउ**—चार, **पणवीसा**—पच्चीस, **सोलस**—सोलह, **नव**—नौ, **बाणउईसया**—बानवैसौ, **य**—और, **अडयाला**—अडतालीस, **एयालुत्तर छायालसया**—छियालीस सौ एकतालीस, **एक्केक**—एक-एक, **बधविही**—वध के प्रकार, भग ।

गाथार्थ—तेईस प्रकृतिक आदि बधस्थानो मे क्रम मे चार, पच्चीस, सोलह, नौ, वानवैसौ अडतालीस, छियालीस सौ इकतालीस, एक और एक भग होते है ।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा मे नामकर्म के बधस्थानो का विवेचन करके प्रत्येक के भगो का उल्लेख किया है । परन्तु उनसे प्रत्येक बधस्थान के समुच्चय रूप से भगो का बोध नही होता है। अत प्रत्येक बधस्थान के समुच्चय रूप से भगो का बोध इस गाथा द्वारा कराया जा रहा है ।

नामकर्म के पूर्व गाथा मे २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक, ये आठ बधस्थान बतलाये गये है और इस गाथा मे सामान्य से प्रत्येक बधस्थान के भगो की अलग-अलग सख्या बतला दी गई है कि किस बधस्थान मे कितने भग होते है। किन्तु यह स्पष्ट नही होता है कि वे किस प्रकार होते है। अत उन भगो के होने का विचार पूर्व मे बताये गये बधस्थानो के क्रम से करते हैं ।

पहला बधस्थान तेईस प्रकृतिक है । इस स्थान मे चार भग होते हैं । क्योकि यह स्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो के बाधने वाले जीव के ही होता है, अन्यत्र तेईस प्रकृतिक बधस्थान नही पाया जाता है । इसके चार भग पहले बता आये है। अत तेईस प्रकृतिक बधस्थान मे वे ही चार भग जानना चाहिये ।

पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान मे कुल पच्चीस भग होते है। क्योकि एकेन्द्रिय के योग्य पच्चीस प्रकृतियो का बध करने वाले जीव के बीस भग होते हैं तथा अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यगति के योग्य पच्चीस प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के एक-एक भग होते हैं। अत पूर्वोक्त बीस भगो मे इन पाँच भगो को मिलाने पर पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान मे कुल पच्चीस भग होते हैं।

छब्बीस प्रकृतिक बधस्थान के कुल सोलह भग हैं। क्योकि यह एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीव के ही होता है और एकेन्द्रियप्रायोग्य छब्बीस प्रकृतिक बधस्थान मे पहले सोलह भग बता आये हैं, अत वे ही सोलह भग इस छब्बीस प्रकृतिक बधस्थान मे जानना चाहिये।

अट्ठाईस प्रकृतिक बधस्थान मे कुल नौ भग होते हैं। क्योकि देवगति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीव के २८ प्रकृतिक बधस्थान के आठ भग होते हैं और नरकगति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीव के अट्ठाईस प्रकृतिक बधस्थान का एक भग। यह स्थान देव और नारक के सिवाय अन्य जीवो को किसी भी प्रकार से प्राप्त नही होता है। अत इसके कुल नौ भग होते हैं।

उनतीस प्रकृतिक बधस्थान के ६२४८ भग होते हैं। इसका कारण यह है कि तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के ४६०८ भग होते हैं तथा मनुष्यगति के योग्य उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के ४६०८ भग है और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के योग्य एव तीर्थंकर नाम सहित देवगति के योग्य उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के आठ-आठ भग होते हैं। इस प्रकार उक्त सब भगो को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के कुल भग ४६०८+४६०८+८+८+८+८=६२४८ होते हैं।

तीस प्रकृतिक बन्धस्थान के कुल भग ४६४१ होते हैं। क्योकि तिर्यंचगति के योग्य तीस प्रकृतिक बध करने वाले के ४६०८ भग होते है तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और मनुप्यगति के योग्य तीस प्रकृति का ब ध करने वाले जीवो के आठ-आठ भग है और आहारक के साथ देवगति के योग्य तीस प्रकृति का बन्ध करने वाले के एक भग होता है। इस प्रकार उक्त भगो को मिलाने पर तीस प्रकृतिक बन्धस्थान के कुल भग ४६०८+८+८+८+८+१=४६४१ होते है।

इकतीस प्रकृतिक और एक प्रकृतिक बन्धस्थान का एक-एक भग होता है।

इस प्रकार से इन सब बन्धस्थानो के भग १३९४५ होते है। वे इस तरह समझना चाहिये—४+२५+१६+९+९२४८+४६४१+१+१=१३९४५।

नामकर्म के बन्धस्थान और उनके कुल भगो का विवरण पृष्ठ १५९ की तालिका मे देखिये।

नामकर्म के बधस्थानो का कथन करने के पश्चात् अब उदयस्थानो को बतलाते है।

वीसिगवीसा चउवीसगाइ एगाहिया उ इगतीसा।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य हुंति नामस्स ॥[1]२६॥

---

१ तुलना कीजिये—

(क) अडनववीसिगवीसा चउवीमेगहिय जाव इगितीसा।
चउगइएसु बारस उदयट्ठाणाइ नामस्स ॥
—पचसग्रह सप्ततिका, गा० ७३

(ख) वीस इगिचउवीस तत्तो इकितीसओ त्ति एयधिय।
उदयट्ठाणा एव णव अट्ठ य होंति णामस्स ॥
—गो० कर्मकाड, ५९२

क्रम	बंधस्थान	भंग १३९४५	आगामी भवप्रायोग्य	बंधक
१	२३	४	अपर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य ४	तिर्यंच, मनुष्य ४
२	२५	२५	एकेन्द्रिय २०, द्वीन्द्रिय १, त्रीन्द्रिय १, चतुरिन्द्रिय १, पचेन्द्रिय तिर्यंच १, मनुष्य १	तिर्यंच, मनुष्य २५, देव ८
३	२६	१६	पर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य १६	तिर्यंच, मनुष्य व देव १६
४	२८	९	देवगति प्रायोग्य ८, नरकगति प्रायोग्य १	पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य ९
५	२९	९२४८	द्वीन्द्रिय ८, त्रीन्द्रिय ८, च ८, पं० ति ४६०८, मनुष्य ४६०८, देव ८	तिर्यंच ९२४०, मनुष्य ९२४८, देव ९२१६, ना ९२१६
६	३०	४६४१	द्वी ८, त्री ८, च ८, प ति ४६०८, मनुष्य ८, देव १	तिर्यंच ४६३२, मनुष्य ४६३३ देव ४६१६, ना ४६१६
७	३१	१	देव प्रायोग्य १	मनुष्य १
८	१	१	अप्रायोग्य १	मनुष्य १

शब्दार्थ—**वीसिगवीसा**—बीस और इक्कीस का, **चउवीसगाइ**—चौवीस से लेकर, **एगाहिया**—एक-एक अधिक, **य**—और, **इगतीसा**—इकतीस तक, **उदयट्ठाणाणि**—उदयस्थान, **भवे**—होते हैं, **नव अट्ठय** —नौ और आठ प्रकृति का, हुति—होते हे, **नामस्स**—नामकर्म के।

गाथार्थ—नामकर्म के बीस, इक्कीस और चौबीस से लेकर एक, एक प्रकृति अधिक इकतीस तक तथा आठ और नौ प्रकृतिक, ये बारह उदयस्थान होते है।

विशेषार्थ—नामकर्म के वधस्थान वतलाने के बाद इस गाथा मे उदयस्थान वतलाये है। वे उदयस्थान वारह है। जिनकी प्रकृतियो की सख्या इस प्रकार है—२०, २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ८ और ९। इन उदयस्थानो का स्पष्टीकरण तिर्यंच, मनुष्य, देव और नरकगति के आधार से नीचे किया जा रहा है।

नामकर्म के जो वारह उदयस्थान कहे हे, उनमे से एकेन्द्रिय जीव के २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पॉच उदयस्थान होते है। यहॉ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क और निर्माण ये वारह प्रकृतियाँ उदय की अपेक्षा ध्रुव है। क्योकि तेरहवे सयोगिकेवली गुणस्थान तक इनका उदय नियम से सवको होता है। इन ध्रुवोदया वारह प्रकृतियो मे तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, एकेन्द्रिय जाति, वादर-सूक्ष्म मे से कोई एक, पर्याप्त-अपर्याप्त मे से कोई एक, दुर्भग, अनादेय तथा यश कीर्ति-अयश कीर्ति मे से कोई एक, इन नौ प्रकृतियों के मिला देने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान भव के अपान्तराल मे विद्यमान एकेन्द्रिय के होता हे।

इस उदयस्थान मे पाच भग होते है, जो इस प्रकार है—वादर पर्याप्त, वादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, सूक्ष्म अपर्याप्त, इन चारो

भगो को अयश कीर्ति के साथ कहना चाहिये जिससे चार भग होते हैं तथा वादर पर्याप्त को यश कीर्ति के साथ कहने पर एक भग और होता है। इस प्रकार कुल पाच भग होते हैं। यद्यपि उपर्युक्त २१ प्रकृतियो मे विकल्परूप तीन युगल होने के कारण २×२×२=८ भग होते हैं। किन्तु सूक्ष्म और अपर्याप्त के साथ यश कीर्ति का उदय नही होता है, जिससे तीन भग कम हो जाते है। भव के अपान्तराल मे पर्याप्तियो का प्रारम्भ ही नही होता, फिर भी पर्याप्त नामकर्म का उदय पहले समय से ही हो जाता है और इसलिये अपान्तराल मे विद्यमान ऐसा जीव लब्धि से पर्याप्तक ही होता है, क्योकि उसके आगे पर्याप्तियो की पूर्ति नियम से होती है।

इन इक्कीस प्रकृतियो मे औदारिक शरीर, हुडसस्थान, उपघात-तथा प्रत्येक और साधारण इनमे से कोई एक, इन चार प्रकृतियो को मिलाने पर तथा तिर्यचानुपूर्वी प्रकृति को कम कर देने से शरीरस्थ एकेन्द्रिय जीव के चौवीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पूर्वोक्त पाच भगो को प्रत्येक और साधारण से गुणा कर देने पर दस भग होते है तथा वायुकायिक जीव के वैक्रिय शरीर को करते समय औदा-रिक शरीर के स्थान पर वैक्रिय शरीर का उदय होता है, अत इसके वैक्रिय शरीर के साथ भी चौवीस प्रकृतियो का उदय और इसके केवल वादर, पर्याप्त, प्रत्येक और अयश कीर्ति, ये प्रकृतियाँ ही कहना चाहिये, इसलिये इसकी अपेक्षा एक भग हुआ। तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव के साधारण और यश कीर्ति का उदय नही होता अत वायुकायिक को इनकी अपेक्षा भग नही वताये हैं। इस प्रकार चौवीस प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल ग्यारह भग होते हैं।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाने के वाद २४ प्रकृतिक उदयस्थान के साथ पराघात प्रकृति को मिला देने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ वादर के प्रत्येक और सावारण तथा यश-

कीर्ति और अयश कीर्ति के निमित्त से चार भग होते हैं तथा सूक्ष्म के प्रत्येक और साधारण की अपेक्षा अयश कीर्ति के साथ दो भग होते हैं। जिससे छह भग तो ये हुए तथा वैक्रिय शरीर को करने वाला बादर वायुकायिक जीव जब शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाता है, तब उसके २४ प्रकृतियो मे पराघात के मिलाने पर पच्चीस प्रकृतियो का उदय होता है। इसलिये एक भग इसका होता है। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान मे सब मिलकर सात भग होते हैं।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पूर्वोक्त २५ प्रकृतियो मे उच्छ्वास के मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी पूर्व के समान छह भग होते है। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जिस जीव के उच्छ्वास का उदय न होकर आतप और उद्योत मे से किसी एक का उदय होता है, उसके छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी छह भग होते है। वे इस प्रकार है—आतप और उद्योत का उदय बादर के ही होता है, सूक्ष्म के नही, अत इनमे से उद्योत सहित बादर के प्रत्येक और साधारण तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति, इनकी अपेक्षा चार भग हुए तथा आतप सहित प्रत्येक के यश कीर्ति और अयश कीर्ति, इनकी अपेक्षा दो भग हुए। इस प्रकार कुल छह भग हुए। आतप का उदय बादर पृथ्वीकायिक के ही होता है, किन्तु उद्योत का उदय वनस्पतिकायिक के भी होता है और बादर वायुकायिक के वैक्रिय शरीर को करते समय उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर २५ प्रकृतियो मे उच्छ्वास को मिलाने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। अत यह एक भग हुआ। इतनी विशेपता समझना चाहिये कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के आतप, उद्योत और यश कीर्ति का उदय नही होता है। इस प्रकार छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल १३ भग होते है।

उक्त छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान मे प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त जीव के आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी छह भग होते है, जिनका स्पष्टीकरण आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के साथ छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान मे किया जा चुका है।

इस प्रकार एकेन्द्रिय के पाच उदयस्थानो के कुल भग ५+११+७+१३+६=४२ होते है। इसकी सग्रह गाथा मे कहा भी है—

एगिदयउदएसु पच य एक्कार सत्त तेरस या।
छक्क कमसो भगा बायला हुति सव्वे वि॥

अर्थात् एकेन्द्रिय के जो २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक पाँच उदयस्थान बतलाये है उनमे क्रमश ५, ११, ७, १३ और ६ भग होते है और उनका कुल जोड ४२ होता है।

इस प्रकार से एकेन्द्रिय तिर्यचो के उदयस्थानो का कथन करने के बाद अब विकलत्रिक और पचेन्द्रिय तिर्यंचो के उदयस्थानो को बतलाते है।

द्वीन्द्रिय जीवो के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है।

पहले जो नामकर्म की बारह ध्रुवोदय[1] प्रकृतियाँ बतला आये हैं, उनमे तिर्यचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त मे से कोई एक, दुर्भग, अनादेय तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक, इन नौ प्रकृतियो को मिलाने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान भव के अपान्तराल मे विद्यमान जीव के होता है। यहाँ तीन भग होते हैं, क्योकि अपर्याप्त

---

१ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ वर्णचतुष्क और निर्माण, ये बारह प्रकृतियाँ उदय की अपेक्षा ध्रुव है।

के एक अयश.कीर्ति का उदय होता है, अत एक भग हुआ तथा पर्याप्त के यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से इन दोनो का उदय होता है अत दो भग हुए। इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल तीन भग हुए।

इस इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, हुडसस्थान सेवार्तसहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियो को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर शरीरस्थ द्वीन्द्रिय जीव के छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के भगो के समान तीन भग होते हैं।

छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए द्वीन्द्रिय जीव के अप्रशस्त विहायोगति और पराघात इन दो प्रकृतियो के मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ यश कीर्ति और अयश कीर्ति की अपेक्षा दो भग होते है। इसके अपर्याप्त नाम का उदय न होने से उसकी अपेक्षा भग नही कहे है।

अनन्तर श्वासोच्छ्‌वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर पूर्वोक्त २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे उच्छ्वास प्रकृतिक के मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी यश कीर्ति और अयश कीर्ति की अपेक्षा दो भग होते है अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उद्योत का उदय होने पर उच्छ्‌वास के विना २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी यश कीर्ति और अयश कीर्ति की अपेक्षा दो भग हो जाते है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल चार भग होते है।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्‌वास सहित २९ प्रकृतियो मे सुस्वर और दु स्वर इनमे से कोई एक के मिला देने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पर सुस्वर और दु स्वर तथा यश - कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से चार भग होते है अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के स्वर का उदय न होकर यदि

उसके स्थान पर उद्योत का उदय हो गया तो भी ३० प्रकृतिक उदय-स्थान होता है। यहाँ यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से दो ही भग होते हैं। इस प्रकार तीस प्रकृतिक उदयस्थान मे छह भग होते है।

अनन्तर स्वर सहित ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत के मिलाने पर इकतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ सुस्वर और दु स्वर तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से चार भग होते है।

इस प्रकार द्वीन्द्रिय जीवो के छह उदयस्थानो (२१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक) मे क्रमश ३+३+२+४+६+४ कुल २२ भग होते है। इसी प्रकार से त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो मे से प्रत्येक के छह-छह उदयस्थान और उनके भग घटित कर लेना चाहिये। अर्थात् द्वीन्द्रिय की तरह ही त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो के भी प्रकृतिक उदयस्थान तथा उनमे से प्रत्येक के भग समझना चाहिये, लेकिन इतनी विशेषता कर लेना चाहिये कि द्वीन्द्रिय जाति के स्थान पर त्रीन्द्रिय के लिये त्रीन्द्रिय जाति और चतुरिन्द्रिय के लिये चतुरिन्द्रिय जाति का उल्लेख कर लेवे।

कुल मिलाकर विकलत्रिको के ६६ भग होते है। कहा भी है—

तिग तिग दुग चऊ छ च्चउ विगलाण छसट्ठि होइ तिण्ह पि ।

अर्थात् द्वीन्द्रिय आदि मे से प्रत्येक के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक ये छह उदयस्थान है और उनके क्रमश ३, ३, २, ४, ६ और ४ भग होते है, जो मिलकर २२ है और तीनो के मिलाकर कुल २२×३=६६ भग होते ह।

अब तिर्यंच पचेन्द्रियो के उदयस्थानो को बतलाते है। तिर्यंच पचेन्द्रियो के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदय-स्थान होते है।

इन छह उदयस्थानो मे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान नामकर्म की बारह ध्रुवोदया प्रकृतियो के साथ तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त मे से कोई एक, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, आदेय और अनादेय मे से कोई एक, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक, इन नौ प्रकृतियो को मिलाने से बनता है। यह उदयस्थान अपान्तराल मे विद्यमान तिर्यंच पचेन्द्रिय के होता है। इसके नौ भग होते है। क्योकि पर्याप्त नामकर्म के उदय मे सुभग और दुर्भग मे से किसी एक का, आदेय और अनादेय मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का उदय होने से २×२×२=८ भग हुए तथा अपर्याप्त नामकर्म के उदय मे दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति, इन तीन अशुभ प्रकृतियो का ही उदय होने से एक भग होता है।

इस प्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल नौ भग होते है।

किन्ही आचार्यो का यह मत है कि सुभग के साथ आदेय का और दुर्भग के साथ अनादेय का ही उदय होता है। अत इस मत के अनुसार पर्याप्त नामकर्म के उदय मे इन दोनो युगलो को यश कीर्ति और अयश कीर्ति, इन दो प्रकृतियो से गुणित कर देने पर चार भग होते है तथा अपर्याप्त का एक, इस प्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल पाच भग होते है। इसी प्रकार मतान्तर से आगे के उदयस्थानो मे भी भगो की विषमता समझना चाहिये।[1]

---

१ अपरे पुनराह—सुभगाऽऽदेये युगपदुदयमायात दुर्भगाऽनादेये च, तत पर्याप्तकस्य सुभगाऽऽदेययुगलदुर्भगाऽनादेययुगलाभ्या यश-कीर्ति-अयश कीर्तिभ्या च चत्वारो भगा अपर्याप्तकस्य त्वेक इति, सर्वसख्यया पच। एवमुत्तरत्रापि मतान्तरेण भगवैषम्य स्वधिया परिभावनीयम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ १८३

शरीरस्थ तिर्यंच पंचेन्द्रिय के २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, छह संहननों में से कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियों को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी के निकाल देने पर यह २६ प्रकृतिक उदयस्थान बनता है।

इस २६ प्रकृतिक उदयस्थान के भंग २८९ होते हैं। क्योंकि पर्याप्त के छह संस्थान, छह संहनन और सुभग आदि तीन युगलों की संख्या को परस्पर गुणित करने पर ६×६×२×२×२=२८८ भंग होते हैं तथा अपर्याप्त के हुंडसंस्थान, सेवार्त संहनन, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति का ही उदय होता है अतः यह एक भंग हुआ। इस प्रकार २६ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल २८९ भङ्ग होते हैं।

शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के इस छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात और प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगति में से कोई एक इस प्रकार इन दो प्रकृतियों के मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भङ्ग ५७६ होते हैं। क्योंकि पूर्व में पर्याप्त के जो २८८ भङ्ग बतलाये हैं उनको प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति से गुणित करने पर २८८×२=५७६ होते हैं।

उक्त २८ प्रकृतिक उदयस्थान में उच्छ्वास को मिला देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी पहले के समान ५७६ भंग होते हैं। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास का उदय नहीं होता है, इसलिए उसके स्थान पर उद्योत को मिलाने पर भी २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी ५७६ भंग होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भंग ५७६+५७६=११५२ होते हैं।

उक्त २९ प्रकृतिक उदयस्थान में भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए

जीव के सुस्वर और दु स्वर मे से किसी एक को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके ११५२ भग होते हैं। क्योकि पहले २९ प्रकृतिक स्थान के उच्छ्वास की अपेक्षा ५७६ भग वतलाये है, उन्हे स्वरद्विक से गुणित करने पर ११५२ भंग होते हैं अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के जो २९ प्रकृतिक उदयस्थान वतलाया है, उसमे उद्योत को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके पहले की तरह ५७६ भग होते है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भङ्ग १७२८ प्राप्त होते है।

स्वर सहित ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत नाम को मिला देने पर ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके कुल भग ११५२ होते है। क्योकि स्वर प्रकृति सहित ३० प्रकृतिक उदयस्थान के जो ११५२ भग कहे है, वे ही यहाँ प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार सामान्य तिर्यंच पचेन्द्रिय के छह उदयस्थान और उनके कुल भङ्ग ९+२८९+५७६+११५२+१७२८+११५२=४९०६ होते है।

अब वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच पचेन्द्रिय की अपेक्षा बधस्थान और उनके भङ्गो को बतलाते है।

वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच पचेन्द्रियो के २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते है।

पहले जो तिर्यंच पचेन्द्रिय के २१ प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है, उसमे वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, समचतुरस्र सस्थान, उपघात और प्रत्येक इन पाँच प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यचानुपूर्वी के निकाल देने पर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे सुभग और दुर्भग मे से किसी एक का, आदेय और अनादेय मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश'कीर्ति

मे से किसी एक का उदय होने के कारण २×२×२=८ भङ्ग होते हैं।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति इन दो प्रकृतियो को २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यहाँ भी पूर्ववत् आठ भङ्ग होते है।

उक्त २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास प्रकृति को मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पहले के समान आठ भङ्ग होते है। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के यदि उद्योत का उदय हो तो भी २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यहाँ भी आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार २८ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भङ्ग होते है।

अनन्तर भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २८ प्रकृतियो मे सुस्वर के मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते हैं। अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २८ प्रकृतियो मे उद्योत को मिलाने पर भी २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल सोलह भङ्ग होते हैं।

अनन्तर सुस्वर सहित २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी आठ भङ्ग होते है।

इस प्रकार वैक्रिय शरीर को करने वाले पचेन्द्रिय तिर्यचो के कुल उदयस्थान २५, २७, २८, २९ आर ३० प्रकृतिक और उनके कुल भङ्ग ८+८+१६+१६+८=५६ होते है। इन ५६ भङ्गो को पहले के सामान्य पचेन्द्रिय तिर्यच के ४९०६ भङ्गो मे मिलाने पर सब तिर्यंचो के कुल उदयस्थानो के ४९६२ भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार से तिर्यंचो के एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के भेदो मे उदयस्थान और उनके भङ्गो को बतलाने के पश्चात् अब मनुष्य-गति की अपेक्षा उदयस्थान व भङ्गो का कथन करते है।

मनुष्यो के उदयस्थानो का कथन सामान्य, वैक्रियशरीर करने वाले, आहारक शरीर करने वाले और केवलज्ञानी की अपेक्षा अलग-अलग किया जा रहा है।

सामान्य मनुष्य—सामान्य मनुष्यो के २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाच उदयस्थान होते है। ये सब उदयस्थान तिर्यंच पचेन्द्रियो के पूर्व मे जिस प्रकार कथन कर आये है, उसी प्रकार मनुष्यो को भी समझना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यो के तिर्यंचगति, तिर्यचानुपूर्वी के स्थान पर मनुष्यगति और मनुष्यानु-पूर्वी का उदय कहना चाहिये और २९ व ३० प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत रहित कहना चाहिये, क्योकि वैक्रिय और आहारक सयतो को छोडकर शेष मनुष्यो के उद्योत का उदय नही होता है। इसलिये तिर्यंचो के जो २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे ११५२ भङ्ग कहे उनके स्थान पर मनुष्यो के कुल ५७६ भङ्ग होते है। इसी प्रकार तिर्यंचो के जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे १७२८ भङ्ग कहे, उनके स्थान पर मनुष्यो के कुल ११५२ भङ्ग प्राप्त होगे।

इस प्रकार सामान्य मनुष्यो के पूर्वोक्त पॉच उदयस्थानो के कुल ९+२८९+५७६+५७६+११५२=२६०२ भङ्ग होते है।

वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्य—वैक्रिय शरीर को करने वाले मनुष्यो के २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पॉच उदयस्थान होते है। बारह ध्रुवोदय प्रकृतियो के साथ मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, समचतुरस्र, सस्थान, उपघात, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, आदेय और अनादेय मे से कोई एक तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई

एक, इन तेरह प्रकृतियों को मिलाने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ सुभग और दुर्भग का, आदेय और अनादेय का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति का उदय विकल्प से होता है। अत २× २×२=८ आठ भङ्ग होते है। वैक्रिय शरीर को करने वाले देशविरत और सयतों के शुभ प्रकृतियों का उदय होता है।

उक्त २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियो को मिलाने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी २५ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह आठ भङ्ग होते है।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास के मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी आठ भङ्ग होते है। अथवा उत्तर वैक्रिय शरीर को करने वाले सयतों के शरीर पर्याप्ति मे पर्याप्त होने पर पूर्वोक्त २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। सयत जीवो के दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति, इन तीन अशुभ प्रकृतियो का उदय न होने से इसका एक ही भङ्ग होता है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल नौ भङ्ग होते है।

२८ प्रकृतिक उदयस्थान मे सुस्वर के मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते है। अथवा सयतों के स्वर के स्थान पर उद्योत को मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका एक ही भङ्ग होता है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ९ भङ्ग होते है।

सुस्वर सहित २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे सयतो के उद्योत नामकर्म को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका सिर्फ एक भङ्ग होता है।

इस प्रकार वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्यो के २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, पाँच उदयस्थान होते है और इन उदयस्थानो के क्रमशः ८+८+९+९+१=कुल ३५ भङ्ग होते हैं।[1]

आहारक सयत—आहारक सयतो के २५, २७, २८, २९, और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते है।

पहले मनुष्यगति के उदययोग्य २१ प्रकृतियाँ बतलाई गई है, उनमे आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, समचतुरस्र सस्थान, उपघात और प्रत्येक, इन पाच प्रकृतियो को मिलाने तथा मनुष्यानुपूर्वी को कम करने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। आहारक शरीर के समय प्रशस्त प्रकृतियो का ही उदय होता है, क्योकि आहारक सयतो के अप्रशस्त प्रकृतियो—दुर्भग दुस्वर और अयश कीर्ति प्रकृति का उदय नही होता है। इसलिए यहाँ एक ही भङ्ग होता है।

अनन्तर उक्त २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त

---

१ गो० कर्मकाड मे वैक्रिय शरीर और वैक्रिय अगोपाग का उदय देव और नारको को बतलाया है, मनुष्यो और तिर्यंचो को नही। अतएव वहाँ वैक्रिय शरीर की अपेक्षा से मनुष्यो के २५ आदि प्रकृतिक उदयस्थान और उनके भगो का निर्देश नही किया है। इसी कारण से वहाँ वायुकायिक और पचेन्द्रिय तिर्यंच के भी वैक्रिय शरीर की अपेक्षा उदयस्थानो और उनके भगो को नही बताया। यद्यपि इस सप्ततिका प्रकरण मे एकेन्द्रिय आदि जीवो के उदयप्रायोग्य नामकर्म की बध प्रकृतियो का निर्देश नही किया है तथापि टीका से ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ देवगति और नरकगति की उदययोग्य प्रकृतियो मे ही वैक्रिय शरीर और वैक्रिय अगोपाग का ग्रहण किया गया है। जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि तिर्यंच और मनुष्यो के वैक्रिय शरीर और वैक्रिय अगोपाग का उदय नही होना चाहिए, तथापि कर्मप्रकृति के उदीरणा प्रकरण की गाथा ८ से इस बात का समर्थन होता है कि यथासम्भव तिर्यंच और मनुष्यो के भी इन दो प्रकृतियो का उदय व उदीरणा होती है।

हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियो के मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी एक ही भङ्ग होता है।

२७ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास नाम को मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक ही भङ्ग होता है। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पूर्वोक्त २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भङ्ग होता है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग हुए।

अनन्तर भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे सुस्वर के मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका एक भङ्ग है। अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के सुस्वर के स्थान पर उद्योत नाम को मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भङ्ग है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग होते हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के स्वरसहित २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भङ्ग होता है।

इस प्रकार आहारक सयतो के २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पांच उदयस्थान होते हैं और इन पाच उदयस्थानो के क्रमश १+१+२+२+१=७ भग होते है।[1]

---

१ गो० कर्मकाड की गाथा २६७ से ज्ञात होता है कि पाचवें गुणस्थान तक के जीवो के ही उद्योत प्रकृति का उदय होता है—

"देसे तदियकसाया तिरियाउज्जोवणीचतिरियगदी।"

तथा गाथा २८९ से यह भी ज्ञात होता है कि उद्योत प्रकृति उदय तिर्यंचगति मे ही होता है—

केवलज्ञानी—केवली जीवों के २०, २१, २६, २७, १८, २९, ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक ये दस उदयस्थान होते ह्।

नामकर्म की वारह ध्रुवोदया प्रकृतियो मे मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश कीर्ति इन आठ प्रकृतियो के मिलाने से २० प्रकृतिक उदयस्थान होता हे। इसका एक भङ्ग होता है। यह उदयस्थान समुद्घातगत अतीर्थ केवली के कार्मण काय योग के समय होता है।

उक्त २० प्रकृतिक उदयस्थान मे तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान समुद्घातगत तीर्थंकर केवली के कार्मणकाययोग के समय होता है। इसका भी एक भङ्ग है।

२० प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिक शरीर, छह सस्थानो मे से कोई एक सस्थान, औदारिक अगोपाग, वज्रऋषभनाराच सहनन, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियो के मिलाने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह अतीर्थंकर केवली के औदारिकमिश्र काययोग के समय होता है। इसके छह सस्थानो की अपेक्षा छह भङ्ग होते है, किन्तु वे सामान्य मनुष्यो के उदयस्थानो मे भी सम्भव होने से उनकी पृथक् से गणना नही की है।

तेउतिगूणतिरिक्खेसुज्जोवो वादरेसु पुण्णेसु।

इसी से कर्मकाड मे आहारक सयतो के २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक चार उदयस्थान वतलाये है। इनमे २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान तो सप्ततिका प्रकरण के अनुसार जानना चाहिये। शेष रहे २८ और २९ प्रकृतिक उदयस्थान, इनमे से २८ प्रकृतिक उदयस्थान उच्छ्वास प्रकृति के उदय से और २९ प्रकृतिक उदयस्थान सुस्वर प्रकृति के उदय से होता है। अर्थात् २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे उच्छ्वास प्रकृति के मिलाने से २८ प्रकृतिक उदयस्थान और इस २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे सुस्वर प्रकृति के मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान मे तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह स्थान तीर्थंकर केवली के औदारिक मिश्र काययोग के समय होता है। इस उदयस्थान मे समचतुरस्र सस्थान का ही उदय होने से एक ही भङ्ग होता है।

पूर्वोक्त २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति मे से कोई एक तथा सुस्वर और दुःस्वर मे से कोई एक, इन चार प्रकृतियो के मिलाने से ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह स्थान अतीर्थंकर सयोगि केवली के औदारिक काययोग के समय होता है। यहाँ छह सस्थान, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति तथा सुस्वर और दुःस्वर की अपेक्षा ६×२×२=२४ भङ्ग होते है। किन्तु वे सामान्य मनुष्यो के उदयस्थानो मे प्राप्त होते है, अत इनकी पृथक् मे गणना नही की गई है।

३० प्रकृतिक उदयस्थान मे तीर्थंकर प्रकृतिक को मिला देने पर ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह तीर्थंकर सयोगिकेवली के औदारिक काययोग के समय होता है तथा तीर्थंकर केवली जब वाक्योग का निरोध करते है तब उनके स्वर का उदय नही रहता है, जिससे पूर्वोक्त ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे से एक प्रकृति को निकाल देने पर तीर्थंकर केवली के ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जब उच्छ्वास का निरोध करते हैं तब उच्छ्वास का उदय नही रहता, अत उच्छ्वास को घटा देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। किन्तु अतीर्थंकर केवली के तीर्थंकर प्रकृतिक का उदय नही होता है अत पूर्वोक्त ३० और २९ प्रकृतिक उदयस्थानो से तीर्थंकर प्रकृति को कम कर देने पर अतीर्थंकर केवली के वचनयोग का निरोध होने होने पर २९ प्रकृतिक और उच्छ्वास का निरोध होने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। अतीर्थंकर केवली के इन दोनो उदयस्थानो मे छह सस्थान और प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगति, इन दोनो की अपेक्षा

१२,१२ भङ्ग होते हैं। किन्तु वे सामान्य मनुष्यो के उदयस्थानो मे सम्भव होने से उनकी अलग से गिनती नही की है।

९ प्रकृतिक उदयस्थान मे मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश कीर्ति और तीर्थंकर, इन नौ प्रकृतियो का उदय होता है। यह नौ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थंकर केवली के अयोगिकेवली गुणस्थान मे प्राप्त होता है। इस उदयस्थान मे से तीर्थंकर प्रकृति को घटा देने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह अयोगिकेवली गुणस्थान मे अतीर्थंकर केवली के होता है।

यहाँ केवली के उदयस्थानो मे २०,२१,२७,२९,३०,३१, ९ और ८ इन आठ उदयस्थानो का एक-एक विशेष भङ्ग होता है। अतः आठ भङ्ग हुए। इनमे से २० प्रकृतिक और ८ प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानो के दो भङ्ग अतीर्थंकर केवली के होते हैं तथा शेष छह भङ्ग तीर्थंकर केवली के होते है।[1]

इस प्रकार सब मनुष्यो के उदयस्थान सम्बन्धी कुल भङ्ग २६०२+३५+७+८=२६५२ होते है।

अब देवो के उदयस्थान और उनके भङ्गो का कथन करते है।

देवो के २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है।

नामकर्म की ध्रुवोदया बारह प्रकृतियो मे देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, आदेय और अनादेय मे से कोई एक तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक, इन नौ प्रकृतियो के मिला देने पर २१ प्रकृतिक

---

१ इह केवल्युदयस्थानमध्ये विंशति-एकविंशति-सप्तविंशति,एकोनत्रिंशत्-त्रिंशद्-एकत्रिंशद्-नवाऽष्टरूपेष्वष्टसूदयस्थानेषु प्रत्येमेककैको विशेषभग प्राप्यते इत्यष्टौ भगा। तत्र विंशत्यष्टकयोर्भंगावतीर्थंकृत शेषेषु षट्सु उदयस्थानेषु तीर्थंकृत षड् भगा। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १८६

उदयस्थान होता है। देवो के जो दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति का उदय कहा है, वह पिशाच आदि देवो की अपेक्षा समझना चाहिये। यहाँ सुभग और दुर्भग मे से किसी एक, आदेय और अनादेय मे से एक और यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का उदय होने से, इनकी अपेक्षा कुल २×२×२=८ भङ्ग होते है।

उस २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, उपघात, प्रत्येक और समचतुरस्र सस्थान, इन पाँच प्रकृतियो को मिलाने और देवगत्यानुपूर्वी को निकाल देने पर शरीरस्थ देव के २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भङ्ग होते है।

अनन्तर २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे पराघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियो को मिलाने पर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवो के २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वानुसार आठ भङ्ग होते है। देवो के अप्रशस्त विहायोगति का उदय नही होने से तन्निमित्तक भङ्ग नही कहे है।

अनन्तर २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवो के उच्छ्वास को मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त आठ भङ्ग होते है। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवो के पूर्वोक्त २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल १६ भङ्ग होते है।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे सुस्वर को मिला देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग पूर्ववत् जानना चाहिये। देवो के दुस्वर प्रकृति का उदय नही होता है, अत तन्निमित्तक भङ्ग यहाँ नही कहे है। अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास

सहित २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत नाम को मिला देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। देवो के उद्योत नाम का उदय उत्तर-विक्रिया करने के समय होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भङ्ग १६ हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवो के सुस्वर सहित २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिला देने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते है।

इस प्रकार देवो के २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं तथा उनमे क्रमश. ८+८+८+१६+१६+८=६४ भङ्ग होते है।

अब नारको के उदयस्थानो और उनके भङ्गो का कथन करते है।

नारको के २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते है। यहाँ ध्रुवोदया बारह प्रकृतियो के साथ नरकगति, नरकानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय और अयश·कीर्ति, इन नौ प्रकृतियो को मिला देने पर २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। नारको के सब अप्रशस्त प्रकृतियो का उदय है, अत: यहाँ एक भङ्ग होता है।

अनन्तर शरीरस्थ नारक के वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, हुडसस्थान, उपघात और प्रत्येक, इन पाँच प्रकृतियो को मिलाने और नरकानुपूर्वी के निकाल देने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी एक भग होता है।

शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए नारक के २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे पराघात और अप्रशस्त विहायोगति इन दो प्रकृतियो को मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भङ्ग होता है।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए नारक के २७ प्रकृतिक उदयस्थान में उच्छ्वास को मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी एक ही भङ्ग होता है।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के २८ प्रकृतिक उदयस्थान में दुःस्वर को मिला देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भंग है।

इस प्रकार नारकों के २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं और इन पाँचों का एक-एक भंग होने से कुल पाँच भंग होते हैं।

अब तक नामकर्म के एकेन्द्रिय से लेकर नारकों तक के जो उदयस्थान बताये गये हैं उनके कुल भंग ४२+६६+४९३२+२६५२+६४+५=७७६१ होते हैं।

नामकर्म के उदयस्थानों व भंगों का निर्देश करने के अनन्तर अब दो गाथाओं में प्रत्येक उदयस्थान के भंगों का विचार करते हैं।

एग बियालेक्कारस तेत्तीसा छस्सयाणि तेत्तीसा।
बारससत्तरसयाणहिगाणि बिपचसीईहिं ॥२७॥

अउणत्तीसेक्कारससयाहिगा सतरसपचसट्ठीहिं।
इक्केक्कग च बीसादट्ठुदयंतेसु उदयविही ॥२८॥

शब्दार्थ—एग—एक, बियालेक्कारस—बयालीस, ग्यारह, तेत्तीसा—तेतीस, छस्सयाणि—छह सौ तेत्तीसा—तेतीस, बारससत्तरसयाणहिगाणि—बारह सौ और सत्रह सौ अधिक, बिपचसीईहिं—दो और पचासी, अउणत्तीसेक्कारससयाहिगा—उनतीस सौ और ग्यारह सौ अधिक, सतरसपचसट्ठीहिं—सत्रह और पैंसठ, इक्केक्कग—एक एक, बीसादट्ठुदयंतेसु—बीस प्रकृतिक उदयस्थान से लेकर आठ प्रकृति के उदयस्थान तक, उदयविही—उदय के भंग।

गाथार्थ—बीस प्रकृति के उदयस्थान से लेकर आठ प्रकृति के उदयस्थान पर्यन्त अनुक्रम से १, ४२, ११, ३३, ६००, ३३, १२०२, १७८५, २९१७, ११६५, १, और १ भग होते है।[1]

विशेषार्थ—पहले नामकर्म के २०, २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक, इस प्रकार १२ उदयस्थान बतलाये गये है तथा इनमे से किस गति मे कितने उदयस्थान और उनके कितने भग होते है, यह भी बतलाया जा चुका है। अब यहाँ यह बतलाते है कि उनमे से किस उदयस्थान के कितने भग होते हैं।

बीस प्रकृतिक उदयस्थान का एक भग है। वह अतीर्थंकर केवली के होता है। २१ प्रकृतिक उदयस्थान के ४२ भग है। वे इस प्रकार समझना चाहिये—एकेन्द्रियो की अपेक्षा ५, विकलेन्द्रियो की अपेक्षा ९, तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ९, मनुष्यो की अपेक्षा ९, तीर्थंकर की अपेक्षा १, देवो की अपेक्षा ८ और नारको की अपेक्षा १। इन सब का जोड ५+९+९+९+१+८+१=४२ होता है।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रियो को होता है, अन्य को नही

---

१ गो० कर्मकाड गाथा ६०३—६०५ तक मे इन २० प्रकृतिक आदि उदयस्थानो के भग क्रमश १, ६०, २७, १९, ६२०, १२, ११७५, १७६०, २९२१, ११६१, १, १ बतलाये हैं। जिनका कुल जोड ७७५८ होता है—

"वीसादीण भगा इगिदालपदेसु सभवा कमसो।
एक्क सट्ठी चेव य सत्तावीस च उगुवीस ॥
वीसुत्तरछच्चसया बारस पण्णत्तरीहिं सजुत्ता।
एक्कारससयसखा सत्तरससयाहिया सट्ठी ॥
ऊणत्तीससयाहियएक्कावीसा तदोवि एकट्ठी।
एक्कारससयसहिया एक्केक्क विसरिसगा भगा ॥

और २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे एकेन्द्रिय की अपेक्षा ११ भग प्राप्त होते हैं। अत २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे ११ भग होते हैं।

२५ प्रकृतिक उदयस्थान के एकेन्द्रियो की अपेक्षा ७, वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ८, वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्यो की अपेक्षा ८, आहारक सयतो की अपेक्षा १, देवो की अपेक्षा ८ और नारको की अपेक्षा १ भग बतला आये है। इन सबका जोड ७+८+८+१+८+१=३३ होता है। अत २५ प्रकृतिक उदयस्थान के ३३ भग होते है।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान के भग ६०० हैं। इनमे एकेन्द्रिय की अपेक्षा १३, विकलेन्द्रियो की अपेक्षा ६, प्राकृत तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा २८९ और प्राकृत मनुष्यो की अपेक्षा २८९ भङ्ग होते हैं। इन सबका जोड १३+६+२८९+२८९=६०० होता है। ये ६०० भङ्ग २६ प्रकृतिक उदयस्थान के है।

की अपेक्षा १२, तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ११५२ वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा १६, मनुष्यो की अपेक्षा ५७६, वैक्रिय मनुष्यो की अपेक्षा ६, आहारक सयतो की अपेक्षा २, तीर्थंकर की अपेक्षा १, देवो की अपेक्षा १६ और नारको की अपेक्षा १ भङ्ग है। इनका जोड १२+११५२+१६+५७६+९+२+१+१६+१=१७८५ होता है। अत २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भङ्ग १७८५ प्राप्त होते हैं।

३० प्रकृतिक उदयस्थान मे विकलेन्द्रियो की अपेक्षा १८, तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा १७२८, वैक्रिय तिर्यच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ८, मनुष्यो की अपेक्षा ११५२, वैक्रिय मनुष्यो की अपेक्षा १, आहारक सयतो की अपेक्षा १, केवलियो की अपेक्षा १ और देवो की अपेक्षा ८ भङ्ग पूर्व मे बतला आये है। इनका जोड १८+१७२८+८+११५२+१+१+१+८=२९१७ होता है। अत ३० प्रकृतिक उदयस्थान के २९१७ भङ्ग होते है।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे विकलेन्द्रियो की अपेक्षा १२, तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ११५२, तीर्थंकर की अपेक्षा १ भङ्ग पूर्व मे बतलाया है, और इनका कुल जोड ११६५ है, अत ३१ प्रकृतिक उदयस्थान के ११६५ भङ्ग कहे है।

९ प्रकृतिक उदयस्थान का तीर्थंकर की अपेक्षा १ भग होता है और ८ प्रकृतिक उदयस्थान का अतीर्थंकर की अपेक्षा १ भग होता है। इन दोनो को पूर्व मे बतलाया जा चुका है। अत ९ प्रकृतिक और ८ प्रकृतिक उदयस्थान का १, १ भग होता है।

इस प्रकार २० प्रकृतिक आदि बारह उदयस्थानो के १+४२+११+३३+६००+३३+१२०२+१७८५+२९१७+११६५+१+१=७७९१ भग होते हैं।

नामकर्म के उदयस्थानो के भग व अन्य विशेषताओ सम्बन्धी विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

उदयस्थान	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	भंग संख्या
सामान्य	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१	१	७७९१
एकेन्द्रिय	०	५	११	७	१३	६	०	०	०	०	०	०	४२
विकलेन्द्रिय	०	९	०	०	९	०	६	१२	१८	१२	०	०	६६
पंचेन्द्रिय तिर्यंच	०	९	०	०	२८९	०	५७६	११५२	१७२८	११५२	०	०	४९०६
मनुष्य	०	९	०	०	२८९	०	५७६	५७६	११५२	०	०	०	२६०२
वैक्रिय तिर्यंच	०	०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	५६
वैक्रिय मनुष्य	०	०	०	८	०	८	(१) ८	(१) ८	०	०	०	०	३२
देव	०	८	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	६४
तीर्थंकर	०	१	०	०	०	१	०	१	१	१	१	०	६
केवली	१	०	०	०	(म) ६	०	(म) ६	(म) ६	(म) ६	०	०	१	२
[illegible]	०	०	०	०		०	१	१	१	०	०	०	३
आहारक	०	०	०	१	०	१	२	२	१	०	०	०	७
नारक	०	१	०	१	०	१	१	१	०	०	०	०	५
												योग	७७९१[1]

१—इय सत्तुदयविगप्पा एवकाणउया सया उ भगसयरी ।
एत्तो नवट्ठाणा स पारस होंति नामस्स ॥

—सप्ततिका नामक षष्ठ कर्मग्रन्थ प्राकृत टिप्पण

नामकर्म के बधस्थानो और उदयस्थानों का कथन करने के पश्चात् अब सत्तास्थानो का कथन करते है।

तिदुनउई उगुनउई अट्ठच्छलसी असीइ उगुसीई।
अट्ठयछ्प्पणत्तरि नव अट्ठ य नामसताणि ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—**तिदुनउई**—तेरानवै, बानवै, **उगुनउई**—नवासी **अट्ठच्छलसी**—अठासी, छियासी, **असीइ**—अस्सी, **उगुसीई**—उन्यासी, **अट्ठयछ्प्पणत्तरी**—अठहत्तर, छियत्तर, पचहत्तर, **नव**—नौ, **अट्ठ**—आठ, **य**—और, **नामसताणि**—नामकर्म के सत्तास्थान।

गाथार्थ—नामकर्म के ९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९ और ८ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं।[1]

विशेषार्थ—इस गाथा मे नामकर्म के सत्तास्थानो को बतलाते हुए उनमे गर्भित प्रकृतियो की सख्या बतलाई है कि प्रत्येक सत्तास्थान कितनी-कितनी प्रकृति का है। इससे यह तो ज्ञात हो जाता है कि नामकर्म के सत्तास्थान बारह है और वे ९३, ९२ आदि प्रकृतिक है, लेकिन यह स्पष्ट नही होता है कि प्रत्येक सत्तास्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियो के नाम क्या है, अत यहाँ प्रत्येक सत्तास्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियो के नामोल्लेखपूर्वक उनकी सख्या को स्पष्ट करते है।

पहला सत्तास्थान ९३ प्रकृतियो का बतलाया है। क्योंकि नामकर्म की सब उत्तर प्रकृतिया ९३[2] है, अत ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान मे

---

१ कर्मप्रकृति और पचसग्रह सप्ततिका मे नामकर्म के १०३, १०२, ९६, ९५, ९३, ९०, ८९, ८४, ८३, ८२, ९ और ८ प्रकृतिक, ये १२ सत्तास्थान बतलाये है। यहाँ बताये गये और इन १०३ आदि सख्या के सत्तास्थानो मे इतना अतर है कि ये स्थान बधन के १५ भेद करके बतलाये गये है। ८२ प्रकृतिक जो सत्तास्थान बतलाया है वह दो प्रकार से बतलाया है। विशेष जानकारी वहाँ से कर लेना चाहिये।

२ नामकर्म की ९३ उत्तर प्रकृतियो के नाम प्रथम कर्मग्रन्थ मे दिये है। अत पुनरावृत्ति के कारण यहाँ उनका उल्लेख नही किया है।

सब प्रकृतियो की सत्ता स्वीकार की गई है। इन ९३ प्रकृतियो मे से तीर्थंकर प्रकृति को कम कर देने पर ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, आहारक सघात और आहारक बधन, इन चार प्रकृतियो को कम कर देने पर ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से तीर्थंकर प्रकृति को कम कर देने पर ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

उक्त ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से नरकगति और नरकानुपूर्वी की अथवा देवगति और देवानुपूर्वी की उद्वलना हो जाने पर ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है अथवा नरकगति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले ८० प्रकृतिक सत्तास्थान वाले जीव के नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, वैक्रिय सघात और वैक्रिय बधन इन छह प्रकृतियो का बध होने पर ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से नरकगति, नरकानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क, इन छह प्रकृतियो की उद्वलना हो जाने पर ८० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है अथवा देवगति, देवानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क इन छह प्रकृतियो की उद्वलना हो जाने पर ८० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसमे से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्वलना होने पर ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

उक्त सात सत्तास्थान अक्षपको की अपेक्षा कहे है। अब क्षपको की अपेक्षा सत्तास्थानो को बतलाते है।

जब क्षपक जीव ९३ प्रकृतियो मे से नरकगति, नरकानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, जातिचतुष्क (एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति), स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण, इन तेरह प्रकृतियो का क्षय कर देते है तब उनके ८० प्रकृ-

तिक सत्तास्थान होता है। जव ९२ प्रकृतियो मे से इन तेरह प्रकृतियो का क्षय करते हैं, तब ७९ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और जब ८९ प्रकृतियो मे से इन तेरह प्रकृतियो का क्षय करते है तब ७६ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा जब ८८ प्रकृतियो मे से इन तेरह प्रकृतियो का क्षय कर देते है, तब ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

अव रहे ९ और ८ प्रकृतिक सत्तास्थान। सो ये दोनो अयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय मे होते है। नौ प्रकृतिक सत्तास्थान मे मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश-कीर्ति और तीर्थंकर, ये नौ प्रकृतिया है और इनमे से तीर्थंकर प्रकृतिक को कम कर देने पर ८ प्रकृतिक, सतास्थान होता है।

गो० कर्मकांड और नामकर्म के सत्तास्थान[1]

पूर्व मे गाथा के अनुसार बारह सत्तास्थानो का कथन किया गया। लेकिन गो० कर्मकाड मे ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिक कुल तेरह सत्तास्थान बतलाये है—

तिदुइगिणउदी णउदी अउचउदो अहियसीदि सीदी य।
ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥६०९॥

विवेचन इस प्रकार है—

यहाँ ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान मे नामकर्म की सब प्रकृतियो की सत्ता मानी है। उनमे से तीर्थंकर प्रकृति को घटाने पर ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। आहारक शरीर और आहारक अगोपाग, इन दो प्रकृतियो को कम कर देने पर ९१ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तीर्थं-कर, आहारक शरीर और आहारक अगोपाग को कम कर देने पर ९० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसमे से देवद्विक की उद्वलना करने पर ८८ प्रकृतिक और इस ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से नरक-

---

१ तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से गो० कर्मकाड का अभिमत यहाँ दिया है।

चतुष्क की उद्वलना करने पर ८४ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इन ८४ प्रकृतियों में से मनुष्यद्विक की उद्वलना होने पर ८२ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

क्षपक अनिवृत्तिकरण के ९३ प्रकृतियों में से नरकद्विक आदि तेरह प्रकृतियों का क्षय होने पर ८० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा ९२ प्रकृतियों में से उक्त १३ प्रकृतियों का क्षय होने पर ७९ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा इन्हीं १३ प्रकृतियों को ९१ प्रकृतियों में से कम करने पर ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। ९० में से इन्हीं १३ प्रकृतियों को घटाने पर ७७ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तीर्थंकर अयोगिकेवली के १० प्रकृतिक तथा सामान्य केवली के ९ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

इस प्रकार से नामकर्म के सत्तास्थान को बतलाने के पश्चात अब आगे की गाथा में नामकर्म के बंधस्थान आदि के परस्पर संवेध का कथन करने का निर्देश करते हैं।

अट्ठ य बारस बारस बंधोदयसंतपयडिठाणाणि।
ओहेणादेसेण य जत्थ जहासंभवं विभजे ॥३०॥

सामान्य और आदेश विशेप से जहाँ जितने स्थान सम्भव है, उतने विकल्प करना चाहिये।

विशेषार्थ—ग्रन्थ मे यद्यपि नामकर्म के पहले वधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान वतलाये जा चुके है कि नामकर्म के बधस्थान आठ है, उदयस्थान वारह है और सत्तास्थान भी वारह है। फिर भी यहाँ पुन सूचना इनके सवेध भगो को बतलाने के लिये की गई है।

इन सवेध भगो को जानने के दो उपाय हैं—१ ओघ और २ आदेश। ओघ सामान्य का पर्यायवाची है और आदेश विशेष का। यहाँ ओघ का यह अर्थ हुआ कि जिस प्ररूपणा मे केवल यह बतलाया जाए कि अमुक बधस्थान का बध करने वाले जीव के अमुक उदयस्थान और अमुक सत्तास्थान होते है, इसको ओघप्ररूपण कहते हैं। आदेश प्ररूपण मे मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान और गति आदि मार्गणाओ मे बधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो का विचार किया जाता है। ग्रन्थकार ने ओघ और आदेश के सकेत द्वारा यह स्पष्ट किया है कि दोनो प्रकार से बधस्थान आदि के सवेध भगो को यहाँ बतलाया जायेगा।

अब सबसे पहले ओघ से सवेध भङ्गो का विचार करते है।

नव पचोदय संता तेवीसे पणवीस छव्वीसे।
अट्ठ चउरट्ठवीसे नव सत्तुगतीस तीसम्मि ॥३१॥

शब्दार्थ—**नव पच**—नौ और पाँच, **उदयसत्ता**—उदय और सत्ता स्थान, **तेवीसे**—तेईस, **पणवीस छव्वीसे**—पच्चीस और छब्बीस के बधस्थान मे, **अट्ठ**—आठ, **चउर**—चार, **अट्ठवीसे**—अट्ठाईस के बधस्थान मे, **नव**—नौ, **सत्त**—सात, **उगतीस तीसम्मि**—उनतीस और तीस प्रकृतिक बधस्थान मे।

एगेगमेगतीसे एगे एगुदय अट्ठ संतम्मि ।
उवरयबंधे दस दस वेयगसतम्मि ठाणाणि[1] ॥३२॥

शब्दार्थ—एगेग—एक, एक, एगतीसे—इकतीस प्रकृतिक बंधस्थान में, एगे—एक के बंधस्थान में, एगुदय—एक उदयस्थान, अट्ठ संतम्मि—आठ सत्तास्थान, उवरयबंधे—बंध के अभाव में, दस दस—दस-दस, वेयग—उदय में, संतम्मि—सत्ता में, ठाणाणि—स्थान ।

दोनों गाथार्थ—तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थानों में नौ-नौ उदयस्थान और पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं । अट्ठाईस के बंधस्थान में आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान होते हैं । उनतीस एवं तीस प्रकृतिक बंधस्थानों में नौ उदयस्थान तथा सात सत्तास्थान होते हैं ।

इकतीस प्रकृतिक बंधस्थान में एक उदयस्थान व एक सत्तास्थान होता है । एक प्रकृतिक बंधस्थान में एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान होते हैं । बंध के अभाव में उदय और सत्ता के दस दस स्थान जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओ मे यह बतलाया गया है कि किस बधस्थान मे कितने उदयस्थान और कितने सत्तास्थान होते हैं। लेकिन यह ज्ञात नही होता है कि वे उदय और सत्तास्थान कितनी प्रकृति वाले है और कौन-कौनसे है। अत इस बात को आचार्य मलयगिरि कृत टीका के आधार से स्पष्ट किया जा रहा है।

तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बधस्थानो मे से प्रत्येक मे नौ उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान है—'नव पचोदय सत्ता''''''। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तेईस प्रकृतिक बधस्थान मे अपर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतियो का बध होता है और इसको एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य बाधते है। इन तेईस प्रकृतियो को बाँधने वाले जीवो के सामान्य से २१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान होते हैं। इन उदयस्थानो को इस प्रकार घटित करना चाहिये—जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य तेईस प्रकृतियो का बध कर रहा है, उसको भव के अपान्तराल मे तो २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। क्योकि २१ प्रकृतियो के उदय मे अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य २३ प्रकृतियो का बध सम्भव है।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान अपर्याप्त और पर्याप्त एकेन्द्रियो के होता है। क्योकि यह उदयस्थान एकेन्द्रियो के सिवाय अन्यत्र नही पाया जाता है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियो और वैक्रिय शरीर को प्राप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के होता है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के होता है। २७ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियो और वैक्रिय शरीर को करने वाले तथा शरीर पर्याप्ति मे पर्याप्त हुए मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के होता है। २८, २६, ३० प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान

वैक्रिय शरीर को करने वाले वायुकायिक जीवो के २४ प्रकृतिक उदयस्थान रहते ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान ही होते हैं किन्तु ८० और ७८ प्रकृति वाले सत्तास्थान नही होते हैं।

२५ प्रकृतिक उदयस्थान के होते हुए भी उक्त पॉच सत्तास्थान होते है। किन्तु उनमे से ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान वैक्रिय शरीर को नही करने वाले वायुकायिक जीवो के तथा अग्निकायिक जीवो के ही होते है, अन्य को नही, क्योकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को छोडकर अन्य सब पर्याप्त जीव नियम से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का बध करते है—

तेऊवाऊवज्जो पज्जत्तगो मणुयगइ नियमा बघेइ।

चूर्णिकार का मत है कि अग्निकायिक, वायुकायिक जीवो को छोडकर अन्य पर्याप्त जीव मनुष्यगति का नियम से बध करते है। इससे सिद्ध हुआ कि ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान अग्निकायिक जीवो को और वैक्रिय शरीर को नही करने वाले वायुकायिक जीवो को छोडकर अन्यत्र प्राप्त नहीं होता है।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी उक्त पाँच सत्तास्थान होते है। किन्तु यह विशेष है कि ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान वैक्रिय शरीर को नही करने वाले वायुकायिक जीवो के तथा अग्निकायिक जीवो के होता है तथा जिन पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवो मे उक्त अग्निकायिक और वायुकायिक जीव उत्पन्न हुए हैं, उनको भी जब तक मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का बध नही हुआ है, तब तक ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

२७ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोडकर शेष चार सत्तास्थान होते है। क्योकि २७ प्रकृतिक उदयस्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को छोडकर पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय और वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच और मनुष्यो को

विकलेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के योग्य २५ प्रकृतियो का बध देव नही करते है। क्योकि उक्त अपर्याप्त जीवो मे देव उत्पन्न नही होते है। अत सामान्य से २५ और २६ प्रकृतिक, इनमे से प्रत्येक बधस्थान मे नौ उदयस्थानो की अपेक्षा ४० सत्तास्थान होते है।

२३, २५ और २६ प्रकृतिक बधस्थानो को बतलाने के वाद अब २८ प्रकृतिक बंधस्थान के उदय व सत्तास्थान बतलाते है कि "अट्ठ चउर-ट्ठवीसे" अर्थात् आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान होते हैं। आठ उदयस्थान इस प्रकार की सख्या वाले है—२१,२५,२६,२७,२८,२९,३० और ३१ प्रकृतिक। २८ प्रकृतिक बधस्थान के दो भेद है—१ देवगति-प्रायोग्य, २ नरकगति-प्रायोग्य। इनमे से देवगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बन्ध होते समय नाना जीवो की अपेक्षा उपर्युक्त आठो ही उदयस्थान होते है और नरकगति के योग्य प्रकृतियो का बध होते समय ३० और ३१ प्रकृतिक, ये दो ही उदयस्थान होते है।

उनमे से देवगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के २१ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्यो के भव के अपान्तराल मे रहते समय होता है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान आहारक सयतो के और वैक्रिय शरीर को करने वाले सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंचो के होता है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि शरीरस्थ पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यो के होता है। २७ प्रकृतिक उदयस्थान आहारक सयतो के, सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यच और मनुष्यो के होता है। २८ और २९ प्रकृतिक उदयस्थान क्रम से शरीर पर्याप्ति और प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के तथा आहारक सयत, वैक्रिय सयत और वैक्रिय शरीर को करने वाले सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और

सत्तास्थानों का विचार तो पूर्ववत् है और शेष दो सत्तास्थानो के बारे मे यह विशेषता जानना चाहिए कि किसी एक मनुष्य ने नरकायु का बध करने के बाद वेदक सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का वध किया, अनन्तर मनुष्य पर्याय के अन्त मे वह सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यादृष्टि हुआ तब उसके अन्तिम अन्तर्मुहूर्त मे तीर्थकर प्रकृति का बध न होकर २८ प्रकृतियो का ही वध होता है और सत्ता मे ८६ प्रकृतियाँ ही प्राप्त होती हैं, जिससे यहाँ ८६ प्रकृतियो की सत्ता बतलाई है। ९३ प्रकृतियो मे से तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क इन १३ प्रकृतियो के बिना ८० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस प्रकार ८० प्रकृतियो की सत्ता वाला कोई जीव पचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य होकर सब पर्याप्तियो की पूर्णता को प्राप्त हुआ और अनन्तर यदि वह विशुद्ध परिणाम वाला हुआ तो उसने देवगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध किया और इस प्रकार देवद्विक और वैक्रियचतुष्क की सत्ता प्राप्त की, अत॰ उसके २८ प्रकृतियो के बध के समय ८६ प्रकृतियो की सत्ता होती है और यदि वह जीव सक्लेश परिणाम वाला हुआ तो उसके नरकगति योग्य २८ प्रकृतियो का बध होता है और इस प्रकार नरकद्विक और वैक्रिय-चतुष्क की सत्ता प्राप्त हो जाने के कारण भी ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे २८ प्रकृतियो का बध होते समय ९२, ८९, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते है।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। यहाँ ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता है। क्योकि जिसके २८ प्रकृतियो का बध और ३१ प्रकृतियो का उदय है, वह पचेन्द्रिय तिर्यंच ही होगा और तिर्यंचो के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नही है, क्योकि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला मनुष्य तिर्यंचो मे

प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते है। वैक्रिय शरीर को करने वाले असयत और सयतासयत मनुष्यो के ३० के बिना ४ उदयस्थान होते है। मनुष्यो मे सयतो को छोडकर यदि अन्य मनुष्य वैक्रिय शरीर को करते है तो उनके उद्योत का उदय नही होता। अत यहाँ ३० प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक बधस्थान मे उदयस्थानो का विचार किया गया कि २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान है।

अब सत्तास्थानो का विचार करते है। पूर्व मे सकेत किया गया है कि २९ प्रकृतिक बधस्थान मे ९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृति वाले सात सत्तास्थान है। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—यदि विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तथा तिर्यच पचेन्द्रिय जीवो के २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है तो वहाँ ९२, ८८, ८६, ८० और ७८, ये पाँच सत्तास्थान होते है। इसी प्रकार २४, २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे उक्त पाँच सत्तास्थान जानना चाहिये तथा २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, इन पाँच उदयस्थानो मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोडकर शेप चार सत्तास्थान होते है। इसका विचार जैसा २३ प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के कर आये है वैसा ही यहाँ भी समझ लेना चाहिए। मनुष्यगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यच पचेन्द्रिय जीवो के तथा मनुष्य व तिर्यंचगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले मनुष्यो के अपने-अपने योग्य उदयस्थानो मे रहते हुए ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोडकर शेप चार वे ही सत्तास्थान होते हैं। तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले देव और नारको के अपने-अपने उदयस्थानो मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान

उदय मे ६, अट्ठाईस प्रकृतियो के उदय मे ६, उनतीस प्रकृतियो के उदय मे ६, तीस प्रकृतियो के उदय मे ६ और इकतीस प्रकृतियो के उदय मे ४ सत्तास्थान होते है। इन सब का कुल जोड ७+५+७+७+६+६+६+६+४=५४ होता है।

अब तीस प्रकृतिक बधस्थान का विचार करते है। जिस प्रकार तिर्यंचगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारको के उदयस्थानो का विचार किया उसी प्रकार उद्योत सहित तिर्यंचगति के योग्य ३० प्रकृतियो का बध करने वाले एकेन्द्रियादिक के उदयस्थान और सत्तास्थानो का चिन्तन करना चाहिये। उसमे ३० प्रकृतियो को बाधने वाले देवो के २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है तथा २१ प्रकृतियो के उदय से युक्त नारको के ८९ प्रकृतिक एक ही सत्तास्थान होता है, ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता है। क्योकि तीर्थंकर और आहारक चतुष्क की सत्ता वाला जीव नारको मे उत्पन्न नही होता है—

जस्स तित्थगराऽऽहारगाणि जुगव सति सो नेरइएसु न उववज्जइ।

जिसके तीर्थंकर और आहारकचतुष्क, इनकी एक साथ सत्ता है वह नारको मे उत्पन्न नही होता है। यह चूर्णिकार का मत भी उक्त मतव्य का समर्थन करता है।

इसी प्रकार २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक उदयस्थानो मे भी समझना चाहिए। किन्तु इतनी विशेपता है कि नारको के ३० प्रकृतिक उदयस्थान नही है। क्योकि ३० प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत प्रकृति के सद्भाव मे पाया जाता है परन्तु नारको के उद्योत का उदय नही पाया जाता है।

इस प्रकार सामान्य से ३० प्रकृतियो का वध करने वाले जीवो

है जो अपूर्वकरण गुणस्थान के सातवे भाग से लेकर दसवे गुणस्थान तक होता है। यह जीव अत्यन्त विशुद्ध होने के कारण वैक्रिय और आहारक समुद्‌घात को नही करता है, जिससे इसके २५ आदि प्रकृतिक उदयस्थान नही होते किन्तु एक ३० प्रकृतिक ही उदयस्थान होता है।

एक प्रकृतिक बधस्थान मे जो आठ सत्तास्थान बताये है, उनमे से आदि के चार ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान उपशमश्रेणि की अपेक्षा और अतिम चार ८०,७९,७६ और ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षपकश्रेणि की अपेक्षा कहे है। परन्तु जब तक अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग मे स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यंचद्विक, नरकद्विक, जातिचतुष्क, साधारण, आतप और उद्योत, इन तेरह प्रकृतियो का क्षय नही होता तब तक ९३ आदि प्रकृतिक, प्रारम्भ के चार सत्तास्थान भी क्षपक-श्रेणि मे पाये जाते है।

इस प्रकार एक प्रकृतिक बधस्थान मे एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान तथा ९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये आठ सत्तास्थान समझना चाहिये।

अब उपरतबध की स्थिति के उदयस्थानो और सत्तास्थानो का विचार करते है। बध के अभाव मे भी उदय एव सत्ता स्थानो का विचार करने का कारण यह है कि नामकर्म का बध दसवें गुणस्थान तक होता है, आगे के चार गुणस्थानो मे नही, किन्तु उदय और सत्ता १४वे गुणस्थान तक होती है। फिर भी उसमे विविध दशाओ और जीवो की अपेक्षा अनेक उदयस्थान और सत्तास्थान पाये जाते है। इनके लिये गाथा मे कहा है—

उवरयबंधे दस दस वेयगसतम्मि ठाणाणि।

अर्थात्—बध के अभाव मे भी दस उदयस्थान और दस सत्तास्थान

मे ६३,६२,८६,८८,७६ और ७५ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते है। इनमे से आदि के चार सत्तास्थान उपशान्तमोह गुणस्थान की अपेक्षा और अत के दो सत्तास्थान क्षीणमोह और सयोगिकेवली की अपेक्षा बताये है। यदि इस ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे से स्वर प्रकृति को निकालकर तीर्थंकर प्रकृति को मिलाये तो भी उक्त उदयस्थान प्राप्त होता है जो तीर्थंकर केवली के वचनयोग के निरोध करने पर होता है। किन्तु इसमे सत्तास्थान ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो होते है। क्योकि सामान्य केवली के जो ७९ और ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान कह आये है 'उनमे तीर्थंकर प्रकृति के मिल जाने से ८० और ७६ प्रकृतिक ही सत्तास्थान प्राप्त होते है।

सामान्य केवली के जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया गया है, उसमे तीर्थंकर प्रकृति के मिलाने पर तीर्थंकर केवली के ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है और उसी प्रकार ८० व ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है। क्योकि सामान्य केवली के ७५ और ७९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान बतलाये है, उनमे तीर्थंकर प्रकृति के मिलाने से ७६ और ८० की सख्या होती है।

सामान्य केवली के जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान बतला आये है, उसमे से वचनयोग के निरोध करने पर स्वर प्रकृति निकल जाती है, जिससे २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है अथवा तीर्थंकर केवली के जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है उसमे से श्वासोच्छ्वास के निरोध करने पर उच्छ्वास प्रकृति के निकल जाने से २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इनमे से पहला उदयस्थान सामान्य केवली के और दूसरा उदयस्थान तीर्थंकर केवली के होता है। अत पहले २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७९ और ७५ प्रकृतिक और दूसरे २९ प्रकृतिक स्थान मे ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है।

गुणस्थान	बंधस्थान ८	भंग	उदयस्थान १२		उदयभंग	सत्तास्थान १२	[illegible]
			२९		१७६४	९२,८८,८६,८०	४
			३०		२९०६	" " " "	४
			३१		११६४	" " " "	४
							४०
१	२५	२५	२१		४०	९२,८८,८६,८०,७८	५
			२४		११	" " " " "	"
			२५		३१	" " " " "	"
			२६		६००	" " " " "	"
			२७		३०	९२,८८,८६,८०	४
			२८	९	११९८	" " " "	"
			२९		१७८०	" " " "	"
			३०		२९१४	" " " "	"

गुण स्थान	बध स्थान ८	भग	उदयस्थान १२		उदय भग	सत्तास्थान १२	सर्वभग
१,२,४	३०	४६४१	२१		४१	९३,९२,८९,८८,८६,८०,७८	७
७,८			२४		११	९२,८८‘८६,८०,७८	५
			२५		३२	९३,९२,८९,८८,८६,८०,७८	७
			२६		६००	९२,८८,८६,८०,७८	५
			२७	९	३१	९३,९२,८९,८८,८६,८०	६
			२८		११९९	९३,९२,८९,८८,८६,८०	६
			२९		१७८१	,, ,, ,, ,, ,, ,,	६
			३०		२९१४	,, ,, ,, ,, ,, ,,	६
			३१		११६४	९२,८८,८६,८०	४
							५२
७व८	३१	१	३०	१	१४४	९३	१
							१
८,९	१	१	३०	१	७२	९३,९२,८९,८८,८०,७९,७६	८
१०						७५	८
११	०	०	२०		१	७९,७५	२
१२			२१		१	८०,७६	२
१३			२६		६	७९,७५	२
१४			२७	७	१	८०,७६	२
			२८		१२	७९,७५	२
			२९		१३	८०,७९,७६,७५	४

के जीवस्थानो और गुणस्थानो की अपेक्षा स्वामी का निर्देश किया है। किन्तु उत्तर प्रकृतियो की अपेक्षा वधस्थान, उदयस्थान और उनके सवेध भगो के स्वामी का निर्देश नही किया है। इनके निर्देश करने की प्रतिज्ञा इस गाथा मे की गई है कि तीनो प्रकार के प्रकृतिस्थानो के सव भग जीवस्थानो और गुणस्थानो मे घटित करके वतलाये जायेगे।

जीवस्थानो और गुणस्थानो मे से पहले यहाँ जीवस्थानो मे तीनो प्रकार के प्रकृतिस्थानो के सव भग घटित करते है।

जीवस्थानों के सवेध भंग

पहले अव ज्ञानावरण और अतराय कर्म के भग वतलाते है।

तेरससु जीवसंखेवएसु नाणंतराय तिविगप्पो।
एक्कम्मि तिदुविगप्पो करणं पइ एत्थ अविगप्पो ॥३४॥

शब्दार्थ—**तेरससु**—तेरह, **जीवसखेवएसु**—जीव के सक्षेप (स्थानो) के विषय मे, **नाणतराय**—ज्ञानावरण और अतराय कर्म के, **तिविगप्पो**—तीन विकल्प, **एक्कम्मि**—एक जीवस्थान मे, **तिदुविगप्पो**—तीन अथवा दो विकल्प, **करणपइ**—करण (द्रव्यमन के आश्रय से) की अपेक्षा, **एत्थ**—यहाँ, **अविगप्पो**—विकल्प का अभाव है।

गाथार्थ—आदि के तेरह जीवस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के तीन विकल्प होते है तथा एक जीवस्थान (पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय) मे तीन और दो विकल्प होते है। द्रव्य-मन की अपेक्षा इनके कोई विकल्प नही है।

विशेषार्थ—इस गाथा से जीवस्थानो मे सवेध भगो का कथन प्रारम्भ करते है। सर्वप्रथम ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के भग वतलाते है।

पाँच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता, इस प्रकार तीन विकल्प रूप एक भग होता है। अनन्तर बधविच्छेद हो जाने पर पॉच प्रकृतिक उदय और पॉच प्रकृतिक सत्ता, इस प्रकार दो विकल्प रूप एक भग होता है—'एक्कम्मि तिदुविगप्पो।' पॉच प्रकृतिक वध, उदय और सत्ता, यह तीन विकल्प सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक पाये जाते हैं तथा उसके बाद बध का विच्छेद हो जाने पर उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थान मे पॉच प्रकृतिक उदय और पॉच प्रकृतिक सत्ता, यह दो विकल्प होते है। क्योकि उदय और सत्ता का युगपद् विच्छेद हो जाने से अन्य भग सम्भव नही हैं।

पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान की एक और विशेपता बतलाते है कि 'करण पइ एत्थ अविगप्पो' अर्थात् केवलज्ञान के प्राप्त हो जाने के बाद इस जीव को भावमन तो नही रहता किन्तु द्रव्यमन ही रहता है और इस अपेक्षा से उसे भी पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय कहते है। चूर्णि मे भी कहा है—

मणकरणं केवलिणो वि अत्थि तेण सन्निणो वुच्चति। मणोविण्णाण पडुच्च ते सन्निणो न हवति।

अर्थात्—मन नामक करण केवली के भी है, इसलिये वे सज्ञी कहलाते है किन्तु वे मानसिक ज्ञान की अपेक्षा सज्ञी नही होते हैं।

ऐसे सयोगि और अयोगि केवली जो द्रव्यमन के सयोग से पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय है, उनके तीन विकल्प रूप और दो विकल्प रूप भग नही होते हैं। अर्थात केवल द्रव्यमन की अपेक्षा जो जीव पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय कहलाते है, उनके ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बध, उदय और सत्व की अपेक्षा कोई भग नही है क्योकि इन कर्मों के बध, उदय और सत्ता का विच्छेद केवली होने से पहले ही हो जाता है।

इस प्रकार से जीवस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के

भगो को वतलाने के वाद अब दर्शनावरण, वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के बधादि स्थानो के भगो को बतलाते हैं।

तेरे नव चउ पणगं नव संतेगम्मि भगमेक्कारा।
वेयणियाउयगोए विभज्ज मोह पर वोच्छं ॥३५॥

शब्दार्थ—**तेरे**—तेरह जीवस्थानो मे, **नव**—नौ प्रकृतिक वध, **चउ पणग**—चार अथवा पाच प्रकृतिक उदय, **नवसत**—नौ की सत्ता, **एगम्मि**—एक जीवस्थान मे, **भगमेक्कारा**—ग्यारह भग होते हैं, **वेयणियाउयगोए**—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म मे, **विभज्ज**—विकल्प करके, **मोह**—मोहनीय कर्म के, **पर**—आगे, **वोच्छ**—कहेगे।

गाथार्थ—तेरह जीवस्थानो मे नौ प्रकृतिक बध, चार या पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता होती है। एक जीवस्थान मे ग्यारह भग होते है। वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म मे बधादि स्थानो का विभाग करके मोहनीय कर्म के वारे मे आगे कहेंगे।

विशेषार्थ—गाथा मे दर्शनावरण, वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के वधादि स्थानो को बतला कर वाद मे मोहनीय कर्म के विकल्प वतलाने का सकेत किया है।

दर्शनावरण कर्म के वधादि विकल्प इस प्रकार हैं कि आदि के तेरह जीवस्थानो मे नौ प्रकृतिक वध, चार या पाँच प्रकृतिक उदय तथा नौ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भग होते है। अर्थात् नौ प्रकृतिक वध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता यह एक भग और नौ प्रकृतिक वध, पाच प्रकृतिक उदय तथा नौ प्रकृतिक सत्ता यह दूसरा भग, इस प्रकार आदि के तेरह जीवस्थानो मे दो भग होते हैं। इसका कारण यह है कि प्रारम्भ के तेरह जीवस्थानो मे दर्शनावरण कर्म की किसी भी उत्तर प्रकृति का न तो वधविच्छेद होता है, न उदयविच्छेद

होता है और न सत्ताविच्छेद ही होता है। निद्रा, निद्रा-निद्रा आदि पाच निद्राओ मे से एक काल मे किसी एक का उदय होता भी है और नही भी होता है। इसीलिये इन पाँच निद्राओ मे से किसी एक का उदय होने या न होने की अपेक्षा से आदि के तेरह जीवस्थानो के दो भग बतलाये है।

परन्तु एक जो पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान है उसमे ग्यारह भग होते है—'एगम्मि भगमेक्कारा'। क्योकि पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे गुणस्थानो के क्रम से दर्शनावरण कर्म की नौ प्रकृतियो का बध, उदय और सत्ता तथा इनकी व्युच्छित्ति सब कुछ सम्भव है। इसीलिये इस जीवस्थान मे दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियो के बध, उदय और सत्ता की अपेक्षा ११ भग होने का सकेत किया गया है। इन ग्यारह भगो का विचार पूर्व मे दर्शनावरण के सामान्य सवेध भगो के प्रसग मे किया जा चुका है। अत पुन यहाँ उनका स्पष्टीकरण नही किया गया है। जिज्ञासु-जन वहा से इनकी जानकारी कर लेवे।

इस प्रकार से दर्शनावरण कर्म के सवेध भगो का कथन करने के बाद वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भग बतलाते है। लेकिन ग्रन्थ-कर्त्ता ने स्वय उक्त तीन कर्मो के भगो का निर्देश नही किया और न ही यह बताया कि किस जीवस्थान मे कितने भग होते है। किन्तु इनका विवेचन आवश्यक होने से अन्य आधार से इनका स्पष्टीकरण करते है।

भाष्य मे एक गाथा आई है, जिसमे वेदनीय और गोत्र कर्म के भगो का विवेचन चौदह जीवस्थानो की अपेक्षा किया गया है। उक्त गाथा इस प्रकार है—

पज्जत्तगसन्नियरे अट्ठ चउक्क च वेयणियभगा।
सत्तग तिग च गोए पत्तेय जीवठाणेसु॥

अर्थात्—पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे वेदनीय कर्म के आठ भग और शेप तेरह जीवस्थानो मे चार भग होते है तथा गोत्र कर्म के पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे सात भग और शेष तेरह जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे तीन भग होते है।

उक्त कथन का विशद विवेचन निम्न प्रकार है—वेदनीय कर्म के पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे चौदह गुणस्थान सम्भव हैं अत उसमे, १ असाता का बन्ध, असाता का उदय और साता-असाता दोनो की सत्ता, २ असाता का बध, साता का उदय और साता-असाता दोनो की सत्ता, ३ साता का बन्ध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ४ साता का वन्ध, साता का उदय और साता-असाता दोनो की सत्ता, ५ असाता का उदय और साता-असाता दोनो की सत्ता, ६ साता का उदय और साता-असाता दोनो की सत्ता, ७ असाता का उदय और असाता की सत्ता और ८ साता का उदय तथा साता की सत्ता, ये आठ भग होते है। किन्तु प्रारम्भ के तेरह जीवस्थानो मे से प्रत्येक के उक्त आठ भगो मे से आदि के चार भग ही प्राप्त होते हैं। क्योकि इनमे साता और असाता वेदनीय इन दोनो का यथासम्भव वन्ध, उदय और सत्ता सर्वत्र सम्भव है। इसीलिये भाष्य गाथा मे कहा गया है कि 'पज्जत्तगसन्नियरे अट्ठ चउक्क च वेयणियभगा।'

वेदनीय कर्म के उक्त आठ भगो को पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे गुणस्थानो की अपेक्षा इस प्रकार घटित करना चाहिये—

पहला भग—असाता का वध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा दूसरा भग—असाता का वध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, यह दो भग पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान तक पाये जाते है। क्योकि आगे के गुणस्थानो मे असाता वेदनीय के वध का अभाव है। तीसरा भग—

साता का बध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, चौथा भग—साता का बध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, यह दो विकल्प पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर तेरहवे सयोगिकेवली गुणस्थान तक पाये जाते है। इसके बाद बध का अभाव हो जाने से पॉचवा भग—असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा छठा भग—साता का उदय और साता-असाता दोनो की सत्ता, यह दो भग अयोगिकेवली गुणस्थान मे द्विचरम समय तक प्राप्त होते हैं और चरम समय मे सातवा भग—असाता का उदय और असाता की सत्ता तथा आठवा भग—साता का उदय और साता की सत्ता, यह दो भग पाये जाते है।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली द्रव्यमन के सम्बन्ध से सज्ञी कहे जाते है, अत सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे वेदनीय कर्म के आठ भग मानने मे किसी प्रकार का विरोध नही है।

इस प्रकार से वेदनीय कर्म के भगो का कथन करके अब गोत्र कर्म के भगो को बतलाते है कि 'सत्तग तिग च गोए'—वे इस प्रकार है—

गोत्रकर्म के पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे सात भग प्राप्त होते है। वे सात भग इस प्रकार है—१ नीच का बध, नीच का उदय और नीच की सत्ता, २ नीच का बध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनो की सत्ता, ३ नीच का बध, उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनो की सत्ता, ४ उच्च का बध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनो की सत्ता, ५ उच्च का बध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, ६ उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनो की सत्ता तथा ७ उच्च का उदय और उच्च की सत्ता।

उक्त सात भगो मे से पहला भग उन सज्ञियो को होता है जो

अग्निकायिक और वायुकायिक पर्याय से आकर सज्ञियो मे उत्पन्न होते है, क्योकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के उच्च गोत्र की उद्वलना देखी जाती है। फिर भी यह भग सज्ञी जीवो के कुछ समय तक ही पाया जाता है। सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे दूसरा और तीसरा भग प्रारम्भ के दो गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन की अपेक्षा बताया है। चौथा भग प्रारम्भ के पाच गुणस्थानो की अपेक्षा से कहा है। पाचवा भग प्रारम्भ के दस गुणस्थानो की अपेक्षा से कहा है। छठा भग उपशान्तमोह गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुण-स्थान के उपान्त्य समय तक होने की अपेक्षा से कहा है। और सातवा भग अयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय की अपेक्षा से कहा है।

लेकिन शेप तेरह जीवस्थानो मे उक्त सात भगो मे से पहला, दूसरा और चौथा ये तीन भग प्राप्त होते है। पहला भग नीच गोत्र का बध, नीच गोत्र का उदय और नीच गोत्र की सत्ता अग्निकायिक और वायु-कायिक जीवो मे उच्च गोत्र की उद्वलना के अनन्तर सर्वदा होता है किन्तु शेप मे से उनके भी कुछ काल तक होता है जो अग्निकायिक और वायुकायिक पर्याय से आकर अन्य पृथ्वीकायिक, द्वीन्द्रिय आदि मे उत्पन्न हुए है। दूसरा भग—नीच गोत्र का बध, नीच गोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता तथा चौथा भग—उच्च गोत्र का वध, नीच गोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता, यह दोनो भग भी तेरह जीवस्थानो मे नीच गोत्र का ही उदय होने से पाये जाते हैं। अन्य विकल्प सम्भव नही है, क्योकि तिर्यंचो मे उच्च गोत्र का उदय नही होता है।

इस प्रकार से भाष्य की गाथा के अनुसार जीवस्थानो मे वेदनीय और गोत्र कर्मों के भगो को वतलाने के वाद अव जीवस्थानो मे आयु कर्म के भगो को वतलाने के लिये भाष्य की गाथा को उद्धृ करते हैं—

पज्जत्तापज्जत्तग समणे पज्जत्त अमण सेसेसु ।
अट्ठावीसं दसग नवगं पणग च आउस्स ।।

अर्थात्—पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय, अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय, पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय और शेप ग्यारह जीवस्थानो मे आयु कर्म के क्रमश २८, १०, ९ और ५ भग होते है।

आशय यह है कि पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे आयुकम के २८ भग होते है। अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे १० तथा पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे ९ भग होते है। इन तीन जीवस्थानो से शेष रहे ग्यारह जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे पाच-पाच भग होते है।

पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे आयुकर्म के अट्ठाईस भग इस प्रकार समझना चाहिये कि पहले नारको के ५, तिर्यंचो के ९, मनुष्यो के ९ और देवो के ५ भग बतला आये है, जो कुल मिलाकर २८ भग होते है, वे ही यहा पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय के २८ भग कहे गये है। विशेष विवेचन इस प्रकार है—

नारक जीव के १ परभव की आयु के बधकाल के पूर्व नरकायु का उदय, नरकायु की सत्ता, २ परभव की आयु बध होने के समय तिर्यंचायु का बध, नरकायु का उदय, नरक-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ३ मनुष्यायु का बध, नरकायु का उदय, नरक-मनुष्यायु की सत्ता, ४ परभव की आयुबध के उत्तरकाल मे नरकायु का उदय और नरक-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा ५ नरकायु का उदय और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, यह पाच भग होते है। नारक जीव भवप्रत्यय से ही देव और नरकायु बध नही करते हैं अत परभव की आयु बधकाल मे और [illegible]ोत्तर काल मे देव और नरकायु का विकल्प सम्भव नही होने से [illegible] जीवो मे आयुकर्म के पाच विकल्प ही होते हैं।

इसी प्रकार देवो मे आयुकर्म के पाच विकल्प समझना चाहिये। किन्तु इतनी विशेपता है कि नरकायु के स्थान पर देवायु कहना चाहिये। जैसे कि देवायु का उदय और देवायु की सत्ता इत्यादि।

तिर्यंचो के नौ विकल्प इस प्रकार हैं कि १ तिर्यचायु का उदय, तिर्यचायु की सत्ता, यह विकल्प परभव की आयु बधकाल के पूर्व होता है। २ परभव की आयु बधकाल मे नरकायु का बध, तिर्यंचायु का उदय, नरक तिर्यंच आयु की सत्ता अथवा ३ तिर्यचायु का बध, तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंच-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा ४ मनुष्यायु का बध, तिर्यंचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा ५ देवायु का वध, तिर्यंचायु का उदय और देव-तिर्यंचायु की सत्ता। परभवायु के बधोत्तर काल मे ६ तिर्यंचायु का उदय, नरक-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा ७ तिर्यंचायु का उदय, तिर्यंच-तिर्यच आयु की सत्ता अथवा ८ तिर्यंचायु का उदय, मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा ९ तिर्यंचायु का उदय, देव-तिर्यचायु की सत्ता। इस प्रकार सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच के आयुकर्म के ९ भग होते है।

इसी प्रकार मनुष्यो के भी नौ भग समझना चाहिये, लेकिन इतनी विशेपता है कि तिर्यंचायु के स्थान पर मनुष्यायु का विधान कर लेवे। जैसे कि मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता इत्यादि।

इस प्रकार नारक के ५, देव के ५, तिर्यच के ९ और मनुष्य के ९ विकल्पो का कुल जोड ५+५+९+९=२८ होता है। इसीलिये पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे आयुकर्म के २८ भग माने जाते हैं।

सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव के दस भग है। सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव मनुप्य और तिर्यंच ही होते है, क्योकि देव और ना।

मे अपर्याप्त नाम कर्म का उदय नही होता है तथा इनके परभव सबधी मनुष्यायु तथा तिर्यंचायु का ही बन्ध होता है, अत: इनके मनुष्यगति की अपेक्षा ५ और तिर्यचगति की अपेक्षा ५ भग, इस प्रकार कुल दस भग होते है। जैसे कि तिर्यचगति की अपेक्षा १ आयुबध के पहले तिर्यचायु का उदय और तिर्यंचायु की सत्ता २ आयुबध के समय तिर्यंचायु का बध, तिर्यचायु का उदय और तिर्यंच-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ३ मनुष्यायु का बध, तिर्यंचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता, ४ बध की उपरति होने पर तिर्यचायु का उदय और तिर्यंच-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा ५ तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता। कुल मिलाकर ये पाँच भग हुए।

इसी प्रकार मनुष्यगति की अपेक्षा भी पाँच भग समझना चाहिये, लेकिन तिर्यचायु के स्थान पर मनुष्यायु को रखे। जैसे कि आयु बध के पहले मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता आदि।

पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय जीव तिर्यच ही होता है और उसके चारो आयुओ का बध सम्भव है, अत यहाँ आयु के वे ही नौ भग होते है जो सामान्य तिर्यंचो के बतलाये है।

इस प्रकार से तीन जीवस्थानो मे आयुकर्म के भगो को बतलाने के बाद शेष रहे ग्यारह जीवस्थानो के भगो के बारे मे कहते है कि उनमे से प्रत्येक मे पाँच-पाँच भग होते है। क्योकि शेष ग्यारह जीवस्थानो के जीव तिर्यंच ही होते है और उनके देवायु व नरकायु का बध नही होता है, अत सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यचो के जो पाँच भग बतलाये है, वे ही यहाँ जानना चाहिये कि बधकाल से पूर्व का एक भग, बधकाल के समय के दो भग और उपरत बधकाल के दो भग। इस प्रकार शेप ग्यारह जीवस्थानो मे पाँच भग होते है।

चौदह जीवस्थानो मे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अतराय, इन छह कर्मो के भगो का विवरण इस प्रकार है—

क्रम	जीवस्थान	ज्ञाना-वरण	दर्शना वरण	वेदनीय	आयु	गोत्र	अतराय
१	एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
२	एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
३	एकेन्द्रिय वादर अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
४	एकेन्द्रिय वादर पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
५	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
६	द्वीन्द्रिय पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
७	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
८	त्रीन्द्रिय पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
६	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
१०	चतुरिन्द्रिय पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
११	असज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
१२	असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त	१	२	४	६	३	१
१३	सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	१०	३	१
१४	सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त	२	११	८	२८	७	३

छह कर्मों के जीवस्थानो मे भगो को वतलाने के वाद अव 'मोह पर वोच्छ'—मोहनीय कर्म के भगो को वतलाते हैं।

अट्ठसु पचसु एगे एग दुगं दस य मोहवंधगए।
तिग चउ नव उदयगए तिग तिग पन्नरस संतम्मि ॥३६॥

शब्दार्थ—**अट्ठसु**—आठ जीवस्थानो मे, **पंचसु**—पाँच जीवस्थानो मे, **एगे**—एक जीवस्थान मे, **एग**—एक, **दुगं**—दो, **दस**—दस, **य**—और, **मोहबधगए**—मोहनीय कर्म के बधगत स्थानो मे, **तिग चउ नव**—तीन चार और नौ, **उदयगए**—उदयगत स्थान, **तिग तिग पन्नरस**—तीन, तीन और पन्द्रह, **सतम्मि**—सत्ता के स्थान।

गाथार्थ—आठ, पाँच और एक जीवस्थान मे मोहनीय कर्म के अनुक्रम से एक, दो और दस बधस्थान, तीन, चार और नौ उदयस्थान तथा तीन, तीन और पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—इस गाथा मे मोहनीय कर्म के जीवस्थानो मे बध, उदय और सत्ता स्थान बतलाये है और जीवस्थानो तथा बधस्थानो, उदयस्थानो तथा सत्तास्थानो की सख्या का सकेत किया है कि कितने जीवस्थानो मे मोहनीय कर्म के कितने बधस्थान है, कितने उदयस्थान हैं और कितने सत्तास्थान है। परन्तु यह नही बताया है कि वे कौन-कौन होते है। अत इसका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

आठ, पाँच और एक जीवस्थान मे यथाक्रम से एक, दो और दस बधस्थान है। अर्थात् आठ जीवस्थानो मे एक बधस्थान है, पाँच जीवस्थानो मे दो बधस्थान है और एक जीवस्थान मे दस बधस्थान है। इनमे से पहले आठ जीवस्थानो मे एक बधस्थान होने को स्पष्ट करते है कि पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय और अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय, इन आठ जीवस्थानो मे पहला मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है अत इनके एक २२ प्रकृतिक बधस्थान होता है। वे २२ प्रकृतियाँ इस प्रकार है—मिथ्यात्व, अनन्तानुबधी कपाय चतुष्क आदि सोलह कपाय, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, हास्य-रति और शोक-अरति युगल मे से कोई

एक युगल, भय और जुगुप्सा। इस बधस्थान मे तीन वेद और दो युगलो की अपेक्षा छह भग होते हैं।

पाँच जीवस्थानो मे दो बधस्थान इस प्रकार जानना चाहिये कि पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त द्वीन्द्रिय, पर्याप्त त्रीन्द्रिय, पर्याप्त चतुरिन्द्रिय और पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय, इन पाँच जीवस्थानो मे २२ प्रकृतिक और २१ प्रकृतिक, यह दो बधस्थान होते हैं। बाईस प्रकृतियो का नामोल्लेख पूर्व मे किया जा चुका है और उसमे से मिथ्यात्व को कम कर देने पर २१ प्रकृतिक बधस्थान हो जाता है। इनके मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है इसलिये तो इनके २२ प्रकृतिक बधस्थान कहा गया है तथा सासादन सम्यग्दृष्टि जीव मर कर इन जीवस्थानो मे भी उत्पन्न होते है, इसलिये इनके २१ प्रकृतिक बध-स्थान बतलाया है। इनमे से २२ प्रकृतिक बधस्थान के ६ भग हैं जो पहले बतलाये जा चुके है और २१ प्रकृतिक बधस्थान के ४ भग होते हैं। क्योकि नपुसकवेद का बध मिथ्यात्वोदय निमित्तिक है और यहाँ मिथ्यात्व का उदय न होने से नपुसकवेद का भी बध न होने से शेष दो वेद—पुरुष और स्त्री तथा दो युगलो की अपेक्षा चार भग ही सभव है।

अब रहा एक सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान, सो इसमे २२ प्रकृ-तिक आदि मोहनीय के दस बधस्थान होते हैं। उक्त दस बधस्थानो की प्रकृति सख्या मोहनीय कर्म के बधस्थानो के प्रसग मे बतलाई जा चुकी है, जो वहाँ से समझ लेना चाहिये।

अब जीवस्थानो मे मोहनीय कर्म के उदयस्थान बतलाते हैं कि 'तिग चउ नव उदयगए'—आठ जीवस्थानो मे तीन, पाँच जीवस्थानो मे चार और एक जीवस्थान मे नौ उदयस्थान हैं। पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि आठ जीवस्थानो मे आठ, नौ और दस प्रकृतिक, यह

तीन उदयस्थान है। वे इस प्रकार जानना चाहिये कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे अनन्तानुबधी चतुष्क मे से किसी एक के उदय के बिना ७ प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है, परन्तु वह इन आठ जीवस्थानो मे नही पाया जाता है। क्योकि जो जीव उपशमश्रेणि से च्युत होकर क्रमश मिथ्यादृष्टि होता है उसी के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे एक आवली काल तक मिथ्यात्व का उदय नही होता, परन्तु इन जीवस्थान वाले जीव तो उपशमश्रेणि पर चढते ही नही हैं, अत इनको सात प्रकृतिक उदयस्थान सभव नही है।

उक्त आठ जीवस्थानो मे नपुसकवेद, मिथ्यात्व, कषाय चतुष्क और दो युगलो मे से कोई एक युगल, इस तरह आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस उदयस्थान मे आठ भग होते हैं, क्योकि इन जीवस्थानो मे एक नपुसकवेद का ही उदय होता है, पुरुषवेद और स्त्रीवेद का नही, अत यहाँ वेद का विकल्प तो सभव नही किन्तु यहाँ विकल्प वाली प्रकृतियाँ क्रोध आदि चार कषाय और दो युगल हैं, सो उनके विकल्प से आठ भग होते है।

इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा को विकल्प से मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ एक-एक विकल्प के आठ-आठ भग होते है अत आठ को दो से गुणित करने पर सोलह भग होते है। अर्थात् नौ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भग है। आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह एक ही प्रकार का है, अत पूर्वोक्त आठ भग ही होते है। इस प्रकार तीनो उदयस्थानो के कुल ३२ भग हुए, जो प्रत्येक जीवस्थान मे अलग-अलग प्राप्त होते है।

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय आदि पाच जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे चार-चार उदयस्थान है—सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक। सो

इनमे से सासादन भाव के काल मे २१ प्रकृतिक वधस्थान मे ८, ९ और १०, ये तीन-तीन उदयस्थान होते है तथा २२ प्रकृतिक वधस्थान मे ८, ९ और १० ये तीन-तीन उदयस्थान होते हैं। इन जीवस्थानो मे भी एक नपुसकवेद का ही उदय होता है अत यहाँ भी ७, ८ और ९ और १० प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमश ८, १६ और ८ भग होते हैं तथा इसी प्रकार ८, ९ और १० प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमश ८, १६ और ८ भग होगे, किन्तु चूर्णिकार का मत है[1] कि असज्ञी लब्धिपर्याप्त के यथायोग्य तीन वेदो मे से किसी एक वेद का उदय होता है। अत इस मत के अनुसार असज्ञी लब्धिपर्याप्त के सात आदि उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे आठ भग न होकर २४ भग होते हैं।

पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे ९ उदयस्थान है, जिनका उल्लेख मोहनीय कर्म के उदयस्थानो के प्रसग मे किया जा चुका है। अत उनको वहाँ से जान लेवें।

जीवस्थानो मे मोहनीय कर्म के सत्तास्थान इस प्रकार जानना चाहिये कि 'तिग तिग पन्नरस सतम्मि' अर्थात् आठ जीवस्थानो मे तीन, पाच जीवस्थानो मे तीन और एक जीवस्थान मे १५ होते हैं। पूर्वोक्त आठ जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। क्योकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में इन तीन के अलावा और सत्तास्थान नही पाये जाते हैं। इसी प्रकार से पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय आदि पाच जीवस्थानो मे भी २८, २७ और २६ प्रकृतिक सत्तास्थान समझना चाहिये और एक पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मे सभी १५ सत्तास्थान हैं। क्योकि इस जीवस्थान मे सभी गुणस्थान होते हैं।

---

१ एवकेक्कमि उदयम्मि नपुसकवेदेण वेद अट्ठ-अट्ठ भगा। केसा न ममवति असन्नि पज्जत्तगस्स तिहि वि वेदेहि उदावेयज्जा।

इस प्रकार से जीवस्थानो मे पृथक्-पृथक् उदय और सत्तास्थानो का कथन करने के अनन्तर अब इनके सवेध का कथन करते हैं—आठ जीवस्थानो मे एक २२ प्रकृतिक बधस्थान होता है और उसमे ८, ९ और १० प्रकृतिक, यह तीन उदयस्थान होते है तथा प्रत्येक उदयस्थान मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक सत्तास्थान है। इस प्रकार आठ जीवस्थानो मे से प्रत्येक के कुल नौ भग हुए। पॉच जीवस्थानो मे २२ प्रकृतिक और २१ प्रकृतिक, ये दो बधस्थान है और इनमे से २२ प्रकृतिक बधस्थान मे ८, ९ और १० प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते है और प्रत्येक उदयस्थान मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं। इस प्रकार कुल नौ भग हुए। २१ प्रकृतिक बधस्थान मे ७, ८ और ९ प्रकृतिक, तीन उदयस्थान है और प्रत्येक उदयस्थान मे २८ प्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है। इस प्रकार २१ प्रकृतिक बधस्थान मे तीन उदयस्थानो की अपेक्षा तीन सत्तास्थान है। दोनो बधस्थानो की अपेक्षा यहॉ प्रत्येक जीवस्थान मे १२ भग है।

२१ प्रकृतिक बधस्थान मे २८ प्रकृतिक एक सत्तास्थान मानने का कारण यह है कि २१ प्रकृतिक बधस्थान सासादन गुणस्थान मे होता है और सासादन गुणस्थान २८ प्रकृतिक सत्ता वाले जीव को ही होता है, क्योकि सासादन सम्यग्दृष्टियो के दर्शनमोहत्रिक की सत्ता पाई जाती है। इसीलिये २१ प्रकृतिक बधस्थान मे २८ प्रकृतिक सत्तास्थान माना जाता है।[1]

एक सज्ञी पर्याप्त पचेन्द्रिय जीवस्थान मे मोहनीय कर्म के बध आदि स्थानो के सवेध का कथन जैसा पहले किया गया है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिये।

---

१ एकविंशतिबन्धो हि सासादनभावमुपागतेषु प्राप्यते, सासादनाश्चावश्यमष्टाविंशतिसत्कर्माण, तेषा दर्शनत्रिकस्य नियमतो भावात्, ततस्तेपु सत्तास्थानमष्टाविंशतिरेव। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २००

जीवस्थानो मे मोहनीय कर्म के सवेध भगो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

क्रम स०	जीवस्थान	बध-स्थान	भग	उदयस्थान	भग	उदय-पद	पदवृन्द	सत्तास्थान
१	सू. ए अ	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
२	सू ए प	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
३	बा ए अ	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
४	बा ए प	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८
५	द्वी अप	२२	६	८,९,१०	३२	३८	२८८	२८,२७,२६
६	द्वी पर्या	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८
७	त्री अप.	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
८	त्री पर्या	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८,२७,२६
९	चतु अप	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
१०	चतु पर्या	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८
११	असं प अ	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
१२	असं प प	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८
१३	स प अप	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
१४	स प पर्या	सब	२१	सब	९८३	२८८	६९४७	सब

जीवस्थानो मे मोहनीय कर्म के बधादि स्थानो व सवेध भगो को बतलाने के बाद अब नामकर्म के भगो को बतलाते है—

पण दुग पणगं पण चउ पणगं पणगा हवंति तिन्नेव ।
पण छप्पणगं छच्छप्पणग अट्ठऽट्ठ दसगं ति ॥३७॥
सत्तेव अपज्जत्ता सामी तह सुहुम बायरा चेव ।
विगलिंदिया उ तिन्नि उ तह य असन्नी य सन्नी य ॥३८॥

शब्दार्थ—**पण दुग पणगं**—पाँच, दो, पाँच, **पण चउ पणग**—पांच, चार, पाँच, **पणगा**—पाँच-पाँच, **हवति**—होते हैं, **तिन्नेव**—तीनो ही (वध, उदय और सत्तास्थान), **पण छप्पणगं**—पाँच, छह, पांच, **छच्छप्पणग**—छह, छह, पाँच, **अट्ठऽट्ठ**—आठ, आठ, **दसग**—दस, **ति**—इस प्रकार ।

सत्तेव—सातो ही, **अपज्जत्ता**—अपर्याप्त, **सामी**—स्वामी, **तह**—तथा, **सुहुम**—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, **बायरा**—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, **चेव**—और, **विगलिंदिया**—विकलेन्द्रिय पर्याप्त, **तिन्नि**—तीन, **तह**—वैसे ही, **य**—और, **असन्नी**—असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त, **सन्नी**—सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त ।

गाथार्थ—पाच, दो, पाँच, पाँच, चार, पाँच, पाँच, पाँच, पाँच, पाँच, छह, पाँच, छह, छह, पाँच और आठ, आठ, दस, ये बध, उदय और सत्तास्थान हैं ।

इनके क्रम से सातो अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, विकलत्रिक पर्याप्त, असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त और सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वामी जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओ मे जीवस्थानो मे नामकर्म के भगो का विचार किया गया है । पहली गाथा मे तीन-तीन सख्याओ का एक पुज लिया गया है, जिसमे से पहली सख्या बधस्थान की, दूसरी

सख्या उदयस्थान की और तीसरी सख्या सत्तास्थान की द्योतक है। गाथा मे सख्या के ऐसे कुल छह पुज है। दूसरी गाथा मे चौदह जीवस्थानो को छह भागो मे विभाजित किया गया है। जिसका यह तात्पर्य हुआ कि पहले भाग के जीवस्थान पहले पुज के स्वामी दूसरे भाग के जीवस्थान दूसरे पुज के स्वामी है इत्यादि।

यद्यपि गाथागत सकेत से इतना तो जान लिया जाता है कि अमुक जीवस्थान मे इतने बधस्थान, इतने उदयस्थान और इतने सत्तास्थान है, किन्तु वे कौन-कौनसे है और उनमे कितनी-कितनी प्रकृतियो का ग्रहण किया गया है, यह ज्ञात नही होता है। अत यहाँ उन्ही का भगो के साथ आचार्य मलयगिरि कृत टीका के अनुसार विस्तार से विवेचन किया जाता है।

'पण दुग पणग सत्तेव अपज्जत्ता' दोनो गाथाओ के पदो को यथाक्रम से जोडने पर यह एक पद हुआ। जिसका यह अर्थ हुआ कि चौदह जीवस्थानो मे से सात अपर्याप्त जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे पाँच बधस्थान, दो उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण यह है कि सात प्रकार के अपर्याप्त जीव मनुष्यगति और तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियो का बध करते हैं, देवगति और नरकगति के योग्य प्रकृतियो का नही, अत इन सात अपर्याप्त जीवस्थानो मे २८, ३१ और १ प्रकृतिक बधस्थान न होकर २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच बधस्थान होते हैं और इनमे भी मनुष्यगति तथा तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियो का ही बध होता है। इन बधस्थानो का विशेष विवेचन नामकर्म के बधस्थान बतलाने के अवसर पर किया गया है, अत वहाँ से समझ लेना चाहिये। यहाँ सब बधस्थानो के मिलाकर प्रत्येक जीवस्थान मे १३९१७ भग होते है।

इन सात जीवस्थानों मे दो उदयस्थान हैं—२१ और २४ प्रकृतिक। सो इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, बादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति और निर्माण इन २१ प्रकृतियो का उदय होता है। यह उदयस्थान अपान्तराल गति मे पाया जाता है। यहाँ भग एक होता है क्योकि यहाँ परावर्तमान शुभ प्रकृतियो का उदय नही होता है।

अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव को भी यही उदयस्थान होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उसके बादर के स्थान मे सूक्ष्म प्रकृति का उदय कहना चाहिए। यहाँ भी एक भग होता है।

इस २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिकशरीर, हुडसस्थान, उपघात और प्रत्येक व साधारण मे से कोई एक, इन चार प्रकृतियो को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी इस प्रकृति को घटा देने पर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जो दोनो सूक्ष्म व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवस्थानो मे समान रूप से सम्भव है। यहाँ सूक्ष्म अपर्याप्त और बादर अपर्याप्त मे से प्रत्येक के साधारण और प्रत्येक नामकर्म की अपेक्षा दो-दो भग होते है। इस प्रकार दो उदयस्थानो की अपेक्षा दोनो जीवस्थानो मे से प्रत्येक के तीन-तीन भग होते है।

विकलेन्द्रियत्रिक अपर्याप्त, असज्ञी अपर्याप्त और सज्ञी अपर्याप्त, इन पाँच जीवस्थानो मे २१ और २६ प्रकृतिक, यह दो उदयस्थान होते हैं। इनमे से अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क, द्वीन्द्रिय जाति, त्रस, वादर, अपर्याप्त, .थर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति और निर्माण यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जो अपान्तराल गति मे

विद्यमान जीव के ही होता है, अन्य के नही। यहाँ सभी प्रकृतियाँ अप्रशस्त हैं, अत एक ही भग जानना चाहिये।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय आदि जीवस्थानो मे भी यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान और १ भग जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रत्येक जीवस्थान मे द्वीन्द्रिय जाति न कहकर त्रीन्द्रिय जाति आदि अपनी-अपनी जाति का उदय कहना चाहिये।

अनन्तर २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीरस्थ जीव के औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, हुडसस्थान, सेवार्त सहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियो के मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी के निकाल देने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी एक ही भग होता है। इस प्रकार अपर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि प्रत्येक जीवस्थान मे दो-दो उदयस्थानो की अपेक्षा दो-दो भग होते हैं।

लेकिन अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान इसका अपवाद है। क्योकि अपर्याप्त सज्ञी जीवस्थान तिर्यंचगति और मनुष्यगति दोनो मे होता है। अत यहाँ इस अपेक्षा से चार भग प्राप्त होते हैं।[1]

इन सात जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं। अपर्याप्त अवस्था मे तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता सम्भव नही है अत इन सातो जीवस्थानो मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान नही होते है किन्तु मिथ्यादृष्टि गुणस्थान सम्बन्धी शेष सत्तास्थान सम्भव होने से उक्त पाँच सत्तास्थान कहे है।

इस प्रकार से सात अपर्याप्त जीवस्थानो मे नामकर्म के बधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान जानना चाहिये। अब इसके अनन्तर 'पण

---

१ केवलमपर्याप्तसज्ञिनश्चत्वार, यतो द्वौ भगावपर्याप्तसज्ञिनस्तिरश्च प्राप्येते, द्वौ चापर्याप्तसज्ञिनो मनुष्यस्येति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०१

चउ पणग' और 'सुहुम' पद का सम्बन्ध करते है। जिसका अर्थ यह है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे पॉच बधस्थान है, चार उदयस्थान है और पाँच सत्तास्थान है। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी मरकर मनुष्य और तिर्यंचगति मे ही उत्पन्न होता है, जिससे उसके उन गतियो के योग्य कर्मो का बध होता है। इसीलिए इसके भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पॉच बधस्थान माने गये है। इन पॉच बधस्थानो के मानने के कारणो को पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है। यहाँ भी इन पाँचो स्थानो के कुल भग १३९१७ होते है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। क्योकि इन सूक्ष्म जीवो के आतप और उद्योत नामकर्म का उदय नही होता है। इसीलिये २७ प्रकृतिक उदयस्थान छोड दिया गया है।

२१ प्रकृतिक उदयस्थान मे वे ही प्रकृतियाँ लेनी चाहिये, जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवो को बतला आये है। लेकिन इतनी विशेषता है कि यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान विवक्षित होने से अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त का उदय कहना चाहिये। यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान, अपान्तराल गति मे होता है। प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ न होने से इसमे एक ही भग होता है।

उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिक शरीर, हुड-सस्थान, उपघात तथा साधारण और प्रत्येक मे से कोई एक प्रकृति, इन चार प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता हे। यह उदयस्थान शरीरस्थ जीव को होता है। यहाँ प्रत्येक और साधारण के विकल्प से दो भग होते है।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा २४ प्रकृतिक

उदयस्थान मे पराघात को मिला देने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी २४ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह वे ही दो भग होते है।

उक्त २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा उच्छ्वास प्रकृति को मिलाने से २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त दो भग होते है। इस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे चार उदयस्थान और उनके सात भग होते हैं।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे सत्तास्थान बतलाते है। इस जीवस्थान मे पाँच सत्तास्थान बतलाये है। वे पाँच सत्तास्थान ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक है। तिर्यंचगति मे तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नही होती है। इसलिए ९३ और ८९ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान सभव नही होने से ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक पाँच सत्तास्थान पाये जाते हैं। फिर भी जब साधारण प्रकृति के उदय के साथ २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थान लिये जाते है तब इस भग मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान सम्भव नही हैं। क्योकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को छोडकर शेप सब जीव शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का नियम से बन्ध करते है और २५ व २६ प्रकृतिक उदयस्थान शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीवो के ही होते हैं। अत साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के २५ और २६ उदयस्थान रहते ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता है। शेप चार सत्तास्थान ९२, ८८, ८६ और ८० प्रकृतिक होते हैं।

लेकिन जब प्रत्येक प्रकृति के साथ २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थान लिये जाते हैं तब प्रत्येक मे अग्निकायिक और वायुकायिक जीव भी शामिल हो जाने से २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान भी बन जाता है।

इस प्रकार उक्त कथन का साराश यह हुआ कि २१ और २४ प्रकृतिक मे से प्रत्येक उदयस्थान मे तो पॉच-पॉच सत्तास्थान होते है और २५ व २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे एक अपेक्षा से चार-चार और एक अपेक्षा से पॉच-पॉच सत्तास्थान होते है। अपेक्षा का कारण साधारण व प्रत्येक प्रकृति है। जिसका स्पष्टीकरण ऊपर किया गया है।

अब गाथा मे निर्दिष्ट क्रमानुसार बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे बधादि स्थानो को बतलाते है कि 'पणगा हवति तिन्नेव' का सम्बन्ध "बायरा" से जोडे। जिसका अर्थ यह हुआ कि बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे पाँच बधस्थान, पॉच उदयस्थान और पॉच सत्तास्थान होते है। जिनका विवरण नीचे लिखे अनुसार है—

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी मनुष्यगति और तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियो का बध करता है। इसलिए उसके भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच बधस्थान होते है और तदनुसार इनके कुल भग १३९१७ होते है।

उदयस्थानो की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ पर भी एकेन्द्रिय सम्बन्धी पाँच उदयस्थान २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक होते हैं। क्योकि सामान्य से अपान्तराल गति की अपेक्षा २१ प्रकृतिक, शरीरस्थ होने की अपेक्षा २४ प्रकृतिक, शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने की अपेक्षा २५ प्रकृतिक और प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त होने की अपेक्षा २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान तो पर्याप्त एकेन्द्रिय को नियम से होते ही है। किन्तु यह बादर एकेन्द्रिय है अत यहाँ आतप और उद्योत नाम मे से किसी एक का उदयस्थान और सभव है, जिससे २७ प्रकृतिक उदयस्थान भी बन जाता है। इसीलिये बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान माने गये हैं।

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ६१ प्रकृतियाँ इस प्रकार है—तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, वादर, पर्याप्त, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, दुर्भग, अनादेय, यश कीर्ति और अयश-कीर्ति मे से कोई एक। इस उदयस्थान मे यश कीर्ति और अयश कीर्ति का उदय विकल्प से होता है। अत इस अपेक्षा से यहाँ २१ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भग होते है।

उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीरस्थ जीव की अपेक्षा औदारिक शरीर, हुडसस्थान, उपघात तथा प्रत्येक और साधारण मे से कोई एक, इन चार प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ प्रत्येक-साधारण और यश कीर्ति-अयश कीर्ति का विकल्प से उदय होने के कारण चार भग होते हैं। किन्तु इतनी विशेपता है कि शरीरस्थ विक्रिया करने वाले वादर वायुकायिक जीवो के साधारण और यश कीर्ति नामकर्म का उदय नही होता है, इसलिये वहाँ एक ही भग होता है। दूसरी विशेपता यह है कि ऐसे जीवो के औदारिक शरीर का उदय न होकर वैक्रिय शरीर का उदय होता है, अत इनके औदारिक शरीर के स्थान पर वैक्रिय शरीर कहना चाहिए।[1] इस प्रकार २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल पांच भग हुए।

अनन्तर २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे पराघात प्रकृति को मिलाने से २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान शरीर पर्याप्ति से

---

१ वैक्रिय कुर्वत पुनर्वादरवायुकायिकस्यैक, यतस्तस्य साधारण-यश कीर्ती उदय नागच्छत, अन्यच्च वैक्रियवायुकायिकचतुर्विंशतावौदारिकशरीर-स्थाने वैक्रियशरीरमिति वक्तव्यम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०२

पर्याप्त हुए जीव को होता है । यहाँ भी २४ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह पाँच भङ्ग होते है ।

यदि शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के आतप और उद्योत मे से किसी एक का उदय हो जावे तो २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे आतप और उद्योत मे से किसी एक को मिलाने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । किन्तु आतप का उदय साधारण को नही होता है, अत इस पक्ष मे २६ प्रकृतिक उदयस्थान के यश'कीर्ति और अयश - कीर्ति की अपेक्षा दो भग होते है । लेकिन उद्योत का उदय साधारण और प्रत्येक, इनमे से किसी के भी होता है अत इस पक्ष मे साधारण और प्रत्येक तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति, इनके विकल्प से चार भग होते है । इस प्रकार २६ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ५+२+४= ११ भग हुए ।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा उच्छ्वास सहित २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता हे । यहाँ भी पहले के समान आतप के साथ दो भङ्ग और उद्योत के साथ चार भङ्ग, इस प्रकार कुल छह भङ्ग हुए ।

इन पाँचो उदयस्थानो के भङ्ग जोडने पर वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के कुल भङ्ग २९ होते है ।

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते है । इस जीवस्थान मे जो पाँचो उदयस्थानो के २९ भङ्ग वतलाये है, उनमे से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग, २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे वैक्रिय वादर वायुकायिक के एक भङ्ग को छोडकर शेष चार भङ्ग तथा २५ और २६ प्रकृतिक स्थानो मे प्रत्येक नाम और अयश कीर्ति नाम के साथ प्राप्त होने

वाला एक-एक भङ्ग, इस प्रकार इन आठ भङ्गो मे से प्रत्येक मे उपर्युक्त पाँचो सत्तास्थान होते हैं किन्तु शेष २१ मे से प्रत्येक भङ्ग मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोडकर शेष चार-चार सत्तास्थान होते हैं।

अब गाथा मे किये गये निर्देशानुसार पर्याप्त विकलेन्द्रियो मे बधादि स्थानो और उनके यथासम्भव भङ्गो को बतलाते हैं। गाथाओ मे निर्देश है 'पण छप्पणग विगलिंदिया उ तिन्नि उ'। अर्थात् विकलत्रिक—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्तो मे पाँच बधस्थान, छह उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान है। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि—विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी तिर्यंचगति और मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियो का ही बध करते हैं। अत इनके भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पांच बधस्थान होते है और तदनुसार इनके कुल भङ्ग १३९१७ होते है।

उदयस्थानो की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है। इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे—तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय और यश कीर्ति व अयश कीर्ति मे से कोई एक—इस प्रकार २१ प्रकृतियो का उदय होता है जो अपान्तराल गति मे पाया जाता है। इसके यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से दो भङ्ग होते है।

अनन्तर शरीरस्थ जीव की अपेक्षा २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, हुडसस्थान, सेवार्त सहनन, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने से २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी २१ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह दो भङ्ग जानना चाहिये।

इस २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा पराघात और अप्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियो को मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी पूर्ववत् दो भङ्ग होते है।

२८ प्रकृतिक उदयस्थान के अनन्तर २९ प्रकृतिक उदयस्थान का क्रम है। यह २९ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है—एक तो जिसने प्राणापान पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत के बिना केवल उच्छ्वास का उदय होने पर और दूसरा शरीर पर्याप्ति की प्राप्ति होने के पश्चात् उद्योत का उदय होने पर।[1] इन दोनो मे से प्रत्येक स्थान मे पूर्वोक्त दो-दो भङ्ग प्राप्त होते है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल चार भङ्ग हुए।

इसी प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान भी दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो जिसने भाषा पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत का उदय न होकर सुस्वर और दु स्वर इन दो प्रकृतियो मे से किसी एक का उदय होने पर होता है और दूसरा जिसने श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को प्राप्त किया और अभी भाषा पर्याप्ति की प्राप्ति नही हुई किन्तु इसी बीच मे उसके उद्योत प्रकृति का उदय हो गया तो भी ३० प्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है। इनमे से पहले प्रकार के ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे यश कीर्ति और अयश कीर्ति तथा सुस्वर और दु स्वर के विकल्प से चार भङ्ग प्राप्त होते है। किन्तु दूसरे प्रकार के ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से दो ही भङ्ग होते है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे छह भङ्ग प्राप्त हुए।

---

१ तत प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्, अत्रापि तावेव द्वौ भङ्गौ, अथवा तस्यामेवाप्टा विंशतौ उच्छ्वासेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते एकोनत्रिंशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०३

ऊपर जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान के दो प्रकार बतलाये हैं उसमे से यदि जिसने भाषा पर्याप्ति को भी प्राप्त कर लिया और उद्योत का भी उदय है, उसको ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ यश-कीर्ति और अयश कीर्ति तथा दोनो स्वरो के विकल्प से चार भङ्ग होते है। इस प्रकार पर्याप्त द्वीन्द्रिय के सब उदयस्थानो के कुल भङ्ग २० होते हैं।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे भी एकेन्द्रिय के समान ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते है। पहले जो छह उदय-स्थानो के २० भङ्ग बतलाये है उनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग, इन चार भङ्गो मे से प्रत्येक भङ्ग मे पाँच-पाँच सत्तास्थान होते है क्योकि ७८ प्रकृतियो की सत्ता वाले जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीव पर्याप्त द्वीन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं, उनके कुछ काल तक ७८ प्रकृतियो की सत्ता सभव है तथा उस काल मे द्वीन्द्रियो के क्रमश २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थान ही होते है। इसीलिये इन दो उदयस्थानो के चार भङ्गो मे से प्रत्येक भङ्ग मे उक्त पाँच सत्तास्थान कहे हैं तथा इन चार भङ्गो के अतिरिक्त जो शेष १६ भङ्ग रह जाते है, उनमे से किसी मे भी ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान न होने से प्रत्येक मे चार-चार सत्ता-स्थान होते है। क्योकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के सिवाय शेष जीव शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने के पश्चात् नियम से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का बध करते है, जिससे उनके ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नही पाया जाता है।

पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो की तरह त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवो को भी बधादि स्थानो और उनके भङ्गो को जानना चाहिये। इतनी विशेषता जानना चाहिये कि उदयस्थानो मे द्वीन्द्रिय के स्थान पर त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का उल्लेख कर दिया जाये।

अब क्रमप्राप्त असज्ञी पर्याप्त जीवस्थान मे बधादि स्थानो और उनके भङ्गो का निर्देश करते है। इसके लिये गाथाओ मे निर्देश किया है—'छच्छप्पणग' 'असन्नी य' अर्थात् असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के छह बधस्थान हैं, छह उदयस्थान है और पॉच सत्तास्थान है। जिनका विवेचन यह है कि असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव मनुष्यगति और तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियो का बध करते ही है, किन्तु नरकगति और देवगति के योग्य प्रकृतियो का भी बध कर सकते हैं। इसलिये इनके २३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक ये छह बधस्थान होते है और तदनुसार १३९२६ भङ्ग होते है।

उदयस्थानो की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान है। इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यंचगति, तिर्यचानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, आदेय और अनादेय मे से कोई एक तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से एक, इन २१ प्रकृतियो का उदय होता है। यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान अपान्तरालगति मे ही पाया जाता है तथा सुभग आदि तीन युगलो मे से प्रत्येक प्रकृति के विकल्प से ८ भङ्ग प्राप्त होते हैं।

अनन्तर जब यह जीव शरीर को ग्रहण कर लेता है तब औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, छह सस्थानो मे से कोई एक सस्थान, छह सहननो मे से कोई एक सहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियो का उदय होने लगता है। किन्तु यहाँ आनुपूर्वी नामकर्म का उदय नही होता है। अतएव उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे छह प्रकृतियो को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ छह सस्थान और छह सहननो

की अपेक्षा सुभगत्रिक की अपेक्षा से पूर्वोक्त ८ भङ्गो मे दो बार छह से गुणित कर देने पर ८×६×६=२८८ भङ्ग प्राप्त होते हैं।

अनतर इसके शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाने पर पराघात तथा प्रशस्त विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति मे से किसी एक का उदय और होने लगता है। अत २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे इन दो प्रकृतियो को और मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ दोनो विहायोगतियो के विकल्प की अपेक्षा भङ्गो के विकल्प पूर्वोक्त २८८ को दो से गुणा कर देने पर २८८×२=५७६ हो जाते हैं। २९ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है—एक तो जिसने आन-प्राण पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है उसके उद्योत के बिना केवल उच्छ्वास के उदय से प्राप्त होता है और दूसरा शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने पर उद्योत प्रकृति के उदय से प्राप्त होता है। इन दोनो स्थानो मे से प्रत्येक स्थान मे ५७६ भङ्ग होते हैं। अत २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ५७६×२=११५२ भङ्ग हुए।

३० प्रकृतिक उदयस्थान भी दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो जिसने भाषा पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया उसके उद्योत के बिना सुस्वर और दु स्वर प्रकृतियो मे से किसी एक प्रकृति के उदय से प्राप्त होता है और दूसरा जिसने श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया, उसके उद्योत का उदय हो जाने पर होता है। इनमे से पहले प्रकार के स्थान के पूर्वोक्त ५७६ भङ्गो को स्वरद्विक मे गुणित करने पर ११५२ भङ्ग प्राप्त होते है तथा दूसरे प्रकार के स्थान मे ५७६ भग ही होते हैं। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भग ११५२+५७६=१७२८ होते हैं।

अनन्तर जिसने भाषा पर्याप्ति को भी पूर्ण कर लिया और उद्योत प्रकृति का भी उदय है उसके ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

यहाँ कुल भग ११५२ होते है। इस प्रकार असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के सब उदयस्थानो के कुल ४६०४ भङ्ग होते है।

असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे ६२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक ये पाच सत्तास्थान होते है। इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान के ८ भङ्ग तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान के २८८ भङ्ग, इनमे से प्रत्येक भङ्ग मे पूर्वोक्त पाँच-पॉच सत्तास्थान होते है। क्योकि ७८ प्रकृतियो की सत्ता वाले जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीव हैं वे यदि असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तको मे उत्पन्न होते है तो उनके २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थान रहते हुए ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाना सभव है। किन्तु इनके अतिरिक्त शेष उदयस्थानो और उनके भङ्गो मे ७८ के बिना शेष चार-चार सत्तास्थान ही होते है।

इस प्रकार से अभी तक तेरह जीवस्थानो के नामकर्म के बधादि स्थानो और उनके भङ्गो का विचार किया गया। अब शेप रहे चौदहवें सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के बधादि स्थानो व भङ्गो का निर्देश करते हैं। इस जीवस्थान के बधादि स्थानो के लिये गाथा मे सकेत किया गया है—'अट्ठऽट्ठुदसग ति सन्नी य' अर्थात् सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे आठ बधस्थान, आठ उदयस्थान और दस सत्तास्थान है। जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नाम कर्म के २३, २५ २६, २८ २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक, ये आठ बधस्थान बतलाये हैं। ये आठो बधस्थान सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के होते है और उनके १३६४५ भङ्ग सभव हैं। क्योकि इनके चारो गति सम्बन्धी प्रकृतियो का बध सम्भव है, इसीलिये २३ प्रकृतिक आदि बधस्थान इनके कहे हैं। तीर्थंकर नाम और आहारकचतुष्क का भी इनके बध होता है इसीलिये ३१ प्रकृतिक बधस्थान कहा है। इस जीवस्थान मे उपशम और क्षपक दोनो श्रेणियाॅ पाई जाती हैं इसीलिये १ प्रकृतिक बधस्थान भी कहा है।

उदयस्थानों की अपेक्षा विचार करने पर और २०, ९ और ८ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान केवली सम्बन्धी हैं और २४ प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रियों को होता है अतः इस जीवस्थान में २०, २४, ९ और ८ प्रकृतिक, इन चार उदयस्थानों को छोड़कर शेष यह जीवस्थान बारहवें गुणस्थान तक ही पाया जाता है। २१, २५, २६, २७, २८, २९ ३०, ३१ प्रकृतिक ये आठ उदयस्थान पाये जाते हैं। इन आठ उदयस्थानों के कुल भंग ७६७१ होते हैं। क्योंकि १२ उदयस्थानों के कुल भंग ७७९१ हैं सो उनमें से १२० भंग कम हो जाते हैं, क्योंकि उन भंगों का संबंध संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव में नहीं है।

नामकर्म के सत्तास्थान १२ हैं, उनमें से ९ और ८ प्रकृतिक सत्तास्थान केवली के पाये जाते हैं, अतः वे दोनों संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में संभव नहीं होने से उनके अतिरिक्त ९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९ ७८, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये दस सत्तास्थान पाये जाते हैं।[1] २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानों के क्रमशः ८ और २८८ भंगों में से तो प्रत्येक भंग में ९२, ८८, ८६, ८० और ७६ प्रकृतिक, ये पांच-पांच सत्तास्थान ही पाये जाते हैं।

१ गो० कर्मकांड गाथा ६०९ में नामकर्म के ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिक ये १३ सत्तास्थान बतलाये हैं। इनमें से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में १० और ९ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेष ११ सत्तास्थान बतलाये हैं—दसणवपरिहीणसव्वयं सत्तं ॥७०९॥

श्वेताम्बर और दिगम्बर कर्मग्रन्थों में नामकर्म के निम्नलिखित सत्तास्थान समान प्रकृतिक हैं, ९३, ९२, ८८, ८०, ७९, ७८ और ९ प्रकृतिक और बाकी के सत्तास्थानों में प्रकृतियों की संख्या में भिन्नता है। श्वेताम्बर कर्मग्रन्थों में ८९, ८६, ७६, ७५ प्रकृतिक तथा दिगम्बर साहित्य में ९१, ९०, ८४, ८२, ७७, १० प्रकृतिक सत्तास्थान बतलाये हैं।

इस प्रकार चौदह जीवस्थानों मे बधादि स्थानो और उनके भगो का विचार किया गया। अब उनके परस्पर सवेध का विचार करते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवो के २३ प्रकृतिक बधस्थान मे २१ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी पाच सत्तास्थान होते हैं। कुल मिलाकर दोनो उदयस्थानो के १० सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार २५, २६, २९ और ३० प्रकृतियो का बध करने वाले उक्त जीवो के दो-दो उदयस्थानो की अपेक्षा दस-दस सत्तास्थान होते हैं। जो कुल मिलाकर ५० हुए। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि अन्य छह अपर्याप्तो के ५०–५० सत्तास्थान जानना किन्तु सर्वत्र अपने-अपने दो-दो उदयस्थान कहना चाहिये।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त के २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाच बधस्थान होते है और एक-एक बधस्थान मे २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है। अत· पाच को चार से गुणित करने पर २० हुए तथा प्रत्येक उदयस्थान मे पाच-पाच सत्तास्थान होते है अत· २० को ५ से गुणा करने पर १०० सत्तास्थान सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे होते है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त के भी पूर्वोक्त २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, पाच बधस्थान होते है और एक-एक बधस्थान मे २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पाच-पाच उदयस्थान होते है, अत· ५ को ५ से गुणा करने पर २५ हुए। इनमे से अन्तिम पाच उदयस्थानो मे ७८ के विना चार-चार सत्तास्थान होते है, जिनके कुल भग २० हुए और शेष २० उदयस्थानो मे पाच-पाच सत्तास्थान होते है, जिनके कुल भग १०० हुए। इस प्रकार यहाँ कुल भग १२० होते हैं।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त के २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाच

बंधस्थान होते हैं और प्रत्येक बंधस्थान में २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं। इनमें से २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानों में पांच-पांच सत्तास्थान हैं तथा शेष चार उदयस्थानों में ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान के सिवाय चार-चार सत्तास्थान हैं। ये कुल मिलाकर २६ सत्तास्थान हुए। इस प्रकार पांच बंधस्थानों के १३० भंग हुए।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त की तरह त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त के बंधस्थान आदि जानना चाहिये तथा उनके भी १३०, १३० भङ्ग होते हैं।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, इन पांच बंधस्थानों में से प्रत्येक बंधस्थान में विकलेन्द्रियों की तरह छब्बीस भङ्ग होते हैं जिनका योग १३० है। परन्तु २८ प्रकृतिक बंधस्थान में ३० और ३१ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान ही होते हैं। अतः यहां प्रत्येक उदयस्थान में ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। इनके कुल ६ भङ्ग हुए। यहां तीन सत्तास्थान होने का कारण यह है कि २८ प्रकृतिक बंधस्थान देवगति और नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध पर्याप्त के ही होता है।[1] इसी प्रकार असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में १३०+६=१३६ भङ्ग होते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के २३ प्रकृतिक बंधस्थान में जैसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के २६ सत्तास्थान बतलाये, वैसे यहां भी जानना

---

१ अष्टाविंशतिबंधकानां पुनस्तथा द्वे एवोदयस्थाने, तद्यथा—त्रिंशदेकत्रिंशच्च। तत्र प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानानि, तद्यथा—द्विनवतिः अष्टाशीतिः षडशीतिश्च। अष्टाविंशतिर्हि देवगतिप्रायोग्या नरकगतिप्रायोग्या वा, ततस्तस्यां बध्यमानायामवश्यं वैक्रियचतुष्टयादि बध्यते इत्यशीति-अष्टसप्तती न प्राप्येते।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०५

चाहिये। २५ प्रकृतिक बधस्थान मे २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान बतलाये है सो इनमे से २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे तो पाच-पाच सत्तास्थान होते है तथा २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान देवो के ही होते है, अत इनमे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। शेष रहे चार उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ७८ प्रकृतिक के बिना चार-चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार यहाँ कुल ३० सत्तास्थान होते है। २६ प्रकृतिक बधस्थान मे भी इसी प्रकार ३० सत्तास्थान होते है।

२८ प्रकृतिक बधस्थान मे आठ उदयस्थान होते है। इनमे से २१ २५, २६, २७, २८ और २९ प्रकृतिक इन छह उदयस्थानो मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२, ८८, ८६ और ८० प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये तीन सत्ता-स्थान होते है। इस प्रकार यहा कुल १९ सत्तास्थान होते हैं।

२९ प्रकृतिक बधस्थान मे ३० प्रकृतिक सत्तास्थान तो २५ प्रकृतियो का बध करने वाले के समान जानना किन्तु यहाँ कुछ विशेषता है कि जब अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करता है तब उसके २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है जिनका जोड १० हुआ।

इसी प्रकार विक्रिया करने वाले सयत और सयतासयत जीवो के भी २९ प्रकृतिक बधस्थान के समय २५ और २७ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते है। जिनका जोड ४ होता है अथवा आहारक सयत के भी इन दो उदयस्थानो मे ९३ प्रकृतियो की सत्ता होती है और तीर्थंकर ... की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा ८९ की सत्ता होती है। इस

प्रकार उन १८ सत्तास्थानो को पहले के ३० सत्तास्थानो मे मिला देने पर २६ प्रकृतिक बंधस्थान मे कुल ४८ सत्तास्थान होते हैं।

इसी प्रकार ३० प्रकृतिक बन्धस्थान मे भी २५ प्रकृतिक बन्धस्थान के समान ३० सत्तास्थानो को ग्रहण करना चाहिए। किन्तु यहाँ भी कुछ विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृति के साथ मनुष्यगति के योग्य ३० प्रकृतियो का बंध होते समय २१, २५, २७, २८, २६ और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान मे ६३ और ८६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। जिनका कुल जोड १२ होता है। इन्हे पूर्वोक्त ३० मे मिला देने पर ३० प्रकृतिक बंधस्थान मे कुल ४२ सत्तास्थान होते हैं।

३१ प्रकृतिक बन्धस्थान मे तीर्थंकर और आहारकद्विक का बन्ध अवश्य होता है। अत यहाँ भी ६३ प्रकृतियो की सत्ता है तथा १ प्रकृतिक बंध के समय ८ सत्तास्थान होते है। इनमे से ६३, ६२, ८६ और ८८ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान उपशमश्रेणि मे होते है और ८०, ७६, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान क्षपकश्रेणि मे होते है।

बंध के अभाव मे भी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के पूर्वोक्त आठ सत्तास्थान होते है। जिनमे से प्रारम्भ के ४ सत्तास्थान उपशान्तमोह ग्यारहवें गुणस्थान मे प्राप्त होते हैं और अन्तिम ४ सत्तास्थान बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान मे प्राप्त होते है। इस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के सब मिलाकर २०८ सत्तास्थान होते है।

दो सत्तास्थान जानना चाहिए। २१ तथा २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। क्योकि २९ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थंकर और सामान्य केवली दोनो को प्राप्त होता है। उनमे से यदि तीर्थंकर को २९ प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो ८० और ७६ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होगे और यदि सामान्य केवली के २९ प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो ७९ और ७५ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होगे। इसी प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे भी चार सत्तास्थान प्राप्त होते है। ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है, क्योकि यह उदयस्थान तीर्थंकर केवली के ही होता है। ९ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८०, ७६ और ९ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। इनमे से प्रारम्भ के दो सत्तास्थान तीर्थंकर के अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है और अन्तिम ९ प्रकृतिक सत्तास्थान अयोगिकेवली गुणस्थान के अत समय मे होता है। ८ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७९, ७५ और ८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। इनमे से आदि के दो सत्तास्थान (७९, ७५) सामान्य केवली के अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक प्राप्त होते हैं और अन्तिम ८ प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय मे प्राप्त होता है। इस प्रकार ये २६ सत्तास्थान होते है।

अत्र यदि इन्हे पूर्वोक्त २०८ सत्तास्थानो मे शामिल कर दिया जाये तो सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे कुल २३४ सत्तास्थान होते है।

चौदह जीवस्थानो मे नामकर्म के बधस्थानो, उदयस्थानो और उनके भगो का विवरण नीचे लिखे अनुसार है। पहले बधस्थानो और उनके भगो को बतलाते है।

१ सूक्ष्म एके० अप०		२ सूक्ष्म एके० प०		३ बादर एके० अप०		४ बादर एके० प०	
२३	४	२३	४	२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६	२६	१६	२६	१६
२९	६२४०	२९	६२४०	२७	६२४०	२९	६२४०
३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२
५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७

५ द्वीन्द्रिय अपर्याप्त		६ द्वीन्द्रिय पर्याप्त		७ त्रीन्द्रिय अपर्याप्त		८ त्रीन्द्रिय पर्याप्त	
२३	४	२३	४	२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६	२६	१६	२६	१६
२९	६२४०	२९	६२४०	२९	६२४०	२९	६२४०
३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२
५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७

९		१०		११		१२	
चतुरिन्द्रिय अप०		चतु० पर्याप्त		अस० पचे० अप०		अस० प० पर्याप्त	
२३	४	२३	४	२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६	२६	१६	२६	१६
२९	९२४०	२९	९२४०	२९	९२४०	२८	९
३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२	२९	९२४०
						३०	४६३२
५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७	६	१३९२६

१३		१४	
सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त		सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त	
२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६
२९	९२४०	२८	९
३०	४६३२	२९	९२४८
		३०	४६४१
		३१	१
		१	१
५	१३९१७	८	१३९४५

९ चतुरि० अप०		१० चतुरि० पर्याप्त		११ अस० पचे० अप०		१२ अस० पचे० पर्याप्त	
२१	१	२१	२	२१	२	२१	८
२६	१	२६	२	२६	२	२६	२८८
		२८	२		असज्ञी मनुष्य १	२८	५७६
		२९	४			२९	११५२
		३०	६			३०	१७२८
		३१	४		असज्ञी तिर्यंच १	३१	११५२
२	२	३	२०	२	६	६	४६०४

१३ सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त		१४ सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त	
२१	२	२१	२५
२६	२	२५	२६
		२६	५७६
		२७	२६
		२८	११९६
		२९	१७७२
		३०	२८९८
		३१	११५२
		२०	१
		९	१
		८	१
		०	५
२	४	११	७६७९

जीवस्थानों में नामकर्म की प्रकृतियों के बंध, उदय, सत्तास्थानों के भंगों का विवरण

क्रम सं०	जीवस्थान	बंधस्थान ८		भंग १३९४५	उदयस्थान १२		भंग ७६७९	सत्तास्थान १२	
१	सू० एके० अप०	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	२	२१,२४	३	५	९२,८८,८६,८०,७८
२	सू० एके० पर्या०	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	४	२१,२४,२५,२६	७	५	९२,८८,८६,८०,७८
३	बा० एके० अप०	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	२	२१,२४	३	५	९२,८८,८६,८०,७८
४	बा० एके० पर्या०	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	५	२१,२४,२५,२६,२७	१३	५	९२,८८,८६,८०,७८
५	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	२	२१,२६	२	५	९२,८८,८६,८०,७८
६	द्वीन्द्रिय पर्याप्त	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	६	२१,२६,२८,२९,३०,३१	२०	५	९२,८८,८६,८०,७८
७	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	२	२१,२६	२	५	९२,८८,८६,८०,७८
८	त्रीन्द्रिय पर्याप्त	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	६	२१,२६,२८,२९,३०,३१	२०	५	९२,८८,८६,८०,७८
९	चतु० अपर्याप्त	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	२	२१,२६	२	५	९२,८८,८६,८०,७८
१०	चतु० पर्याप्त	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	६	२१,२६,२८,२९,३०,३१	२०	५	९२,८८,८६,८०,७८
११	असं० पंचे० अप०	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	२	२१,२६	४	५	९२,८८,८६,८०,७८
१२	असं० पंचे० पर्या०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०	१३९२६	६	२१,२६,२८,२९,३०,३१	४९०४	५	९२,८८,८६,८०,७८
१३	संज्ञी पंचे० अप०	५	२३,२५,२६,२९,३०	१३९१७	२	२१,२६	४	५	९२,८८,८६,८०,७८
१४	संज्ञी पंचे० पर्या०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०, ३१,१	१३९४५	११	२१,२५,२६,२७,२८,२९, ३०,३१, कें० २०,९,८	७६७९	१२	९३,९२,८९,८८,८६,८०, ७९,७८,७६,७५,कें० ९,८

इस प्रकार से जीवस्थानो मे आठ कर्मो की उत्तर प्रकृतियो के बध, उदय व सत्ता स्थान तथा उनके भगो का कथन करने के बाद अब गुणस्थानो मे भगो का कथन करते है।

गुणस्थानों में संवेध भंग

सर्वप्रथम गुणस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बधादि स्थानो का कथन करते है—

नाणंतराय तिविहमवि दससु दो होंति दोसु ठाणेसुं ।

शब्दार्थ—**नाणतराय**—ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म, **तिविहमवि**—तीन प्रकार से (बध, उदय और सत्ता की अपेक्षा), **दससु**—आदि के दस गुणस्थानो मे, **दो**—दो (उदय और सत्ता), **होंति**—होता है, **दोसु**—दो (उपशातमोह और क्षीणमोह मे), **ठाणेसु**—गुणस्थानो मे ।

गाथार्थ—प्रारम्भ के दस गुणस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म बन्ध, उदय और सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार का है और दो गुणस्थानो (उपशातमोह, क्षीणमोह) मे उदय और सत्ता की अपेक्षा दो प्रकार का है ।

विशेषार्थ—पूर्व मे चौदह जीवस्थानो मे आठ कर्मों के बध, उदय और सत्ता स्थान तथा उनके सवेध भगो का कथन किया गया। अब गुणस्थानो मे उनका कथन करते है।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बारे मे यह नियम है कि ज्ञानावरण की पाँचो और अन्तराय की पाँचो प्रकृतियो का बन्धविच्छेद दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्त मे तथा उदय और सत्ता का विच्छेद बारहवे क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त मे होता है। अतएव इससे यह सिद्ध हो जाता है कि पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर दसवे थान तक दस गुणस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के पाँच

प्रकृतिक बन्ध, पांच प्रकृतिक उदय और पांच प्रकृतिक सत्ता, ये तीनो प्राप्त होते है।[1] लेकिन दसवें गुणस्थान मे इन दोनो का बन्धविच्छेद हो जाने से उपशान्तमोह और क्षीणमोह—ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान मे पांच प्रकृतिक उदय और पांच प्रकृतिक सत्ता ये दो ही प्राप्त होते है।[2] बारहवें गुणस्थान से आगे तेरहवे, चौदहवें गुणस्थान मे इन दोना कर्मो के बन्ध, उदय और सत्ता का अभाव हो जाने से बंध, उदय और सत्ता मे से कोई भी नहीं पाई जाती है।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बंधादि स्थानो को बतलाने के बाद अब दर्शनावरण कर्म के भंगो का कथन करते हैं।

मिच्छासाणे बिइए नव चउ पण नव य संतंसा ॥३९॥
मिस्साइ नियट्टीओ छ च्चउ पण नव य संतकम्मंसा।
चउबंध तिगे चउ पण नवंस दुसु जुयल छ स्संता ॥४०॥
उवसंते चउ पण नव खीणे चउरुदय छच्च चउ संतं।

शब्दार्थ—मिच्छासाणे—मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे, बिइए—दूसरे कर्म के, नव—नौ, चउ पण—चार या पांच नव—नौ य—और, संतंसा—सत्ता।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो मे, **चउपण**—चार अथवा पाँच, **नवस**—नौ की सत्ता, **दुसु**—दो गुणस्थानो (अनिवृत्तिबादर और सूक्ष्मसपराय) मे, **जुयल**—बंध और उदय, **छस्सता**—छह की सत्ता।

उवसते—उपशातमोह गुणस्थान मे, **चउ पण**—चार अथवा पाँच, **नव**—नौ, **खीणे**—क्षीणमोह गुणस्थान मे, **चउरुदय**—चार का उदय, **छच्च चउ**—छह और चार की, **सत**—सत्ता।

गाथार्थ—दूसरे दर्शनावरण कर्म का मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे नौ प्रकृतियो का बंध, चार या पाच प्रकृतियो का उदय तथा नौ प्रकृति की सत्ता होती है।

मिश्र गुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान के पहले सख्यातवे भाग तक छह का बंध, चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो मे चार का बंध, चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। क्षपक के नौ और दस इन दो गुणस्थानो मे चार का बंध, चार का उदय और छह की सत्ता होती है।

उपशातमोह गुणस्थान मे चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। क्षीणमोह गुणस्थान मे चार का उदय तथा छह और चार की सत्ता होती है।[1]

---

१ (क) मिच्छा सासयणेसु नव बंधुवलक्खिया उ दो भंगा।
मीसाओ य नियट्टी जा छब्बंधेण दो दो उ॥
चउबंधे नवसंते दोण्णि अपुव्वाउ सुहुमरागो जा।
अब्बंधे णव संते उवसंते हुंति दो भंगा॥
चउबंधे छस्संते बायर सुहुमाणमेगुवक्खवयाण।
छसु चउसु व संतेसु दोण्णि अबंधमि खीणस्स॥
—पचसग्रह सप्ततिका गा० १०२-१०४

(ख) नव सासणोत्ति बंधो छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति।
चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरमोत्ति॥

विशेषार्थ—इन गाथाओं में गुणस्थानों की अपेक्षा दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता स्थानों का निर्देश किया गया है।

दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियां ९ हैं। इनमें से स्त्यानर्द्धित्रिक का बंध सासादन गुणस्थान तक ही होता है तथा चक्षुदर्शनावरण आदि चार का उदय अपने उदयविच्छेद होने तक निरंतर बना रहता है किन्तु निद्रा आदि पांच का उदय कदाचित होता है और कदाचित नहीं होता है तथा उनमें भी एक समय में एक का ही उदय होता है, एक साथ दो का या दो से अधिक का नहीं होता है। इसीलिये मिथ्यात्व और सासादन इन दो गुणस्थानों में ९ प्रकृतिक बंध, ४ प्रकृतिक उदय और ९ प्रकृतिक सत्ता तथा ९ प्रकृतिक बंध, ५ प्रकृतिक उदय और ९ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं— मिच्छासाणे बिइए नव चउ पण नव य संसा।'

उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा छह प्रकृतिक बध, पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भग प्राप्त होते है। यद्यपि स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय प्रमत्तसयत गुणस्थान के अतिम समय तक ही हो सकता है, फिर भी इससे पॉच प्रकृतिक उदयस्थान के कथन मे कोई अतर नही आता है, सिर्फ विकल्प रूप प्रकृतियो मे ही अतर पडता है। छठे गुणस्थान तक निद्रा आदि पॉचो प्रकृतियाँ विकल्प से प्राप्त होती है, आगे निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियॉ ही विकल्प से प्राप्त होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग मे निद्रा और प्रचला की भी बधव्युच्छित्ति हो जाने से आगे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान पर्यन्त तीन गुणस्थानो मे बध मे चार प्रकृतियॉ रह जाती है, किन्तु उदय और सत्ता पूर्ववत् प्रकृतियो की रहती है। अत अपूर्वकरण के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक तीन गुणस्थानो मे चार प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक बध, पॉच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, यह दो भग प्राप्त होते हैं—'चउबध तिगे चउ पण नवस'।

लेकिन उक्त कथन उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझना चाहिये, क्योकि ऐसा नियम है कि निद्रा या प्रचला का उदय उपशमश्रेणि मे ही होता है, क्षपकश्रेणि मे नही होता है। अत क्षपकश्रेणि मे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो मे पाँच प्रकृतिक उदय रूप भङ्ग प्राप्त नही होता है तथा अनिवृत्तिकरण के कुछ भागो के व्यतीत होने पर स्त्यानर्द्धित्रिक की सत्ता का क्षय हो जाता है। जिससे छह प्रकृतियो की ही सत्ता रहती है। अत. अनिवृत्तिकरण के अतिम सख्यात भाग और सूक्ष्मसपराय इन दो क्षपक गुणस्थानो मे चार प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक भङ्ग प्राप्त होता है—'दुसु जुयल छस्सता'।

उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा छह प्रकृतिक बध, पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भग प्राप्त होते है। यद्यपि स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय प्रमत्तसयत गुणस्थान के अतिम समय तक ही हो सकता है, फिर भी इससे पाँच प्रकृतिक उदयस्थान के कथन मे कोई अतर नही आता है, सिर्फ विकल्प रूप प्रकृतियो मे ही अतर पडता है। छठे गुणस्थान तक निद्रा आदि पाँचो प्रकृतियाँ विकल्प से प्राप्त होती है, आगे निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियाँ ही विकल्प से प्राप्त होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग मे निद्रा और प्रचला की भी बधव्युच्छित्ति हो जाने से आगे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान पर्यन्त तीन गुणस्थानो मे बध मे चार प्रकृतियाँ रह जाती हैं, किन्तु उदय और सत्ता पूर्ववत् प्रकृतियो की रहती है। अत अपूर्वकरण के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक तीन गुणस्थानो मे चार प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक बध, पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, यह दो भग प्राप्त होते हैं—'चउबध तिगे चउ पण नवस'।

लेकिन उक्त कथन उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझना चाहिये, क्योकि ऐसा नियम है कि निद्रा या प्रचला का उदय उपशमश्रेणि मे ही होता है, क्षपकश्रेणि मे नही होता है। अत क्षपकश्रेणि मे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो मे पाँच प्रकृतिक उदय रूप भङ्ग प्राप्त नही होता है तथा अनिवृत्तिकरण के कुछ भागो के व्यतीत होने पर स्त्यानर्द्धित्रिक की सत्ता का क्षय हो जाता है। जिससे छह प्रकृतियो की ही सत्ता रहती है। अत अनिवृत्तिकरण के अतिम सख्यात भाग और सूक्ष्मसपराय इन दो क्षपक गुणस्थानो मे चार प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक भङ्ग प्राप्त होता है—'दुसु जुयल छस्सता'।

उपशमश्रेणि या क्षपकश्रेणि वाले के दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अत मे दर्शनावरण कर्म का बधविच्छेद हो जाता है। इसलिये आगे ग्यारहवे आदि गुणस्थानो मे बध की अपेक्षा दर्शनावरण के भग प्राप्त नही होते हैं। अत उपशातमोह गुणस्थान मे जो उपशमश्रेणि का गुणस्थान है, उदय और सत्ता तो दसवें गुणस्थान के समान बनी रहती है किन्तु बध नही होने से—'उवसते चउपण नव'—चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा पाच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, यह दो भङ्ग प्राप्त होते है।

क्षीणमोह गुणस्थान मे—'खीणे चउरुदय छच्च चउसत'—चार का उदय और छह या चार की सत्ता होती है। इसका कारण यह है कि बारहवा क्षीणमोह गुणस्थान क्षपकश्रेणि का है और क्षपक श्रेणि मे निद्रा या प्रचला का उदय नही होने से चार प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है तथा छह या चार प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं। क्योकि जब क्षीणमोह गुणस्थान मे निद्रा और प्रचला का उदय ही नही होता है तव क्षीणमोह गुणस्थान के अतिम समय मे इनकी सत्ता भी प्राप्त नही हो सकती है और नियमानुसार अनुदय प्रकृतियाँ जो होती हैं, उनका प्रत्येक निषेक स्तिबुकसक्रमण के द्वारा सजातीय उदयवती प्रकृतियो मे परिणम जाता है, जिससे क्षीणमोह गुणस्थान के अतिम समय मे निद्रा और प्रचला की सत्ता न रहकर केवल चक्षुदर्शनावरण आदि चार की ही सत्ता रहेगी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि क्षीणमोह गुणस्थान मे जो चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता, इन दो भङ्गो मे से पहला भङ्ग चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता का क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय तक जानना चाहिये और अतिम समय मे चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता

का दूसरा भङ्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार क्षीणमोह गुणस्थान मे भी दो भग प्राप्त होते है।

इस प्रकार से ज्ञानावरण, अतराय और दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियो के गुणस्थानो मे वध, उदय और सत्ता स्थानो को बतलाने के वाद अव वेदनीय, आयु और गोत्र कर्मों के भगो को वतलाते है।

वेयणियाउयगोए विभज्ज मोह पर वोच्छं ॥४१॥

शब्दार्थ—**वेयणियाउयगोए**—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के, **विभज्ज**—विभाग करके, **मोह**—मोहनीय कर्म के, **पर**—इसके बाद, **वोच्छ**—कहेगे।

गाथार्थ—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगो का कथन करने के बाद मोहनीय कर्म के भगो का कथन करेंगे।

विशेषार्थ—गाथा मे वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगो के विभाग करने की सूचना दी है किन्तु उनके कितने-कितने भग होते है यह नही बतलाया है। अत आचार्य मलयगिरि की टीका मे भाष्य की गाथाओ के आधार पर वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के जो भग-विकल्प बतलाये है, उनको यहाँ स्पष्ट करते हैं।

भाष्य की गाथा मे वेदनीय और गोत्र कर्म के भङ्गो का निर्देश इस प्रकार किया गया है—

चउ छस्सु दोण्णि सत्तसु एगे चउ गुणिसु वेयणियभगा।
गोए पण चउ दो तिसु एगऽट्ठसु दोण्णि एक्कम्मि॥

अर्थात् वेदनीय कर्म के छह गुणस्थानो मे चार, सात मे दो और एक मे चार भङ्ग होते हैं तथा गोत्रकर्म के पहले मे पाँच, दूसरे मे चार, तीसरे आदि तीन मे दो, छठे आदि आठ मे एक और एक मे एक भङ्ग होता है जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

पहले गाथा मे वेदनीय कर्म के विकल्पो का निर्देश किया है। पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान तक छह गुणस्थानो मे—'चउ छस्सु'—चार भङ्ग होते है। क्योकि बध और उदय की अपेक्षा साता और असातावेदनीय, ये दोनो प्रकृतियाँ प्रतिपक्षी हैं। अर्थात् दोनो मे से एक काल मे किसी एक का बध और किसी एक का ही उदय होता है किन्तु दोनो की एक साथ सत्ता पाये जाने मे कोई विरोध नही है तथा असाता वेदनीय का बध आदि के छह गुणस्थानो मे ही होता है, आगे नही। इसलिये प्रारभ के छह गुणस्थानो मे वेदनीय कर्म के निम्नलिखित चार भग प्राप्त होते हैं—

१ असाता का बध असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

२ असाता का बध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

३ साता का बध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

४ साता का बध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

'दोण्णि सत्तसु'—सातवे गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक सात गुणस्थानो मे दो भङ्ग होते हैं। क्योकि छठे गुणस्थान मे असातावेदनीय का बधविच्छेद हो जाने से सातवे से लेकर तेरहवे गुणस्थान तक सिर्फ सातावेदनीय का बध होता है, किन्तु उदय और सत्ता दोनो की पाई जाती है, जिससे इन सात गुणस्थानो मे—१ साता का बध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा २ साता का बध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, यह दो भङ्ग प्राप्त होते है।

इस प्रकार से तेरहवे गुणस्थान तक वेदनीय कर्म के बधादि

स्थानो के विकल्पो को बतलाने के बाद अब चौदहवे गुणस्थान के भङ्गो को बतलाने के लिये कहते है कि 'एगे चउ' अर्थात् एक गुणस्थान—चौदहवे अयोगिकेवली गुणस्थान मे चार भङ्ग होते हैं। क्योकि अयोगिकेवली गुणस्थान मे साता वेदनीय का भी बध नही होता है, अतः वहाँ बध की अपेक्षा तो कोई भङ्ग प्राप्त नही होता है किन्तु उदय और सत्ता की अपेक्षा भङ्ग बनते हैं। फिर भी जिसके इस गुणस्थान मे असाता का उदय है, उसके उपान्त्य समय मे साता की सत्ता का नाश हो जाने से तथा जिसके साता का उदय है उसके उपान्त्य समय मे असाता की सत्ता का नाश हो जाने से उपान्त्य समय तक—१ साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, २ असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ये दो भङ्ग प्राप्त होते हैं। तथा अतिम समय मे, ३ साता का उदय और साता की सत्ता तथा ४ असाता का उदय और असाता की सत्ता, यह दो भङ्ग प्राप्त होते है।[1] इस प्रकार अयोगिकेवली गुणस्थान मे वेदनीय कर्म के चार भग बनते है।

अब गोत्रकर्म के भगो को गुणस्थानो मे बतलाते है।

गोत्रकर्म के बारे मे भी वेदनीय कर्म की तरह एक विशेषता तो यह है कि साता और असाता वेदनीय के समान उच्च और नीच गोत्र बध और उदय की अपेक्षा प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं, एक काल मे इन दोनो मे से किसी एक का बध और एक का ही उदय हो सकता है, लेकिन

---

१ 'एकस्मिन्' अयोगिकेवलिनि चत्वारो भगा, ते चेमे—असातस्योदय सातासाते सती, अथवा सातस्योदय सातासाते सती, एतौ द्वौ विकल्पावयोगिकेवलिनि द्विचरमसमय यावत्प्राप्येते, चरमसमये तु असातस्योदय असातस्य सत्ता यस्य द्विचरम-समये सात क्षीणम्, यस्य त्वसात द्विचरम समये क्षीणं तस्याय विकल्प—सातस्योदय सातस्य सत्ता।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०६

सत्ता दोनो की होती है और दूसरी विशेषता यह है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के उच्चगोत्र की उद्वलना होने पर बध, उदय और सत्ता नीच गोत्र की ही होती है, तथा जिनमे ऐसे अग्नि-कायिक और वायुकायिक जीव उत्पन्न होते हैं, उनके भी कुछ काल तक बध, उदय और सत्ता नीच गोत्र की होती है। इन दोनो विशेषताओ को ध्यान मे रखकर मिथ्यात्व गुणस्थान मे गोत्रकर्म के भगो का विचार करते हैं तो पाच भग प्राप्त होते हैं—'गोए पण'। वे पाँच भग इस प्रकार हैं—

१ नीच का बध, नीच का उदय तथा नीच और उच्च गोत्र की सत्ता।

२ नीच का बध, उच्च का उदय तथा नीच और उच्च की सत्ता।

३ उच्च का बध, उच्च का उदय और उच्च व नीच की सत्ता।

४ उच्च का बध, नीच का उदय तथा उच्च व नीच की सत्ता।

५ नीच का बध, नीच का उदय और नीच की सत्ता।

उक्त पाँच भगो मे से पाँचवा भग—नीच गोत्र का बंध, उदय और सत्ता—अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो तथा उन जीवों में भी कुछ काल के लिए प्राप्त होता है जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो मे से आकर जन्म लेते हैं।[1] शेष मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीवो के पहले चार विकल्प प्राप्त होते हैं।

सासादन गुणस्थान मे चार भग प्राप्त होते हैं। क्योंकि नीच गोत्र का बध सासादन गुणस्थान तक ही होता है और मिश्र आदि

---

१ नीचैर्गोत्रस्य बन्ध नीचैर्गोत्रस्योदय: नीचैर्गोत्र सत्, एष विकल्पस्तेज-स्कायिक-वायुकायिकेषु लभ्यते, तद्भवादुद्वृत्तेषु वा शेषजीवेषु कियत्कालम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०३

गुणस्थानों में एक उच्चगोत्र का ही बंध होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मिथ्यात्व गुणस्थान के समान सासादन गुणस्थान में भी किसी एक का बंध किसी एक का उदय और दोनों की सत्ता बन जाती है। इस हिसाब से यहाँ चार भंग पाये जाते है और वे चार भंग वही है जिनका मिथ्यात्व गुणस्थान के भंग १, २, ३ और ४ में उल्लेख किया गया है।

'दो निसु' अर्थात् तीसरे, चौथे, पांचवें—मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरति गुणस्थानों में दो भंग होते है। क्योंकि तीसरे से लेकर पांचवें गुणस्थान तक बंध एक उच्च गोत्र का ही होता है किन्तु उदय और सत्ता दोनों की पाई जाती है। इसलिये इन तीन गुणस्थानों में—
१ उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, तथा
२ उच्च का बंध, नीच का उदय और नीच-उच्च की सत्ता, यह दो भंग पाये जाते है। यहां कितने ही आचार्यों का यह भी अभिमत है कि पांचवें गुणस्थान में उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता यही एक भंग होता है। इस विषय में आगम वचन है कि—

नीच की सत्ता यह एक भग प्राप्त होता है तथा दसवें गुणस्थान मे उच्च गोत्र का बधविच्छेद हो जाने से ग्यारहवे, बारहवे, तेरहवे—उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थान मे उच्च-गोत्र का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, यह एक भग प्राप्त होता है। इस प्रकार छठे से लेकर तेरहवे गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान मे एक भग प्राप्त होता है, यह सिद्ध हुआ।

'दोण्णि एक्कम्मि'—शेप रहे एक चौदहवे अयोगिकेवली गुणस्थान मे दो भग होते हैं। इसका कारण यह है कि अयोगिकेवली गुणस्थान मे नीच गोत्र की सत्ता उपान्त्य समय तक ही होती है क्योकि चौदहवे गुणस्थान मे यह उदयरूप प्रकृति न होने से उपान्त्य समय मे ही इसका स्तिबुक सक्रमण के द्वारा उच्च गोत्र रूप से परिणमन हो जाता है, अत इस गुणस्थान के उपान्त्य समय तक उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, यह एक भग तथा अन्त समय मे उच्च का उदय और उच्च की सत्ता, यह दूसरा भग होता है। इस प्रकार चौदहवे गुणस्थान मे दो भगो का विधान जानना चाहिए।

गुणस्थानो मे वेदनीय और गोत्र कर्मों के भगो का विवेचन करने के वाद अब आयुकर्म के भगो का विचार भाष्य गाथा के आधार से करते हैं। इस सम्वन्धी गाथा निम्न प्रकार है—

अट्ठच्छाहिगवीसा सोलस वीस च बार छ द्दोषु।
दो चउसु तीसु एक्क मिच्छाइसु आउगे भगा॥

अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थान मे २८, सासादन मे २६, मिश्र मे १६, अविरत सम्यग्दृष्टि मे २०, देशविरत मे १२, प्रमत्त और अप्रमत्त मे ६, अपूर्वकरण आदि चार मे २ और क्षीणमोह आदि मे १, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो मे आयुकर्म के भग जानना चाहिए। जिनका विशेप स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे आयुकर्म के २८ भग होते है। क्योकि चारो गतियो के जीव मिथ्यादृष्टि भी होते है और नारको के पॉच, तिर्यंचो के नौ, मनुष्यो के नौ और देवो के पाच, इस प्रकार आयुकर्म के २८ भग पहले वतलाये गये है। अत वे सब भग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे सभव होने से २८ भग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे कहे हैं।

सासादन गुणस्थान मे २६ भग होते है। क्योकि नरकायु का वध मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही होने से सासादन सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्य नरकायु का वध नही करते है। अत उपर्युक्त २८ भगो मे से—१ भुज्यमान तिर्यंचायु, वध्यमान नरकायु और तिर्यच-नरकायु की सत्ता, तथा भुज्यमान मनुष्यायु वध्यमान नरकायु और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, ये दो भग कम होने जाने से सासादन गुणस्थान मे २६ भग प्राप्त होते है।[1]

तीसरे मिश्र गुणस्थान मे परभव सवधी आयु के वध न होने का नियम होने से परभव सबधी किसी भी आयु का वन्ध नही होता है। अत पूर्वोक्त २८ भगो मे से वधकाल मे प्राप्त होने वाले नारको के दो, तिर्यंचो के चार, मनुष्यो के चार और देवो के दो, इस प्रकार २+४+४+२=१२ भगो को कम कर देने पर १६ भग प्राप्त होते हैं।

चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे २० भग होते हैं। क्योकि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे तिर्यंचो और मनुष्यो मे से प्रत्येक के नरक, तिर्यंच और मनुष्य आयु का वन्ध नही होने से तीन-तीन भग

---

1 यतस्तिर्यंचो मनुष्या वा सासादनभावे वर्तमाना नरकायुर्न वध्नन्ति, तत प्रत्येक तिरश्चा मनुष्याणा च परभवायुर्बन्धकाले एकैको भगो न प्राप्यत इति षड्विंशति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१०

तथा देव और नारको मे प्रत्येक के तिर्यंचायु का वन्ध नहीं होने से एक-एक भग, इस प्रकार कुल आठ भेद हुए। जिनको पूर्वोक्त २८ भगो मे से कम करने पर २० भग होते हैं।

देशविरत गुणस्थान मे १२ भग होते हैं। क्योकि देशविरति तिर्यंच और मनुष्यो के होती है और यदि वे परभव सम्बन्धी आयु का वन्ध करते हैं तो देवायु का ही वन्ध करते हैं अन्य आयु का नही। **देशविरता आयुर्बध्नन्तो देवायुरेव बध्नन्ति न शेषमायु।** अत इनके आयुवन्ध के पहले एक-एक ही भग होता है और आयुवन्ध के काल मे भी एक-एक भग ही होता है। इस प्रकार तिर्यंच और मनुष्यो, दोनो को मिलाकर कुल चार भग हुए तथा उपरत वध की अपेक्षा तिर्यंचो के भी चार भग होते हैं और मनुष्यो के भी चार भग। क्योकि चारो गति सम्बन्धी आयु का वन्ध करने के पश्चात तिर्यंच और मनुष्यो के देशविरति गुणस्थान के प्राप्त होने मे किसी प्रकार का विरोव नही है। इस प्रकार उपरत वध की अपेक्षा तिर्यंचो के चार और मनुष्यो के चार, जो कुल मिलाकर आठ भङ्ग हैं। इनमे पूर्वोक्त चार भङ्गो को मिलाने पर देशविरत गुणस्थान मे कुल बारह भङ्ग हो जाते हैं।

'छ द्दोसु'—अर्थात् पाचवें गुणस्थान के वाद के प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत, इन दो गुणस्थानो मे छह भङ्ग होते हैं। इसका कारण यह है कि ये दोनो गुणस्थान मनुष्यो के ही होते हैं। और ये देवायु को ही वाधते हैं। अत इनके आयु वन्ध के पहले एक भङ्ग और आयुवन्ध काल मे भी एक भङ्ग होता है। किन्तु उपरत वन्ध की अपेक्षा यहाँ चार भङ्ग होते है, क्योकि चारो गति सम्बन्धी आयुवन्ध के पश्चात प्रमत्त और अप्रमत्त सयत गुणस्थान प्राप्त होने मे कोई वाधा नही है। इस प्रकार आयुवन्ध के पूर्व का एक, आयु वन्ध के समय का एक और उपरत वन्ध काल के चार भङ्गो को मिलाने से प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत, इन दोनो गुणस्थानो मे छह भङ्ग प्राप्त होते हैं।

आयुकर्म का बन्ध सातवे गुणस्थान तक ही होता है। आगे आठवें अपूर्वकरण आदि शेप गुणस्थानो मे नही होता है। किन्तु एक विशेषता है कि जिसने देवायु का बन्ध कर लिया, ऐसा मनुष्य उपशमश्रेणि पर आरोहण कर सकता है और जिसने देवायु को छोडकर अन्य आयु का बन्ध किया है, वह, उपशमश्रेणि पर आरोहण नही करता है—

तिसु आउगेसु बद्धेसु जेण सेढिं न आरुहइ।[1]

तीन आयु का बन्ध करने वाला (देवायु को छोडकर) जीव श्रेणि पर आरोहण नही करता है। अत उपशमश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि उपशातमोह गुणस्थान पर्यन्त आठ, नौ, दस और ग्यारह, इन चार गुणस्थानो मे दो-दो भङ्ग प्राप्त होते है—'दो चउसु'। वे दो भङ्ग इस प्रकार है— १ मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता, २ मनुष्यायु का उदय मनुष्य-देवायु की सत्ता। इनमे से पहला भङ्ग परभव सबधी आयु बन्धकाल के पूर्व मे होता और दूसरा भङ्ग उपरत बन्धकाल मे होता है।

लेकिन क्षपकश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो मे मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भङ्ग होता है।

क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली इन तीन गुणस्थानो मे भी मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भङ्ग होता है— 'तीसु एक्क'।

इस प्रकार प्रत्येक गुणस्थान मे आयुकर्म के सम्भव भङ्गो का विचार किया गया कि प्रत्येक गुणस्थान मे कितने-कितने भङ्ग होते है।

१४ गुणस्थानो मे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अतराय, इन छह कर्मो का विवरण इस प्रकार है—

---

1 कर्म प्रकृति गाथा ३७५।

क्रम सं०	गुणस्थान	ज्ञाना-वरण	दर्शना-वरण	वेदनीय	आयु	गोत्र	अतराय
१	मिथ्यात्व	१	२	४	२८	५	१
२	सासादन	१	२	४	२६	४	१
३	मिश्र	१	२	४	१६	२	१
४	अविरत	१	२	४	२०	२	१
५	देशविरत	१	२	४	१२	२	१
६	प्रमत्तविरत	१	२	४	६	१	१
७	अप्रमत्तविरत	१	२	२	६	१	१
८	अपूर्वकरण	१	४	२	२	१	१
९	अनिवृत्तिकरण	१	३	२	२	१	१
१०	सूक्ष्मसपराय	१	३	२	२	१	१
११	उपशातमोह	१	२	२	२	१	१
१२	क्षीणमोह	१	२	२	१	१	१
१३	सयोगिकेवली	०	०	२	१	१	०
१४	अयोगिकेवली	०	०	४	१	२	०

अव गाथा के निर्देशानुसार मोहनीय कर्म के भगो का विचार करते हैं। उनमे से भी पहले वधस्थानो के भगो को वतलाते हैं।

गुणठाणगेसु अट्ठसु एक्केक्कं मोहबंधठाणेसु।
पचानियट्टिठाणे बंधोवरमो परं तत्तो ॥४२॥

शब्दार्थ—**गुणठाणगेसु**—गुणस्थानो मे, **अट्ठसु**—आठ मे, **एक्केक्क**—एक-एक, **मोहबंधठाणेसु**—मोहनीय कर्म के बधस्थानो मे से, **पच**—पाँच, **अनियट्टिठाणे**—अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे, **बधोवरमो**—बध का अभाव है, **पर**—आगे, **तत्तो**—उससे (अनिवृत्ति बादर गुणस्थान से)।

गाथार्थ—मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानो मे मोहनीय कर्म के बधस्थानो मे से एक, एक बधस्थान होता है तथा अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे पाँच और अनन्तर आगे के गुणस्थानो मे बध का अभाव है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे मोहनीय कर्म के बध, उदय और सत्ता स्थानो मे से बधस्थानो को बतलाया है। सामान्य से मोहनीय कर्म के बधस्थान पहले बताये जा चुके है, जो २२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ प्रकृतिक हे। इन दस स्थानो को गुणस्थानो मे घटाते है।

'गुणठाणगेसु अट्ठसु एक्केक्क' अर्थात् पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर आठवे अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त प्रत्येक गुणस्थान मे मोहनीय कर्म का एक-एक बधस्थान होता है। वह इस प्रकार जानना चाहिए कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानो मे एक २२ प्रकृतिक, सासादान गुणस्थान मे २१ प्रकृतिक, मिश्र गुणस्थान और अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे १७ प्रकृतिक, देशविरति मे १३ प्रकृतिक तथा प्रमत्त-सयत, अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण मे ९ प्रकृतिक बधस्थान होता है। इनके भगो का विवरण मोहनीय कर्म के बधस्थानो के प्रकरण मे कहे गये अनुसार जानना चाहिए, लेकिन यहाँ इतनी विशेषता है कि अरति और शोक का बधविच्छेद प्रमत्तसयत गुणस्थान मे हो जाता है अत अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण गुणस्थान मे नौ प्रकृतिक स्थान मे एक-एक ही भग प्राप्त होता है। पहले जो नौ प्रकृतिक

बधस्थान मे दो भग बतलाये है वे प्रमत्तसयत गुणस्थान की अपेक्षा कहे गये हैं।[1]

'पचानियट्ठिठाणे' आठवे गुणस्थान के अनन्तर नौवे अनिवृत्तिबादर नामक गुणस्थान मे ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक ये पाँच बधस्थान होते है। इसका कारण यह है कि नौवें गुणस्थान के पाँच भाग हैं और प्रत्येक भाग मे क्रम से मोहनीय कर्म की एक-एक प्रकृति का बधविच्छेद होने से पहले भाग मे ५, दूसरे भाग मे ४, तीसरे भाग मे ३, चौथे भाग मे २ और पाँचवें भाग मे १ प्रकृतिक बधस्थान होने से नौवे गुणस्थान मे पाँच बधस्थान माने हैं। इसके बाद सूक्ष्मसपराय आदि आगे के गुणस्थानो मे बध का अभाव हो जाने से बधस्थान का निषेध किया है।

उक्त कथन का साराश यह है कि आदि के आठ गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे एक-एक बधस्थान है। नौवे गुणस्थान मे पाँच बधस्थान हैं तथा उसके बाद दसवें, ग्यारहवे, बारहवें, तेरहवें, चौदहवे गुणस्थान मे मोहनीय कर्म के बध का अभाव होने से कोई भी बधस्थान नही है।

इस प्रकार से गुणस्थानो मे मोहनीय कर्म के बधस्थानो का निर्देश करने के बाद अब आगे तीन गाथाओ मे उदयस्थानो का कथन करते है।[2]

---

१ केवलमप्रमत्ताऽपूर्वकरणयोर्भंग एकैक एव वक्तव्य, अरतिशोकयोर्बन्धस्य प्रमत्तगुणस्थानके एव व्य-च्छेदात्। प्राक् च प्रमत्तापेक्षया नवकबधस्थाने द्वौ भगौ दर्शितौ। सप्ततिका प्रकरण टीका पृ०, २११

२ तुलना कीजिए—

(क) मिच्छे सगाइचउरो सासणमीसे सगाइ तिण्णुदया।
छप्पच चउरपुव्वा तिअ चउरो अविरयाईण॥
—पचसग्रह सप्ततिका गा० २६

सत्ताइ दसउ मिच्छे सासायणमीसए नवुक्कोसा।
छाई नव उ अविरए देसे पंचाइ अट्ठेव ॥४३॥
विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चऽपुव्वम्मि।
अनियट्टिबायरे पुण इक्को व दुवे व उदयंसा ॥४४॥
एगं सुहुमसरागो वेएइ अवेयगा भवे सेसा।
भंगाणं च पमाण पुव्वुद्दिट्ठेण नायव्व ॥४५॥

शब्दार्थ—**सत्ताइ दसउ**—सात से लेकर दस प्रकृति तक, **मिच्छे**—मिथ्यात्व गुणस्थान मे, **सासायण मीसाए**—सासादन और मिश्र मे, **नवुक्कोसा**—सात से लेकर नौ प्रकृति तक, **छाईनवउ**—छह से लेकर नौ तक, **अविरए**—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे, **देसे**—देशविरति गुणस्थान मे, **पंचाइअट्ठेव**—पांच से लेकर आठ प्रकृति तक,

विरए खओवसमिए—प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान मे, **चउराईसत्त**—चार से सात प्रकृति तक, **छच्च**—और छह तक, **अपुव्वम्मि**—अपूर्वकरण गुणस्थान मे, **अनियट्टिबायरे**—अनिवृत्ति बादर गुणस्थान मे, **पुण**—तथा, **इक्को**—एक, **व**—अथवा **दुवे**—दो, **उदयसा**—उदयस्थान।

एगं—एक, **सुहुमसरागो**—सूक्ष्मसपराय गुणस्थान वाला, **वेएइ**—वेदन करता है, **अवेयगा**—अवेदक, **भवे**—होते हैं, **सेसा**—वाकी के गुणस्थान वाले, **भगाण**—भगो का, **च**—और, **पमाण**—प्रमाण, **पुव्वुद्दिट्ठेण**—पहले कहे अनुसार, **नायव्व**—जानना चाहिए।

(ख) दसणवणवादि चउतियतिट्ठाण णवट्ठसगसगादि चऊ।
ठाणा छादि तिय च य चदुवीसगदा अपुव्वो त्ति॥
उदयट्ठाण दोण्ह पणबवे होदि दोण्हमेकस्स।
चदुविहबवट्ठाणे सेसेसेय हवे ठाण॥
—गो० कर्मकाड गा० ४८० व ४८२

गाथार्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान में सात से लेकर उत्कृष्ट दस प्रकृति पर्यन्त, सासादन और मिश्र में सात से नौ पर्यन्त, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे छह से नौ तक, देशविरत मे पाँच से आठ पर्यन्त तथा—

प्रमत्त और अप्रमत्त सयत गुणस्थान मे चार से लेकर सात तक, अपूर्वकरण मे चार से छह तक और अनिवृत्ति-बादर गुणस्थान मे एक अथवा दो उदयस्थान मोहनीयकर्म के होते हैं।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान वाला एक प्रकृति का वेदन करता है और इसके आगे के शेष गुणस्थान वाले अवेदक होते हैं, इनके भगो का प्रमाण पहले कहे अनुसार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओ मे मोहनीयकर्म के गुणस्थानो मे उदय-स्थान बतलाये हैं कि किस गुणस्थान मे एक साथ अधिक से अधिक कितनी प्रकृतियो का और कम से कम कितनी प्रकृतियो का उदय होता है।

मोहनीयकर्म की कुल उत्तर प्रकृतियाँ २८ हैं। उनमे से एक साथ अधिक से अधिक दस प्रकृतियो का और कम से कम एक प्रकृति का एक काल मे उदय होता है। इस प्रकार से एक से लेकर दस तक, दस उदयस्थान होना चाहिये किंतु तीन प्रकृतियो का उदय कही प्राप्त नही होता है क्योंकि दो प्रकृतिक उदयस्थान मे हास्य-रति युगल या अरति-शोक युगल इन दोनो युगलो मे से किसी एक युगल के मिलाने पर चार प्रकृतिक उदयस्थान ही प्राप्त होता है। अत तीन प्रकृतिक उदयस्थान नही बतलाकर शेष १, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और १० प्रकृतिक ये कुल नौ उदयस्थान मोहनीयकर्म के बतलाये हैं।

यद्यपि गाथा ११ मे मोहनीयकर्म के उदयस्थानो की सामान्य विवेचना के प्रसग मे विशेष स्पष्टीकरण किया जा चुका है, फिर भी गुणस्थानो की अपेक्षा उनका कथन करने के लिए गाथानुसार यहाँ विवेचन करते है।

'सत्ताइ दसउ मिच्छे' अर्थात् पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे ७, ८, ९ और १० प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है। मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन, क्रोधादि मे से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, हास्य-रति युगल, शोक-अरति युगल मे से कोई एक युगल, इन सात प्रकृतियो का ध्रुव रूप से उदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन ध्रुवोदया सात प्रकृतियो मे भय अथवा जुगुप्सा अथवा अनन्तानुबधी कपाय चतुष्क मे से किसी एक कपाय को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा उन सात प्रकृतियो मे भय, जुगुप्सा अथवा भय, अनन्तानुबधी अथवा जुगुप्सा, अनन्तानुबधी मे से किन्ही दो को मिलाने से नौ प्रकृतिक और उक्त सात प्रकृतियो मे भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबन्धी अन्यतम एक कपाय को एक साथ मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन चार उदयस्थानो मे सात की एक, आठ की तीन, नौ की तीन और दस की एक, इस प्रकार भगो की आठ चौबीसी प्राप्त होती है।

सासादन और मिश्र गुणस्थान मे सात, आठ और नौ प्रकृतिक, ये तीन-तीन उदयस्थान होते है।

सासादन गुणस्थान मे अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन क्रोधादि मे से अन्यतम क्रोधादि कोई चार, तीन वेदो मे कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल इन सात प्रकृतियो का ध्रुवोदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस स्थान मे भय या जुगुप्सा मे से किसी एक को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा भय और जुगुप्सा को एक साथ मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान

होता है। इसमे भगो की चौवीसी चार है। वे इस प्रकार हैं कि सात की एक, आठ की दो और नौ की एक।

मिश्र गुणस्थान मे अनन्तानुबधी को छोडकर शेप अप्रत्याख्याना-वरण आदि तीन कषायो मे से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल और मिश्र मोहनीय, इन सात प्रकृतियो का नियम से उदय होने के कारण सात प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है। इसमे भगो की एक चौवीसी होती है। सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भगो की दो चौवीसी होती हैं तथा सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान वनता है और भगो की एक चौवीसी होती है। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान मे ७, ८ और ९ प्रकृतिक उदयस्थान तथा भगो की चार चौवीसी जानना चाहिये।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे छह से लेकर नौ प्रकृतिक चार उदयस्थान है—'छाई नव उ अविरए'। अर्थात् ६ प्रकृतिक, ७ प्रकृतिक, ८ प्रकृतिक और ९ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं। छह प्रकृतिक उदयस्थान मे अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन कपायो मे से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन छह प्रकृतियो का उदय होता है। इस स्थान मे भगो की एक चौवीसी होती है। इस छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व को मिलाने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ विकल्प से तीन प्रकृतियो के मिलाने के कारण भगो की तीन चौवीसी होती है। उक्त छह प्रकृतियो मे भय, जुगुप्सा अथवा भय, वेदक सम्यक्त्व अथवा जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व, इस प्रकार इन दो प्रकृतियो को अनुक्रम से मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान हैं। यह स्थान तीन विकल्पो से वनने के कारण भगो की तीन चौवीसियाँ होती हैं।

यद्यपि गाथा ११ मे मोहनीयकर्म के उदयस्थानो की सामान्य विवेचना के प्रसग मे विशेप स्पष्टीकरण किया जा चुका है, फिर भी गुणस्थानो की अपेक्षा उनका कथन करने के लिए गाथानुसार यहाँ विवेचन करते है।

'सत्ताइ दसउ मिच्छे' अर्थात् पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे ७, ८, ९ और १० प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है। मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन, क्रोधादि मे से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, हास्य-रति युगल, शोक-अरति युगल मे से कोई एक युगल, इन सात प्रकृतियो का ध्रुव रूप से उदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन ध्रुवोदया सात प्रकृतियो मे भय अथवा जुगुप्सा अथवा अनन्तानुबधी कषाय चतुष्क मे से किसी एक कपाय को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा उन सात प्रकृतियो मे भय, जुगुप्सा अथवा भय, अनन्तानुबधी अथवा जुगुप्सा, अनन्तानुबधी मे से किन्ही दो को मिलाने से नौ प्रकृतिक और उक्त सात प्रकृतियो मे भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबन्धी अन्यतम एक कषाय को एक साथ मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन चार उदयस्थानो मे सात की एक, आठ की तीन, नौ की तीन और दस की एक, इस प्रकार भगो की आठ चौबीसी प्राप्त होती है।

सासादन और मिश्र गुणस्थान मे सात, आठ और नौ प्रकृतिक, ये तीन-तीन उदयस्थान होते है।

सासादन गुणस्थान मे अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन क्रोधादि मे से अन्यतम क्रोधादि कोई चार, तीन वेदो मे कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल इन सात प्रकृतियो का ध्रुवोदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस स्थान मे भय या जुगुप्सा मे से किसी एक को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा भय और जुगुप्सा को एक साथ मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान

होता है। इसमे भगो की चौवीसी चार हैं। वे इस प्रकार हैं कि सात की एक, आठ की दो और नौ की एक।

मिश्र गुणस्थान मे अनन्तानुवधी को छोडकर शेष अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन कपायो मे से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल और मिश्र मोहनीय, इन सात प्रकृतियो का नियम से उदय होने के कारण सात प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है। इसमे भगो की एक चौवीसी होती है। सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भगो की दो चौवीसी होती हैं तथा सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान वनता है और भगो की एक चौवीसी होती है। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान मे ७, ८ और ९ प्रकृतिक उदयस्थान तथा भगो की चार चौवीसी जानना चाहिये।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे छह से लेकर नौ प्रकृतिक चार उदयस्थान है—'छाई नव उ अविरए'। अर्थात् ६ प्रकृतिक, ७ प्रकृतिक, ८ प्रकृतिक और ९ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान है। छह प्रकृतिक उदयस्थान मे अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन कपायो मे से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन छह प्रकृतियो का उदय होता है। इस स्थान मे भगो की एक चौवीसी होती है। इस छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व को मिलाने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ विकल्प से तीन प्रकृतियो के मिलाने के कारण भगो की तीन चौवीसी होती है। उक्त छह प्रकृतियो मे भय, जुगुप्सा अथवा भय, वेदक सम्यक्त्व अथवा जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व, इस प्रकार इन दो प्रकृतियो को अनुक्रम से मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान हैं। यह स्थान तीन विकल्पो से वनने के कारण भगो की तीन चौवीसियाँ होती हैं।

छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने पर भी नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है और विकल्प नही होने से भगो की एक चौबीसी प्राप्त होती है। चौथे गुणस्थान मे कुल मिलाकर आठ चौबीसी होती हैं।

'देसे पचाइ अट्ठेव'—देशविरत गुणस्थान मे पाँच से लेकर आठ प्रकृति पर्यन्त चार उदयस्थान हैं—पाँच, छह, सात और आठ प्रकृतिक। पाँच प्रकृतिक उदयस्थान मे पाँच प्रकृतियाँ इस प्रकार है—प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन क्रोधादि मे से अन्यतम दो क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल। यहा भङ्गो की एक चौबीसी होती है। छह प्रकृतिक उदयस्थान उक्त पाँच प्रकृतियो मे भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व मे से किसी एक को मिलाने से बनता है। इस स्थान मे प्रकृतियो के तीन विकल्प होने से तीन चौबीसी होती है। सात प्रकृतिक उदयस्थान के लिये पाँच प्रकृतियो के साथ भय, जुगुप्सा या भय, वेदक सम्यक्त्व या जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाया जाता है। यहाँ भी तीन विकल्पो के कारण भङ्गो की तीन चौबीसी जानना चाहिये। पूर्वोक्त पाँच प्रकृतियो के साथ भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को युगपत् मिलाने से आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। प्रकृतियो का विकल्प न होने से भङ्गो की एक चौबीसी होती है।

पाँचवे देशविरत गुणस्थान के अनन्तर छठे, सातवे प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत गुणस्थानो का सकेत करने के लिये गाथा मे 'विरए खओवसमिए' पद दिया है—जिसका अर्थ क्षायोपशमिक विरत होता है। क्योकि क्षायोपशमिक विरत, यह सज्ञा इन दो गुणस्थानो की ही होती है। इनके आगे के गुणस्थानो के जीवो को या तो उपशमक सज्ञा दी जाती है या क्षपक। उपशमश्रेणि चढने वाले को उपशमक और क्षपकश्रेणि चढने वाले को क्षपक कहते हैं। अत

प्रमत्त और अप्रमत्त विरत इन दो गुणस्थानो मे उदयस्थानो को वतलाने के लिये गाथा मे निर्देश किया है—'चउराई सत्त'। अर्थात् चार से लेकर सात प्रकृति तक के चार उदयस्थान हैं—चार, पाँच, छह और सात प्रकृतिक। इन दोनो गुणस्थानवर्ती जीवो के सज्वलन चतुष्क मे से क्रोधादि कोई एक, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, यह चार प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भङ्गो की एक चौवीसी होती है। भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व मे से किसी एक को चार प्रकृतिक मे मिलाने पर पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। विकल्प प्रकृतिया तीन हैं अत यहाँ भङ्गो की तीन चौवीसी वनती हैं। उक्त चार प्रकृतियो के साथ भय, जुगुप्सा अथवा भय, वेदक सम्यक्त्व अथवा जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने पर छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी भङ्गो की तीन चौवीसी होती है। भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व, इन तीनो प्रकृतियो को चार प्रकृतिक उदयस्थान मे मिलाने पर सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पर विकल्प प्रकृतियाँ न होने से भगो की एक चौवीसी होती है। कुल मिलाकर छठे और सातवे गुणस्थान मे से प्रत्येक मे भङ्गो की आठ-आठ चौवीसी होती है।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान मे चार, पाँच और छह प्रकृतिक, यह तीन उदयस्थान हैं। सज्वलन कपाय चतुष्क मे से कोई एक कपाय, तीन वेदो मे से कोई एक वेद और दो युगलो मे से कोई एक युगल के मिलाने से चार प्रकृतिक उदयस्थान वनता है तथा भङ्गो की एक चौवीसी होती है। भय, जुगुप्सा मे से किसी एक को उक्त चार प्रकृतियो मे मिलाने पर पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। विकल्प प्रकृतियाँ दो होने से यहाँ भङ्गो की दो चौवीसी प्राप्त होती हैं। भय जुगुप्सा को युगपत् चार प्रकृतियो मे मिलाने पर छह प्रकृतिक

उदयस्थान जानना चाहिये तथा भगो की एक चौबीसी होती है। इस प्रकार आठवे गुणस्थान मे भगो की चार चौबीसी होती है।

'अनियट्टिबायरे पुण इक्को वा दुवे व'—अर्थात् नौवे अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे दो उदयस्थान है—दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक। यहाँ दो प्रकृतिक उदयस्थान मे सज्वलन कषाय चतुष्क मे से किसी एक कषाय और तीन वेदो मे से किसी एक वेद का उदय होता है। यहा तीन वेदो से सज्वलन कषाय चतुष्क को गुणित करने पर १२ भग प्राप्त होते है। अनन्तर वेद का विच्छेद हो जाने पर एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है, जो चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बध के समय होता है। अर्थात् सवेद भाग तक दो प्रकृतिक और अवेद भाग मे एक प्रकृतिक उदयस्थान समझना चाहिये। यद्यपि एक प्रकृतिक उदय मे चार प्रकृतिक बध की अपेक्षा चार, तीन प्रकृतिक बध की अपेक्षा तीन, दो प्रकृतिक बध की अपेक्षा दो, और एक प्रकृतिक बध की अपेक्षा एक, इस प्रकार कुल दस भग वतलाये है किन्तु यहाँ बधस्थानो के भेद की अपेक्षा न करके सामान्य से कुल चार भग विवक्षित है।

दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे एक सूक्ष्म लोभ का उदय होने से वहाँ एक ही भग होता है—'एग सुहुमसरागो वेएइ'। इस प्रकार एक प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल पाँच भग जानना चाहिये।

दसवे गुणस्थान के बाद आगे के उपशान्तमोह आदि गुणस्थानो मे मोहनीयकर्म का उदय न होने से उन गुणस्थानो मे उदय की [illegible]क्षा एक भी भग नही होता है।

इस प्रकार यहाँ गाथाओ के निर्देशानुसार गुणस्थानों मे मोहनीय कर्म के उदयस्थानो और उनके भगो का कथन किया गया है और गाथा के अत मे जो भगो का प्रमाण पूर्वोद्दिष्ट क्रम से जानने का

सकेत दिया है सो उसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार पहले सामान्य से मोहनीयकर्म के उदयस्थानो का कथन करते समय भग वतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी उनका प्रमाण समझ लेना चाहिये। स्पष्टता के लिये पुन यहाँ भी उदयस्थानो का निर्देश करते समय भगो का सकेत दिया है। लेकिन इस निर्देश मे पूर्वोल्लेख से किसी प्रकार का अतर नही समझना चाहिये।

अव मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो की अपेक्षा दस से लेकर एक पर्यन्त उदयस्थानो के भगो की सख्या वतलाते हैं—

एक्क छडेक्कारेक्कारसेव एक्कारसेव नव तिन्नि।
एए चउवीसगया बार दुगे पंच एक्कम्मि ॥४६॥

शब्दार्थ—**एक्क**—एक, **छडेक्कार**—छह, ग्यारह, **इक्कारसेव**—ग्यारह, **नव**—नौ, **तिन्नि**—तीन, **एए**—यह, **चउवीसगया**—चौवीसी भग, **वार**—वारह भग, **दुगे**—दो के उदय मे, **पच**—पाँच, **एक्कम्मि**—एक के उदय मे।

गाथार्य—दो और एक उदयस्थानो को छोडकर दस आदि उदयस्थानो मे अनुक्रम से एक, छह, ग्यारह, ग्यारह नौ और तीन चौवीसी भग होते हैं तथा दो के उदय मे वारह और एक के उदय मे पाँच भग होते हैं।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्म के नौ उदयस्थानो को पहले वतलाया जा चुका है। इस गाथा मे प्रकृति सख्या के उदयस्थान का उल्लेख न करके उस स्थान के भगो की सख्या को वतलाया है। वह अनुक्रम से इस प्रकार समझना चाहिये कि दस प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौवीसी, नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की छह चौवीसी, आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्यारह चौवीसी, सात प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्यारह चौवीसी, छह प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्यारह

चौबीसी, पॉच प्रकृतिक उदयस्थान मे नौ चौबीसी, चार प्रकृतिक उदयस्थान मे तीन चौबीसी होती है तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान के बारह भग एव एक प्रकृतिक उदस्थान के पाच भग है। इनका विशेष विवेचन नीचे किया जाता है।

दस प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत· उसमे भगो की एक चौबीसी कही है। यह उदयस्थान मिथ्यात्व गुणस्थान मे पाया जाता है। नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की छह चौबीसी होती है क्योकि यह उदयस्थान मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानो मे पाया जाता है और मिथ्यात्व गुणस्थान मे प्रकृति-विकल्प तीन होने से तीन प्रकार से होता है, अत वहाँ भगो की तीन चौवीसी और शेप तीन गुणस्थानो मे प्रकृतिविकल्प न होने से प्रत्येक मे भगो की एक चौबीसी होती है। आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की ग्यारह चौवीसी होती है। यह आठ प्रकृतिक उदयस्थान पहले से लेकर पाँचवे गुणस्थान तक होता है और मिथ्यात्व व अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानो मे प्रकृतियो के तीन-तीन विकल्पो से तथा सासादन व मिश्र मे दो-दो विकल्पो से बनता है और देशविरत गुणस्थान मे प्रकृतियो का विकल्प नही है। अत मिथ्यात्व और अविरत मे तीन-तीन, सासादन और मिश्र मे दो-दो और देशविरत मे एक, भगो की चौवीसी होती है। इनका कुल जोड ३+३+२+२+१=११ होता है। इसी प्रकार सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भी भगो की ग्यारह चौवीसी है। यह उदयस्थान पहले से सातवे गुणस्थान तक पाया जाता है तथा चौथे और पाचवे गुणस्थान मे प्रकृतियो के तीन-तीन विकल्प होने से तीन प्रकार से वनता है। अत· इन दो गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे तीन-तीन और शेप पहले, दूसरे, तीसरे, छठे और सातवें, इन पाच गुणस्थानो मे प्रकृतिविकल्प नही होने से भगो की एक-एक चौवीसी होती हे जिनका कुल जोड ग्यारह है।

छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भी भगो की ग्यारह चौबीसी इस प्रकार हैं—अविरत सम्यग्दृष्टि और अपूर्वकरण मे एक-एक तथा देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत मे तीन-तीन। इनका जोड कुल ग्यारह होता है। पाँच प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की नौ चौबीसी है। उनमे से देशविरत मे एक, प्रमत्त और अप्रमत्त विरत गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे तीन-तीन और अपूर्वकरण मे दो चौबीसी होती हैं। चार प्रकृतिक उदयस्थान मे प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरण गुणस्थान मे भगो की एक-एक चौबीसी होने से कुल तीन चौबीसी होती हैं। इन सब उदयस्थानो की कुल मिलाकर ५२ चौबीसी होती है तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान के बारह और एक प्रकृतिक उदयस्थान के पांच भग हैं—'बार दुगे पच एक्कम्मि' जिनका स्पष्टीकरण पूर्व गाथा के सदर्भ मे किया जा चुका हे।

इस प्रकार दस से लेकर एक प्रकृतिक उदयस्थानो मे कुल मिलाकर ५२ चौबीसी और १७ भग प्राप्त होते हैं। जिनका गुणस्थानो की अपेक्षा अन्तर्भाष्य गाथा मे निम्न प्रकार से विवेचन किया गया है—

> अट्ठग चउ चउ चउरट्ठगा य चउरो य होंति चउवीसा।
> मिच्छाइ अपुव्वता बारस पणग च अनियट्टे॥

अर्थात् मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरण तक आठ गुणस्थानो मे भगो की क्रम से आठ, चार, चार, आठ, आठ, आठ, आठ, और चार चौबीसी होती हैं तथा अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे बारह और पांच भग होते है।

इस प्रकार भगो के प्राप्त होने पर कुल मिलाकर १२६५ उदय विकल्प होते है, वे इस प्रकार समझना चाहिये कि ५२ चौबीसियो की कुल सख्या १२४८ (५२ × २४ = १२४८) और इसमे अनिवृत्तिबादर गुणस्थान के १७ भगो को मिला देने पर १२४८ + १७ = १२६५ सख्या होती है तथा १० से लेकर ४ प्रकृतिक उदयस्थानो तक के सब पद ३५२ होते हैं, अत इन्हे २४ से गुणित करने देने पर ८४४८ प्राप्त -

है जो पदवृन्द कहलाते है। अनन्तर इनमे दो प्रकृतिक उदयस्थान के २×१२=२४ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के ५ भग इस प्रकार २९ भगो को और मिला देने पर पदवृन्दो की कुल सख्या ८४७७ प्राप्त होती है। जिससे सब ससारी जीव मोहित हो रहे है कहा भी है—

बारसपणसट्ठसया उदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा।
चुलसीईसत्तत्तरिपयविदसएहिं विन्नेया॥

अर्थात् ये ससारी जीव १२६५ उदयविकल्पो और ८४७७ पदवृन्दो से मोहित हो रहे है।

गुणस्थानो की अपेक्षा उदयविकल्पो और पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

क्रम स०	गुणस्थान	उदयस्थान	भग	गुण्य (पद)	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
१	मिथ्यात्व	७,८,९,१०	८ चौबीसी	६८[1]	२४	१६३२
२	सासादन	७,८,९,[illegible]	४ चौबीसी	३२	२४	७६८
३	मिश्र	७,८,९	४ चौबीसी	३२	२४	७६८
४	अविरत	६,७,८,९	८ चौबीसी	६०	२४	१४४०
५	देशविरत	५,६,७,८	८ चौबीसी	५२	२४	१२४८
६	प्रमत्तविरत	४,५,६,७	८ चौबीसी	४४	२४	१०५६
७	अप्रमत्तवि०	४,५,६,७	८ चौबीसी	४४	२४	१०५६
८	अपूर्वकरण	४,५,६,[illegible]	४ चौबीसी	२०	२४	४८०
[illegible]	अनिवृत्ति०	२,१	१६ भग	२।१	१२।१	२४।४
[illegible]	सूक्ष्म०	१	१	१	१	१

१ मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो मे ६८ आदि पद (गुण्य) होने का स्पष्टीकरण आगे की गाथाओ मे किया जा रहा है।

इस प्रकार गुणस्थानो की अपेक्षा मोहनीयकर्म के उदयस्थानो व उनके भङ्गो का कथन करने के बाद अब आगे की गाथा मे उपयोग आदि की अपेक्षा भङ्गो का निर्देश करते हैं—

योग, उपयोग और लेश्याओ मे भग

जोगोवओगलेसाइएहिं गुणिया हवंति कायव्वा ।
जे जत्थ गुणट्ठाणे हवति ते तत्थ गुणकारा[1] ॥४७॥

शब्दार्थ—**जोगोवओगलेसाइएहिं**—योग, उपयोग और लेश्या-दिक से, **गुणिया**—गुणा, **हवति**—होते हैं, **कायव्वा**—करना चाहिये, **जे**—जो योगादि, **जत्थ गुणट्ठाणे**—जिस गुणस्थान मे, **हवति**—होते है, **ते**—उतने, **तत्थ**—उसमे, **गुणकारा**—गुणकार सख्या ।

गाथार्थ—पूर्वोक्त उदयभङ्गो को, योग, उपयोग और लेश्या आदि से गुणा करना चाहिये । इसके लिये जिस गुणस्थान मे जितने योगादि हो वहाँ उतने गुणकार सख्या होती है ।

विशेषार्थ—गुणस्थान मे मोहनीयकर्म के उदयविकल्पो और पद-वृन्दो का निर्देश पूर्व मे किया जा चुका है । अब इस गाथा मे योग, उपयोग और लेश्याओ की अपेक्षा उनकी सख्या का कथन करते हैं कि वह सख्या कितनी-कितनी होती है ।

---

[1] तुलना कीजिये—

(क) एव जोगुवओगा लेमाई भेयओ वहूभेया ।
जा जस्स जमि उ गुणे सखा सा तमि गुणगारो ॥
—**पचसग्रह सप्ततिका गा० ११७**

(ख) उदयट्ठाण पयडि सगसगउवजोगजोगआदीहिं ।
गुणयित्ता मेलविदे पदसखा पयडिसखा य ॥
—**गो० कर्मकाड गा० ४९**

गुणस्थानो मे योग आदि की अपेक्षा उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या जानने के सम्बन्ध मे सामान्य नियम यह है कि जिस गुणस्थान मे योगादिक की जितनी सख्या है उसमे उस गुणस्थान के उदयविकल्प और पदवृन्दो को गुणित कर देने पर योगादि की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान मे उदयविकल्प और पदवृन्द की सख्या ज्ञात हो जाती है। अत यह जानना जरूरी है कि किस गुणस्थान मे कितने योग आदि है। परन्तु इनका एक साथ कथन करना अशक्य होने से क्रमश योग, उपयोग और लेश्या की अपेक्षा विचार करते हैं।

योग की अपेक्षा भगो का विचार इस प्रकार है—मिथ्यात्व गुणस्थान मे १३ योग और भगो की आठ चौबीसी होती है। इनमे से चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक और वैक्रिय काययोग इन दस योगो मे से प्रत्येक मे भगो की आठ-आठ चौबीसी होती है, जिससे १० को ८ से गुणित कर देने पर ८० चौबीसी हुई। किन्तु औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रयमिश्र काययोग और कार्मण काययोग इन तीन योगो मे से प्रत्येक मे अनन्तानुबन्धी के उदय सहित वाली चार-चार चौबीसी होती है। इसका कारण यह है कि अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना करने पर जीव मिथ्यात्व गुणस्थान मे जाता है, उसको जब तक अनन्तानुबधी का उदय नही होता तब तक मरण नही होता। अत इन तीन योगो मे अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित चार चौबीसी सम्भव नही है। विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जिसने अनन्तानुबधी की विसयोजना की है, ऐसा जीव जब मिथ्यात्व को प्राप्त होता है तब उसके अनन्तानुबधी का उदय एक आवली काल के बाद होता है, ऐसे जीव का अनन्तानुबन्धी का उदय होने पर ही मरण होता है, पहले नही। जिससे उक्त तीनो योगो मे अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित चार चौबीसी नही पाई जाती हैं।

इसीलिए इन तीन योगो मे भगो की कुल बारह चौबीसी मानी हैं। इनको पूर्वोक्त ८० चौबीसी मे मिला देने पर (८०+१२=९२) कुल ९२ चौबीसी होती है और इनके कुल भग ९२ को २४ से गुणा करने पर २२०८ होते है।

दूसरे सासादन गुणस्थान मे भी योग १३ होते हैं और प्रत्येक योग की चार-चार चौबीसी होने से कुल भगो की ५२ चौबीसी होनी चाहिए थी किन्तु सासादन गुणस्थान मे नपुसकवेद का उदय नही होता है, अत बारह योगो की तो ४८ चौबीसी हुईं और वैक्रियमिश्र काययोग के ४ षोडशक हुए। इस प्रकार ४८ को २४ से गुणा करने पर ११५२ भग हुए तथा इस सख्या मे चार षोडकश के ६४ भग मिला देने पर सासादन गुणस्थान मे सब भग १२१६ होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक व वैक्रिय ये दो काययोग कुल दस योग है और प्रत्येक योग मे भगो की ४ चौबीसी। अत १० को चार चौबीसियो से गुणा करने पर २४×४=९६×१०=९६० कुल भग होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे १३ योग और प्रत्येक योग मे भगो की ८ चौबीसी होनी चाहिये थी। किन्तु ऐसा नियम है कि चौथे गुणस्थान के वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग मे स्त्रीवेद नही होता है, क्योकि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्री वेदियो मे उत्पन्न नही होता है। इसलिए इन दो योगो मे भगो की ८ चौबीसी प्राप्त न होकर ८ षोडशक प्राप्त होते है। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए आचार्य मलयगिरि ने कहा है कि—स्त्रीवेदी सम्यग्दृष्टि जीव वैक्रियमिश्र काययोगी और कार्मण काययोगी नहीं होता है। यह कथन बहुलता की अपेक्षा से किया गया है, वैसे कदाचित इनमे भी

स्त्रीवेद के साथ सम्यग्दृष्टियो का उत्पाद देखा जाता है।[1] इसी बात को चूर्णि मे भी स्पष्ट किया है—

कयाइ होज्ज इत्थिवेयगेसु वि ।

अर्थात्—कदाचित् सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीवेदियो मे भी उत्पन्न होता है। तथा चौथे गुणस्थान के औदारिकमिश्र काययोग मे स्त्रीवेद और नपुसकवेद नही होता है। क्योकि स्त्रीवेदी और नपुसकवेदी तिर्यंच और मनुष्यो मे अविरत सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नही होते हैं, अत औदारिक मिश्र काययोग मे भगो की ८ चौबीसी प्राप्त न होकर आठ अष्टक प्राप्त होते है। स्त्रीवेदी और नपुसकवेदी सम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्र काययोगी नही होता है। यह बहुलता की अपेक्षा से समझना चाहिए।[2] इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे दस योगो की ८० चौबीसी, वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग, इन दोनो मे प्रत्येक के आठ-आठ षोडशक और औदारिकमिश्र काययोग के आठ अष्टक होते है। जिनके भग ८०×२४=१९२० तथा १६×८=१२८ पुन १६×८=१२८ और ८×८=६४ होते हैं, इनका कुल जोड

---

१ (क) ये चाविरतसम्यग्दृष्टेर्वैक्रियमिश्रे कार्मणकाययोगे च प्रत्येकमष्टावष्टौ उदयस्थानविकल्पा एषु स्त्रीवेदो न लभ्यते, वैक्रियकाययोगिषु स्त्रीवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावत्। एतच्च प्रायोवृत्तिमाश्रित्योक्तम्, अन्यथा कदाचित् स्त्रीवेदिष्वपि मध्ये तदुत्पादो भवति। **—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१७**

(ख) दिगम्बर परम्परा मे यही एक मत मिलता है कि स्त्रीवेदियो मे सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नही होता है।

२ अविरतसम्यग्दृष्टेरौदारिकमिश्रकाययोगे येऽष्टावुदयस्थानविकल्पास्ते पुवेदसहिता एव प्राप्यन्ते, न स्त्रीवेद-नपुसकवेदसहिता तिर्यग्-मनुष्येषु स्त्रीवेदनपुसकवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावत्, एतच्च प्राचुर्यमाश्रित्योक्तम्। **—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१७**

१९२०+१२८+१२८+६४=२२४० है। योग की अपेक्षा ये २२४० भग चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे प्राप्त होते है।

पाचवें देशविरति गुणस्थान मे औदारिकमिश्र, कार्मण काययोग और आहारकद्विक के विना ११ योग होते हैं। यहाँ प्रत्येक योग मे भगो की ८ चौबीसी सभव है अत यहाँ कुल भग (११×८=८८×२४=२११२) २११२ होते हैं।

छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान मे औदारिकमिश्र और कार्मण काय-योग के विना १३ योग और प्रत्येक योग मे भगो की ८ चौबीसी होनी चाहिए। किन्तु ऐसा नियम है कि स्त्रीवेद मे आहारक काययोग और आहारकमिश्र काययोग नही होता है। क्योकि आहारक समुद्घात चौदह पूर्वधारी ही करते हैं। किन्तु स्त्रियो के चौदह पूर्वो का ज्ञान नही पाया जाता है। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए बताया भी है कि—

> तुच्छा गारवबहुला चलिंदिया दुब्बला य धीईए।
> इय अइसेसज्झयणा भूयावाओ य नो थीण ॥[1]

अर्थात् स्त्रीवेदी जीव तुच्छ, गारवबहुल, चचल इन्द्रिय और बुद्धि से दुर्बल होते हैं। अत वे बहुत अध्ययन करने मे समर्थ नही है और उनमे दृष्टिवाद अग का भी ज्ञान नही पाया जाता है।

इसलिये ग्यारह योगो मे तो भगो की आठ-आठ चौबीसी प्राप्त होती हैं किन्तु आहारक और आहारकमिश्र काययोगो मे भगो के आठ-आठ षोडशक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यहाँ ११×८=८८×२४=२११२ तथा १६×८=१२८ और १६×८=१२८ भग है। इन सबका जोड २११२+१२८+१२८=२३६८ होता है। अत प्रमत्त-सयत गुणस्थान मे कुल भग २३६८ होते है।

१ बृहत्कल्पभाष्य गा० १४६

जो जीव प्रमत्तसयत गुणस्थान मे वैक्रिय काययोग और आहारक काययोग को प्राप्त करके अप्रमत्तसयत हो जाता है, उसके अप्रमत्त-सयत अवस्था मे रहते हुए ये दो योग होते है। वैसे अप्रमत्तसयत जीव वैक्रिय और आहारक समुद्घात का प्रारम्भ नही करता है, अत इस गुणस्थान मे वैक्रियमिश्र काययोग और आहारकमिश्र काययोग नही माना है। इसी कारण सातवे अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक, वैक्रिय व आहारक काययोग, ये ग्यारह योग होते है। इन योगो मे भगो की आठ-आठ चौबीसी होनी चाहिये थी। किन्तु आहारक काययोग मे स्त्रीवेद नही होने से दस योगो मे तो भगो की आठ चौबीसी और आहारक काययोग मे आठ षोडशक प्राप्त होते है। इन सब भगो का जोड २०४८ होता है जो अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे योगापेक्षा होते हैं।

आठवे अपूर्वकरण गुणस्थान मे नौ योग और प्रत्येक योग मे भगो की चार चौबीसी होती है। अत यहाँ कुल भग ८६४ होते है। नौवें अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे योग ९ और भग १६ होते है अत १६ को ९ से गुणित करने पर यहा कुल भग १४४ प्राप्त होते हैं तथा दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे योग ९ और भग १ है। अत यहा कुल ९ भग प्राप्त होते है।

उपर्युक्त दसो गुणस्थानो के कुल भगो को जोडने पर २२०८+१२१६+९६०+२२४०+२११२+२३६८+२०४८+८६४+१४४+९ =१४१६९ प्रमाण होता है। कहा भी है—

चउदस य सहस्साइ सय च गुणहत्तर उदयमाण।[1]

अर्थात् योगो की अपेक्षा मोहनीयकर्म के कुल उदयविकल्पो का प्रमाण १४१६९ होता है।

---

[1] पचसग्रह सप्ततिका गा० १२०

योगो की अपेक्षा गुणस्थानो मे उदयविकल्पो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	योग		गुणकार	जोड	
मिथ्यात्व	१३	१०	८×२४=१९२	१९२×१०=१९२०	२२०८
		३	४×२४=९६	९६×३=२२८	
सासादन	१३	१२	४×२४=९६	९६×१२=११५२	१२१६
		१	४×१६=६४	६४×१=६४	
मिश्र	१०	१०	४×२४=९६	९६×१०=९६०	९६०
अविरत	१३	१०	८×२४=१९२	१९२×१०=१९२०	२२४०
		२	८×१६=१२८	१२८×२=२५६	
		१	८×८=६४	६४×१=६४	
देशविरत	११	११	८×२४=१९२	१९२×११=२११२	२११२
प्रमत्तसंयत	१३	११	८×२४=१९२	१९२×११=२११२	२३६८
		२	८×१६=१२८	१२८×२=२५६	
अप्रमत्तस०	११	१०	८×२४=१९२	१९२×१०=१९२०	२०४८
		१	८×१६=१२८	१२८×१=१२८	
अपूर्व०	९	९	४×२४=९६	९६×९=८६४	८६४
अनिवृत्ति०	९	९	१६	१६×९=१४४	१४४
सूक्ष्म०	९	९	१	९×१=९	९
				कुल जोड	१४१६९

योगो की अपेक्षा गुणस्थानो मे उदयविकल्पो का विचार करने के अनन्तर अब क्रम प्राप्त पदवृन्दो का विचार करने के लिये अन्त-र्भाष्य गाथा उद्धृत करते है—

> अट्ठट्ठी बत्तीस बत्तीस सट्ठिमेव बावन्ना ।
> चोयाल चोयाल वीसा वि य मिच्छमाईसु ॥

अर्थात्—मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो मे क्रम से ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ और २० उदयपद होते है ।

यहाँ उदयपद से उदयस्थानो की प्रकृतिया ली गई है। जैसे कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे १०, ६, ८ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान है और इनमे से १० प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत उसकी दस प्रकृतियाँ हुईं। ६ प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकृतियो के विकल्प से बनने के कारण तीन है अत उसकी २७ प्रकृतिया हुईं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान भी तीन प्रकृतियो के विकल्प से बनता है अत उसकी २४ प्रकृतिया हुईं और सात प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत उसकी ७ प्रकृतियाँ हुईं। इस प्रकार मिथ्यात्व मे चारो उदयस्थानो की १० + २७ + २४ + ७ = ६८ प्रकृतिया होती है। सासादन आदि गुणस्थानो मे जो ३२ आदि उदयपद बतलाये है, उनको भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

अब यदि इन आठ गुणस्थानो के सब उदयपद (६८ से लेकर २० तक) जोड दिये जाये तो इनका कुल प्रमाण ३५२ होता है। किन्तु इनमे से प्रत्येक उदयपद मे चौबीस-चौबीस भङ्ग होते है, अत ३५२ को २४ से गुणित करने पर ८४४८ प्राप्त होते हैं। ये पदवृन्द अपूर्वकरण गुणस्थान तक के जानना चाहिये। इनमे अनिवृत्तिकरण के २८ और सूक्ष्मसपराय गुणस्थान का १, कुल २६ भङ्ग मिला देने पर ८४४८ + २६ = ८४७७ प्राप्त होते है। ये मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक के सामान्य से पदवृन्द हुए।

अब यदि योगो की अपेक्षा दसो गुणस्थानो के पदवृन्द लाना चाहे तो दो बातो पर ध्यान देना होगा—१ किस गुणस्थान मे पदवृन्द और योगो की सख्या कितनी है और २ उन योगो मे से किस योग मे कितने पदवृन्द सम्भव हैं। इन्ही दो बातो को ध्यान मे रखकर अब योगापेक्षा गुणस्थानो के पदवृन्द बतलाते हैं।

यह पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे ४ उदयस्थान और उनके कुल पद ६८ हैं। इनमे से एक सात प्रकृतिक उदयस्थान, दो आठ प्रकृतिक उदयस्थान और एक नौ प्रकृतिक उदयस्थान अनतानुबधी के उदय मे रहित है जिनके कुल उदयपद ३२ होते हैं और एक आठ प्रकृतिक उदयस्थान, दो नौ प्रकृतिक उदयस्थान और एक दस प्रकृतिक उदयस्थान, ये चार उदयस्थान अनन्तानुबधी के उदय सहित हैं जिनके कुल उदयपद ३६ होते हैं। इनमे से पहले के ३२ उदयपद, ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, औदारिक काययोग और वैक्रिय काययोग, इन दस योगो के साथ पाये जाते है। क्योकि यहाँ अन्य योग सभव नही है, अत इन ३२ को १० से गुणित करने पर ३२० होते हैं और ३६ उदयपद पूर्वोक्त दस तथा औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मणयोग इन १३ योगो के साथ पाये जाते है। क्योकि ये पद पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो अवस्थाओ मे सभव है, अत ३६ को १३ से गुणित करने पर ४६८ प्राप्त होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान के कुल पदवृन्द प्राप्त करने की रीति यह है कि ३२० और ४६८ को जोडकर उनको २४ से गुणित करदे तो मिथ्यात्व गुणस्थान के कुल पदवृन्द आ जाते है, जो ३२०+४६८=७८८×२४=१८९१२ होते है।

सासादन गुणस्थान मे योग १३ और उदयपद ३२ हैं। सो १२ योगो मे तो ये सब उदयपद सभव हैं किन्तु सासादन सम्यग्दृष्टि को वैक्रियमिश्र मे नपुसकवेद का उदय नही होता है, अत यहाँ नपु …

के भङ्ग कम कर देना चाहिये। इसका तात्पर्य यह हुआ कि १३ योगो की अपेक्षा १२ से ३२ को गुणित करके २४ से गुणित करे और वैक्रिय-मिश्र की अपेक्षा ३२ को १६ से गुणित करे। इस प्रकार १२×३२= ३८४×२४=९२१६ तथा वैक्रियमिश्र के ३२×१६=५१२ हुए और इन ९२१६ और ५१२ का कुल जोड ९७२८ होता है। यही ९७२८ पदवृन्द सासादन गुणस्थान मे होते हैं।

मिश्र गुणस्थान मे दस योग और उदयपद ३२ है। यहाँ सब योगो मे सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग सभव है, अत १० को ३२ से गुणित करके २४ से गुणित करने पर (३२×१०=३२०× २४=७६८०) ७६८० पदवृन्द प्राप्त होते है।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे योग १३ और उदयपद ६० होते है। सो यहाँ १० योगो मे तो सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग सभव होने से १० से ६० को गुणित करके २४ से गुणित कर देने पर १० योगो सबधी कुल भङ्ग १४४०० प्राप्त होते है। किन्तु वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग मे स्त्रीवेद का उदय नही होने से स्त्रीवेद सबधी भङ्ग प्राप्त नही होते है, इसलिये यहा २ को ६० से गुणित करके १६ से गुणित करने पर उक्त दोनो योगो सम्बन्धी कुल भङ्ग १९२० प्राप्त होते है तथा औदारिकमिश्र काययोग मे स्त्रीवेद और नपुसकवेद का उदय नही होने से दो योगो सबधी भङ्ग प्राप्त नही होते है। अत यहाँ ६० को ८ से गुणित करने पर औदारिकमिश्र काययोग की अपेक्षा ४८० भङ्ग प्राप्त होते है। इस प्रकार चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे १३ योग सबधी कुल पदवृन्द १४४००+१९२०+४८०=१६८०० होते हैं।

देशविरत गुणस्थान मे योग ११ और पद ५२ है और यहाँ सब योगो मे सब उदयपद और उनके भङ्ग सम्भव है अत यहाँ ११ से ५२ को गुणित करके २४ से गुणित करने पर कुल भङ्ग १३७२८ होते है।

प्रमत्तसयत गुणस्थान मे योग १३ और पद ४४ हैं किन्तु आहारक-द्विक मे स्त्रीवेद का उदय नही होता है, इसलिये ११ योगो की अपेक्षा तो ११ को ४४ से गुणित करके २४ से गुणित करने से ११×४४=४८४×२४=११६१६ हुए और आहारकद्विक की अपेक्षा २ से ४४ को गुणित करके १६ से गुणित करे तो २×४४=८८×१६=१४०८ हुए। तब ११६१६+१४०८ को जोडने पर कुल १३०२४ पदवृन्द प्रमत्तसयत गुणस्थान मे प्राप्त होते हैं।

अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे भी योग ११ और पद ४४ है, किन्तु आहारक काययोग मे स्त्रीवेद का उदय नही होता है। इसलिये १० योगो की अपेक्षा १० से ४४ को गुणित करके २४ से गुणित करे और आहारक काययोग की अपेक्षा ४४ से १६ को गुणित करें। इस प्रकार करने पर अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे कुल पदवृन्द ११२६४ होते हैं।

अपूर्वकरण मे योग ९ और पद २० होते है। अत २० को ९ से गुणित करके २४ से गुणित करने पर यहाँ कुल पदवृन्द ४३२० प्राप्त होते हैं।

अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे योग ९ और भङ्ग २८ हैं। यहाँ योग पद नही है अत पद न कहकर भङ्ग कहे है। सो इन ९ को २८ से गुणित कर देने पर अनिवृत्तिबादर मे २५२ पदवृन्द होते हैं तथा सूक्ष्मसपराय मे योग ९ और भङ्ग १ है, अत ९ से १ को गुणित करने पर ९ भङ्ग होते है।

इस प्रकार पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक के पदवृन्दो को जोड देने पर सब पदवृन्दो की कुल सख्या ९५७१७ होती है। कहा भी है—

ततरसा सत्त सया पणनउइसहस्स पयसखा।[1]

अर्थात योगो की अपेक्षा मोहनीयकर्म के सब पदवृन्द पचानवे हजार सातसौ सत्रह ९५७१७ होते है।[2]

१ पचसग्रह सप्ततिका गा० १२०

२ गो० कर्मकाड गा० ४९८ और ५०० मे योगो की अपेक्षा उदयस्थान १२९५३ और पदवृन्द ८८९४५ बतलाये है।

उक्त पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	योग	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)	
मिथ्यात्व	१३	३६	२४	११२३२	१८९१२
	१०	३२	२४	७६८०	
सासादन	१२	३२	२४	९२१६	९७२८
	१	३२	१६	५१२	
मिश्र	१०	३२	२४	७६८०	७६८०
अविरत सम्यग्दृष्टि	१०	६०	२४	१४४००	१६८००
	२	६०	१६	१९२०	
	१	६०	८	४८०	
देशविरत	११	५२	२४	१३७२८	१३७२८
प्रमत्तसयत	११	४४	२४	११६१६	१३०२४
	२	४४	१६	१४०८	
अप्रमत्तसयत	१०	४४	२४	१०५६०	११२६४
	१	४४	१६	७०४	
अपूर्वकरण	९	२०	२४	४३२०	४३२०
अनिवृत्ति बादर	९	२	१२	२१६	२५२
	९	१	४	३६	
[illegible]मसपराय	९	१	१	९	९
					९५७१७ पदवृन्द

इस प्रकार से योगो की अपेक्षा गुणस्थानो मे मोहनीयकर्म के उदयस्थानो, भगो और पदवृन्दो का विचार करने के बाद अब आगे उपयोगो की अपेक्षा उदयस्थानो आदि का विचार करते है।

मिथ्यात्व और सासादन इन दो गुणस्थानो मे मतिअज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभगज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन, ये पाच उपयोग होते है। मिश्र मे तीन मिश्र ज्ञान और चक्षु व अचक्षु दर्शन, इस प्रकार ये पाच उपयोग है। अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरत मे आरम्भ के तीन सम्यग्ज्ञान और तीन दर्शन, ये छह उपयोग होते हैं तथा छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान से लेकर दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक पाच गुणस्थानो मे पूर्वोक्त छह तथा मनपर्यायज्ञान सहित सात उपयोग होते है तथा प्रत्येक गुणस्थान के उदयस्थान के भगो का कथन पूर्व मे अन्तर्भाष्य गाथा 'अट्ठग चउ चउ चउरट्ठगा य ' के सदर्भ मे किया जा चुका है। अत जिस गुणस्थान मे जितने उपयोग हो, उनसे उस गुणस्थान के उदयस्थानो को गुणित करके अनन्तर भगो से गुणित कर देने पर उपयोगो की अपेक्षा उस गुणस्थान के कुल भग ज्ञात हो जाते है। जैसे कि मिथ्यात्व और सासादन मे क्रम से ८ और ४ चौवीसी तथा ५ उपयोग है अत ८+४=१२ को ५ से गुणित कर देने पर ६० हुए। मिश्र मे ४ चौवीसी और ५ उपयोग है अत ४ को ५ से गुणित करने पर २० हुए। अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरत गुणस्थान मे आठ आठ चौवीसी और ६ उपयोग है अत ८+८=१६ को ६ से गुणित कर देने पर ९६ हुए। प्रमत्त, अप्रमत्त सयत और अपूर्वकरण गुणस्थान मे आठ, आठ और चार चौवीसी तथा ७ उपयोग हैं, अत ८+८+४=२० को सात से गुणा कर देने पर १४० हुए तथा इन सबका जोड ६०+२०+९६+१४०=३१६ हुआ। इनमे से प्रत्येक चौवीसी मे २४, २४ भग होते है अत इन ३१६ को २४ से गुणित कर देने पर कुल ३१६ × २४=७५८४ होते है तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान

मे १२ भग और एक प्रकृतिक उदयस्थान मे ५ भग होते है, जिनका कुल जोड १७ हुआ। इन्हे वहाँ सभव उपयोगो की सख्या ७ से गुणित कर देने पर ११६ होते है। जिनको पूर्व राशि ७५८४ मे मिला देने पर कुल भग ७७०३ होते हैं। कहा भी है—

उदयाणुवओगेसुं सगसयरिसया तिउत्तरा होंति।[1]

अर्थात्—मोहनीय के उदयस्थान विकल्पो को वहाँ सभव उपयोगो से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण ७७०३ होता है।

किन्तु मिश्र गुणस्थान मे उपयोगो के बारे मे एक मत यह भी है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे पाच के बजाय अवधि दर्शन सहित छह उपयोग पाये जाते हैं। अत इस मत को स्वीकार करने पर मिश्र गुणस्थान की ४ चौबीसी को ६ से गुणित करने से २४ होते हैं और इन २४ को २४ से गुणित करने पर ५७६ होते हैं अर्थात् इस गुणस्थान मे ४८० की वजाय ९६ भग और बढ जाते हैं। अत पूर्व बताये गये ७७०३ भगो मे ९६ को जोडने पर कुल भगो की सख्या ७७९९ प्राप्त होती है। इस प्रकार ये उपयोग[2]-गुणित उदयस्थान भग जानना चाहिये।

उपयोगो की अपेक्षा उदयविकल्पो का विवरण इस प्रकार है—

गुणस्थान	उपयोग	गुणकार	गुणनफल (उदयविकल्प)
मिथ्यात्व	५	८ × २४	९६०
सासादन	५	४ × २४	४८०
	५	४ × २४	४८०

1 पचसग्रह सप्ततिका, गा० ११८।

2 गो० कर्मकाड गा० ४९२ और ४९३ मे उपयोगो की अपेक्षा उदयस्थान ७७९९ और पदवृन्द ५१०८३ बतलाये है।

अविरत	६	८×२४	११५२
देशविरत	६	८×२४	११५२
प्रमत्तविरत	७	८×२४	१३४४
अप्रमत्तविरत	७	८×२४	१३४४
अपूर्वकरण	७	४×२४	६७२
अनिवृत्तिबादर	७	१२	८४
	७	४	२८
सूक्ष्म संपराय	७	१	७
			७७०३ उदयविकल्प

विशेष—जब दूसरे मत के अनुसार मिश्र गुणस्थान मे अवधिदर्शन सहित छह उपयोग होते है तब उसकी अपेक्षा प्राप्त हुए ९६ भगो को ७७०३ भगो मे मिला देने पर कुल उदयविकल्प ७७९९ होते है।

इस प्रकार से उपयोगो की अपेक्षा उदयविकल्पो को बतलाने के बाद अब उपयोगो से गुणित करने पर प्राप्त पदवृन्दो के प्रमाण को बतलाते है।

पूर्व मे भाष्य गाथा 'अट्ठट्ठी बत्तीस ' मे गुणस्थानो मे उदयस्थान पदो का सकेत किया जा चुका है। तदनुसार मिथ्यात्व मे ६८, सासादन मे ३२ और मिश्र गुणस्थान मे ३२ उदयस्थान पद है, जिनका जोड १३२ होता है। इन्हे इन गुणस्थानो मे सम्भव ५ उपयोगो से गुणित करने पर १३२×५=६६० हुए। अविरत सम्यग्दृष्टि मे ६० और देशविरत मे ५२ उदयस्थान पद है। जिनका जोड ११२ होता है, इन्हे यहा सभव ६ उपयोगो से गुणित करने पर ६७२ हुए। प्रमत्तसयत

मे ४४, अप्रमत्तसयत मे ४४ और अपूर्वकरण मे २० उदयस्थान पद हैं। इनका कुल जोड ४४+४४+२०=१०८ होता है। इन्हे यहाँ सभव ७ उपयोगो से गुणित करने पर ७५६ हुए। इस प्रकार पहले से लेकर आठवे गुणस्थान तक के सब उदयस्थान पदो का जोड ६६०+६७२+७५६=२०८८ हुआ। इन्हे भगो की अपेक्षा २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानो के कुल पदवृन्दो का प्रमाण २०८८×२४=५०११२ होता है। अनन्तर दो प्रकृतिक उदयस्थान के पदवृन्द २४ और एक प्रकृतिक उदयरथान के पदवृन्द ५, इनका जोड २९ हुआ। सो इन २९ को यहाँ सभव ७ उपयोगो से गुणित कर देने पर २०३ पदवृन्द और प्राप्त हुए। जिन्हे पूर्वोक्त ५०११२ पदवृन्दो मे मिला देने पर कुल पदवृन्दो का प्रमाण ५०३१५ होता है कहा भी है—

पन्नास च सहस्सा तिन्नि सया चेव पन्नारा।[1]

अर्थात्—मोहनीय के पदवृन्दो को यहाँ सभव उपयोगो से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण पचास हजार तीनसौ पन्द्रह ५०३१५ होता है।

उक्त पदवृन्दो की सख्या मिश्र गुणस्थान मे पाच उपयोग मानने की अपेक्षा जानना चाहिये। लेकिन जब मतान्तर से पाच की वजाय ६ उपयोग स्वीकार किये जाते है तब इन पदवृन्दो मे एक अधिक उपयोग के पदवृन्द १×३२×२४=७६८ भग और वढ जाते है और कुल पदवृन्दो की सख्या ५०३१५ की वजाय ५१०८३ हो जाती है।

उपयोगो की अपेक्षा पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

---

१ पचसग्रह सप्ततिका गा० ११८।

गुणस्थान	उपयोग	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
मिथ्यात्व	५	६८	२४	८१६०
सासादन	५	३२	२४	३८४०
मिश्र	५	३२	२४	३८४०
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	६	५२	२४	७४८८
प्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अप्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अपूर्वकरण	७	२०	२४	३३६०
अनिवृत्तिबादर	७	२	१२	१६८
	७	१	४	२८
सूक्ष्मसंपराय	७	१	१	७
				५०३१५ पदवृन्द

इसमे मिश्र गुणस्थान संबंधी अवधिदर्शन के ७६८ भंगो को और मिला दिया जाये तो उस अपेक्षा से कुल पदवृन्द ५१०८३ होते है।

इस प्रकार से उपयोगो की अपेक्षा उदयस्थान पदवृन्दो का वर्णन करने के बाद अब लेश्याओ की अपेक्षा उदयस्थान विकल्पो और पदवृन्दो का विचार करते है। पहले उदयस्थान विकल्पो को बतलाते है।

मिथ्यात्व से लेकर अविरत सम्यग्दृष्टि, इन चार गुणस्थानो तक प्रत्येक स्थान मे छहो लेश्यायें होती है। देशविरत, प्रमत्तसंयत और

अप्रमत्तसयत, इन तीन गुणस्थानो मे तेजोलेश्या आदि तीन शुभ लेश्या है और अपूर्वकरण आदि आगे के गुणस्थानो मे एक शुक्ललेश्या होती है।

मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे प्राप्त चौबीसी पहले बतलाई जा चुकी है। इसलिये तदनुसार मिथ्यात्व मे ८, सासादन मे ४ और मिश्र मे ४ तथा अविरत सम्यग्दृष्टि मे ८ चौबीसी हुई। इनका कुल जोड २४ हुआ। इन्हे ६ से गुणित कर देने पर २४×६=१४४ हुए। देशविरत मे ८, प्रमत्तविरत मे ८ और अप्रमत्तविरत मे ८ चौबीसी है। जिनका कुल जोड २४ हुआ। इन तीन गुणस्थानो मे तीन शुभ लेश्याये होने के कारण २४×३=७२ होते है। अपूर्वकरण गुणस्थान मे ४ चौबीसी है, लेकिन यहाँ सिर्फ एक शुक्ल लेश्या होने से सिर्फ ४ ही प्राप्त होते है। उक्त आठ गुणस्थानो की कुल सख्या का जोड १४४+७२+४=२२० हुआ। इन्हे २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानो के कुल उदयस्थान विकल्प २२०×२४=५२८० होते है। अनन्तर इनमे दो प्रकृतिक उदयस्थान के १२ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के ५ इस प्रकार १७ भगो को और मिला देने पर कुल उदयस्थान विकल्प ५२८०+१७=५२९७ होते हैं। ये ५२९७ लेश्याओ की अपेक्षा उदयस्थान विकल्प जानना चाहिये।

इन उदयस्थान विकल्पो का विवरण क्रमश इस प्रकार है—

गुणस्थान	लेश्या	गुणकार	गुणनफल (उदयविकल्प)
मिथ्यात्व	६	८×२४	११५२
सासादन	६	४×२४	५७६
	६	४×२४	५७६
	६	८×२४	११५२

देशविरत	३	८ × २४	५७६
प्रमत्तसयत	३	८ × २४	५७६
अप्रमत्तसयत	३	८ × २४	५७६
अपूर्वकरण	१	४ × २४	९६
अनिवृत्तिकरण	१	१२	१२
	१	४	४
सूक्ष्मसपराय	१	१	१
			५२६७

अब लेश्याओ की अपेक्षा पदवृन्द बतलाते हैं —

मिथ्यात्व के ६८, सासादन के ३२, मिश्र के ३२ और अविरत सम्यग्दृष्टि के ६० पदो का जोड ६८+३२+३२+६०=१९२ हुआ। इन्हे यहाँ सभव ६ लेश्याओ से गुणित कर देने पर ११५२ होते हैं। सो देशविरत के ५२, प्रमत्तविरत के ४४ और अप्रमत्तविरत के ४४ पदो का जोड १४० हुआ। इन्हे इन तीन गुणस्थानो मे सभव ३ लेश्याओ से गुणित कर देने पर ४२० होते हैं तथा अपूर्वकरण मे पद २० है, किन्तु यहाँ एक ही लेश्या है अत इसका प्रमाण २० हुआ। इन सबका जोड ११५२+४२०+२०=१५९२ हुआ। इन १५९२ को भगो की अपेक्षा २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानो के कुल पदवृन्द ३८२०८ होते हैं। अनन्तर इनमे दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक पदवृन्द २९ और मिला देने पर कुल पदवृन्द ३८२३७ होते है। कहा भी है—

> तिगहीणा तेवन्ना सया य उदयाण होंति लेसाण।
> अडतोस सहस्साइ पयाण सय दो य सगतीसा ॥[1]

1 पंचसंग्रह सप्ततिका गा० ११७

अर्थात्—मोहनीयकर्म के उदयस्थान और पदवृन्दो को लेश्याओ से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण क्रम से ५२९७ और ३८२३७[1] होता है।

लेश्याओ की अपेक्षा पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	लेश्या	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
मिथ्यात्व	६	६८	२४	९७९२
सासादन	६	३२	२४	४६०८
मिश्र	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	३	५२	२४	३७४४
प्रमत्तसयत	३	४४	२४	३१६८
अप्रमत्तसयत	३	४४	२४	३१६८
अपूर्वकरण	१	२०	२४	४८०
अनिवृत्तिबादर	१	२	१२	२४
	१	१	४	४
सूक्ष्मसपराय	१	१	१	१
				३८२३७ पदवृन्द

१ गो० कर्मकाड गा० ५०४ और ५०५ मे भी लेश्याओ की अपेक्षा उदय-विकल्प ५२९७ और पदवृन्द ३८२३७ बतलाये हैं।

इस प्रकार मोहनीयकर्म के प्रत्येक गुणस्थान सम्बन्धी उदयस्थान विकल्प और पदवृन्दों तथा वहाँ सम्भव योग, उपयोग और लेश्याओं से गुणित करने पर उनके प्राप्त प्रमाण को बतलाने के बाद अब संवेध भङ्गों का कथन करने के लिये सत्तास्थानों का विचार करते हैं।

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के संवेध भङ्ग

तिण्णेगे एगेग तिग मीसे पंच चउसु नियट्टिए[1] तिन्नि।
एक्कार बायरम्मी सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ॥४८॥

शब्दार्थ—तिण्ण—तीन सत्तास्थान, एगे—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में, एगे—एक में, (सासादन में), एग—एक, तिग—तीन, मीसे—मिश्र में, पंच—पांच, चउसु—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान आदि चार में, नियट्टिए—अपूर्वकरण में, तिन्नि—तीन, एक्कार—ग्यारह, बायरम्मी—अनिवृत्तिबादर में, सुहुमे—सूक्ष्मसंपराय में, चउ—चार, तिन्नि—तीन, उवसंते—उपशान्त मोह में।

गाथार्थ—मोहनीयकर्म के मिथ्यात्व गुणस्थान में तीन, सासादन में एक, मिश्र में तीन, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानों में से प्रत्येक में पांच पांच, अपूर्वकरण में तीन, अनिवृत्तिबादर में ग्यारह, सूक्ष्मसंपराय में चार और उपशान्तमोह में तीन सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मोहनीय कर्म के गुणस्थानों में सत्तास्थान बताये हैं। प्रत्येक गुणस्थान में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों के

अर्थात्—मोहनीयकर्म के उदयस्थान और पदवृन्दो को लेश्याओ से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण क्रम से ५२९७ और ३८२३७[1] होता है।

लेश्याओ की अपेक्षा पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	लेश्या	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
मिथ्यात्व	६	६८	२४	९७९२
सासादन	६	३२	२४	४६०८
मिश्र	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	३	५२	२४	३७४४
प्रमत्तसयत	३	४४	२४	३१६८
अप्रमत्तसयत	३	४४	२४	३१६८
अपूर्वकरण	१	२०	२४	४८०
अनिवृत्तिवादर	१	२	१२	२४
	१	१	४	४
सूक्ष्मसपराय	१	१	१	१
				३८२३७ पदवृन्द

१ गो० कर्मकाड गा० ५०४ और ५०५ मे भी लेश्याओ की अपेक्षा उदयविकल्प ५२९७ और पदवृन्द ३८२३७ बतलाये हैं।

इस प्रकार मोहनीयकर्म के प्रत्येक गुणस्थान सम्बन्धी उदयस्थान विकल्प और पदवृन्दो तथा वहाँ सम्भव योग, उपयोग और लेश्याओ से गुणित करने पर उनके प्राप्त प्रमाण को बतलाने के बाद अब सवेध भङ्गो का कथन करने के लिये सत्तास्थानो का विचार करते हैं।

गुणस्थानो मे मोहनीयकर्म के सवेध भङ्ग

तिण्णेगे एगेगं तिग मीसे पंच चउसु नियट्टिए[1] तिन्नि ।
एक्कार बायरम्मी सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ॥४८॥

शब्दार्थ—**तिण्ण**—तीन सत्तास्थान, **एगे**—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे, **एगे**—एक मे, (सासादन मे), **एग**—एक, **तिग**—तीन, **मीसे**—मिश्र मे, **पच**—पाच, **चउसु**—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान आदि चार मे, **नियट्टिए**—अपूर्वकरण मे, **तिन्नि**—तीन, **एक्कार**—ग्यारह, **बायरम्मी**—अनिवृत्तिबादर मे, **सुहुमे**—सूक्ष्मसपराय मे, **चउ**—चार, **तिन्नि**—तीन, **उवसते**—उपशान्त मोह मे ।

गाथार्थ—मोहनीयकर्म के मिथ्यात्व गुणस्थान मे तीन, सासादन मे एक, मिश्र मे तीन, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे पाच-पाच, अपूर्वकरण मे तीन, अनिवृत्तिबादर मे ग्यारह, सूक्ष्मसपराय मे चार और उपशान्तमोह मे तीन सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा मे मोहनीय कर्म के गुणस्थानो मे सत्तास्थान बतलाये हैं। प्रत्येक गुणस्थान मे मोहनीयकर्म के सत्तास्थानो के

---

१ अन्य प्रतियो मे, 'चउसु तिगऽपुव्वे' यह पाठ देखने मे आता है। उक्त पाठ समीचीन प्रतीत होता है, किन्तु टीकाकार ने 'नियट्टिए तिन्नि' इस पाठ का अनुसरण करके टीका की है, अत यहाँ भी यही 'नियट्टिए तिन्नि' पाठ रखा है।

होने के कारण का विचार पहले किया जा चुका है। अत यहाँ सकेत मात्र करते है कि—'तिण्णेगे'—अर्थात् पहले मिथ्यात्व गुणस्थान मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान है तथा 'एगेग' दूसरे सासादन गुणस्थान मे सिर्फ एक २८ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। मिश्र गुणस्थान मे २८, २७ और २४ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान है—'तिग मीसे'। इसके बाद चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सातवे अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक चार गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाँच-पांच सत्तास्थान है। आठवे अपूर्वकरण गुणस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान हैं। नौवे गुणस्थान—अनिवृत्तिबादर मे २८, २४, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक, ये ग्यारह सत्तास्थान है—'एक्कार बायरम्मी'। सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे २८, २४, २१ और १ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान है तथा 'तिन्नि उवसते' उपशातमोह गुणस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है।[1]

इस प्रकार से गुणस्थानो मे मोहनीयकर्म के सत्तास्थानो को बतलाने के बाद अब प्रसगानुसार सवेध भङ्गो का विचार करते हैं—

---

१ तिण्णेगे एगेग दो मिस्से चदुसु पण णियट्टीए।
तिण्णि य थूलेयार सुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसते॥

—गो० कर्मकाड गा० ५०६

मोहनीयकर्म के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे ३, सासादन मे १, मिश्र मे २, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानो मे पाच-पाच, अपूर्वकरण मे ३, अनिवृत्तिबादर मे ११, सूक्ष्मसपराय मे ४ और उपशान्तमोह मे ३ सत्तास्थान है।

विशेष—कर्मग्रन्थ मे मिश्र गुणस्थान के ३ और गो० कर्मकाड मे २ सत्तास्थान बतलाये हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान मे २२ प्रकृतिक बधस्थान और ७,८,९ और और १० प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। इनमे से ७ प्रकृतिक उदयस्थान मे एक २८ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है किन्तु शेष तीन ८, ९ और १० प्रकृतिक उदयस्थानो मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान सभव हैं। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे कुल सत्तास्थान १० हुए—१+३×३=१०।

सासादन गुणस्थान मे २१ प्रकृतिक बधस्थान और ७, ८, ९ प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान रहते हुए प्रत्येक मे २८ प्रकृतिक सत्तास्थान हैं। इस प्रकार यहाँ तीन सत्तास्थान हुए।

मिश्र गुणस्थान मे १७ प्रकृतिक बधस्थान तथा ७, ८ और ९ प्रकृतिक, इन तीन उदयस्थानो के रहते हुए प्रत्येक में २८, २७ और २४ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। अत यहाँ कुल ९ सत्तास्थान हुए।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे एक १७ प्रकृतिक बधस्थान तथा ६, ७, ८ और ९ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है और इनमे से ६ प्रकृतिक उदयस्थान मे तो २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है तथा ७ और ८ मे से प्रत्येक उदयस्थान मे २८,२४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाच-पाच सत्तास्थान हैं। ९ प्रकृतिक उदयस्थान मे २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहा कुल १७ सत्तास्थान हुए।

देशविरत गुणस्थान मे १३ प्रकृतिक बधस्थान तथा ५, ६, ७ और ८ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं। इनमे से ५ प्रकृतिक उदयस्थान मे तो २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान तथा ६ और ७ प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाच-पाच सत्तास्थान होते हैं तथा ८ प्रकृतिक उदयस्थान

मे २८, २४ २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान है। इस प्रकार यहाँ कुल १७ सत्तास्थान होते है।

प्रमत्त विरत गुणस्थान मे ९ प्रकृतिक बधस्थान तथा ४, ५, ६ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं। इनमे से ४ प्रकृतिक उदयस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। ५ और ६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक ये पाच-पाच सत्तास्थान हैं तथा ७ प्रकृतिक उदयस्थान मे २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान है। इस प्रकार यहाँ कुल १७ सत्तास्थान होते हैं।

अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे पूर्वोक्त प्रमत्तसयत गुणस्थान की तरह १७ सत्तास्थान जानना चाहिये।

अपूर्वकरण गुणस्थान मे ९ प्रकृतिक बधस्थान और ४, ५ तथा ६ प्रकृतिक उदयस्थान तथा इन तीन उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते है। इस प्रकार यहाँ कुल ९ सत्तास्थान होते हैं।

अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक, ये पाँच बधस्थान तथा २ और १ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान हैं। इनमे से ५ प्रकृतिक बधस्थान और २ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए २८, २४, २१, १३, १२ और ११ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं। ४ प्रकृतिक बधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ११, ५ और ४ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान है। ३ प्रकृतिक बधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ४ और ३ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान है। २ प्रकृतिक बधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ३ और २ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते है और १ प्रकृतिक बधस्थान व १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए २८, २४,

२१, २ और १ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहाँ कुल २७ सत्तास्थान हुए।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे बध के अभाव मे एक प्रकृतिक उदय-स्थान तथा २८, २४, २१ और १ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं तथा उपशान्तमोह गुणस्थान मे बध और उदय के बिना २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

किस बधस्थान और उदयस्थान के रहते हुए कितने सत्तास्थान होते हैं, इसका विशेष विवेचन ओघ प्ररूपणा के प्रसग मे किया जा चुका है, अत वहा से जानना चाहिये।

इस प्रकार से अब तक नामकर्म के सिवाय शेष सात कर्मों के बध आदि स्थानो का गुणस्थानो मे निर्देश किया जा चुका है। अब नामकर्म के सवेध भगो का विचार करते हैं।

गुणस्थानो मे नामकर्म के सवेध भग

छण्णव छक्कं तिग सत्त दुगं दुग तिग दुग तिगऽट्ठ चऊ।
दुग छ च्चउ दुग पण चउ चउ दुग चउ पणग एग चऊ ॥४६॥
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छउमत्थकेवलिजिणाण।
एग चऊ एग चऊ अट्ठ चउ दु छक्कमुदयंसा ॥[1]५०॥

---

१ तुलना कीजिये —

छण्णवछत्तियसगइगि दुगतिगदुग तिण्णिअट्ठचत्तारि।
दुगदुगचदु दुगपणचदु चदुरेयचदू पणेयचदू ॥
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छदुमट्ठ केवलिजिणाण।
एगचदुरेगचदुरो दोचदु दोछक्क बधउदयसा ॥

—गो० कर्मकाड गा० ६९३, ६९४

शब्दार्थ—**छण्णव छक्क**—छह, नौ और छह, **तिग सत्त दुग**—तीन, सात और दो, **दुग तिग दुग**—दो, तीन और दो, **तिगऽट्ठ चऊ**—तीन, आठ और चार, **दुग छ च्चउ**—दो, छह और चार, **दुग पण चउ**—दो, पाच और चार, **चउ दुग चउ**—चार, दो और चार, **पणग एग चऊ**—पाच, एक और चार।

एगेगमट्ठ—एक, एक और आठ, **एगेगमट्ठ**—एक, एक और आठ, **छउमत्थ**—छद्मस्थ (उपशान्तमोह, क्षीणमोह) **केवलिजिणाण**—केवलि जिन (सयोगि और अयोगि केवली) को अनुक्रम से, **एग चऊ**—एक और चार, **एग चऊ**—एक और चार, **अट्ठ चउ**—आठ और चार, **दु छक्क**—दो और छह, **उदयसा**—उदय और सत्ता स्थान।

गाथार्थ—छह, नौ, छह, तीन, सात और दो, दो, तीन और दो, तीन, आठ और चार, दो, छह और चार, दो, पाच और चार, चार, दो और चार, पाच, एक और चार, तथा

एक, एक और आठ, एक, एक और आठ, इस प्रकार अनुक्रम से बध, उदय और सत्तास्थान आदि के दस गुणस्थानो मे होते है तथा छद्मस्थ जिन (११ और १२ गुणस्थान) मे तथा केवली जिन (१३, १४, गुणस्थान) मे अनुक्रम से एक, चार और एक, चार तथा आठ और चार, दो और छह उदय व सत्तास्थान होते है। जिनका विवरण इस प्रकार है—

(शेष पृ० ३०७ का)

कर्मग्रन्थ से गो० कर्मकाण्ड मे इन गुणस्थानो के भग भिन्न बतलाये है। सासादन मे ३-७-२, देशविरत मे २-२-४ अप्रमत्तविरत मे १-१-४ सयोगि केवली मे २-४।

कर्मग्रन्थ मे उक्त गुणस्थानो के भग इस प्रकार है—सासादन मे ३-७-२, देशविरत मे २-६-४, अप्रमत्तविरत मे ४-२-४, सयोगिकेवली मे ८-४।

गुणस्थान		बन्धस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
१	मिथ्यात्व	६	९	६
२	सासादन	३	७	२
३	मिश्र	२	३	२
४	अविरत	३	८	४
५	देशविरत	२	६	४
६	प्रमत्तविरत	२	५	४
७.	अप्रमत्तविरत	४	२	४
८	अपूर्वकरण	५	१	४
९	अनिवृत्तिकरण	१	१	८
१०.	सूक्ष्मसपराय	१	१	८
११	उपशान्तमोह	०	१	४
१२	क्षीणमोह	०	१	४
१३	सयोगिकेवली	०	८	४
१४	अयोगिकेवली	०	२	६

विशेषार्थ—इन दो गाथाओ मे गुणस्थानो मे नामकर्म के बध, उदय और सत्ता स्थानो को बतलाया है।

(१) मिथ्यादृष्टि गुणस्थान

पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे नामकर्म के बधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान क्रम से छह, नौ और छह हैं—'छण्णव छक्क'। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

२३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये छह बधस्थान है। इनमे से २३ प्रकृतिक बधस्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीव को होता है। इसके बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक और साधारण के विकल्प से चार भग होते हैं। २५ प्रकृतिक बधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के होता है। इनमे से पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बध होते समय २० भग होते है तथा शेष अपर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि की अपेक्षा एक-एक भग होता है। इस प्रकार २५ प्रकृतिक बधस्थान के कुल भग २५ हुए।

२६ प्रकृतिक बधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बध करने वाले जीव के होता है। इसके १६ भग होते है तथा २८ प्रकृतिक बधस्थान देवगति या नरकगति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीव के होता है। इनमे से देवगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध होते समय तो ८ भग होते है और नरक गति के योग्य प्रकृतियो का बध होते समय १ भग होता है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक बधस्थान के ९ भग है।

२९ प्रकृतिक बधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के होता है। इनमे से पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियो का बध होते समय प्रत्येक के आठ-आठ भग होते है। तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियो का बध होते समय ४६०८ भग तथा मनुष्य गति के योग्य २९ प्रकृतियो का बध होते समय भी ४६०८ भग होते है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक बधस्थान के ९२४० भग होते है।

तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगति के योग्य २९ प्रकृतिक बधस्थान मिथ्यादृष्टि के नही होता है, क्योकि तीर्थंकर प्रकृति का बध सम्यक्त्व

के निमित्त से होता है अत यहाँ देवगति के योग्य २९ प्रकृतिक बधस्थान नही कहा है।[1]

३० प्रकृतिक बधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के होता है। इनमे से पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य ३० प्रकृतियो का बध होते समय प्रत्येक के आठ-आठ भग होते है तथा तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य ३० प्रकृतियो का बध होते समय ४६०८ भग होते हैं। इस प्रकार ३० प्रकृतिक बधस्थान के कुल भग ४६३२ होते हैं।

यद्यपि तीर्थंकर प्रकृति के साथ मनुष्यगति के योग्य और आहारकद्विक के साथ देवगति के योग्य ३० प्रकृतियो का बध होता है किन्तु ये दोनो ही स्थान मिथ्यादृष्टि के सम्भव नही होते है, क्योकि तीर्थंकर प्रकृति का बध सम्यक्त्व के निमित्त से और आहारकद्विक का बध सयम के निमित्त से होता है। कहा भी है—

सम्मत्तगुणनिमित्त तित्थयर सजमेण आहार।

अर्थात्—तीर्थंकर का बध सम्यक्त्व के निमित्त से और आहारकद्विक का बध सयम के निमित्त से होता है। इसीलिये यहाँ मनुष्यगति और देवगति के योग्य ३० प्रकृतिक बधस्थान नही कहा है।

पूर्वोक्त प्रकार से अन्तर्भाष्य गाथा मे भी मिथ्यादृष्टि के २३ प्रकृतिक आदि बधस्थानो के भग बतलाये हैं। भाष्य की गाथा इस प्रकार है—

चउ पणवीसा सोलस नव चत्ताला सया य बाणउया।
बत्तीसुत्तरछायालसया मिच्छस्स बन्धविही॥

---

१ या तु देवगतिप्रायोग्या तीर्थकरनामसहिता एकोनत्रिंशत् सा मिथ्यादृष्टेर्न बन्धमायाति, तीर्थकरनाम्न सम्यक्त्वप्रत्ययत्वाद् मिथ्यादृष्टेश्च तदभावात्।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २२३

अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव के जो २३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक बधस्थान है, उनके क्रमश: ४, २५, १६, ९, ९२४० और ४६३२ भग होते है।

मिथ्यादृष्टि जीव के ३१ और १ प्रकृतिक बधस्थान सम्भव नही होने से उनका यहाँ विचार नही किया गया है।

इस प्रकार से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के छह बधस्थानो का कथन किया गया। अब उदयस्थानो का निर्देश करते है कि २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान है। नाना जीवो की अपेक्षा इनका पहले विस्तार से वर्णन किया जा चुका हे, अत उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये। इतनी विशेपता है कि यहाँ आहारकसयत, वैक्रियसयत और केवली सबधी भग नही कहना चाहिये, क्योकि ये मिथ्यादृष्टि जीव नही होते है। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे इन उदयस्थानो के सब भग ७७७३ है। वे इस प्रकार है कि २१ प्रकृतिक उदयस्थान के ४१ भग होते हैं। एकेन्द्रियो के ५, विकलेन्द्रियो के ९, तिर्यच पचेन्द्रियो के ९, मनुष्यो के ९, देवो के ८ और नारको का १। इनका कुल जोड ४१ होता है। २४ प्रकृतिक उदयस्थान के ११ भग है जो एकेन्द्रियो मे पाये जाते है, अन्यत्र २४ प्रकृतिक उदयस्थान सभव नही है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान के ३२ भग होते हैं—एकेन्द्रिय के ७, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रियो के ८, वैक्रिय मनुष्यो के ८, देवो के ८ और नारको का १। इनका कुल जोड ७+८+८+८+१=३२ होता है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान के ६०० भग होते है—एकेन्द्रियो के १३, विकलेन्द्रियो के ९, तिर्यंच पचेन्द्रियो के २८९ और मनुष्यो के भी २८९। इनका जोड १३+९+२८९+२८९=६०० है। २७ प्रकृनिक उदयस्थान के ३१ भग है—एकेन्द्रियो ६, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय के ८, वैक्रिय मनुष्यो के ८, देवो के ८ और नारको का १। २८ प्रकृतिक उदयस्थान के ११९९ भग हैं—

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, यह नौ उदयस्थान हैं और इनके क्रमशः ४१, ११, ३२, ६००, ३१, ११९९, १७८१, २९१४ और ११६४ भंग हैं। इन भंगों का कुल जोड़ ७७७३ है। वैसे तो इन उदयस्थानों के कुल भंग ७७९१ होते हैं लेकिन इनमें से केवली के ८, आहारक साधु के ७ और उद्योत सहित वैक्रिय मनुष्य के ३ इन १८ भंगों को कम कर देने पर ७७७३ भंग ही प्राप्त होते हैं।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में छह सत्तास्थान हैं। जो ९२, ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में आहारक-चतुष्क और तीर्थंकर नाम की सत्ता एक साथ नहीं होती है, जिससे ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान यहाँ नहीं बताया है। ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीवों के संभव है, क्योंकि आहारकचतुष्क की सत्ता वाला किसी भी गति में उत्पन्न होता है। ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान सबके नहीं होता है किन्तु जो नरकायु का बंध करने के पश्चात् वेदक

सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का बध करता है और अत समय मे मिथ्यात्व को प्राप्त होकर नरक मे जाता है उसी मिथ्यात्वी के अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्व मे ८९ प्रकृतियो की सत्ता होती है। ८८ प्रकृतियो की सत्ता चारो गतियो के मिथ्यादृष्टि जीवो के सभव है क्योकि चारो गतियो के मिथ्यादृष्टि जीवो के ८८ प्रकृतियो की सत्ता होने मे कोई बाधा नही है। ८६ और ८० प्रकृतियो की सत्ता उन एकेन्द्रिय जीवो के होती है जिन्होने यथायोग्य देवगति या नरकगति के योग्य प्रकृतियो की उद्‌वलना की है तथा ये जीव जब एकेन्द्रिय पर्याय से निकलकर विकलेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्यो मे उत्पन्न होते है तब इनके भी सब पर्याप्तियो के पर्याप्त होने के अनन्तर अतर्मुहूर्त काल तक ८६ और ८० प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है। किन्तु इसके आगे वैक्रिय शरीर आदि का बध होने के कारण इन स्थानो की सत्ता नही रहती है। ७८ प्रकृतियो की सत्ता उन अग्नि-कायिक और वायुकायिक जीवो के होती है जिन्होने मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्‌वलना करदी है तथा जब ये जीव मरकर विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होते हैं तब इनके भी अन्तर्मुहूर्त काल तक ७८ प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थान मे ९२, ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान जानना चाहिये।

अब सामान्य से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे बध, उदय और सत्ता स्थानो का कथन करने के बाद उनके सवेध का विचार करते हैं।

२३ प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के पूर्वोक्त नौ उदयस्थान सभव है। किन्तु २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ६ उदयस्थानो मे देव और नारक सबधी जो भग है, वे यहाँ नही जाते है। क्योकि २३ प्रकृतिक बधस्थान मे अपर्याप्त एकेन्द्रियो के योग्य प्रकृतियो का बध होता है परन्तु देव अपर्याप्त एकेन्द्रियो के

योग्य प्रकृतियो का बध नही करते हैं, क्योकि देव अपर्याप्त एकेन्द्रियो मे उत्पन्न नही होते हैं। इसी प्रकार नारक भी २३ प्रकृतियो का बध नही करते हैं, क्योकि नारको के सामान्य से ही एकेन्द्रियो के योग्य प्रकृतियो का बध नही होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि २३ प्रकृतिक बधस्थान मे देव और नारको के उदयस्थान सबधी भग प्राप्त नही होते हैं तथा यहाँ ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक ये पाँच सत्तास्थान होते है। २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक इन चार उदयस्थानो मे उक्त पाँचो ही सत्तास्थान होते हैं तथा २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, इन पाँच उदयस्थानो मे ७८ के बिना पूर्वोक्त चार-चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार यहाँ सब उदयस्थानो की अपेक्षा कुल ४० सत्तास्थान होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के ही होते हैं तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के भी होता है और जो अग्निकायिक तथा वायुकायिक जीव मरकर विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है, इनके भी कुछ काल तक होता है।

२५ और २६ प्रकृतिक बधस्थानो मे भी पूर्वोक्त प्रकार कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि देव भी अपने सब उदयस्थानो मे रहते हुए पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य २५ और २६ प्रकृतिक स्थानो का बध करता है। परन्तु इसके २५ प्रकृतिक बधस्थान के बादर, पर्याप्त और प्रत्येक प्रायोग्य आठ ही भग होते हैं, शेप १२ भग नही होते हैं। क्योकि देव सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्तको मे उत्पन्न नही होते हैं। इससे उसके इनके योग्य प्रकृतियो का वध भी नही होता है। पूर्वोक्त प्रकार से यहाँ भी चालीस-चालीस सत्तास्थान होते है।

२८ प्रकृतियो का वध करने वाले मिथ्यादृष्टि के ३० और ३१ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान होते हैं। इनमे से ३० प्रकृतिक उदयस्थान

तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो, दोनो के होता है और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो के ही होता है। इसके ६२, ८६, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते है। इनमे से ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे चारो सत्तास्थान होते है। उसमे भी ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान उसी के जानना चाहिये जिसके तीर्थकर प्रकृति की सत्ता है और जो मिथ्यात्व मे आकर नरकगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध करता है। शेप तीन सत्तास्थान प्राय सब तिर्यंच और मनुष्यो के सभव है। ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८६ प्रकृतिक को छोडकर शेप तीन सत्तास्थान पाये जाते हैं। ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान तीर्थंकर प्रकृति सहित होता है, परन्तु तिर्यंचो मे तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता सभव नही, इसीलिये ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक बधस्थान मे ३० और ३१ प्रकृतिक, दो उदयस्थानो की अपेक्षा ७ सत्तास्थान होते है।

देवगतिप्रायोग्य २६ प्रकृतिक बधस्थान को छोडकर शेप विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य २६ प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के सामान्य से पूर्वोक्त ६ उदयस्थान और ६२, ८६, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते है। इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे सभी सत्तास्थान प्राप्त हैं। उसमे भी ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान उसी जीव के होता है जिसने नरकायु का वध करने के पश्चात् वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करके तीर्थंकर प्रकृति का वध कर लिया है। अनन्तर जो मिथ्यात्व मे जाकर और मरकर नारको मे उत्पन्न हुआ है तथा ६२ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान देव, नारक, मनुष्य, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और एकेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये। ८६ और ८० प्रकृतिक सत्तास्थान विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य और एकेन्द्रियो की

अपेक्षा जानना चाहिये। ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये। २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८९ प्रकृतिक को छोडकर शेष ५ सत्तास्थान हैं। जो सब एकेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये, क्योकि एकेन्द्रियो को छोडकर शेष जीवो के २४ प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे पूर्वोक्त छहो सत्तास्थान होते हैं। इनका विशेष विचार २१ प्रकृतिक उदयस्थान के समान जानना चाहिये। २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८९ को छोडकर शेष पाच सत्तास्थान होते है। यहाँ ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होने का कारण यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे उस जीव के यह सत्तास्थान होता है जो नारको मे उत्पन्न होने वाला है किन्तु नारको के २६ प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है। २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ के बिना शेष पाँच सत्तास्थान होते हैं। ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान होने सम्बन्धी विवेचन तो पूर्ववत् जानना चाहिये तथा ९२ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान देव, नारक, मनुष्य, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और एकेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये। ८६ और ८० प्रकृतिक सत्तास्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो की अपेक्षा जानना चाहिये। यहाँ जो ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नही बताया है, उसका कारण यह है कि २७ प्रकृतिक उदयस्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को छोडकर आतप या उद्योत के साथ अन्य एकेन्द्रियो के होता है या नारको के होता है किन्तु उनमे ७८ प्रकृतियो की सत्ता नही पाई जाती है। २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे ये ही पाँच सत्तास्थान होते हैं। सो इनमे ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थानो का विवेचन पूर्ववत् है तथा ८६ और ८० प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान विकलेन्द्रियों, तिर्यंच पचेन्द्रियो और मनुष्यो के जानना चाहिये। २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी इसी प्रकार पाँच सत्तास्थान जानना चाहिये। ३० प्रकृतिक

उदयस्थान मे ६२, ८८, ८६, और ८० प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। जिनको विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो की अपेक्षा जानना चाहिये। नारको के ३० प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है अत यहाँ ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान नही कहा है तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी ये ही चारो सत्तास्थान होते है जो विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये। इस प्रकार २६ प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के ४५ सत्तास्थान होते है।

मनुष्य और देवगति के योग्य ३० प्रकृतिक बधस्थान को छोडकर शेष विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य ३० प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के सामान्य से पूर्वोक्त ६ उदयस्थान और ८६ को छोडकर शेष पाँच-पाँच सत्तास्थान होते है। यहाँ ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान सभव नही होने का कारण यह है ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान वाले जीव के तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियो का बध नही होता है। यहाँ २१, २४, २५, २६ प्रकृतिक इन चार उदयस्थानो मे उन पाँच सत्तास्थानो का कथन तो पहले के समान जानना चाहिये तथा शेष रहे २७, २८, २६, ३० और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान, सो इनमे से प्रत्येक मे ७८ प्रकृतिक के सिवाय शेष चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार ३० प्रकृतियो का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के कुल ४० सत्तास्थान होते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव के बध, उदय और सत्ता स्थानो और उनके सवेध का कथन समाप्त हुआ। जिनका विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	३२	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२ ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	६००	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	२२	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	११८२	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१७६४	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	२९०६	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	४०	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	३१	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	६००	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	३०	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	११९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१७८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	२९१४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०
२६ प्रकृतिक	१६	२१	४०	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	३१	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	६००	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	३०	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	११९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१७८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	२९१४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	९	२१	१६	९२, ८०
		२५	१७	९२, ८८
		२६	५७६	९२, ८८
		२७	१७	९२, ८८
		२८	११७९	९२, ८८
		२९	१७५५	९२, ८८
		३०	२८९०	९२, ८९, ८८, ८६
		३१	११५२	९२, ८८, ८६
२९ प्रकृतिक	९२४०	२१	४१	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	३२	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	३००	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	३१	९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		२८	११९६	९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		२९	१७८१	९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		३०	२९१४	९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८९, ८८, ८६
३० प्रकृतिक	४६३२	२१	४१	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	३२	९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	६००	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	३१	९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		२८	११९६	९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		२९	१७८१	९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		३०	२९१४	९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०
[illegible]	[illegible]	४३	[illegible]	२३३

(२) सासादन गुणस्थान

पहले गुणस्थान के बध आदि स्थानो को बतलाने के बाद अब दूसरे गुणस्थान के बध आदि स्थानो का निर्देश करते है कि—'तिग सत्त दुग'। अर्थात् ३ बधस्थान हैं, ७ उदयस्थान है और २ सत्तास्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

सासादन गुणस्थान मे २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये तीन बधस्थान हैं। इनमे से २८ प्रकृतिक बधस्थान दो प्रकार का है—नरकगति-प्रायोग्य और देवगतिप्रायोग्य। सासादन सम्यग्दृष्टि जीवो के नरकगतिप्रायोग्य का तो बध नही होता किन्तु देवगतिप्रायोग्य का होता है। उसके बधक पर्याप्त तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य होते हैं। इसके आठ भग होते हैं।

२९ प्रकृतिक बधस्थान के अनेक भेद है किन्तु उनमे से सासादन के बधने योग्य दो भेद हैं—तिर्यंचगतिप्रायोग्य और मनुष्यगतिप्रायोग्य। इन दोनो को सासादन एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारक जीव बांधते हैं। यहाँ उसके कुल भग ६४०० होते है। क्योकि यद्यपि सासादन तिर्यंचगतिप्रायोग्य या मनुष्यगति-प्रायोग्य २९ प्रकृतियो को बांधते हैं तो भी वे हुडसस्थान और सेवार्त सहनन का बध नही करते हैं, क्योकि इन दोनो प्रकृतियो का बध मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही होता है। जिससे यहाँ पाँच सहनन, पांच सस्थान, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति युगल, स्थिर-अस्थिर युगल, शुभ-अशुभ युगल, सुभग-दुर्भग युगल, सुस्वर-दु स्वर युगल, आदेय-अनादेय युगल और यश कीर्ति-अयश कीर्ति युगल, इस प्रकार इनके परस्पर गुणित करने पर ३२०० भग होते हैं। ये ३२०० भग तिर्यंच-गतिप्रायोग्य भी होते हैं और मनुष्यगतिप्रायोग्य भी होते हैं। इस प्रकार दोनो का जोड ६४०० होता है।

३० प्रकृतिक बधस्थान के भी यद्यपि अनेक भेद है किन्तु सासादन मे बंधने योग्य एक उद्योत सहित तिर्यंचगतिप्रायोग्य ही है। जिसे सासादन एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारक जीव बाँधते है। इसके कुल ३२०० भग होते है। इस प्रकार सासादन गुणस्थान मे तीन बधस्थान और उनके ८+६४००+३२००= ९६०८ भग होते है। भाष्य गाथा मे भी इसी प्रकार कहा गया है।

अट्ठ य सय चोवट्ठि बत्तीस सया य सासणे भेया।
अट्ठावीसाईसु सव्वाणऽट्ठहिग छण्णउई ॥

अर्थात् सासादन मे २८ आदि बधस्थानो के क्रम से ८, ६४०० और ३२०० भेद होते है और ये सब मिलकर ९६०८ होते है।

इस प्रकार से सासादन गुणस्थान मे तीन बधस्थान बतलाये। अब उदयस्थानो का निर्देश करते है कि २१, २४, २५, २६, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये सात उदयस्थान होते है।

इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य और देवो के होता है। नारको मे सासादन सम्यक्दृष्टि जीव उत्पन्न नही होते है जिससे सासादन मे नारको के २१ प्रकृतिक उदयस्थान नही कहा है। एकेन्द्रियो के २१ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए बादर और पर्याप्त के साथ यश कीर्ति के विकल्प से दो भग सभव है, क्योकि सूक्ष्म और अपर्याप्तो मे सासादन जीव उत्पन्न नही होता है, जिससे विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के प्रत्येक और अपर्याप्त के साथ जो एक-एक भग होता है वह यहाँ सभव नही है। शेष भग सभव है जो विकलेन्द्रियो के दो-दो, इस प्रकार से छह हुए तथा तिर्यंच पचेन्द्रियो के ८, मनुष्यो के ८ और देवो के ८ होते हैं। इस प्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ३२ भग (२+६+८+८+८=३२) हुए।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान उन्ही जीवो के होता है जो एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं। यहाँ इसके बादर और पर्याप्त के साथ यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से दो ही भग होते हैं, शेष भग नही होते हैं, क्योकि सूक्ष्म, साधारण, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो मे सासादन सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नही होता है।

सासादन गुणस्थान मे २५ प्रकृतिक उदयस्थान उसी को प्राप्त होता है जो देवो मे उत्पन्न होता है। इसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश कीर्ति-अयश कीर्ति के विकल्प से ८ भग होते हैं।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान उन्ही के होता है जो विकलेन्द्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो मे उत्पन्न होते है। अपर्याप्त जीवो मे सासादन सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नही होते हैं। अत इस स्थान मे अपर्याप्त के साथ जो एक भग पाया जाता है, वह यहाँ सभव नही किन्तु शेष भग सभव है। विकलेन्द्रियो के दो-दो, इस प्रकार छह, तिर्यंच पचेन्द्रियो के २८८ और मनुष्यो के २८८ होते हैं। इस प्रकार २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल मिलाकर ५८२ भग होते हैं।

सासादन गुणस्थान मे २७ और २८ प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि वे नवीन भव ग्रहण के एक अन्तर्मुहूर्त के काल के जाने पर होते है किन्तु सासादन भाव उत्पत्ति के वाद अधिक से अधिक कुछ कम ६ आवली काल तक ही प्राप्त होता है। इसीलिये उक्त २७ और २८ प्रकृतिक उदयस्थान सासादन सम्यग्दृष्टि को नही माने जाते है।

२९ प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त स्वस्थान गत देवो और नारको को होता है। २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे देवो के ८ और नारको के १ इस प्रकार इसके यहाँ कुल ९ भग होते हैं।

३० प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्यो के या उत्तर विक्रिया मे विद्यमान देवो के होता है। ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे तिर्यंच और मनुष्यो मे से प्रत्येक के ११५२ और देवो के ८, इस प्रकार ११५२+११५२+८=२३१२ भग होते हैं।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त तिर्यंचो के होता है। यहाँ इसके कुल ११५२ भग होते हैं। इस प्रकार सासादन गुणस्थान मे ७ उदयस्थान और उनके भग होते है। भाष्य गाथा मे भी इनके भग निम्न प्रकार से गिनाये है—

बत्तीस दोन्नि अट्ठ य बासीय सया य पच नव उदया।
बारहिगा तेवीसा बावन्नेक्कारस सया य॥

अर्थात् सासादन गुणस्थान के जो २१, २४, २५, २६, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, सात उदयस्थान है, उनके क्रमश ३२, २, ८, ५८२, ९, २३१२ और ११५२ भग होते है।

सासादन गुणस्थान के सात उदयस्थानो को बतलाने के बाद अब सत्तास्थानो को बतलाते हैं कि यहाँ ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्ता-स्थान हैं। इनमे से जो आहारक चतुष्क का बध करके उपशमश्रेणि से च्युत होकर सासादन भाव को प्राप्त होता है, उसके ९२ की सत्ता पाई जाती है, अन्य के नही और ८८ प्रकृतियो की सत्ता चारो गतियो के सासादन जीवो के पाई जाती है।

इस प्रकार से सासादन गुणस्थान के बध, उदय और सत्तास्थानो को जानना चाहिये। अब इनके सवेध का विचार करते है।

२८ प्रकृतियो का बध करने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि को ३० और

३१ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान होते हैं। पूर्व मे बधस्थानो का विचार करते समय यह बताया जा चुका है कि सासादन जीव देवगतिप्रायोग्य ही २८ प्रकृतियो का बध करता है, नरकगतिप्रायोग्य २८ प्रकृतियो का नही। उसमे भी करणपर्याप्त सासादन जीव ही देवगतिप्रायोग्य को बाँधता है। इसलिये यहाँ ३० और ३१ प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानो के अलावा अन्य शेष उदयस्थान सभव नही हैं। अब यदि मनुष्यो की अपेक्षा ३० प्रकृतिक उदयस्थान का विचार करते है तो वहाँ ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान सभव हैं और यदि तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ३० प्रकृतिक उदयस्थान का विचार करते है तो वहाँ ८८ प्रकृतिक, यह एक ही सत्तास्थान सभव हैं क्योकि ६२ प्रकृतियो की सत्ता उसी को प्राप्त होती है जो उपशमश्रेणि से च्युत होकर सासादन भाव को प्राप्त होता है किन्तु तिर्यंचो मे उपशमश्रेणि सभव नही है। अत यहाँ ६२ प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है।

तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले सासादन जीवो के पूर्वोक्त सातो ही उदयस्थान सभव है, इनमे से और सब उदयस्थानो मे तो एक ८८ प्रकृतियो की ही सत्ता प्राप्त होती है किन्तु ३० के उदय मे मनुष्यो के ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दोनो ही सत्तास्थान सभव है। २९ के समान ३० प्रकृतिक बधस्थान का भी कथन करना चाहिये।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८८ प्रकृतियो की ही सत्ता प्राप्त होती है। क्योकि ३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंचो के ही प्राप्त होता है।

इस प्रकार सासादन गुणस्थान मे कुल ८ सत्तास्थान होते है। सासादन गुणस्थान के बध, उदय और सत्तास्थानो और सवेध का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	३०	२३१२	९२, ८८
		३१	११५२	८८
२९ प्रकृतिक	६४००	२१	३२	८८
		२४	२	८८
		२५	८	८८
		२६	५८२	८८
		२९	९	८८
		३०	२३१२	९२, ८८
		३१	११५२	८८
३० प्रकृतिक	३२००	२१	३२	८८
		२४	२	८८
		२५	८	८८
		२६	५८२	८८
		२९	९	८८
		३०	२३१२	९२, ८८
		३१	११५२	८८
३	९६०८	१६	११६५८	१९

(३) मिश्र गुणस्थान

दूसरे सासादन गुणस्थान के वध आदि स्थानो का निर्देश करने के वाद अव तीसरे मिश्र गुणस्थान के वध आदि स्थानो का कथन करते है। मिश्र गुणस्थान मे—'दुग तिग दुग'—दो वधस्थान, तीन उदयस्थान और दो सत्तास्थान हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है कि २८ और २६ प्रकृतिक, ये वधस्थान होते हैं। इनमे से २८ प्रकृतिक वधस्थान तिर्यंच और मनुष्यो के होता है, क्योकि ये मिश्र गुणस्थान मे देवगति के योग्य प्रकृतियो का वध करते हैं। इसके यहाँ ८ भग होते है।

२६ प्रकृतिक वधस्थान देव और नारको के होता है। क्योकि वे मिश्र गुणस्थान मे मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियो का वध करते हैं। इसके भी ८ भग होते है। दोनो स्थानो मे ये भग स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश कीर्ति-अयश कीर्ति के विकल्प से प्राप्त होते है। २×२×२=८ शेष भग प्राप्त नही होते हैं क्योकि शेप शुभ परावर्तमान प्रकृतियाँ ही सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव वाँधते है।

यहाँ वधस्थानो का कथन करने के वाद अव उदयस्थान वतलाते हैं कि २६, ३० और ३१ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान देव और नारको के होता है। इस स्थान के देवो के ८ और नारको के १ इस प्रकार ६ भग होते है। ३० प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंच व मनुष्यो के होता है। इसमे तिर्यंचो के ११५२ और मनुष्यो के ११५२ भग होते है जो कुल मिलाकर २३०४ हैं। ३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंच पचेन्द्रियो के ही होता है। इसके यहाँ कुल मिलाकर ११५२ भग होते हैं। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान मे तीनो उदयस्थानो के ६+२३०४+११५२=३४६५ भग होते है।

मिश्र गुणस्थान मे दो सत्तास्थान हैं—६२ और ८८ प्रकृतिक। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान के वध, उदय और सत्ता स्थान क्रमशः २, ३, २ समझना चाहिये।

अब इनके सवेध का विचार करते है कि २८ प्रकृतियो का बध करने वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि के ३० और ३१ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। २९ प्रकृतियो के बधक के एक २९ प्रकृतिक उदयस्थान तथा ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान मे तीन उदयस्थानो की अपेक्षा छह सत्तास्थान होते है।

मिश्र गुणस्थान के बध, उदय और सत्ता स्थान के सवेध का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	३०	२३०४	९२, ८८
		३१	११५२	९२, ८८
२९ प्रकृतिक	८	२९	९	९२, ८८
२	१६	३	३४६५	६

(४) **अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान**

मिश्र गुणस्थान मे बध आदि स्थानो को बतलाने के बाद अब चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान के बध आदि स्थानो को बतलाते हैं कि इस गुणस्थान मे तीन बधस्थान, आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान है—'तिगऽट्ठचउ।' वे इस प्रकार जानना चाहिये कि २८, २९

और ३० प्रकृतिक, ये तीन बधस्थान हैं। इनमे से देवगति के योग्य प्रकृतियो का बघ करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के २८ प्रकृतिक बघस्थान होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्य शेष गतियो के योग्य प्रकृतियो का बघ नही करते, इसलिये यहाँ नरकगति के योग्य २८ प्रकृतिक बथस्थान नही होता है।

२९ प्रकृतिक बधस्थान दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले मनुष्यो के होता है। इसके ८ भग होते है। दूसरा मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियो का बघ करने वाले देव और नारको के होता है। यहाँ भी आठ भग होते है। तीर्थंकर प्रकृति के साथ मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले देव और नारको के ३० प्रकृतिक बधस्थान होता है। इसके भी आठ भग होते हैं।[1]

अब आठ उदयस्थानो को बतलाते है कि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये ८ उदयस्थान हैं।

इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान नारक, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य और देवो के जानना चाहिये। क्योकि जिसने आयुकर्म के बध के पश्चात् क्षायिक सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया है, उसके चारो गतियो मे २१ प्रकृतिक उदयस्थान सभव है। किन्तु अविरत सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तो मे उत्पन्न नही होता अत यहाँ अपर्याप्त सबघी भगो को छोडकर शेष भग

---

१ मनुष्याणा देवगतिप्रायोग्य तीर्थंकरसहित वघ्नतामेकोनत्रिंशत्, अत्राप्यष्टौ भगा। देव-नैरयिकाणा मनुष्यगतिप्रायोग्य वघ्नतामेकोनत्रिंशत्, अत्रापि त एवाष्टौ भगा। तेषामेव मनुष्यगतिप्रायोग्य तीर्थंकरसहित वघ्नता त्रिंशत्, अत्रापि त एवाष्टौ भगा।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २२

पाये जाते है जो तिर्यंच पचेन्द्रिय के ८, मनुष्यो के ८, देवो के ८ और नारको का १ है। इस प्रकार कुल मिलाकर ८+८+८+१=२५ है।

२५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान देव और नारको तथा विक्रिया करने वाले तिर्यंच और मनुष्यो के जानना चाहिये। यहाँ जो २५ और २७ प्रकृतिक स्थानो का नारक और देवो को स्वामी वतलाया है सो यह नारक वेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही होता है और देव तीनो मे से किसी भी सम्यग्दर्शन वाला होता है।[1] चूर्णि मे भी इसी प्रकार कहा है—

पणवीस-सत्तवीसोदया देवनेरइए विउव्वियतिरिय मणुए य पडुच्च।
नेरइगो खइग-वेयगसम्मद्दिट्ठी देवो तिविहसम्मद्दिट्ठी वि॥

अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान देव, नारक और विक्रिया करने वाले तिर्यंच और मनुष्यो के होता है। सो इनमे से ऐसा नारक या तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है या वेदक सम्यग्दृष्टि, किन्तु देव के तीनो सम्यग्दर्शनो मे से कोई एक होता है।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के होता है। औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव तिर्यच और मनुष्यो मे उत्पन्न नही होता है। अतः यहाँ तीनो प्रकार के सम्यग्दृष्टि जीवो को नही कहा है। उसमे भी तिर्यंचो के मोहनीय की २२ प्रकृतियो की सत्ता की अपेक्षा ही यहाँ वेदक सम्यक्त्व जानना चाहिये।

---

१ पचविंशति-सप्तविंशत्युदयौ देव-नैरयिकान् वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याश्चाधिकृत्याव-सेयौ। तत्र नैरयिक क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वेदकसम्यग्दृष्टिर्वा, देवस्त्रिविध-सम्यग्दृष्टिरपि। —**सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३०**

२८ और २६ प्रकृतिक उदय चारो गतियो के अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो के होता है। ३० प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य और देवो के होता है तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंच पचेन्द्रियो के ही होता है। इस प्रकार से अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ८ उदयस्थान जानना चाहिये।

अव सत्तास्थानो का निर्देश करते हैं—

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ६३, ६२, ८६ और ८८ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। इनमे से जिस अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव ने तीर्थंकर और आहारक के साथ ३१ प्रकृतियो का वध किया और पश्चात् मरकर अविरत सम्यग्दृष्टि हो गया तो उसके ६३ प्रकृतियो की सत्ता होती है। जिसने पहले आहारक चतुष्क का वध किया और उसके बाद परिणाम बदल जाने से मिथ्यात्व मे जाकर जो चारो गतियो मे से किसी एक गति मे उत्पन्न हुआ उसके उस गति मे पुन सम्यग्दर्शन के प्राप्त हो जाने पर ६२ प्रकृतिक सत्तास्थान चारो गतियो मे वन जाता है। किन्तु देव और मनुष्यो के मिथ्यात्व को प्राप्त किये विना ही इस अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ६२ प्रकृतियो की सत्ता वन जाती है। ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान अविरत सम्यग्दृष्टि देव, नारक और मनुष्यो के होता है। क्योकि इन तीनो गतियो मे तीर्थंकर प्रकृति का समार्जन होता रहता है। किन्तु तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीव तिर्यंचो मे उत्पन्न नही होता है अत यहाँ तिर्यंचो का ग्रहण नही किया है, और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान चारो गतियो के अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो के होता है। इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे वध, उदय और सत्ता स्थानो को जानना चाहिये।

अव इनके सवेध का विचार करते हैं कि २८ प्रकृतियो का वध करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के तिर्यंच और मनुष्यो की अपेक्षा

८ उदयस्थान होते हैं। उसमे से २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान विक्रिया करने वाले तिर्यंच और मनुष्यो के ही होते है और शेष छह सामान्य के होते है। इन उदयस्थानो मे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८९ प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान है। २९ प्रकृतिक बधस्थान देवगतिप्रायोग्य व मनुष्यगतिप्रायोग्य होने की अपेक्षा से दो प्रकार का है। इनमे से देवगतिप्रायोग्य तीर्थंकर प्रकृति सहित है जिससे इसका बध मनुष्य ही करते है। किन्तु मनुष्यो के उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये सात है, क्योकि मनुष्यो के ३१ प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है। यहाँ भी प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं तथा मनुष्यगतिप्रायोग्य २९ प्रकृतियो को देव और नारक ही बाँधते है। सो इनमे से नारको के २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते है तथा देवो के पूर्वोक्त पाँच और ३० प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है। इन सब उदयस्थानो मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं तथा मनुष्यगति योग्य ३० प्रकृतियो का बध देव और नारक करते है सो इनमे से देवो के पूर्वोक्त ६ उदयस्थान होते है और उनमे से प्रत्येक मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। नारको के उदयस्थान तो पूर्वोक्त पाच ही होते है किन्तु इनमे सत्तास्थान ८९ प्रकृतिक एक-एक ही होता है क्योकि तीर्थंकर और आहारक चतुष्क की युगपत् सत्ता वाले जीव नारको मे उत्पन्न नही होते है। इस प्रकार २१ से लेकर ३० प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे सामान्य से ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते है और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते है। इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे सामान्य से कुल ३० सत्तास्थान हुए। जिनका विवरण निम्न प्रकार से जानना चाहिये—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	२१	१६	९२, ८८
		२५	१६	९२, ८८
		२६	५७६	९२, ८८
		२७	१६	९२, ८८
		२८	११७६	९२, ८८
		२९	१७५२	९२, ८८
		३०	२८८८	९२, ८८
		३१	११५२	९२, ८८
२९ प्रकृतिक	१६	२१	१७	९३, ९२, ८९, ८८
		२५	१७	९३, ९२, ८९, ८८
		२६	२८८	९३, ८९
		२७	१७	९३, ९२, ८९, ८८
		२८	६०१	९३, ९२, ८९, ८८
		२९	५०१	९३, ९२, ८९, ८८
		३०	११६०	९३, ९२, ८९, ८८
३० प्रकृतिक	८	२१	९	९३, ८९
		२५	९	९३, ८९
		२७	९	९३, ८९
		२८	१७	९३, ८९
		२९	१७	९३, ८९
		३०	८	९३, ८९
३	३२	[illegible]	१०,३६[illegible]	[illegible]

(५) देशविरत गुणस्थान

अब पाचवे देशविरत गुणस्थान के बध आदि स्थानो का विचार करते हैं। देशविरत गुणस्थान मे बध आदि स्थान क्रमश. 'दुग छ चउ' दो, छह और चार है। अर्थात् दो बधस्थान, छह उदयस्थान और चार सत्तास्थान है। उनमे से दो बधस्थान क्रमश २८ और २९ प्रकृतिक है। जिनमे से २८ प्रकृतिक बधस्थान तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के होता है। इतना विशेष है कि इस गुणस्थान मे देवगतिप्रायोग्य प्रकृतियो का ही बध होता है और इस स्थान के ८ भग होते हैं। उक्त २८ प्रकृतियो मे तीर्थंकर प्रकृति को मिला देने पर २९ प्रकृतिक बध-स्थान होता है। यह स्थान मनुष्यो को होता है क्योकि तिर्यंचो के तीर्थंकर प्रकृति का बध नही होता है। इस स्थान के भी आठ भग होते है।

इस गुणस्थान मे २५, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, यह छह उदयस्थान होते है। इनमे से आदि के चार उदयस्थान विक्रिया करने वाले तिर्यच और मनुष्यो के होते है तथा इन चारो उदयस्थानो मे मनुष्यो के एक-एक भग होता है किन्तु तिर्यंचो के प्रारम्भ के दो उदयस्थानो का एक-एक भग होता है और अन्तिम दो उदयस्थानो के दो-दो भग होते है।

३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ तिर्यंच और मनुष्यो के तथा विक्रिया करने वाले तिर्यंचो के होता है। सो यहाँ प्रारम्भ के दो मे से प्रत्येक के १४४-१४४ भग होते है, जो छह सहनन, छह सस्थान, सुस्वर-दुस्वर और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति के विकल्प से प्राप्त होते हैं तथा अतिम का एक भग होता है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदय-स्थान के कुल २८९ भग होते है। दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति का

उदय गुणप्रत्यय से ही नही होता है अत तत्सबधी विकल्पो को यहाँ नही कहा है।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंचो के ही होता है। यहाँ भी १४४ भग होते हैं। इस प्रकार देशविरत मे सब उदयस्थानो के कुल भग १०+१४४+१४४+१४४+१=४४३ भग होते है।

यहाँ सत्तास्थान चार होते हैं जो ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक हैं। जो तीर्थंकर और आहारक चतुष्क का बध करके देशविरत हो जाता है, उनके ९३ प्रकृतियो की सत्ता होती है तथा शेष का विचार सुगम है। इस प्रकार देशविरत मे बध, उदय और सत्ता स्थानो का कथन किया। अब इनके सवेध का विचार करते है कि—

यदि देशविरत मनुष्य २८ प्रकृतियो का बध करता है तो उसके २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान और इनमे से प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते है। किन्तु यदि तिर्यंच २८ प्रकृतियो का बध करता है तो उसके उक्त पाँच उदयस्थानो के साथ ३१ प्रकृतिक उदयस्थान भी होने से छह उदयस्थान तथा प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। २९ प्रकृतिक बधस्थान देशविरत मनुष्य के होता है। अत इसके पूर्वोक्त २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ ओर ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। इस प्रकार देशविरत गुणनस्थान मे सामान्य से प्रारम्भ के पाँच उदयस्थानो मे चार-चार और अन्तिम उदयस्थान मे दो, इस प्रकार कुल मिलाकर २२ सत्तास्थान होते है।

देशविरत गुणस्थान के बध आदि स्थानो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिए—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	२५	२	९२, ८८
		२७	२	९२, ८८
		२८	३	९२, ८८
		२९	३	९२, ८८
		३०	२८९	९२, ८८
		३१	१४४	९२, ८८
२९ प्रकृतिक	८	२५	१	९३, ८९
		२७	१	९३, ८९
		२८	१	९३, ८९
		२९	१	९३, ८९
		३०	१४४	९३, ८९
२	१६	११	५९	२२

(६) प्रमत्तविरत गुणस्थान

अब छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को बतलाते हैं कि—'दुग पण चउ'—दो बंधस्थान, पाँच उदयस्थान और चार सत्तास्थान हैं। दो बंधस्थान २८ और २९ प्रकृतिक हैं। इनका विशेष स्पष्टीकरण देशविरत गुणस्थान के समान जानना चाहिये।

पाँच उदयस्थान २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक होते हैं। ये

सव उदयस्थान आहारकसयत और वैक्रियसयत जीवो के जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ सयतो के भी होता है। इनमे से वैक्रियसयत और आहारक-सयतो के अलग-अलग २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक के एक-एक तथा २८ और २९ प्रकृतिक उदयस्थानो के दो-दो और ३० प्रकृतिक उदयस्थान का एक-एक, इस प्रकार कुल १४ भग होते है तथा ३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ जीवो के भी होता है सो इसके १४४ भग और होते हैं, इस प्रकार प्रमत्तसयत गुणस्थान के सव उदयस्थानो के कुल भग १५८ होते हैं।

यहाँ सत्तास्थान चार होते हैं—९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक।

इस प्रकार प्रमत्तसयत गुणस्थान मे बध, उदय और सत्तास्थानो का निर्देश करने के वाद अव इनके सवेध का विचार करते हैं—

२८ प्रकृतियो का वध करने वाले पूर्वोक्त पाँचो उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। उसमे भी आहारकसयत के ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है, क्योकि आहारकचतुष्क की सत्ता के विना आहारक समुद्घात की उत्पत्ति नही हो सकती है किन्तु वैक्रियसयत के ९२ और ८८ प्रकृत्तियो की सत्ता सभव है। जिस प्रमत्तसयत के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता है वह २८ प्रकृतियो का बध नही करता है। अत यहाँ ९३ और ८९ प्रकृतियो की सत्ता नही होती है तथा २९ प्रकृतियो का वध करने वाले प्रमत्तसयत के पाँचो उदयस्थान सभव है और इनमे से प्रत्येक मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। विशेष इतना है कि आहारक के ९३ की और वैक्रियसयत के दोनो की सत्ता होती है।

इस प्रकार प्रमत्तसयत के सव उदयस्थानो मे पृथक्-पृथक् चार-चार सत्तास्थान प्राप्त होते है, जिनका कुल प्रमाण २० होता है।

प्रमत्तसयत के बध, उदय और सत्ता स्थानो व सवेध का विवरण निम्नानुसार जानना चाहिये—

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	२५	२	६२, ८८
		२७	२	६२, ८८
		२८	४	६२, ८८
		२९	४	६२, ८८
		३०	१४६	६२, ८८
२९ प्रकृतिक	८	२५	२	६३, ८९
		२७	२	६३, ८९
		२८	४	६३, ८९
		२९	४	६३, ८९
		३०	१४६	६३, ८९
२	१६	१०	३१६	२०

(७) **अप्रमत्तसयत गुणस्थान**

प्रमत्तसयत गुणस्थान के बध, उदय और सत्तास्थानो को बतलाने के बाद अब अप्रमत्तसयत गुणस्थान के बध आदि स्थानो को बतलाते है कि 'चउदुग चउ'—चार बधस्थान, दो उदयस्थान और चार सत्तास्थान हैं। चार बधस्थान इस प्रकार हैं—२८, २९, ३० और ३१ प्रकृ-

१। इनमे से तीर्थंकर और आहारकद्विक के बिना २८ प्रकृतिक बध-

स्थान होता है। इसमे तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर २९ प्रकृतिक तथा तीर्थंकर प्रकृति को अलग करके आहारकद्विक को मिलाने से ३० प्रकृतिक तथा तीर्थंकर और आहारकद्विक को युगपत मिलाने पर ३१ प्रकृतिक वधस्थान होता है। इन सब वधस्थानो का एक-एक ही भग होता है। क्योकि अप्रमत्तसयत के अस्थिर, अशुभ और अयश -कीर्ति का वध नही होता है।

सातवें गुणस्थान मे दो[1] उदयस्थान होते हैं जो २९ और ३० प्रकृतिक है। जिसने पहले प्रमत्तसयत अवस्था मे आहारक या वैक्रिय समुद्घात को करने के वाद अप्रमत्तसयत गुणस्थान को प्राप्त किया है उसके २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।[2] इसके यहाँ दो भग होते हैं जो एक वैक्रिय की अपेक्षा और दूसरा आहारक की अपेक्षा। ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे भी दो भग होते हैं तथा ३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ अप्रमत्तसयत जीव के भी होता है अत उसकी अपेक्षा यहाँ १४४ भग और होते है जिनका कुल जोड १४६ है। इस प्रकार अप्रमत्तसयत गुणस्थान के दो उदयस्थानो के कुल १४८ भग होते हैं।

---

१ दिगम्बर परम्परा मे अप्रमत्तसयत के ३० प्रकृतिक, एक ही उदयस्थान वतलाया है। इसका कारण यह है कि दिगम्बर परम्परा मे यही एकमत पाया जाता है कि आहारक समुद्घात को करने वाले जीव को स्वयोग्य पर्याप्तियो के पूर्ण हो जाने पर भी सातवा गुणस्थान प्राप्त नहीं होता है तथा इसी प्रकार दिगम्बर परम्परा के अनुसार वैक्रिय समुद्घात को करने वाला जीव भी अप्रमत्तसयत गुणस्थान को प्राप्त नही करता है। इसीलिये गो० कर्मकाड गा ७०१ मे अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान ही वताया है।

२ तत्रैकोनत्रिंशद् यो नाम पूर्वं प्रमत्तसंयत सन् आहारक वैक्रिय वा निर्वर्त्य पश्चादप्रमत्तभाव गच्छति तस्य प्राप्यते।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३३

सत्तास्थान ६३, ६२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार होते हैं। इस प्रकार अप्रमत्तसयत गुणस्थान के चार बधस्थान, दो उदयस्थान और चार सत्तास्थान जानना चाहिये। अब इनके सवेध का विचार करते हैं—

२८ प्रकृतियो का बध करने वाले के उदयस्थान दोनो होते हैं, किन्तु सत्तास्थान एक ८८ प्रकृतिक ही होता है। २९ प्रकृतियो का बध करने वाले के उदयस्थान दोनो ही होते है किन्तु सत्तास्थान एक ८९ प्रकृतिक होता है। ३० प्रकृतियो का बध करने वाले के भी उदयस्थान दोनो ही होते है किन्तु सत्तास्थान दोनो के एक ६२ प्रकृतिक ही होता है तथा ३१ प्रकृतियो का बध करने वाले के उदयस्थान दोनो होते हैं किन्तु सत्तास्थान एक ६३ प्रकृतिक ही होता है। यहाँ तीर्थंकर या आहारकद्विक इनमे से जिसके जिसकी सत्ता होती है, वह नियम से उसका बध करता है। इसीलिये एक-एक बधस्थान मे एक-एक सत्ता-स्थान कहा है। यहाँ कुल सत्तास्थान ८ होते है।

इस प्रकार अप्रमत्तसयत गुणस्थान के बध, उदय और सत्ता स्थानो के सवेध का विचार किया गया, जिसका विवरण इस प्रकार है—

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	१	२९	२	८८
		३०	१४६	८८
२९ प्रकृतिक	१	२९	२	८९
		३०	१४६	८९

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
३० प्रकृतिक	१	२९	२	९२
		३०	१४६	९२
३१ प्रकृतिक	१	२९	२	९३
		३०	१४६	९३
४	४	८	५९२	८

(८) अपूर्वकरण गुणस्थान

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान मे बंध आदि स्थान इस प्रकार हैं—'पणगेग चउ' अर्थात् पांच बंधस्थान, एक उदयस्थान और चार सत्तास्थान। इनमे से पांच बंधस्थान २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक हैं। इनमे से प्रारम्भ के चार बंधस्थान तो सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान के समान जानना चाहिये, किन्तु जब देवगतिप्रायोग्य प्रकृतियो का बंधविच्छेद हो जाता है तब सिर्फ एक यश कीर्ति नाम का ही बंध होता है, जिससे यहाँ १ प्रकृतिक बंधस्थान भी होता है।

यहाँ उदयस्थान एक ३० प्रकृतिक ही होता है। जिसके वज्रऋषभनाराच संहनन, छह संस्थान, सुस्वर-दुस्वर और दो विहायोगति के विकल्प से २४ भंग होते हैं। किन्तु कुछ आचार्यों के मत से उपशमश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण मे केवल वज्रऋषभनाराच संहनन का उदय न होकर प्रारम्भ के तीन संहननो मे से किसी एक का उदय होता है। अत उनके मत से यहाँ पर ७२ भंग होते हैं। इसी प्रकार

अनिवृत्तिवादर, सूक्ष्मसपराय और उपशातमोह गुणस्थान मे भी जानना चाहिये ।[1]

यहाँ सत्तास्थान ६३, ६२, ८६ और ८८ प्रकृतिक, ये चार हैं। इस प्रकार अपूर्वकरण मे बध, उदय और सत्तास्थानो का निर्देश किया। अब सवेध का विचार करते हैं—

२८, २६, ३० और ३१ प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के ३० प्रकृतिक उदय रहते हुए क्रम से ८८, ८६, ६२ और ६३ प्रकृतियो की सत्ता रहती है। एक प्रकृति का बध करने वाले के ३० प्रकृतियो का उदय रहते हुए चारो सत्तास्थान होते है। क्योकि जो पहले २८, २६, ३० या ३१ प्रकृतियो का बध कर रहा था, उसके देवगति के योग्य प्रकृतियो का बध-विच्छेद होने पर १ प्रकृतिक बध होता है, किन्तु सत्तास्थान उसी क्रम से रहे आते है, जिस क्रम से वह पहले वाधता था। अर्थात् जो पहले २८ प्रकृतियो का बध करता था, उसके ८८ की, जो २६ का बध करता था उसके ८६ की, जो ३० का बध करता था उसके ६२ की और जो ३१ का बध करता था उसके ६३ की सत्ता रही

---

१ अन्ये त्वाचार्या ब्रुवते—आद्यसहननत्रयान्यतमसहननयुक्ता अप्युपशमश्रेणी प्रतिपद्यन्ते तन्मतेन भगा द्विसप्तति। एवमनिवृत्तिबादर-सूक्ष्मसपराय-—उपशान्तमोहेष्वपि द्रष्टव्यम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३३

दिगम्बर परम्परा मे यही एक मत पाया जाता है कि उपशमश्रेणि मे प्रारम्भ के तीन सहननो मे से किसी एक सहनन का उदय होता है। इसकी पुष्टि के लिये देखिये गो० कर्मकाड गाथा २६६—

वेदतिय कोहमाण मायासजलणमेव सुहुमते।
सुहुमो लोहो सते वज्जणारायणाराय ॥

आती है। इसीलिये एक प्रकृतिक बधस्थान मे चारो सत्तास्थान प्राप्त होते हैं।[1]

अपूर्वकरण गुणस्थान मे बध, उदय और सत्तास्थानो के सवेध का विवरण इस प्रकार है—

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	८८
२९ प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	८९
३० प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	९२
३१ प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	९३
१ प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	८८, ८९, ९२, ९३
५	५	५	१२० या ३६०	८

(९-१०) अनिवृत्तिबादर, सूक्ष्मसपराय गुणस्थान

नौवें और दसवें—अनिवृत्तिबादर और सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे

[1] इहाष्टाविशति-एकोनत्रिशत्-त्रिशद्-एकत्रिशद्वधका प्रत्येक देवगति प्रायोग्य-बधव्यवच्छेदे सत्येकविधबन्धका भवन्ति, अष्टाविशत्यादिबन्धकाना च यथा-क्रममष्टाशीत्यादीनि सत्तास्थानानि, तत एकविधबन्धे चत्वार्यपि प्राप्यन्ते।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३३

क्रमश एक बधस्थान, एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान हैं—'एगेग मट्ठ' । जिनका स्पष्टीकरण निम्नानुसार है—

अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे एक यश कीर्ति प्रकृति का वध होने से एक प्रकृतिक बधस्थान है तथा उदयस्थान भी एक ३० प्रकृतिक है और सत्तास्थान ६३, ६२, ८६, ८८, ८०, ७६, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये आठ है । इनमे से प्रारभ के चार सत्तास्थान उपशम श्रेणि मे होते हैं और जब तक नामकर्म की तेरह प्रकृतियो का क्षय नही होता तब तक क्षपकश्रेणि मे भी होते है । उक्त चारो स्थानो की सत्ता वाले जीवो के १३ प्रकृतियो का क्षय होने पर क्रम से ८०, ७६, ७६ और ७५ प्रकृतियो की सत्ता प्राप्त होती है । अर्थात ६३ की सत्ता वाले के १३ के क्षय होने पर ८० की, ६२ की सत्ता वाले के १३ का क्षय होने पर ७६ की, ८६ की सत्ता वाले के १३ का क्षय होने पर ७६ की और ८८ की सत्ता वाले के १३ का क्षय होने पर ७५ की सत्ता शेष रहती है। इस प्रकार यहाँ आठ सत्तास्थान जानना चाहिये । यहाँ बधस्थान और उदयस्थान मे भेद न होने से अर्थात् दोनो के एक-एक होने से सवेध सम्भव नही है । यानी यहाँ यद्यपि सत्तास्थान आठ होने पर भी बधस्थान और उदयस्थान के एक-एक होने से सवेध को पृथक से कहने की आवश्यकता नही है ।

अनिवृत्तिबादर गुणस्थान की तरह सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे भी यश कीर्ति रूप एक प्रकृतिक एक बधस्थान है, ३० प्रकृतिक उदयस्थान है तथा पूर्वोक्त ६३ आदि प्रकृतिक, आठ सत्तास्थान हैं । उक्त आठ सत्तास्थानो मे से आदि के चार उपशमश्रेणि मे होते हैं और शेष ८० आदि प्रकृतिक, अत के चार क्षपकश्रेणि मे होते है । शेष कथन अनिवृत्तिबादर गुणस्थान की तरह जानना चाहिये ।

अव उपशातमोह आदि ग्यारह से लेकर चौदह गुणस्थान तक भगो का कथन करते है—'छउमत्थकेवलिजिणाण' ।

(११-१२) उपशातमोह क्षीणमोह गुणस्थान

उपशान्तमोह आदि गुणस्थानो मे वधस्थान नही है, किन्तु उदयस्थान और सत्तास्थान ही है। अतएव उपशान्तमोह गुणस्थान मे—'एग चऊ'—अर्थात् एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान है और ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान है।

क्षीणमोह गुणस्थान मे भी एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान और ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते है—'एग चऊ'। यहाँ उदयस्थान मे इतनी विशेपता है कि यदि सामान्य जीव क्षपकश्रेणि पर आरोहण करता हे तो उसके मतान्तर से जो ७२ भग वतलाये हैं वे प्राप्त न होकर २४ भग ही प्राप्त होते है। क्योकि उसके एक वज्रऋपभनाराच सहनन का ही उदय होता है।[1] यही वात क्षपकश्रेणि के पिछले अन्य गुणस्थानो मे भी जानना चाहिये तथा यदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला होता है तो उसके प्रशस्त प्रकृतियो का ही सर्वत्र उदय रहता है, इसीलिये एक भग वतलाया है।

इसी प्रकार सत्तास्थानो मे भी कुछ विशेपता है। यदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीव होता है तो उसके ८० और ७६ की सत्ता रहती है और दूसरा (तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता रहित) होता है तो उसके ७९ और ७५ प्रकृतियो की सत्ता रहती है।[2] यही वात यथासम्भव सर्वत्र जानना चाहिये।

---

१ अत्र भगाश्चतुर्विंशतिरेव वज्रर्षभनाराचसहननयुक्तस्यैव क्षपकश्रेण्यारम्भसम्भवात्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३८

२ एकोनाशीति-पचसप्ततौ अतीर्थंकर सत्कर्मणो वेदितव्ये। अशीति-षट्सप्तती तु तीर्थंकरसत्कर्मण।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३८

(१३) सयोगिकेवली गुणस्थान

सयोगिकेवली गुणस्थान मे आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान है—'अट्ठचउ'। आठ उदयस्थान २०, २१, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक है तथा चार सत्तास्थान ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक है। इनके सवेध का विचार पहले कर आये है अतः तदनुसार जानना चाहिये। सामान्य जानकारी के लिये उनका विवरण इस प्रकार है—

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
०	०	२०	१	७९, ७५
		२१	१	८०, ७६
		२६	६	७९, ७५
		२७	१	८०, ७६
		२८	१२	७९, ७५
		२९	१३	८०, ७९, ७६, ७५
		३०	२५	८०, ७९, ७६, ७५
		३१	१	८०, ७६
०	०	८	६०	२०

(१४) अयोगिकेवली गुणस्थान

अयोगिकेवली गुणस्थान मे उदयस्थान और सत्तास्थान क्रमश — 'दु छक्क' अर्थात दो उदयस्थान और छह सत्तास्थान है। इनमे से दो उदयस्थान ९ और ८ प्रकृतिक हैं। नौ प्रकृतियो का उदय तीर्थंकर

केवली के और आठ प्रकृतियो का उदय सामान्य केवली के होता है।[1]

छह सत्तास्थान ८०, ७९, ७६, ७५, ९ और ८ प्रकृतिक है। इस प्रकार अयोगि केवली गुणस्थान के दो उदयस्थान व छह सत्तास्थान जानना चाहिये। इनके सवेध इस प्रकार हैं कि ८ प्रकृतियो के उदय मे ७९, ७५ और ८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। इनमे से ७९ और ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान उपान्त्य समय तक होते हैं और ८ प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय मे होता है तथा ९ प्रकृतियो के उदय मे ८०, ७६ और ९ प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं जिनमे से आदि के दो (८०, ७६) उपान्त्य समय तक होते है और ९ प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय मे होता है।

अयोगिकेवली गुणस्थान के उदय सत्तास्थानो के सवेध का विवरण इस प्रकार है—

वधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
०	०	९	१	८०, ७६, ९
		८	१	७९, ७५, ८
०	०	२	२	६

इस प्रकार से गुणस्थानो मे वध, उदय और सत्ता स्थानो का विचार करने के बाद अब गति आदि मार्गणाओ मे वध, उदय और सत्ता स्थानो का विचार करते हैं।

१ तत्राष्टोदयोऽतीर्थकरायोगिकेवलिनि, नवोदयस्तीर्थकरायोगिकेवलिनि।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३४

मार्गणाओं में बन्धादिस्थान

दो छक्कऽट्ठ चउक्कं पण नव एक्कार छक्कगं उदया।
नेरइआइसु सता ति पंच एक्कारस चउक्कं[1] ॥५१॥

शब्दार्थ—**दो छक्कऽट्ठ चउक्क**—दो, छह, आठ और चार, **पण नव एक्कार छक्कगं**—पाच, नो, ग्यारह और छ, **उदया**—उदयस्थान, **नेरइआइसु**—नरक आदि गतियो मे, **सत्ता**—सत्ता, **ति पच एक्कारस चउक्क**—तीन, पाच, ग्यारह और चार।

गाथार्थ—नारकी आदि (नारक, तिर्यच, मनुष्य और देव) के क्रम से दो, छह, आठ और चार बन्धस्थान, पाँच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान तथा तीन, पाच, ग्यारह और चार सत्तास्थान होते है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे किस गति मे कितने बन्ध, उदय और सत्तास्थान होते है, इसका निर्देश किया गया। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार गतिया है और इसी क्रम का अनुसरण करके गाथा मे पहले बन्धस्थानो की सख्या बतलाई है—'दो छक्कऽट्ठ चउक्क'—अर्थात् नरकगति मे दो, तिर्यंचगति मे छ, मनुष्यगति मे आठ और देवगति मे चार बन्धस्थान है। उदयस्थानो का निर्देश करते हुए कहा है—'पण नव एक्कार छक्कग उदया'। यानी पूर्वोक्त अनुक्रम से पाच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान है तथा—'ति पच एक्कारस चउक्क'—

---

१ तुलना कीजिये —

दोछक्कट्ठचउक्क णिरयादिसु णामबधठाणाणि।
पणणवएगारपणय तिपचवारसचउक्क च ॥

—गो० कर्मकाड, गा० ७१०

कर्मग्रन्थ मे मनुष्यगति मे ग्यारह सत्तास्थान है और गो० कर्मकाड मे १२ सत्तास्थान तथा देवगति मे कर्मग्रन्थ मे ६ और गो० कर्मकाड मे ५ उदयस्थान ाये है। इतना दोनो मे अतर है।

तीन, पाच ग्यारह और चार सत्तास्थान हैं। जिनका विशेष स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नरकादि गतियो मे बन्धस्थान

नरकगति मे दो बन्धस्थान हैं—२९ और ३० प्रकृतिक। इनमे से २९ प्रकृतिक बन्धस्थान तिर्यंचगति और मनुष्यगति प्रायोग्य दोनो प्रकार का है तथा उद्योत सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान तिर्यंचगति-प्रायोग्य हैं और तीर्थंकर सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान मनुष्यगति प्रायोग्य है।

तिर्यंचगति मे छह बन्धस्थान हैं—२३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक। इनका स्पष्टीकरण पहले के समान यहाँ भी करना चाहिये, लेकिन इतनी विशेषता है कि यहाँ पर २९ प्रकृतिक बन्धस्थान तीर्थंकर सहित और ३० प्रकृतिक बन्धस्थान आहारकद्विक सहित नही कहना चाहिये। क्योकि तिर्यंचो के तीर्थंकर और आहारकद्विक का बन्ध नही होता है।

मनुष्यगति के ८ बन्धस्थान हैं—२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक। इनका भी स्पष्टीकरण पूर्व के समान यहाँ भी कर लेना चाहिये।

देवगति मे चार बन्धस्थान हैं—२५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक। इनमे से २५ प्रकृतिक बन्धस्थान पर्याप्त, बादर और प्रत्येक के साथ एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बन्ध करने वाले देवो के जानना चाहिये। यहाँ स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश कीर्ति-अयश कीर्ति के विकल्प से ८ भग होते हैं। उक्त २५ प्रकृतिक बन्धस्थान मे आतप या उद्योत प्रकृति के मिला देने पर २६ प्रकृतिक बन्धस्थान होता है। २६ प्रकृतिक बन्धस्थान के १६ भग होते हैं। २९ प्रकृतिक बन्धस्थान मनुष्यगतिप्रायोग्य या तिर्यंचगतिप्रायोग्य दोनो प्रकार का होता है

तथा उद्योत सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान तिर्यंचगतिप्रायोग्य है। इसके भग ४६०८ होते है तथा तीर्थंकर नाम सहित ३० प्रकृतिक वन्धस्थान मनुष्यगतिप्रायोग्य है। जिसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश कीर्ति-अयश कीर्ति के विकल्प से ८ भग होते है।

अब नरक आदि गतियो मे अनुक्रम से उदयस्थानो का विचार करते है कि नरकगति मे २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, ये पाच उदयस्थान है। तिर्यंचगति मे नौ उदयस्थान हैं—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, मनुष्यगति मे ग्यारह उदयस्थान है—२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक। देवगति मे छह उदयस्थान हैं—२१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक। इस प्रकार नरक आदि चारो गतियो मे पाँच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान जानना चाहिये—'पण नव एक्कार छक्कग उदया'।

सत्तास्थानो को नरक आदि गतियो मे बतलाते है कि—'सता ति पच एक्कारस चउक्क'। अर्थात् नरकगति मे ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं। तिर्यंचगति मे पॉच सत्तास्थान ९२, ८८, ८६, ८०, और ७८ प्रकृतिक है। मनुष्यगति मे ग्यारह सत्तास्थान है—९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५, ९ और ८ प्रकृतिक। देवगति मे चार सत्तास्थान है—९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक।

इस प्रकार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के वन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो को बतलाने के बाद अब उनके सवेध का विचार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के अनुक्रम से करते हैं।

नरक गति मे सवेध—पचेन्द्रिय तिर्यंचगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बन्ध करने वाले नारको के पूर्वोक्त २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, पाँच उदयस्थान होते है और इनमे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। तिर्यंचगतिप्रायोग्य प्रकृतियो का बन्ध करने वाले जीव के तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नही

होने से यहाँ ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान नही कहा है। मनुष्यगति-प्रायोग्य २९ प्रकृतियो का बन्ध करने वाले नारको के पूर्वोक्त पाचो उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान मे ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये तीन-तीन सत्तास्थान होते है। तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाला मनुष्य नरक मे उत्पन्न होकर जब तक मिथ्यादृष्टि रहता है उसकी अपेक्षा तब तक उसके तीर्थंकर के बिना २९ प्रकृतियो का बन्ध होने से २९ प्रकृतिक बन्धस्थान मे ८९ प्रकृति का सत्तास्थान बन जाता है।

नरकगति मे ३० प्रकृतिक बन्धस्थान दो प्रकार से प्राप्त होता है—एक उद्योत नाम सहित और दूसरा तीर्थंकर प्रकृति सहित। जिसके उद्योत सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान होता है उसके उदयस्थान तो पूर्वोक्त पाँचो ही होते है किंतु सत्तास्थान प्रत्येक उदयस्थान मे दो-दो होते हैं—९२ और ८८ प्रकृतिक तथा जिसके तीर्थंकर सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान होता है, उसके पाँचो उदयस्थानो मे से प्रत्येक उदयस्थान मे ८९ प्रकृतिक एक-एक सत्तास्थान ही होता है।

इस प्रकार नरकगति मे सब बन्धस्थान और उदयस्थानो की अपेक्षा ४० सत्तास्थान होते हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२९ प्रकृतिक	९२१६	२१	१	९२, ८९ ८८
		२५	१	९२, ८९, ८८
		२७	१	९२, ८९, ८८
		२८	१	९२, ८९, ८८
		२९	१	९२, ८९, ८८

२८ प्रकृतिक वधस्थान वाले जीव के २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान होते है। इसके २४ प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि यह एकेन्द्रियो के ही होता है और एकेन्द्रियो के २८ प्रकृतिक वधस्थान नही होता है। इन उदयस्थानो मे से २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक ये पाच उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या मोहनीय की २२ प्रकृतियो की सत्ता वाले वेदक सम्यग्दृष्टियो के होते हैं तथा इनमे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। २५ और २७ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान विक्रिया करने वाले तिर्यंचो के होते हैं। यहाँ भी प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं तथा ३० और ३१ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान सब पर्याप्तियो से पर्याप्त हुए सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि तिर्यंचो के होते है। इनमे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। लेकिन यह विशेष जानना चाहिये कि ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान मिथ्यादृष्टियो के ही होता है, सम्यग्दृष्टियो के नही, क्योकि सम्यग्दृष्टि तिर्यंचो के नियम से देवद्विक का वध सम्भव है।

इस प्रकार यहाँ सब वधस्थानो और सब उदयस्थानो की अपेक्षा २१८ सत्तास्थान होते हैं। क्योकि २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक इन पाच वधस्थानो मे से प्रत्येक मे से चालीस-चालीस और २८ प्रकृतिक वधस्थान मे अठारह सत्तास्थान होते हैं। अत ४०×५+१८ = २१८ इन सब का जोड होता है।

तिर्यंचगति सम्बन्धी नामकर्म के वध, उदय और सत्ता स्थानो के सवेध का विवरण निम्न अनुसार जानना चाहिये—

बन्धस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	१५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	३११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	१४	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	५९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	११८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१७५४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	१५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	३११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	१४	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	५९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	११८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१७५४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	९	२१	८	९२, ८८
		२५	८	९२, ८८
		२६	२८८	९२, ८८
		२७	८	९२, ८८
		२८	५९२	९२, ८८
		२९	११६८	९२ ८८
		३०	१७३६	९२, ८८, ८६
		३१	११५२	९२, ८८, ८६
२९ प्रकृतिक	९२४०	२१	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	१५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	३११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	१४	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	५९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	११८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१७५४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६८	९२, ८८, ८६, ८०
३० प्रकृतिक	४६३२	२१	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	१५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	३११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	१४	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	५९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	११८०	९२, ८८ ८६, ८०
		३०	१७५४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०

मनुष्यगति मे सवेध— मनुष्यगति मे २३ प्रकृतियो का बध करने वाले मनुष्य के २१, २२, २६, २७, २८, २९, ३० प्रकृतिक, ये सात उदयस्थान होते है। इनमे से २५ और २७ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान विक्रिया करने वाले मनुष्य के होते है किन्तु आहारक मनुष्य के २३ प्रकृतियो का बध नही होता है, अत यहाँ आहारक के नही लेना चाहिये। इन दो उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है तथा शेप पाच उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२, ८८, ८६ और ८० प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार २३ प्रकृतिक बधस्थान मे २४ सत्तास्थान होते है।

इसी प्रकार २५ और २६ प्रकृतिक बधस्थानो मे भी चौबीस-चौबीस सत्तास्थान जानना चाहिये।

मनुष्यगतिप्रायोग्य और तिर्यंचगतिप्रायोग्य २९ प्रकृतिक बधस्थानो मे भी इसी प्रकार चौबीस-चौबीस सत्तास्थान होते है।

बंधस्थान	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	२१	८	९२, ८८, ८६, ८०
	२५	८	९२, ८८
	२६	२०९	९२, ८८, ८६, ८०
	२७	८	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	२९	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	३०	११५२	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२१	८	९२, ८८, ८६, ८०
	२५	८	९२, ८८
	२६	२०९	९२, ८८, ८६, ८०
	२७	८	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	२९	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	३०	११५२	९२, ८८, ८६, ८०
२[illegible] प्रकृतिक	२१	८	९२, ८८, ८६, ८०
	२५	८	९२, ८८
	२६	२०९	९२, ८८, ८६, ८०
	२७	८	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	२९	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	३०	११५२	९२, ८८, ८६, ८०

बंधस्थान	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	२१	८	९२, ८८
	२५	८	९२, ८८
	२६	२८८	९२, ८८
	२७	८	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८
	२९	५८४	९२, ८८
	३०	११५२	९२, ८९, ८८, ८६
२९ प्रकृतिक	२१	९	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
	२५	९	९३, ९२, ८९, ८८
	२६	२८९	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
	२७	९	९३, ९२, ८९, ८८
	२८	५८७	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
	२९	५८७	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
	३०	११५४	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
३० कृतिक	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०
	२५	८	९२, ८८
	२६	२८९	९२, ८८, ८६, ८०
	२७	८९	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	२९	५८६	९२, ८८, ८६, ८०
	३०	११५४	९२, ८८, ८६, ८०
तिक	३०	१४४	९३
क	३०	—	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५

देवगति मे सवेध—देवगति मे २५ प्रकृतियो का बध करने वाले देवो के देव सम्बन्धी छहो उदयस्थान होते है। जिनमे से प्रत्येक मे ६२ और ८८ प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान होते है। इसी प्रकार २६ और २९ प्रकृतियो का बध करने वाले देवो के भी जानना चाहिए। उद्योत सहित तिर्यंचगति के योग्य ३० प्रकृतियो का बध करने वाले देवो के भी इसी प्रकार छह उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है परन्तु तीर्थंकर प्रकृति सहित ३० प्रकृतियो का बध करने वाले देवो के छह उदयस्थानो मे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहाँ कुल ६० सत्तास्थान होते हैं।

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२५ प्रकृतिक	८	२१	८	९२, ८८
		२५	८	९२, ८८
		२७	८	९२, ८८
		२८	१६	९२, ८८
		२९	१६	९२, ८८
		३०	८	९२, ८८
२६ प्रकृतिक	१६	२१	८	९२, ८८
		२५	८	९२, ८८
		२७	८	९२, ८८
		२८	१६	९२, ८८
		२९	१६	९२, ८८
		३०	८	९२, ८८

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२६ प्रकृतिक	६२१६	२१	८	६२, ८८
		२५	८	६२, ८८
		२७	८	६२, ८८
		२८	१६	६२, ८८
		२६	१६	६२, ८८
		३०	८	६२, ८८
३० प्रकृतिक	४६१६	२१	८	६३, ६२, ८६, ८८
		२५	८	६३, ६२, ८६, ८८
		२७	८	६३, ६२, ८६, ८८
		२८	१६	६३, ६२, ८६, ८८
		२६	१६	६३, ६२, ८६, ८८
		३०	८	६३, ६२, ८६, ८८

इस प्रकार से गतिमार्गणा मे बध, उदय और सत्ता स्थान तथा उनके सवेध का कथन करने के बाद अब आगे की गाथा मे इन्द्रिय-मार्गणा मे बध आदि स्थानो का निर्देश करते हैं—

इग विगलिंदिय सगले पण पंच य अट्ठ बंधठाणाणि ।
पण छक्केक्कारुदया पण पण बारस य संताणि[1] ॥५२॥

---

१ तुलना कीजिये—

(क) इगि विगले पण बधो अडवीसूणा उ अट्ठ इयरंमि ।
पच छ एक्कारुदया पण पण बारस उ सताणि ॥

—पचसग्रह सप्ततिका गा० १३०

(ख) एगे वियले सयले पण पण अड पच छक्केगार पण ।
पणतेर बधादी सेसादेसेवि इदि णेय ॥

—गो० कर्मकाड गा० ७११

कर्मग्रथ में पचेन्द्रियो के १२ सत्तास्थान और गो० कर्मकाड में १३ सत्ता-स्थान बतलाये हैं ।

शब्दार्थ—**इग विगलिदिय सगले**—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय (पचेन्द्रिय) मे, **पण पच य अट्ठ**—पाच, पाच और आठ, **बधठाणाणि**—बधस्थान, **पण छक्केक्कार**—पाच, छह और ग्यारह, **उदया**—उदयस्थान, **पण-पण बारस**—पॉच, पाँच और बारह, **य**—और, **सताणि**—सत्तास्थान ।

गाथार्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पचेन्द्रिय मे अनुक्रम से पाच, पाच और आठ बधस्थान, पाच, छह और ग्यारह उदयस्थान तथा पाच, पाच और बारह सत्तास्थान होते है ।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा मे गतिमार्गणा के चारो भेदो मे नामकर्म के बध आदि स्थानो और उनके सवेध का कथन किया गया था। इस गाथा मे इन्द्रियमार्गणा के एकेन्द्रिय आदि पाँच भेदो मे बधादि स्थानो का निर्देश करते हुए अनुक्रम से बताया है कि 'पण पच य अट्ठ बधठाणाणि' एकेन्द्रिय के पाच, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) के पाच तथा पचेन्द्रिय के आठ बधस्थान हैं। इसी प्रकार अनुक्रम से उदयस्थानो का निर्देश करने के लिये कहा है कि—'पण छक्केक्कारुदया'—एकेन्द्रिय के पाँच, विकलेन्द्रियो के छह और पचेन्द्रियो के ग्यारह उदयस्थान होते है तथा 'पण पण बारस य सताणि'—एकेन्द्रिय के पाच, विकलेन्द्रियो के पाच और पचेन्द्रियो के बारह सत्तास्थान हैं। इन सब बध आदि स्थानो का स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

कुल बधस्थान आठ हैं, उनमे से एकेन्द्रियो के २३, २५, २६, २९ और ३१ प्रकृतिक, ये पाच बधस्थान है। विकलेन्द्रियो मे से प्रत्येक के भी एकेन्द्रिय के लिये बताये गये अनुसार ही पाच-पाच बधस्थान है तथा पचेन्द्रियो के २३ आदि प्रकृतिक आठो बधस्थान है।

उदयस्थान बारह है। उनमे से एकेन्द्रियो के २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पाच उदयस्थान होते है। विकलेन्द्रियो मे से .त्येक के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह-छह उदय-

स्थान होते हैं तथा पचेन्द्रियो के २०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक, ये ग्यारह उदयस्थान होते है।

सत्तास्थान कुल बारह हैं, जिनमे से एकेन्द्रियो और विकलेन्द्रियो मे से प्रत्येक के ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं तथा पचेन्द्रियो के बारहो ही सत्तास्थान होते है।

इस प्रकार एकेन्द्रिय आदि मे से प्रत्येक के वध, उदय और सत्ता स्थानो को बतलाकर अव इनके सवेध का विचार करते है।

एकेन्द्रिय—२३ प्रकृतियो का वध करने वाले एकेन्द्रियो के प्रारम्भ के चार उदयस्थानो मे से प्रत्येक उदयस्थान मे पाँच-पांच सत्तास्थान होते हैं तथा २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ को छोडकर शेप चार सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक वधस्थानो के भी उदयस्थानो की अपेक्षा सत्तास्थान जानना चाहिये। इस प्रकार २३ प्रकृतिक बधस्थान मे पाच उदयस्थानो की अपेक्षा प्रत्येक मे २४ सत्तास्थान होते हैं, जिनका कुल जोड १२० है। ये सब सत्तास्थान एकेन्द्रिय के है।

वधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	६	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	६	९२, ८८, ८६, ८०

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२६ प्रकृतिक	१६	२१	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	६	९२, ८८, ८६, ८०
२९ प्रकृतिक	९२४०	२१	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	६	९२, ८८, ८६, ८०
३० प्रकृतिक	४६३२	२१	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	६	९२, ८८, ८६, ८०

विकलेन्द्रिय—विकलेन्द्रियों में २३ का बन्ध करने वाले जीवों में २१ और २६ प्रकृतियों के उदय में पांच-पांच उदयस्थान होते हैं तथा शेष चार उदयस्थानों में से प्रत्येक में ७८ के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार २३ प्रकृतिक बन्धस्थान में २६ सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक बन्धस्थानों में भी अपने-अपने उदयस्थानों की अपेक्षा २६-२६ सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार विकलेन्द्रियों में पांच बन्धस्थान में छह उदयस्थानों के कुल मिलाकर १३० सत्तास्थान होते हैं।

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	६२, ८८, ८६, ८०
२६ प्रकृतिक	१६	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०
२९ प्रकृतिक	९२४०	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०
३० प्रकृतिक	४६३२	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०,७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०,७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०

पचेन्द्रिय—पचेन्द्रियो मे २३ प्रकृतियो का बन्ध करने वाले के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है। इनमे से २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे पूर्वोक्त पाँच-पाँच और शेष चार उदयस्थानो मे ७८ के बिना चार-चार सत्तास्थान होते है। कुल मिलाकर यहाँ २६ सत्तास्थान हैं।

२५ और २६ का बन्ध करने वाले के २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ-आठ उदयस्थान होते हैं। इनमे से २१ और २६ प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे पाँच-पाँच सत्तास्थान पहले बताये गये अनुसार ही होते है। २५ और २७ इन दो मे ९२ और ८८ ये दो-दो सत्तास्थान तथा शेष २८ आदि चार उदयस्थानो मे ७८ के बिना चार-चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार २५ और २६ प्रकृतिक बन्धस्थानो मे से प्रत्येक मे ३०-३० सत्तास्थान होते हैं।

२८ प्रकृतियो का बन्ध करने वाले के २१, २५, २६, २७, २८, २९ ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान होते है। ये सब उदयस्थान तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो सबधी लेना चाहिये। क्योंकि २८ का बन्ध इन्ही के होता है। यहाँ २१ से लेकर २९ तक छह उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान होते है। ३० के उदय मे ९२, ८९, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं। जिनमे से ८९ की सत्ता उस मनुष्य के जानना चाहिये जो तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता के साथ मिथ्यादृष्टि होते हुए नरकगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बन्ध करता है तथा ३१ के उदय मे ९२, ८८ और ८६, ये तीन सत्तास्थान होते है। ये तीनो सत्तास्थान तिर्यंच पचेन्द्रिय की अपेक्षा समझना चाहिये, क्योकि अन्यत्र पचेन्द्रिय के ३१ का उदय नही होता है। उसमे भी ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान मिथ्यादृष्टि तिर्यंच पचेन्द्रियो के होता है, सम्यग्दृष्टि तिर्यंच पचेन्द्रिय के नही, क्योकि सम्यग्दृष्टि तिर्यचो के नियम से देवद्विक का बन्ध होने लगता

है अत उनके ८६ प्रकृतियो की सत्ता सम्भव नही है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक बन्धस्थान मे कुल १६ सत्तास्थान होते हैं।

२९ प्रकृतियो का बन्ध करने वाले के ये पूर्वोक्त आठ उदयस्थान होते हैं। इनमे से २१ और २६ प्रकृतियो के उदय मे ९२, ८८, ८६, ८०, ७८, ९३ और ८९ प्रकृतिक ये सात-सात सत्तास्थान होते है। यहाँ तिर्यंचगतिप्रायोग्य २९ का बन्ध करने वालो के प्रारम्भ के पाँच, मनुष्यगतिप्रायोग्य २९ का बन्ध करने वालो के प्रारम्भ के चार और देवगतिप्रायोग्य २९ का बन्ध करने वालो के अतिम दो सत्तास्थान होते हैं। २८, २९ और ३० के उदय मे ७८ के बिना पूर्वोक्त छह-छह सत्तास्थान होते है। ३१ के उदय मे प्रारम्भ के चार और २५ तथा २७ के उदय मे ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक बन्धस्थान मे कुल ४४ सत्तास्थान होते हैं।

३० प्रकृतियो का बन्ध करने वाले के २९ के बन्ध के समान वे ही आठ उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान मे उसी प्रकार सत्तास्थान होते हैं। किन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि २१ के उदय मे पहले पाँच सत्तास्थान तिर्यंचगतिप्रायोग्य ३० का बन्ध करने वाले के होते हैं और अतिम दो सत्तास्थान मनुष्यगतिप्रायोग्य ३० का बन्ध करने वाले देवो के होते है तथा २६ के उदय मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान नही होते हैं, क्योकि २६ का उदय तिर्यंच और मनुष्यो के अपर्याप्त अवस्था मे होता है परन्तु उस समय देवगतिप्रायोग्य या मनुष्यगतिप्रायोग्य ३० का बन्ध नही होता है, जिससे यहाँ ९३ और ८९ की सत्ता प्राप्त नही होती है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक बन्धस्थान मे कुल ४२ सत्तास्थान प्राप्त होते हैं।

३१ और १ प्रकृति का बन्ध करने वाले के उदयस्थानो और सत्तास्थानो का सवेध मनुष्यगति के समान जानना चाहिये।

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	१८	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	५१८	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	११५२	६२, ८८, ८६, ८०
		२६	१७२८	६२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८८०	६२, ८८, ८६, ८०
		३१	११५२	६२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	२६	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	८	६२, ८८
		२६	५७८	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	८	६२, ८८
		२८	११६८	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१७४४	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		३०	२८८८	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		३१	११५२	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
२६ प्रकृतिक	१६	२१	२६	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	८	६२, ८८
		२६	५७८	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	८	६२, ८८
		२८	११६८	६२, ८८, ८६, ८०
		२६	१७४४	६२, ८८, ८६, ८०
		३०	२८८८	६२, ८८, ८६, ८०
		३१	११५६	६२, ८८, ८६, ८०

वधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	९	२१	१६	९२, ८८
		२५	८	९२, ८८
		२६	५७३	९२, ८८
		२७	८	९२, ८८
		२८	११५६	९२, ८८
		२९	१७२८	९२, ८८
		३०	२८८०	९२, ८९, ८८, ८६
		३१	११५६	९२, ८८, ८६
२९ प्रकृतिक	९२४८	२१	२७	९२, ८८, ८६, ८०, ७८, ९३, ८९
		२५	९	९३, ९२, ८९, ८८
		२६	५७८	९२, ८८, ८६, ८०, ७८, ९३, ८९
		२७	९	९३, ९२, ८९, ८८
		२८	११९९	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		२९	१७४५	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		३०	२८८८	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		३१	११५६	९२, ८८, ८६, ८०
३० प्रकृतिक	४६४१	२१	२७	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	९	८९, ९२, ८९, ८८
		२६	५७६	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	९	९३, ९२, ८९, ८८
		२८	११९९	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		२९	१७४५	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		३०	२८८८	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०
		३१	११५६	९३, ९२, ८९, ८८, ८०
३१ प्रकृतिक	१	३०	१४४	९३
१ प्रकृतिक	१	३०	१४४	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५

इस प्रकार इन्द्रिय मार्गणा की अपेक्षा नामकर्म के वध, उदय और सत्ता स्थानो तथा उनके सवेधो का कथन जानना चाहिये ।

अब आगे की गाथा मे बध आदि स्थानो के आठ अनुयोगद्वारो मे कथन करने का सकेत करते है—

इय कम्मपगइठाणाइं सुट्ठु बंधुदयसंतकम्माणं ।
गइआइएहिं अट्ठसु चउप्पगारेण नेयाणि ॥५३॥

शब्दार्थ—इय—पूर्वोक्त प्रकार से, **कम्मपगइठाणाइ**—कर्म प्रकृतियो के स्थानो को, **सुट्ठु**—अत्यन्त उपयोगपूर्वक, **बधुदयसत-कम्माणं**—बध, उदय और सत्ता सम्बन्धी कर्म प्रकृतियो के, **गइ-आइएहिं**—गति आदि मार्गणास्थानो के द्वारा, **अट्ठसु**—आठ अनुयोगद्वारो मे, **चउप्पगारेण**—चार प्रकार से, **नेयाणि**—जानना चाहिये ।

गाथार्थ—ये पूर्वोक्त बध, उदय और सत्ता सम्बन्धी कर्म प्रकृतियो के स्थानो को अत्यन्त उपयोगपूर्वक गति आदि मार्गणास्थानो के साथ आठ अनुयोगद्वारो मे चार प्रकार से जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इस गाथा से पूर्व तक ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियो के बध, उदय और सत्ता स्थानो का सामान्य रूप से तथा जीवस्थान, गुणस्थान, गतिमार्गणा और इन्द्रियमार्गणा मे निर्देश किया है । लेकिन इस गाथा मे कुछ विशेष सकेत करते हैं कि जैसा पूर्व मे गति आदि मार्गणाओ मे कथन किया गया है, उसके साथ उनको आठ अनुयोगद्वारो मे घटित कर लेना चाहिये । इसके साथ यह भी सकेत किया है कि सिर्फ प्रकृतिबध रूप नही किन्तु 'चउप्पगारेण नेयाणि' प्रकृतिबध के साथ स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से भी घटित करना चाहिये । क्योकि ये बध, उदय और

सत्ता रूप सब कर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार-चार प्रकार के हैं।

इन चारो प्रकार रूप कर्मों को किन मे और किसके द्वारा घटित करने के लिए गाथा मे सकेत किया है कि—'गइआइएहिं अट्ठसु'—गति आदि चौदह मार्गणाओ के द्वारा आठ अनुयोगद्वारो मे इनका चिन्तन करना है।

मार्गणा शब्द का अर्थ अन्वेषण करना है। अत मार्गणा का यह अर्थ हुआ कि जिनके द्वारा या जिनमे जीवो का अन्वेषण किया जाता है, उन्हे मार्गणा कहते हैं। मार्गणा के चौदह भेद इस प्रकार है—

गइ इदिए य काए जोए वेए कसाय नाणे य।
सजम दसण लेसा भव सम्मे सन्नि आहारे ॥

१ गति, २ इन्द्रिय, ३ काय, ४ योग, ५ वेद, ६ कषाय, ७ ज्ञान, ८ सयम, ९ दर्शन, १० लेश्या, ११ भव्यत्व, १२ सम्यक्त्व, १३ सज्ञी और १४ आहार। इनके १४ भेदो के उत्तर भेद ६२ होते हैं।

वर्णन की यह परम्परा है कि जीव सम्बन्धी जिस किसी भी अवस्था का वर्णन करना है, उसका पहले सामान्य रूप से वर्णन किया जाता है और उसके बाद उसका विशेष चिन्तन चौदह मार्गणाओ द्वारा आठ अनुयोगद्वारो मे किया जाता है। अनुयोगद्वार यह अधिकार का पर्यायवाची नाम है और विषय-विभाग की दृष्टि से ये अधिकार हीनाधिक भी किये जा सकते हैं। परन्तु मार्गणाओ का विस्तृत विवेचन मुख्य रूप से आठ अधिकारो मे ही पाया जाता है, अत मुख्य रूप से आठ ही लिये जाते हैं। इन आठ अधिकारो के नाम इस प्रकार हैं—

सत पयपरूवणया दव्वपमाण च खित्तफुसणा य।
कालो य अतर भाग भाव अप्पा बहु चेव[1] ॥

---

१ आवश्यक निर्युक्ति गा० १३

१ सत्, २ सख्या, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शन, ५ काल, ६ अन्तर, ७ भाव और ८ अल्पबहुत्व। इन अधिकारो का अर्थ इनके नामो से ही स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् सत् अनुयोगद्वार मे यह बताया जाता है कि विवक्षित धर्म किन मार्गणाओ मे है और किन मे नही है। सख्या अनुयोगद्वार मे उस विवक्षित धर्म वाले जीवो की सख्या बतलाई जाती है। क्षेत्र अनुयोगद्वार मे विवक्षित धर्म वाले जीवो का वर्तमान निवास-स्थान बतलाया जाता है। स्पर्शन अनुयोगद्वार मे उन विवक्षित धर्म वाले जीवो ने जितने क्षेत्र का पहले स्पर्श किया हो, अब कर रहे है और आगे करेंगे उस सबका समुच्चय रूप से निर्देश किया जाता है। काल अनुयोगद्वार मे विवक्षित धर्म वाले जीवो की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति का विचार किया जाता है। अन्तर शब्द का अर्थ विग्रह या व्यवधान है अत· अन्तर अनुयोगद्वार मे यह बताया जाता है कि विवक्षित धर्म का सामान्य रूप से या किस मार्गणा मे कितने काल तक अन्तर रहता है या नही रहता है। भाव अनुयोग-द्वार मे उस विवक्षित धर्म के भाव का तथा अल्पवहुत्व अनुयोगद्वार मे उसके अल्पबहुत्व का विचार किया जाता है।

यद्यपि गाथा मे सिर्फ इतना सकेत किया गया है कि इसी प्रकार वध, उदय और सत्ता रूप कर्मों का तथा उनके अवान्तर भेद-प्रभेदो का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से गति आदि मार्गणाओ के द्वारा आठ अनुयोगद्वारों मे विवेचन कर लेना चाहिये जैसा कि पहले वर्णन किया गया है। लेकिन इस विपय मे टीकाकार आचार्य मलयगिरि का वक्तव्य है कि 'यद्यपि आठो कर्मों के सत् अनुयोगद्वार का वर्णन गुणस्थानो मे सामान्य रूप से पहले किया ही गया है और सख्या आदि सात अनुयोगद्वारो का व्याख्यान कर्मप्रकृति प्राभृत ग्रथो को देखकर करना चाहिये। किन्तु कर्मप्रकृति प्राभृत आदि ग्रथ वर्तमान काल मे उपलब्ध नही है, इसलिये इन सख्यादि अनुयोग-

द्वारो का व्याख्यान करना कठिन है। फिर भी जो प्रत्युत्पन्नमति विद्वान हैं वे पूर्वापर सम्बन्ध को देखकर उनका व्याख्यान करें।

टीकाकार आचार्यश्री के उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गाथा मे जिस विपय की सूचना दी गई है उस विषय का प्रतिपादन करने वाले ग्रथ वर्तमान मे नही पाये जाते हैं। फिर भी विभिन्न ग्रन्थो की सहायता से मार्गणाओ मे आठ कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियो के बध, उदय और सत्ता स्थानो के सवेध का विवरण नीचे लिखे अनुसार जानना चाहिये। पहले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अतराय इन छह कर्मों के बध आदि स्थानो का निर्देश करने के बाद मोहनीय व नाम कर्म के बधादि स्थानो को वतलायेंगे।

मार्गणाओ मे ज्ञानावरण आदि छह कर्मों के बध आदि स्थानो का विवरण इस प्रकार है—

क्रम स०	मार्गणा नाम	मूल प्रकृति भग ७	ज्ञाना० भग २	दर्शना० भग ११	वेदनीय भग ८	आयु० भग २८	गोत्र भग ७	अतराय भग २
१	नरकगति	२	१	४	४	५	२	१
२	तिर्यंचगति	२	१	४	४	९	३	१
३	मनुष्यगति	७	२	११	८	९	६	२
४	देवगति	२	१	४	४	५	४	१
५	एकेन्द्रिय	२	१	२	४	५	३	१
६	द्वीन्द्रिय	२	१	२	४	५	३	१
७	त्रीन्द्रिय	२	१	२	४	५	३	१
८	चतुरिन्द्रिय	२	१	२	४	५	३	१
९	पचेन्द्रिय	७	२	११	८	२८	७	२
१०	पृथ्वीकाय	२	१	२	४	५	३	१
११	अप्काय	२	१	२	४	५	३	१
१२	तेज काय	२	१	२	४	३	२	१
१३	वायुकाय	२	१	२	४	३	२	१

क्रम स०	मार्गणा नाम	मूल प्रकृति भग ७	ज्ञाना० भग २	दर्शना० भग ११	वेदनीय भग ८	आयु० भग २८	गोत्र भग ७	अंतराय भग २
१४	वनस्पतिकाय	२	१	२	४	५	३	१
१५	त्रसकाय	७	२	११	८	२८	७	२
१६	मनोयोग	६	२	११	४	२८	५	२
१७	वचनयोग	६	२	११	४	२८	५	२
१८	काययोग	६	२	११	४	२८	६	२
१९	स्त्रीवेद	२	१	७	४	२३	५	१
२०	पुरुषवेद	२	१	७	४	२३	५	१
२१	नपुसकवेद	२	१	७	४	२३	५	१
२२	क्रोध	२	१	७	४	२८	५	१
२३	मान	२	१	७	४	२८	५	१
२४	माया	२	१	७	४	२८	५	१
२५	लोभ	३	१	७	४	२८	५	१
२६	मतिज्ञान	५	२	९	४	२०	३	२
२७	श्रुतज्ञान	५	२	९	४	२०	३	२
२८	अवधिज्ञान	५	२	९	४	२०	३	२
२९	मन पर्यायज्ञान	५	२	९	४	६	२	२
३०	केवलज्ञान	२	०	०	६	१	२	०
३१	मत्यज्ञान	२	१	२	४	२८	५	१
३२	श्रुतअज्ञान	२	१	२	४	२८	५	१
३३	विभगज्ञान	२	१	२	४	२८	४	१
३४	सामायिक	२	१	५	४	६	१	१
३५	छेदोपस्थापन	२	१	५	४	६	१	१
३६	परिहारविशुद्धि	२	१	२	४	६	१	१
३७	सूक्ष्मसपराय	१	१	३	२	२	१	१
३८	यथाख्यात	४	१	४	६	२	२	१
३९	देशविरत	२	१	२	४	१२	२	१
४०	अविरत	२	१	४	४	२८	५	१
४१	चक्षुदर्शन	५	२	११	४	२८	५	२
४२	अचक्षुदर्शन	५	१	११	४	२८	६	२
४३	अवधिदर्शन	५	२	९	४	२०	३	२
४४	केवलदर्शन	२	०	०	६	१	२	०

भंग १३९४५	नामकर्म के उदयस्थान १२		७
१३८३२	५	२१, २५, २७, २८, २९	
१३९३६	९	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१	५
१३९३७	११	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८	२
१३८५६	६	२१, २५, २७, २८, २९, ३०	
१३९१७	५	२१, २४, २५, २६, २७	
१३९१७	६	२१, २६, २८, २९, ३०, ३१	
१३९१७	६	२१, २६, २८, २९, ३०, ३१	
१३९१७	६	२१, २६, २८, २९, ३०, ३१	
१३९४५	११	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८	७
१३९१७	५	२१, २४, २५, २६, २७	
१३९१७	५	२१, २४, २५, २६, २७	
९३०८	४	२१, २४, २५, २६	
९३०८	४	२१, २४, २५, २६	
१३९१७	५	२१, २४, २५, २६, २७	
१३९४५	११	२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८	७
१३९४५	६	२५, २७, २८, २९, ३०, ३१	३
१३९४५	६	२५, २७, २८, २९, ३०, ३१, ०	३
१३९४५	१०	२०, २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१	
१३९४५	८	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१	
१३९४५	८	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१	
१३९४५	९	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१	
१३९४५	९	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१	
१३९४५	९	२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१	

नामकर्म के सत्तास्थान १२

३	९२, ८९, ८८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
११	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८
४	९३, ९२, ८९, ८८,
५	९२, ८८, ८६, ८८, ७८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
१२	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९, ८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
१२	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९, ८
९	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५
९	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५
१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६,
१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६,
१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६,
१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५
१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५

क्रम स०	मार्गणा नाम	मूल प्रकृति भग ७	ज्ञाना० भग २	दर्शना० भग ११	वेदनीय भग ८	आयु० भग २८	गोत्र भग ७	अतराय भग २
४५	कृष्णलेश्या	२	१	४	४	२८	५	१
४६	नीललेश्या	२	१	४	४	२८	५	१
४७	कापोत लेश्या	२	१	४	४	२८	५	१
४८	तेजोलेश्या	२	१	४	४	२१	४	१
४९	पद्मलेश्या	२	१	४	४	२१	४	१
५०	शुक्ललेश्या	६	२	११	४	१६/२१	५	२
५१	भव्यत्व	७	२	११	८	२८	७	२
५२	अभव्यत्व	२	१	२	४	२८	५	१
५३	उपशम सम्यक्त्व	३	२	६	४	१६	३	२
५४	क्षायिक ,,	७	२	९	८	१५	४	२
५५	क्षायोपशमिक	२	१	२	४	२०	२	१
५६	मिश्र ,,	१	१	२	४	१६	२	१
५७	सासादन ,,	२	१	२	४	२६	४	१
५८	मिथ्यात्व ,,	२	१	२	४	२८	५	१
५९	सज्ञी	७/५	२	११	८	२८	७	२
६०	असज्ञी	२	१	२	४	२४	३	१
६१	आहारी	६	२	११	४	२८	६	२
६२	अनाहारी	३	१/०	४/०	८	४	७	१

मार्गणाओ मे मोहनीय और नाम कर्म के वध, उदय, सत्ता के सवेध भगो का विवरण सलग्न चार्टों मे देखिए।

अव आगे की गाथा मे उदय से उदीरणा की विशेपता वतलाते है—

उदयस्सुदीरणाए सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो।[1]
मोत्तूण य इगुयालं सेसाणं सव्वपगईण ॥५४॥

१ तुलना कीजिये —

(क) उदओ उदीरणाए तुल्लो मोत्तूण एकचत्ताल।
आवरणविग्घसजलण लोमवेए यदिट्ठिदुग ॥—कर्मप्रकृति उदया० गा०

(ख) उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो।
—गो० कर्मकाड गा० २७८

शब्दार्थ—उदयस्स—उदय के, **उदीरणाए**—उदीरणा के, **सामित्ताओ**—स्वामित्व मे, **न विज्जइ**—नही है, **विसेसो**—विशेषता, **मोत्तूण**—छोडकर, **य**—और, **इगुयालं**—इकतालीस प्रकृतियो को, **सेसाणं**—बाकी की, **सव्वपगईण**—सभी प्रकृतियो के ।

गाथार्थ—इकतालीस प्रकृतियो के सिवाय शेष सब प्रकृतियो के उदय और उदीरणा के स्वामित्व मे कोई विशेषता नही है ।

विशेषार्थ—ग्रथ मे बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो के साथ इन सबके सवेध का विचार किया गया। लेकिन उदय व उदीरणा मे यथासम्भव समानता होने से उसका विचार नही किये जाने के कारण को स्पष्ट करने के लिये इस गाथा मे बताया गया है कि उदय और उदीरणा मे यद्यपि अन्तर नही है, लेकिन इतनी विशेपता है कि इकतालीस कर्म प्रकृतियो के उदय और उदीरणा मे भिन्नता है। इसलिये उदययोग्य १२२ प्रकृतियो मे से ४१ प्रकृतियो को छोडकर शेप ८१ प्रकृतियो के उदय और उदीरणा मे समानता जाननी चाहिये ।

उदय और उदीरणा के लक्षण क्रमश इस प्रकार है कि कालप्राप्त कर्म परमाणुओ के अनुभव करने को उदय कहते है और उदयावलि के बाहर स्थित कर्म परमाणुओ को कपाय सहित या कपाय रहित योग सज्ञा वाले वीर्य विशेप के द्वारा उदयावलि मे लाकर उनका उदयप्राप्त कर्म परमाणुओ के साथ अनुभव करना उदीरणा कहलाता है ।[1] इस प्रकार कर्म परमाणुओ का अनुभवन

---

[1] इह कालप्राप्ताना परमाणूनामनुभवनमुदय., अकालप्राप्तानामुदयावलिकाबहि स्थितानां कपायसहितेनासहितेन वा योगसज्ञकेन वीर्यविशेपण समाकृष्योदयप्राप्तै कर्मपरमाणुभि सहानुभवनमुदीरणा ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ०, २८२

उदय और उदीरणा मे समान है। फिर भी दोनो मे कालप्राप्त और अकालप्राप्त कर्म परमाणुओ के अनुभवन का अतर है। अर्थात् उदय मे कालप्राप्त कर्म परमाणु रहते हैं तथा उदीरणा मे अकालप्राप्त कर्म परमाणु रहते हैं। तो भी सामान्य नियम यह है कि जहाँ जिस कर्म का उदय रहता है वहाँ उसकी उदीरणा अवश्य होती है।[1]

लेकिन इसके सात अपवाद हैं। वे अपवाद इस प्रकार जानने चाहिये—

१ जिनका स्वोदय से सत्वनाश होता है उनका उदीरणा-विच्छेद एक आवलिकाल पहले ही हो जाता है और उदय-विच्छेद एक आवलिकाल बाद होता है।

२ वेदनीय और मनुष्यायु की उदीरणा छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान तक ही होती है। जबकि इनका उदय अयोगिकेवली गुणस्थान तक होता है।

३ जिन प्रकृतियो का अयोगिकेवली गुणस्थान मे उदय है, उनकी उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थान तक ही होती है।

४ चारो आयुकर्मों का अपने-अपने भव की अतिम आवलि मे उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।

५ निद्रादि पाच का शरीरपर्याप्ति के बाद इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होने तक उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।

६ अतरकरण करने के बाद प्रथमस्थिति मे एक आवली काल शेष रहने पर मिथ्यात्व का, क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले के सम्यक्त्व का और उपशमश्रेणि मे जो जिस वेद के उदय से उपशमश्रेणि पर चढा है उसके उस वेद का उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।

---

१ जत्थ उदओ तत्थ उदीरणा, जत्थ उदीरणा तत्थ उदओ।

७ उपशमश्रेणि के सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे भी एक आवलि-काल शेप रहने पर सूक्ष्म लोभ का उदय ही होता है उदीरणा नही होती है।

उक्त सात अपवादो वाली ४१ प्रकृतिया है, जिससे ग्रथकार ने ४१ प्रकृतियो को छोडकर शेप सव प्रकृतियो के उदय और उदीरणा मे स्वामित्व की अपेक्षा कोई विशेपता नही वतलाई है।

अव आगे की गाथा मे उन ४१ प्रकृतियो को वतलाते है जिनके उदय और उदीरणा मे विशेपता है।

नाणतरायदसगं दंसणनव वेयणिज्ज मिच्छत्तं।
सम्मत्त लोभ वेयाऽऽउगाणि नवनाम उच्चं च ।।५५।।

शब्दार्थ—**नाणतरायदसग**—ज्ञानावरण और अतराय की दस, **दसणनव**—दर्शनावरण की नौ, **वेयणिज्ज**—वेदनीय की दो, **मिच्छत्त**—मिथ्यात्व, **सम्मत्त**—सम्यक्त्व मोहनीय, **लोभ**—सज्वलन लोभ, **वेयाऽऽउगाणि**—तीन वेद और चार आयु, **नवनाम**—नाम कर्म की नौ प्रकृति, **उच्च**—उच्चगोत्र, **च**—और।

गाथार्थ—ज्ञानावरण और अतराय कर्म की कुल मिलाकर दस, दर्शनावरण की नौ, वेदनीय की दो, मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, सज्वलन लोभ, तीन वेद, चार आयु, नामकर्म की नौ, और उच्च गोत्र, ये इकतालीस प्रकृतियाँ हैं, जिनके उदय और उदीरणा मे स्वामित्व की अपेक्षा विशेषता है।

विशेषार्थ—गाथा मे उदय और उदीरणा मे स्वामित्व की अपेक्षा विशेपता वाली इकतालीस प्रकृतियो के नाम बतलाये हैं। वे इकतालीस प्रकृतियाँ इस प्रकार है—ज्ञानावरण की मतिज्ञानावरण द पाँच, अतराय की दानान्तराय आदि पाँच तथा दर्शनावरण की

चक्षुदर्शनावरण आदि चार, कुल मिलाकर इन चौदह प्रकृतियो की बारहवे क्षीणमोह गुणस्थान मे एक आवलि काल शेष रहने तक उदय और उदीरणा बराबर होती रहती है। परन्तु एक आवलि काल के शेष रह जाने पर उसके बाद उक्त चौदह प्रकृतियो का उदय ही होता है किन्तु उदयावलिगत कर्मदलिक सब कारणो के अयोग्य होते हैं, इस नियम के अनुसार उनकी उदीरणा नही होती है।

शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीवो के शरीरपर्याप्ति के समाप्त होने के अनन्तर समय से लेकर जब तक इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण नही होती तब तक दर्शनावरण की शेष निद्रा आदि पांच प्रकृतियो का उदय ही होता है उदीरणा नही होती है। इसके अतिरिक्त शेष काल मे उनका उदय और उदीरणा एक साथ होती है और उनका विच्छेद[1] भी एक साथ होता है।

साता और असाता वेदनीय का उदय और उदीरणा प्रमत्तसयत गुणस्थान तक एक साथ होती है, किन्तु अगले गुणस्थानो मे इनका उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है। प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जीव के अन्तरकरण करने के पश्चात् प्रथमस्थिति मे एक आवलि प्रमाण काल के शेष रहने पर मिथ्यात्व का उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है तथा क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जिस वेदक सम्यग्दृष्टि जीव ने मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय करके सम्यक्त्व की सर्वअपवर्तना के द्वारा अपवर्तना करके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति शेष रखी है और उसके बाद उदय तथा

---

१ दिगम्बर परपरा मे निद्रा और प्रचला का उदय और सत्वविच्छेद क्षीणमोह गुणस्थान मे एक साथ बतलाया है। इसलिये इस अपेक्षा से इनमे से जिस उदयगत प्रकृति की उदयव्युच्छित्ति और सत्वव्युच्छित्ति एक साथ होगी, उसकी उदयव्युच्छित्ति के एक आवलिकाल पूर्व ही उदीरणा व्युच्छित्ति हो जायेगी।

उदीरणा के द्वारा उसका अनुभव करते हुए जब एक आवलि स्थिति शेष रह जाती है तब सम्यक्त्व का उदय ही होता है उदीरणा नही होती है। सज्वलन लोभ का उदय और उदीरणा एक साथ होती है। जब सूक्ष्मसपराय का समय एक आवलि शेष रहता तब आवलि मात्र काल मे लोभ का उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।

तीन वेदो मे से जिस वेद से जीव श्रेणि पर चढता है, उसके अन्तरकरण करने के बाद उस वेद की प्रथमस्थिति मे एक आवलि प्रमाण काल के शेष रहने पर उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है। चारो ही आयुओ का अपने-अपने भव की अन्तिम आवलि प्रमाण काल के शेष रहने पर उदय ही होता है, उदीरणा नही होती। लेकिन मनुष्यायु मे इतनी विशेषता है कि इसका प्रमत्तसयत गुणस्थान के बाद उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।[1]

मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश कीर्ति और तीर्थंकर ये नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ हैं[2] और उच्चगोत्र, इन दस प्रकृतियो का सयोगिकेवली गुणस्थान तक उदय और उदीरणा दोनो ही सम्भव है किन्तु अयोगिकेवली गुणस्थान मे इनका उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।[3]

---

१ अन्यच्च मनुष्यायुष प्रमत्तगुणस्थानकादूर्ध्वमुदीरणा न भवति किन्तूदय-एव केवल ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४२-२४३

२ मणुयगइजाइतसबादर च पज्जत्तसुभगमाइज्ज ।
जसकित्ती तित्थयर नामस्स हवति नव एया ॥

३ · · सयोगिकेवलिगुणस्थानक यावद् युगपद् उदय-उदीरणे-अयोग्यवस्थाया तूदय एव नोदीरणा ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४३

इस प्रकार पिछली गाथा मे उदय और उदीरणा मे स्वामित्व की अपेक्षा जिन इकतालीस प्रकृतियो की विशेषता का निर्देश किया था। उन इकतालीस प्रकृतियो के नाम कारण सहित इस गाथा मे वतलाये हैं कि इनकी उदीरणा क्यो नही होती है। अब आगे की गाथाओ मे गुणस्थानो मे प्रकृतियो के वध को वतलाते हैं।

गुणस्थानो मे प्रकृतियो का वध

तित्थगराहारगविरहियाओ अज्जेइ सव्वपगईओ।
मिच्छत्तवेयगो सासणो वि इगुवीससेसाओ ॥५६॥

शब्दार्थ—**तित्थगराहारग**—तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक, **विरहियाओ**— विना, **अज्जेइ**—उपार्जित, वध करता है, **सव्वपगईओ**—सभी प्रकृतियो का, **मिच्छत्तवेयगो**—मिथ्यादृष्टि, **सासणो**—सासादन गुणस्थान वाला, **वि**—भी, **इगुवीस**—उन्नीस, **सेसाओ**—शेष, वाकी की।

गाथार्थ—मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक के विना शेष सव प्रकृतियो का वध करता है तथा सासादन गुणस्थान वाला उन्नीस प्रकृतियो के विना शेष प्रकृतियो को वाधता है।

विशेषार्थ—गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन आदि चौदह हैं और ज्ञानावरण आदि आठ मूल कर्मो की उत्तर प्रकृतियां १४८ हैं। उनमे से वधयोग्य प्रकृतियो की सख्या १२० मानी गई है। वध की अपेक्षा १२० प्रकृतियो के मानने का मतलव यह नही है कि शेष २८ प्रकृतियां छोड दी जाती हैं। लेकिन इसका कारण यह है कि पांच वधन और पांच सघातन, ये दस प्रकृतियां शरीर की अविनाभावी हैं, अत जहां जिस शरीर का वध होता है, वहां उस वधन और सघातन का वध अवश्य होता है। जिससे इन दस प्रकृतियो को अलग से नही गिनाया

जाता है। इस प्रकार १४८ मे से दस प्रकृतियो को कम कर देने पर १३८ प्रकृतियाँ रह जाती है तथा वर्णचतुष्क के अवान्तर भेद २० हैं किन्तु बध मे अवान्तर भेदो की विवक्षा न करके मूल मे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, ये चार प्रकृतियाँ ग्रहण की जाती हैं। अतएव १३८ में से २०—४=१६ घटा देने पर १२२ प्रकृतियाँ शेष रह जाती हैं। दर्शन मोहनीय की सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व, ये तीन प्रकृतियाँ है। उनमे से सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ बध प्रकृतियाँ नही हैं। क्योकि बध मिथ्यात्व प्रकृति का होता है और जीव अपने सम्यक्त्व गुण के द्वारा ही मिथ्यात्व के दलिको के तीन भाग बना देता है। इनमे से जो अत्यन्त विशुद्ध होता है उसे सम्यक्त्व और जो कम विशुद्ध होता है उसे सम्यग्मिथ्यात्व सज्ञा प्राप्त होती है और इन दोनो के अतिरिक्त शेष अशुद्ध भाग मिथ्यात्व कहलाता है। अत १२२ मे से सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियो को घटा देने पर शेष १२० प्रकृतियाँ बधयोग्य मानी जाती है।

इन १२० प्रकृतियो मे से किस गुणस्थान मे कितनी-कितनी प्रकृतियो का वध होता है, इसका विवेचन इस गाथा से प्रारम्भ किया गया है।

पहले मिथ्यात्व गुणस्थान मे बधयोग्य प्रकृतियो को बतलाने के लिये गाथा मे कहा है कि तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक—आहारक शरीर और आहारक अगोपाग—इन तीन प्रकृतियो के सिवाय शेष ११७ प्रकृतियो का वध होता है। इन तीन प्रकृतियो के वध न होने का कारण यह है कि तीर्थंकरनाम का वध सम्यक्त्व गुण के सद्भाव मे और आहारकद्विक का वध सयम के सद्भाव मे होता है। किन्तु पहले मिथ्यात्व गुणस्थान मे न सम्यक्त्व है और न सयम। इसीलिये मिथ्यात्व गुणस्थान में उक्त तीन प्रकृतियो का वध न होकर शेष ११७ प्रकृतियो का वध होता है।

सासादन गुणस्थान मे—'सासणो वि इगुवीस सेसाओ' उन्नीस प्रकृतियो के बिना शेष १०१ प्रकृतियो का बध होता है। अर्थात् मिथ्यात्व गुण के निमित्त से जिन सोलह प्रकृतियो का बध होता है, उनका सासादन गुणस्थान मे मिथ्यात्व का अभाव होने से बध नही होता है। मिथ्यात्व के निमित्त से बधने वाली सोलह प्रकृतियो के नाम इस प्रकार हैं

१ मिथ्यात्व, २ नपुसकवेद, ३ नरकगति, ४ नरकानुपूर्वी, ५ नरकायु, ६ एकेन्द्रिय जाति, ७ द्वीन्द्रिय जाति, ८ त्रीन्द्रिय जाति, ९ चतुरिन्द्रिय जाति, १० हुडसस्थान, ११ सेवार्त सहनन, १२ आतप, १३ स्थावर, १४ सूक्ष्म, १५ साधारण और १६ अपर्याप्त। मिथ्यात्व से बधने वाली ११७ प्रकृतियो मे से उक्त १६ प्रकृतियो को घटा देने पर सासादन गुणस्थान मे १०१ प्रकृतियो का बध होता है।

इस प्रकार से पहले, दूसरे—मिथ्यात्व, सासादन—गुणस्थान मे बधयोग्य प्रकृतियो को बतलाने के बाद अब आगे की गाथा मे तीसरे, चौथे आदि गुणस्थानो की बधयोग्य प्रकृतियो की सख्या बतलाते है।

छायालसेस मीसो अविरयसम्मो तियालपरिसेसा।
तेवण्ण देसविरओ विरओ सगवण्णसेसाओ ॥५७॥

शब्दार्थ—छायालसेस—छियालीस के बिना, मीसो—मिश्र गुणस्थान मे, अविरयसम्मो—अविरति सम्यग्दृष्टि मे, तियालपरिसेस—तेतालीस के बिना, तेवण्ण—त्रेपन, देसविरओ—देशविरत, विरओ—प्रमत्तविरत, सगवण्णसेसाओ—सत्तावन के सिवाय शेष।

गाथार्थ—मिश्र गुणस्थान मे छियालीस के बिना शेष प्रकृतियो का, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे तेतालीस के बिना शेष प्रकृतियो का, देशविरत मे तिरेपन के बिना और

प्रमत्तविरत मे सत्तावन के बिना शेप प्रकृतियो का वध होता है।

विशेषार्थ—पहले और दूसरे गुणस्थान मे बघयोग्य प्रकृतियो को पूर्व गाथा मे बतलाया है। इस गाथा मे मिश्र आदि चार गुणस्थानो की बध प्रकृतियो का निर्देश करते है। जिनका विवरण नीचे लिखे अनुसार है ·—

तीसरे मिश्र गुणस्थान मे 'छायालसेस मीसो' बधयोग्य १२० प्रकृतियो मे से छियालीस प्रकृतियो को घटाने पर शेष रही १२०—४६ =७४ प्रकृतियो का बध होता है। इसका कारण यह है कि दूसरे सासादन गुणस्थान तक अनन्तानुबधी का उदय होता है, लेकिन तीसरे मिश्र गुणस्थान मे अनन्तानुबधी का उदय नही होता है। अत अनन्तानुबन्धी के उदय से जिन २५ प्रकृतियो का बध होता है, उनका यहाँ बध नही है। अर्थात् तीसरे मिश्र गुणस्थान मे सासादन गुणस्थान की बधयोग्य १०१ प्रकृतियो से २५ प्रकृतियाँ और घट जाती हैं। वे २५ प्रकृतियाँ ये हैं—स्त्यानर्द्धित्रिक, अनन्तानुबंधीचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु, प्रथम और अन्तिम को छोडकर मध्य के चार सस्थान, प्रथम और अन्तिम को छोडकर मध्य के चार सहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय और नीच गोत्र। इसके अतिरिक्त यह नियम है कि मिश्र गुणस्थान मे किसी भी आयु का बध नही होता है अत· यहाँ मनुष्यायु और देवायु, ये दो आयु और कम हो जाती है। मनुष्यायु और देवायु, इन दो आयुयो को घटाने का कारण यह है कि नरकायु का बधविच्छेद पहले और तिर्यंचायु का बधविच्छेद दूसरे गुणस्थान मे हो जाता है। अत आयु कर्म के चारो भेदो मे से शेष रही मनुष्यायु और देवायु, इन दो प्रकृतियो को ही यहाँ कम किया जाता है। इस प्रकार सासा-

दन गुणस्थान मे नही बँधने वाली १६ प्रकृतियो मे इन २५+२=२७ प्रकृतियो को मिला देने पर ४६ प्रकृतियाँ होती हैं जिनका मिश्र गुण-स्थान मे बध नही होता है। किन्तु १२० प्रकृतियो मे से ४६ प्रकृतियो के सिवाय शेष रही ७४ प्रकृतियो का बध होता है।

चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ४३ प्रकृतियो के बिना शेष ७७ प्रकृतियो का बध होता है—'अविरयसम्मो तियालपरिसेसा।' इसका कारण यह है कि अविरतसम्यग्दृष्टि जीव के मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर नाम, इन तीन प्रकृतियो का बध सम्भव है। अत. यहाँ बधयोग्य १२० प्रकृतियो मे से ४६ न घटाकर ४३ प्रकृतियाँ ही घटाई हैं। इस प्रकार अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ७७ प्रकृतियो का बध बतलाया है।

देशविरत नामक पाँचवें गुणस्थान मे ५३ के बिना ६७ प्रकृतियो का बध बतलाया है—'तेवण्ण देसविरओ'। इसका अर्थ यह है कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से जिन दस प्रकृतियो का बध अविरतसम्यग्दृष्टि जीव के होता है, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने से उनका यहाँ बध नही होता है। अत चौथे गुणस्थान मे कम की गई ४३ प्रकृतियो मे १० प्रकृतियो को और जोड देने पर देशविरत गुणस्थान मे बध के अयोग्य ५३ प्रकृतिया हो जाती हैं और इनके अतिरिक्त शेष रही ६७ प्रकृतियो का बध होता है।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से बंधने वाली १० प्रकृतियो के नाम इस प्रकार हैं— अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग और वज्रऋषभनाराच सहनन।

छठे प्रमत्तविरत गुणस्थान मे ५७ के बिना ६३ प्रकृतियो का बध होता है। इसका आशय यह है कि प्रत्याख्यानावरण के उदय से जिन

प्रत्याख्यानावरणचतुष्क (क्रोध, मान, माया, लोभ) का बध देश-विरत गुणस्थान तक होता था, उनका प्रमत्तविरत गुणस्थान मे बध नही होता है। अत जिन ५३ प्रकृतियो को देशविरत गुणस्थान मे बँधने के अयोग्य बतलाया है, उनमे इन चार प्रकृतियो के और मिला देने पर प्रमत्तविरत गुणस्थान मे ५७ प्रकृतियाँ बध के अयोग्य होती है—'विरओ सगवण्णसेसाओ।' इसलिये प्रमत्तविरत गुणस्थान मे ६३ प्रकृतियो का बध होता है।

अब आगे की गाथा मे सातवे और आठवे गुणस्थान मे बध प्रकृतियो की सख्या का निर्देश करते है।

इगुसट्ठिमप्पमत्तो बंधइ देवाउयस्स इयरो वि।
अट्ठावण्णमपुव्वा छप्पण्णं वा वि छव्वीसं ॥५८॥

शब्दार्थ—**इगुसट्ठि**—उनसठ प्रकृतियो के, **अप्पमत्तो**—अप्रमत्त-सयत, **बधइ**—बध करता है, **देवाउयस्स**—देवायु का बधक, **इयरो वि**—अप्रमत्त भी, **अट्ठावण्ण**—अट्ठावन, **अपुव्वो**—अपूर्वकरण गुणस्थान वाला, **छप्पण्ण**—छप्पन, **वा वि**—अथवा भी, **छव्वीस**—छब्बीस।

गाथार्थ—अप्रमत्तसयत गुणस्थानवर्ती जीव उनसठ प्रकृतियो का बध करता है। यह देवायु का भी बध करता है। अपूर्वकरण गुणस्थान वाला अट्ठावन, छप्पन अथवा छब्बीस प्रकृतियो का बध करता है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे सातवें अप्रमत्तसयत और आठवे अपूर्व-करण गुणस्थान मे बधयोग्य प्रकृतियो की सख्या का निर्देश किया है। लेकिन यहाँ कथन शैली की यह विशेषता है कि पिछली गाथाओ मे तो किस गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बध नही होता है—इसको मुख्य मानकर बध प्रकृतियाँ बतलाई थी किन्तु इस गाथा से उस क्रम को बदल कर यह बतलाया है कि किस गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो

का वध होता है। अत अब गाथा के सकेतानुसार गुणस्थानो मे वध प्रकृतियो की सख्या का निर्देश करते हैं।

सातवें अप्रमत्तविरत गुणस्थान मे उनसठ प्रकृतियो का वध होता है—'इगुसट्ठिमप्पमत्तो'। यह तो पहले वतलाया जा चुका है कि छठे प्रमत्तविरत गुणस्थान मे ६३ प्रकृतियो का वध होता है, उनमे से असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयश कीर्ति, इन छह प्रकृतियो का सातवें गुणस्थान मे वध नही होता है, छठे गुणस्थान तक वध होता है। अत पूर्वोक्त ६३ प्रकृतियो मे से इन ६ प्रकृतियो को कम कर देने पर ५७ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन इस गुणस्थान मे आहारकद्विक का वध होता है जिससे ५७ मे २ प्रकृतियो को और मिला देने पर अप्रमत्तसयत के ५९ प्रकृतियो का वध कहा गया है।

उक्त ५९ प्रकृतियो मे देवायु भी सम्मिलित हैं लेकिन ग्रन्थकार ने अप्रमत्तसयत देवायु का भी वध करता है—'वधइ देवाउयस्स इयरो वि'—इस प्रकार पृथक से निर्देश किया है। उसका अभिप्राय यह है कि देवायु के वध का प्रारम्भ प्रमत्तसयत ही करता है फिर भी वह जीव देवायु का वध करते हुए अप्रमत्तसयत भी हो जाता है और इस प्रकार अप्रमत्तसयत भी देवायु का वधक होता है। परन्तु इससे कोई यह न समझे कि अप्रमत्तसयत भी देवायु के वध का प्रारम्भ करता है। 'अप्रमत्तसयत देवायु के वध का प्रारम्भ करता है।' यदि यह अभिप्राय लिया जाता है तो ऐसा सोचना उचित नही है। इसी वात को स्पष्ट करने के लिये ग्रथकार ने 'अप्रमत्तसयत भी देवायु का वध करता है' यह निर्देश किया है।[1]

---

१ एतेनैतत् सूच्यते—प्रमत्तसयत एवायुर्बन्ध प्रथमत आरभते, आरभ्य च कश्चिदप्रमत्तभावमपि गच्छति, तत एवमप्रमत्तसयतोऽपि देवायुषो बन्धको भवति, न पुनरप्रमत्तसयत एव सन् प्रथमत आयुर्बन्धमारभत इति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४४

अपूर्वकरण नामक आठवे गुणस्थान मे अट्ठावन, छप्पन और छब्बीस प्रकृतियो का बध होता है। प्रकृतियो की सख्या मे भिन्नता का कारण यह है कि पूर्वोक्त ५९ प्रकृतियो मे से देवायु के वध का विच्छेद हो जाने पर अपूर्वकरण गुणस्थान वाला जीव पहले सख्यातवे भाग मे ५८ प्रकृतियो का वध करता है। अनन्तर निद्रा और प्रचला का बधविच्छेद हो जाने पर सख्यातवें भाग के शेष रहने तक ५६ प्रकृतियो का बध करता है और उसके बाद देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर, इन तीस प्रकृतियो का बधविच्छेद हो जाने पर अतिम भाग मे २६ प्रकृतियो का बध करता है। इसी का सकेत करने के लिये गाथा मे निर्देश है कि—अट्ठावण्णमपुव्वो छप्पण्ण वा वि छव्वीस।

इस प्रकार से आठवे गुणस्थान तक की बंध प्रकृतियो का कथन किया जा चुका है। अब आगे की गाथा मे शेष रहे छह गुणस्थानो की बध प्रकृतियो की सख्या को बतलाते हैं।

बावीसा एगूणं बंधइ अट्ठारसतमनियट्टी।
सत्तर सुहुमसरागो सायममोहो सजोगि त्ति ॥५६॥

शब्दार्थ—**बावीस**—बाईस, **एगूणं**—एक एक कम, **बंधइ**—बध करता है, **अट्ठारसंतं**—अठारह पर्यन्त, **अनियट्टी**—अनिवृत्तिबादर गुणस्थान वाला, **सत्तर**—सत्रह, **सुहुमसरागो**—सूक्ष्मसपराय गुणस्थान वाला, **साय**—साता वेदनीय को, **अमोहो**—अमोही (उपशातमोह, क्षीणमोह) **सजोगि त्ति**—सयोगिकेवली गुणस्थान तक।

गाथार्थ—अनिवृत्तिवादर गुणस्थान वाला वाईस का और उसके वाद एक-एक प्रकृति कम करते हुए अठारह प्रकृतियो का वध करता है। सूक्ष्मसपराय वाला सत्रह प्रकृतियो को वाधता है तथा उपशातमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थान वाले सिर्फ एक सातावेदनीय प्रकृति का वध करते हैं।

विशेषार्थ—नौवे अनिवृत्तिवादर गुणस्थान के पहले भाग मे वाईस प्रकृतियो का वध होता है। इसका कारण यह है कि यद्यपि आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान मे २६ प्रकृतियो का वध होता है, फिर भी उसके अतिम समय मे हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, इन चार प्रकृतियो का वधविच्छेद हो जाने से नौवें गुणस्थान के पहले समय मे २२ प्रकृतियो का वध वतलाया है। इसके वाद पहले भाग के अत मे पुरुषवेद का दूसरे भाग के अत मे सज्वलन क्रोध का, तीसरे भाग के अत मे सज्वलन मान का, चौथे भाग के अत मे सज्वलन माया का विच्छेद हो जाने से पाचवें भाग मे १८ प्रकृतियो का वध होता है, अर्थात् नौवें अनिवृत्तिवादर गुणस्थान के वध की अपेक्षा पाच भाग है अत प्रारभ मे तो २२ प्रकृतियो का वध होता है और उसके वाद पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, भाग के अत मे क्रमश एक-एक प्रकृति का वधविच्छेद होते जाने से २१, २०, १९ और १८ प्रकृतियो का वध होता है। इसी आशय को स्पष्ट करने के लिये गाथा मे सकेत किया है—'वावीसा एगूण वधइ अट्ठारसतमनियट्टी।'

लेकिन जब अनिवृत्तिवादर गुणस्थान के पाचवें भाग के अत मे सज्वलन लोभ का वधविच्छेद होता है तव दसवें सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे १७ प्रकृतियो का वध वतलाया है—'सत्तर सुहुमसरागो'।

दसवे गुणस्थान के अत मे ज्ञानावरण की पाच, दर्शनावरण की चार, अतराय की पाच, यश कीर्ति और उच्च गोत्र, इन सोलह प्रकृतियो का बधविच्छेद होता है। अर्थात् दसवें गुणस्थान तक मोहनीयकर्म का उपशम या क्षय हो जाने से अमोह दशा प्राप्त हो जाती है जिससे मोहनीयकर्म से विहीन जो उपशातमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली—ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे गुणस्थान मे सिर्फ एक सातावेदनीयकर्म का बध होता है—'सायममोहो सजोगि त्ति।'

तेरहवे सयोगिकेवलि गुणस्थान के अत मे सातावेदनीय का भी बधविच्छेद हो जाने से चौदहवे अयोगिकेवली गुणस्थान मे बध के कारणो का अभाव हो जाने से किसी भी कर्म का बध नही होता है। अर्थात् चौदहवॉ गुणस्थान कर्मबध से रहित है।

यद्यपि गाथा मे अयोगिकेवली गुणस्थान का निर्देश नही किया है तथापि गाथा मे जो यह निर्देश किया है कि एक सातावेदनीय का बध मोहरहित और सयोगिकेवली जीव करते हैं, उससे यह फलितार्थ निकलता है कि अयोगिकेवली गुणस्थान मे बध के मुख्य कारण कषाय और योग का अभाव हो जाता है और कारण के अभाव मे कार्य नही होता है। अत अयोगिकेवली गुणस्थान मे कर्म का लेशमात्र भी बध नही होता है।

इस प्रकार चार गाथाओ मे किस गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बध होता है और कितनी प्रकृतियो का बध नही होता है इसका विचार किया गया। जिनका सक्षेप मे विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

क्रम संख्या	गुणस्थान	बंध	अबंध	बंधविच्छेद
१	मिथ्यात्व	११७	३	१६
२	सासादन	१०१	१९	२५
३	मिश्र	७४	४६	०
४	अविरतसम्यग्दृष्टि	७७	४३	१०
५	देशविरत	६७	५३	४
६	प्रमत्तविरत	६३	५७	६
७	अप्रमत्तविरत	५९	६१	१
८	अपूर्वकरण प्रथम भाग	५८	६२	२
	अपूर्वकरण द्वितीय भाग	५६	६४	३०
	अपूर्वकरण तृतीय भाग	२६	९४	४
९	अनिवृत्तिकरण प्रथम भाग	२२	९८	१
	अनिवृत्तिकरण द्वितीय भाग	२१	९९	१
	अनिवृत्तिकरण तृतीय भाग	२०	१००	१
	अनिवृत्तिकरण चतुर्थ भाग	१९	१०१	१
	अनिवृत्तिकरण पंचम भाग	१८	१०२	१
१०	सूक्ष्मसंपराय	१७	१०३	१६
११	उपशांतमोह	१	११८	०
१२	क्षीणमोह	१	११९	०
१३	सयोगिकेवली	१	११९	०
१४	अयोगिकेवली	०	१२०	१

प्रत्येक गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बध और विच्छेद होता है और उनके नाम आदि का उल्लेख द्वितीय कर्मग्रथ मे विशेष रूप से किया गया है। अत जिज्ञासु जन उसको देख लेवे।

गुणस्थानो मे बधस्वामित्व का उपसहार करते हुए मार्गणाओ मे भी सामान्य से बधस्वामित्व को बतलाने के लिये कहते हैं कि—

एसो उ बंधसामित्तओघो गइयाइएसु वि तहेव।
ओहाओ साहिज्जा जत्थ जहा पगडिसब्भावो ॥६०॥

शब्दार्थ—**एसो**—यह पूर्वोक्त गुणस्थान का बधभेद, **उ**—और, **बधसामित्त**—बध स्थामित्व का, **ओघो**—ओघ (सामान्य) से, **गइयाइएसु**—गति आदि मार्गणाओ मे, **वि**—भी, **तहेव**—वैसे ही, इसी प्रकार, **ओहाओ**—ओघ से कहे अनुसार, **साहिज्जा**—कहना चाहिये, **जत्थ**—जिस मार्गणास्थान मे, **जहा**—जिस प्रकार से, **पगडिसब्भावो**—प्रकृति का सद्‌भाव।

गाथार्थ—यह पूर्वोक्त गुणस्थानो का बधभेद, स्वामित्व का ओघ कथन जानना चाहिये। गति आदि मार्गणाओ मे भी इसी प्रकार (सामान्य से) जहाँ जितनी प्रकृतियो का बध होता है, तदनुसार वहाँ भी ओघ के समान बधस्वामित्व का कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—पिछली चार गाथाओ मे प्रत्येक गुणस्थान मे प्रकृतियो के बध करने और बध नही करने का कथन किया गया है। जिससे सामान्यतया बधस्वामित्व का ज्ञान हो जाता है, तथापि गति आदि मार्गणाओ मे कितनी-कितनी प्रकृतियो का बध होता है और कितनी-कितनी प्रकृतियो का बध नही होता है, इसको जानना शेष रह जाता है। इसके लिये गाथा मे इतनी सूचना दी गई है कि जहाँ जितनी प्रकृतियो का बध होता हो इसका विचार करके ओघ के समान मार्गणास्थानो मे भी बधस्वामित्व का कथन कर लेना चाहिये।

यद्यपि उक्त सकेत के अनुसार यह आवश्यक हो जाता है कि यहाँ मार्गणाओ मे वधस्वामित्व का विचार किया जाये लेकिन तीसरे कर्मग्रथ मे इसका विस्तार से विचार किया जा चुका है अत जिज्ञासु जन वहाँ से जान लेवें।

अव किस गति मे कितनी प्रकृतियो की सत्ता होती है, इसका कथन आगे की गाथा मे करते है।

तित्थगरदेवनिरयाउग च तिसु तिसु गईसु बोद्धव्व।
अवसेसा पयडीओ हवंति सव्वासु वि गईसु ॥६१॥

शब्दार्थ—तित्थगरदेवनिरयाउग—तीर्थंकर, देवायु और नरकायु, च—और, तिसु तिसु—तीन-तीन, गईसु—गतियो मे, वोद्धव्व—जानना चाहिये, अवसेसा—शेप, वाकी की, पयडीओ—प्रकृतियाँ, हवति—होती है, सव्वासु—सभी, वि—भी, गईसु—गतियो मे।

गाथार्थ—तीर्थंकर नाम, देवायु और नरकायु, इनकी सत्ता तीन-तीन गतियो मे होती है और इनके सिवाय शेप प्रकृतियो की सत्ता सभी गतियो मे होती है।

विशेषार्थ—अव जिस गति मे जितनी प्रकृतियो की सत्ता होती है, उसका निर्देश करते है कि तीर्थंकर नाम, देवायु और नरकायु, इन तीन प्रकृतियो की सत्ता तीन तीन गतियो मे पाई जाती है। अर्थात् तीर्थंकर नामकर्म की नरक, देव और मनुष्य इन तीन गतियो मे सत्ता पाई जाती है, किन्तु तिर्यंचगति मे नही। क्योकि तीर्थंकर नामकर्म की सत्ता वाला तिर्यंचगति मे उत्पन्न नही होता है, तथा तिर्यंचगति मे तीर्थंकर नामकर्म का वध नही होता है। अत नरक, देव और मनुष्य, इन तीन गतियो मे ही तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वतलाई है।

तिर्यंच मनुष्य और देव गति मे ही देवायु की सत्ता पाई जाती है, क्योकि नरकगति मे नारको के देवायु के वध न होने का नियम है।

इसी प्रकार तिर्यंच, मनुष्य और नरक गति मे ही नरकायु की सत्ता होती है, देवगति मे नही क्योकि देवो के नरकायु का बध सम्भव नही है।

उक्त प्रकृतियो के सिवाय शेष सभी प्रकृतियो की सत्ता चारो गतियो मे पाई जाती है। आशय यह है कि देवायु का बध तो तीर्थंकर प्रकृति के बध के पहले भी होता है और पीछें भी होता है, किन्तु नरकायु के सबध मे यह नियम है कि जिस मनुष्य ने नरकायु का बध कर लिया है, वह सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का भी बध कर सकता है। इसी प्रकार तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीव—देव और नारक—मनुष्यायु का ही बध करते है तिर्यंचायु का नही, यह नियम है। अत· तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता तिर्यंचगति को छोडकर शेप तीन गतियो मे पाई जाती है।

इसी प्रकार नारक के देवायु का, देव के नरकायु का बध नही करने का नियम है, अत देवायु की सत्ता नरकगति को छोडकर शेष तीन गतियो मे और नरकायु की सत्ता देवगति को छोडकर शेप तीन गतियो मे पाई जाती है।

उक्त आशय का यह निष्कर्प हुआ कि तीर्थंकर, देवायु और नरकायु इन तीन प्रकृतियो के सिवाय शेष सव प्रकृतियो की सत्ता सव गतियो मे होती है। यानी नाना जीवो की अपेक्षा नरकगति मे देवायु के विना १४७ प्रकृतियो की सत्ता होती है, तिर्यंचगति मे तीर्थंकर प्रकृति के विना १४७ प्रकृतियो की और देवगति मे नरकायु के विना १४७ प्रकृतियो की सत्ता होती है। लेकिन मनुष्यगति मे १४८ प्रकृतियो की ही सत्ता होती है।

पूर्व मे गुणस्थानो मे कर्म प्रकृतियो के वध, उदय, सत्ता स्थानो का कथन किया गया है तथा गुणस्थान प्राय उपशमश्रेणि, क्षपकश्रेणि

वाले हैं। अत उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि का स्वरूप वतलाना जरूरी है। यहाँ पहले उपशमश्रेणि का स्वरूप कथन करते हैं।

पढमकसायचउक्क दसणतिग सत्तगा वि उवसंता।
अविरतसम्मत्ताओ जाव नियट्टि त्ति नायव्वा ॥६२॥

शब्दार्थ—**पढमकसायचउक्क**—प्रथम कपाय चतुष्क (अनतानुवधीकपायचतुष्क), **दसणतिग**—दर्शनमोहनीयत्रिक, **सत्तगा वि**—सातो प्रकृतियाँ, **उवसता**—उपशान्त हुई, **अविरतसम्मत्ताओ**—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर, **जाव नियट्टि त्ति**—अपूर्वकरण गुणस्थान तक, **नायव्वा**—जानना चाहिये।

गाथार्थ—प्रथम कपाय चतुष्क (अनतानुवधी कपाय चतुष्क) दर्शनमोहत्रिक, ये सात प्रकृतिया अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक नियम से उपशात हो जाती हैं, ऐसा जानना चाहिये।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणि का स्वरूप वतलाने के लिये गाथा मे यह वतलाया है कि उपशमश्रेणि का प्रारम्भ किस प्रकार होता है।

कर्म शक्ति को निष्क्रिय वनाने के लिये दो श्रेणि हैं—उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि। इन दोनो श्रेणियो का मुख्य लक्ष्य मोहनीयकर्म को निष्क्रिय वनाने का है। उसमे से उपशमश्रेणि मे जीव चारित्र मोहनीयकर्म का उपशम करता है और क्षपकश्रेणि मे जीव चारित्रमोहनीय और यथासभव अन्य कर्मों का क्षय करता है। इनमे से जव जीव उपशमश्रेणि को प्राप्त करता है तव पहले अनतानुवधी कपाय चतुष्क का उपशम करता है, तदनन्तर दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियो का उपशम करके उपशमश्रेणि के योग्य होता है। इन सात प्रकृतियो के उपशम का प्रारम्भ तो अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण गुणस्थानो मे से किसी

भी गुणस्थान मे किया जा सकता है किन्तु अपूर्वकरण गुणस्थान मे तो नियम से इनका उपशमन हो ही जाता है।

गाथा मे अनतानुबघी चतुष्क आदि सात प्रकृतियो के उपशम करने का निर्देश करते हुए पहले अनतानुबधी चतुष्क को उपशम करने की सूचना दी है अत. पहले इसी का विवेचन किया जाता है।

अनंतानुबधी की उपशमना

अनतानुबधी चतुष्क की उपशमना करने वाले स्वामी के प्रसग मे बतलाते है कि अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, विरत (प्रमत्त और अप्रमत्त) गुणस्थानवर्ती जीवो मे से कोई भी जीव किसी भी योग मे वर्तमान हो अर्थात् जिसके चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक काययोग, इनमे से कोई एक योग हो, जो पीत, पद्म और शुक्ल, इन तीन शुभ लेश्याओ मे से किसी एक लेश्या वाला हो, जो साकार उपयोग वाला (ज्ञानोपयोग वाला) हो, जिसके आयुकर्म के बिना सत्ता मे स्थित शेष सात कर्मों की स्थिति अन्त कोडा-कोडी सागर के भीतर हो, जिसकी चित्तवृत्ति अन्तर्मुहूर्त पहले से उत्तरोत्तर निर्मल हो, जो परावर्तमान अशुभ प्रकृतियो को छोडकर शुभ प्रकृतियो का ही बध करने लगा हो, जिसने अशुभ प्रकृतियो के सत्ता मे स्थित चतु स्थानी अनुभाग को द्विस्थानी कर लिया हो और शुभ प्रकृतियो के सत्ता मे स्थित द्विस्थानी अनुभाग को चतु:स्थानी कर लिया हो और जो एक स्थितिबध के पूर्ण होने पर अन्य स्थितिबध को पूर्व-पूर्व स्थितिबध की अपेक्षा उत्तरोत्तर पल्य के सख्यातवे भाग कम बाँधने लगा हो—ऐसा जीव ही अनतानुबधीचतुष्क को उपशमाता है।[1]

---

१ अविरतसम्यग्दृष्टि-देशविरत-विरतानामन्यतमोऽन्यतमस्मिन् योगे वर्तमानस्तेज -पद्म-शुक्ललेश्याऽन्यतमलेश्यायुक्त. साकारोपयोगोपयुक्तोऽन्त सागरोपमकोटा-कोटीस्थितिसत्कर्मा करणकालात् पूर्वमपि अन्तर्मुहूर्त काल यावदवदायमानचित्तसन्ततिरवतिष्ठते। तथाऽवतिष्ठमानश्च परावर्तमाना प्रकृती

अनंतानुबंधीचतुष्क की उपशमना के लिए वह जीव यथाप्रवृत्त-करण,[1] अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नाम के तीन करण करता है। यथाप्रवृत्तकरण मे तो करण के पहले के समान अवस्था बनी रहती है। अपूर्वकरण मे स्थितिबंध आदि बहुत-सी क्रियायें होने लगती हैं, इसलिये इसे अपूर्वकरण कहते हैं और अनिवृत्तिकरण मे समान काल वालो की विशुद्धि समान होती है इसीलिये इसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं। अब उक्त विषय को विशेष स्पष्ट करते हैं कि यथाप्रवृत्तकरण मे प्रत्येक समय उत्तरोतर अनंतगुणी विशुद्धि होती है और शुभ प्रकृतियो का बंध आदि पूर्ववत् चालू रहता है। किन्तु स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणि और गुणसंक्रम नही होता है, क्योंकि यहाँ इनके योग्य विशुद्धि नही पाई जाती है[2] और नाना जीवो की अपेक्षा इस करण मे प्रति समय असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम होते हैं जो छह स्थान पतित होते हैं।

हानि और वृद्धि की अपेक्षा ये छह स्थान दो प्रकार के होते हैं—

१ अनंत भागहानि, २ असंख्यात भागहानि, ३ संख्यात भागहानि ४ संख्यात गुणहानि, ५ असंख्यात गुणहानि, और ६ अनंत गुणहानि—

शुभा एव बध्नाति, नाशुभा । अशुभाना च प्रकृतीनामनुभाग चतु:स्थानक सन्त द्विस्थानक करोति, शुभाना च द्विस्थानक सन्त चतु:स्थानकम् । स्थितिबन्धेऽपि च पूर्णे पूर्णे सति अन्य स्थितिबन्ध पूर्वपूर्वस्थितिबन्धापेक्षया पल्योपमासंख्येयभागहीन करोति ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४६

[1] यथाप्रवृत्तकरण का दूसरा नाम पूर्वप्रवृत्तकरण भी है, दिगम्बर परम्परा मे यथाप्रवृत्तकरण को अधःप्रवृत्तकरण कहा गया है।

[2] न च स्थितिघात रसघात गुणश्रेणि गुणसंक्रम वा करोति, तद्योग्यविशुद्ध्य-भावात् ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४६

ये हानि रूप छह स्थान है। वृद्धि की अपेक्षा छह स्थान इस प्रकार है—१. अनत भागवृद्धि, २ असख्यात भागवृद्धि, ३ सख्यात भागवृद्धि ४ सख्यात गुणवृद्धि, ५ असख्यात गुणवृद्धि और ६ अनत गुणवृद्धि।

इन षड्स्थानो का आशय यह है कि जब हम एक जीव की अपेक्षा विचार करते है तब पहले समय के परिणामो से दूसरे समय के परिणाम अनन्तगुणी विशुद्धि को लिये हुए प्राप्त होते हैं और जब नाना जीवो की अपेक्षा से विचार करते है तब एक समयवर्ती नाना जीवो के परिणाम छह स्थान पतित प्राप्त होते है तथा यथाप्रवृत्तकरण के पहले समय मे नाना जीवो की अपेक्षा जितने परिणाम होते हैं, उससे दूसरे समय के परिणाम विशेपाधिक होते है, दूसरे समय से तीसरे समय मे और तीसरे समय से चौथे समय मे इसी प्रकार यथाप्रवृत्त-करण के चरम समय तक विशेषाधिक-विशेषाधिक परिणाम होते है। इसमे भी पहले समय मे जघन्य विशुद्धि सबसे थोडी होती है, उससे दूसरे समय मे जघन्य विशुद्धि अनतगुणी होती है, उससे तीसरे समय मे जघन्य विशुद्धि अनतगुणी होती है। इस प्रकार यथाप्रवृत्तकरण के सख्यातवे भाग के प्राप्त होने तक यही क्रम चलता रहता है। पर यहाँ जो जघन्य विशुद्धि प्राप्त होती है, उससे पहले समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनतगुणी होती है।

तदनन्तर पहले समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से यथाप्रवृत्तकरण के सख्यातवे भाग के अगले समय की जघन्य विशुद्धि अनतगुणी होती है। पुन इससे दूसरे समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनतगुणी होती है। पुन· उससे यथाप्रवृत्तकरण के सख्यातवे भाग के आगे दूसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनतगुणी होती है।

इस प्रकार यथाप्रवृत्तकरण के अन्तिम समय मे जघन्य विशुद्धि-स्थान के प्राप्त होने तक ऊपर और नीचे एक-एक विशुद्धिस्थान को अनतगुणा करते जानना चाहिये, पर इसके आगे जितने विशुद्धिस्थान

शेष रह गये हैं, केवल उन्हे उत्तरोत्तर अनतगुण करना चाहिये। यथाप्रवृत्तकरण का समय अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

इस तरह अन्तर्मुहूर्त काल मे यथाप्रवृत्तकरण समाप्त होने के वाद दूसरा अपूर्वकरण होता है। जिसका विवेचन इस प्रकार है कि इसमे प्रतिसमय असख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं जो प्रति समय छहस्थान पतित होते हैं। इसमे भी पहले समय मे जघन्य विशुद्धि सवसे थोडी होती है जो यथाप्रवृत्तकरण के अन्तिम समय मे कही गई उत्कृष्ट विशुद्धि से अनन्तगुणी होती है। पुन इससे पहले समय मे ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। तदनन्तर इससे दूसरे समय मे जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। इस प्रकार अपूर्वकरण का अन्तिम समय प्राप्त होने तक प्रत्येक समय मे उत्तरोत्तर इसी प्रकार कथन करना चाहिये।

अपूर्वकरण के पहले समय मे ही स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणि, गुणसक्रम और अपूर्व स्थितिवन्ध, ये पांच कार्य एक साथ प्रारम्भ हो जाते है। जिनका आशय निम्नानुसार है—

स्थितिघात मे सत्ता मे स्थित स्थिति के अग्रभाग से अधिक से अधिक सैकड़ो सागर प्रमाण और कम से कम पल्य के सख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिखण्ड का अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा घात किया जाता है तथा यहाँ जिस स्थिति का आगे चलकर घात नही होगा, उसमे प्रति समय दलिको का निक्षेप किया जाता है और इस प्रकार एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर इस स्थिति खण्ड का घात हो जाता है। अनन्तर इसके नीचे के दूसरे पल्य के सख्यातवे भाग प्रमाण स्थितिखण्ड का इस प्रकार घात किया जाता है। इस प्रकार अपूर्वकरण के काल मे अनेक हजारो स्थितिखण्डो का घात होता है। जिससे पहले समय की स्थिति से अन्त के समय की स्थिति सख्यातगुणी हीन रह जाती है।

स्थितिघात के आशय को स्पष्ट करने के बाद अब रसघात का विवेचन करते हैं।

रसघात मे अशुभ प्रकृतियो का सत्ता मे स्थित जो अनुभाग है, उसके अनतवे भाग प्रमाण अनुभाग को छोडकर शेष का अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा घात किया जाता है। अनन्तर जो अनतवाँ भाग अनुभाग शेष रहा था उसके अनतवे भाग को छोडकर शेष का अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा घात किया जाता है। इस प्रकार एक-एक स्थितिखण्ड के उत्कीरण काल के भीतर हजारो अनुभाग खण्ड खपा दिये जाते है।

गुणश्रेणि का रूप यह होता है कि गुणश्रेणि मे अनतानुबधी चतुष्क की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति को छोडकर ऊपर की स्थिति वाले दलिको मे से प्रति समय कुछ दलिक लेकर उदयावलि के ऊपर की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति मे उनका निक्षेप किया जाता है। जिसका क्रम इस प्रकार है कि पहले समय मे जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं उनमे से सबसे कम दलिक उदयावलि के ऊपर पहले समय मे स्थापित किये जाते हैं। इनसे असख्यातगुणे दलिक दूसरे समय मे स्थापित किये जाते है। इनसे असख्यातगुणे दलिक तीसरे समय मे स्थापित किये जाते हैं। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल के अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर असख्यातगुणे-असख्यातगुणे दलिको का निक्षेप किया जाता है। यह प्रथम समय मे ग्रहण किये गये दलिको की निक्षेप विधि है। दूसरे आदि समयो मे जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं, उनका निक्षेप भी इसी प्रकार होता है, किन्तु इतनी विशेषता है कि गुणश्रेणि की रचना के पहले समय मे जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं वे सबसे थोडे होते हैं। दूसरे समय मे जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं वे इनसे असख्यातगुणे होते है। इसी प्रकार गुणश्रेणिकरण के अन्तिम समय के प्राप्त होने तक तृतीयादि समयो मे जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं वे उत्तरोत्तर असंख्यात गुणे होते है। यहाँ इतनी विशेषता और है कि अपूर्वकरण

और अनिवृत्तिकरण का काल जिस प्रकार उत्तरोत्तर व्यतीत होता जाता है, तदनुसार गुणश्रेणि के दलिकों का निक्षेप अन्तर्मुहूर्त के उत्तरोत्तर शेष बचे हुए समयों में होता है, अन्तर्मुहूर्त से ऊपर के समयों में नहीं होता है। जैसे कि मान लो गुणश्रेणि के अन्तर्मुहूर्त का प्रमाण पचास समय है और अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण इन दोनों के काल का प्रमाण चालीस समय है। अब जो जीव अपूर्वकरण के पहले समय में गुणश्रेणि की रचना करता है वह गुणश्रेणि के सब समयों में दलिकों का निक्षेप करता है तथा दूसरे समय में शेष उनचास समयों में दलिकों का निक्षेप करता है। इस प्रकार जैसे-जैसे अपूर्वकरण का काल व्यतीत होता जाता है वैसे-वैसे दलिकों का निक्षेप कम-कम समयों में होता जाता है।

गुणसंक्रम में कर्म प्रकृतियों के दलिकों का संक्रम होता है। अतः गुणसंक्रम प्रदेशसंक्रम का एक भेद है। इसमें प्रतिसमय उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित क्रम से अबध्यमान अनंतानुबंधी आदि अशुभ कर्म प्रकृतियों के कर्म दलिकों का उस समय बंधने वाली सजातीय प्रकृतियों में संक्रमण होता है। यह क्रिया अपूर्वकरण के पहले समय में ही प्रारम्भ हो जाती है।

करण मे प्रविष्ट हुए जीवो के जिस प्रकार शरीर के आकार आदि मे फरक दिखाई देता है, उस प्रकार उनके परिणामो मे फरक नही होता है, यानी समान समय वाले एक साथ मे चढे हुए जीवो के परिणाम समान ही होते है और भिन्न समय वाले जीवो के परिणाम सर्वथा भिन्न ही होते है। तात्पर्य यह है कि अनिवृत्तिकरण के पहले समय मे जो जीव है, थे और होगे, उन सबके परिणाम एक से ही होते हैं। दूसरे समय मे जो जीव हैं, थे और होगे, उनके भी परिणाम एकसे ही होते है। इसी प्रकार तृतीय आदि समयो मे भी समझना चाहिये। इसलिये अनिवृत्तिकरण के जितने समय हैं, उतने ही इसके परिणाम होते है, न्यूनाधिक नही। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके प्रथम आदि समयो मे जो विशुद्धि होती है, द्वितीय आदि समयो मे वह उत्तरोत्तर अनतगुणी होती है।

अपूर्वकरण के स्थितिघात आदि पाचो कार्य अनिवृत्तिकरण मे भी चालू रहते हैं।[1] इसके अन्तर्मुहूर्त काल मे से सख्यात भागो के बीत जाने पर जब एक भाग शेष रहता है तब अनतानुबधी चतुष्क के एक आवलि प्रमाण नीचे के निषेको को छोडकर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण निषेको का अन्तरकरण[2] किया जाता है। इस क्रिया को करने मे न्यूनतम स्थितिबध के काल के बराबर समय लगता है। यदि उदयवाली प्रकृतियो का अन्तरकरण किया जाता है तो उनकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और यदि अनुदयवाली प्रकृतियो का अन्तरकरण किया जाता है तो उनकी नीचे की स्थिति आवलि प्रमाण छोड दी जाती है।

---

१ स्थितिघात आदि पाँचो कार्यों का विवरण अपूर्वकरण के प्रसग मे बताया जा चुका है, तदनुरूप यहाँ भी समझना चाहिये।

२ एक आवलि या अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नीचे की और ऊपर की स्थिति को छोड-कर मध्य मे से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिको को उठाकर उनका बँधने वाली अन्य सजातीय प्रकृतियो मे प्रक्षेप करने का नाम अन्तरकरण है।

चूंकि यहाँ अनंतानुबंधी चतुष्क का अन्तरकरण करना है किन्तु उसका चौथे आदि गुणस्थानों में उदय नहीं होता है इसलिये इसके नीचे से आवलि प्रमाण दलिकों को छोड़कर ऊपर के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिकों का अन्तरकरण किया जाता है।

अन्तरकरण में अन्तर का अर्थ व्यवधान और करण का अर्थ क्रिया है। तदनुसार जिन प्रकृतियों का अन्तरकरण किया जाता है, उनके दलिकों की पंक्ति को मध्य में भग्न कर दिया जाता है। इससे दलिकों की तीन अवस्थायें हो जाती हैं—प्रथमस्थिति, सान्तरस्थिति और उपरितम या द्वितीयस्थिति। प्रथमस्थिति का प्रमाण एक आवलि या एक अन्तर्मुहूर्त होता है। इसके बाद सान्तरस्थिति प्राप्त होती है। यह दलिकों से शून्य अवस्था है। इसका भी समय प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। इसके बाद द्वितीयस्थिति प्राप्त होती है। इसका प्रमाण दलिकों की शेषस्थिति है।

स्थिति के एक-एक दलिक का उदय मे आने वाली सजातीय प्रकृतियो मे स्तिबुकसक्रमण के द्वारा सक्रम होता रहता है।

यहाँ अनतानुबधी के उपशम का कथन कर रहे है किन्तु उसका उदय यहाँ नही है, अत इसके प्रथमस्थितिगत प्रत्येक दलिक का भी स्तिबुकसक्रमण द्वारा पर-प्रकृतियो मे सक्रमण होता रहता है। इस प्रकार अन्तरकरण के हो जाने पर दूसरे समय मे अनतानुबधी चतुष्क की द्वितीयस्थिति वाले दलिको का उपशम किया जाता है। पहले समय मे थोड़े दलिको का उपशम किया जाता है। दूसरे समय मे उससे असख्यातगुणे दलिको का, तीसरे समय मे उससे भी असख्यातगुणे दलिको का उपशम किया जाता है। इसी प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक असख्यातगुणे-असख्यातगुणे दलिको का प्रतिसमय उपशम किया जाता है। इतने समय मे समस्त अनतानुबंधी चतुष्क का उपशम हो जाता है। जिस प्रकार धूलि को पानी से सीच-सीच कर दुरमुट से कूट देने पर वह जम जाती है, उसी प्रकार कर्म रज भी विशुद्धि रूपी जल से सीच-सीच कर अनिवृत्तिकरण रूपी दुरमुट के द्वारा कूट दिये जाने पर सक्रमण, उदय, उदीरणा, निधत्ति और निकाचना के अयोग्य हो जाती है। इसी को अनतानुबधी का उपशम कहते है।

लेकिन अन्य आचार्यों का मत है कि अनन्तानुबधी चतुष्क का उपशम[1] न होकर विसयोजना ही होती है। विसयोजना क्षपणा का

---

१ कर्मप्रकृति ग्रन्थ मे अनतानुबंधी की उपशमना का स्पष्ट निषेध किया है वहाँ बताया है कि चौथे, पाँचवें और छठे गुणस्थानवर्ती यथायोग्य चारो गति के पर्याप्त जीव तीन करणो के द्वारा अनतानुबधी चतुष्क का विसयोजन करते हैं। किन्तु विसयोजन करते समय न तो अन्तरकरण होता है और न अनतानुबधी चतुष्क का उपशम ही होता है—

चउगइया पज्जत्ता तिन्नि वि सयोजणे वियोजति।
करणेहिं तीहिं सहिया नतरकरण उवसमो वा॥

ही दूसरा नाम है, किन्तु विसंयोजना और क्षपणा मे सिर्फ इतना अन्तर है कि जिन प्रकृतियो की विसंयोजना होती है, उनकी पुन सत्ता प्राप्त हो जाती है, किन्तु जिन प्रकृतियो की क्षपणा होती है, उनकी पुन सत्ता प्राप्त नही होती है।

अनन्तानुबंधी की विसंयोजना अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक किसी एक गुणस्थान मे होती है। चौथे गुणस्थान मे चारो गति के जीव अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करते है। पाचवें गुणस्थान मे तिर्यंच और मनुष्य अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करते है और छठे व सातवे गुणस्थान मे मनुष्य ही अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करते है। इसके लिये भी पहले के समान यथाप्रवृत्तकरण आदि तीन करण किये जाते है। लेकिन इतनी विशेषता है कि विसंयोजना के लिये अन्तरकरण की आवश्यकता नही होती है किन्तु आवलि प्रमाण दलिको को छोडकर ऊपर के सब दलिको का अन्य सजातीय प्रकृति रूप से संक्रमण करके और आवलि प्रमाण दलिको का वेद्यमान प्रकृतियो मे संक्रमण करके उनका विनाश कर दिया जाता है।

इस प्रकार अनन्तानुबन्धी की उपशमना और विसंयोजना का विचार किया गया अब दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियो की उपशमना का विचार करते है।

दर्शनमोहनीय की उपशमना

दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियो की उपशमना के विषय मे यह नियम[1] है कि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व यह दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ है। उनमे से मिथ्यात्व का उपशम तो मिथ्यादृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं, किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियो का उपशम वेदक सम्यग्दृष्टि जीव ही करते है।[2] इसमे भी चारो गति का मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करता है तब मिथ्यात्व का उपशम करता है। मिथ्यात्व के उपशम करने की विधि पूर्व मे बताई गई अनन्तानुबधी चतुष्क के उपशम के समान जानना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अपूर्वकरण मे गुणसक्रम नही होता किन्तु स्थितिघात, रसघात, स्थितिबध और गुणश्रेणि, ये चार कार्य होते हैं।

---

१ दिगम्बर कर्मग्रन्थो मे इस विषय के निर्देश भाव यह है कि मिथ्यादृष्टि एक मिथ्यात्व का, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनो का या मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व, इन तीनो का तथा सम्यग्दृष्टि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय तीनो का उपशम करता है। जो जीव सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व मे जाकर वेदककाल का उल्लघन कर जाता है, वह यदि सम्यक्त्व की उद्वलना होने के काल मे ही उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तो उसके तीनो का उपशम होता है। जो जीव सम्यक्त्व की उद्वलना के बाद सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना होते समय यदि उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करता है तो उसके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो का उपशम होता है और जो मोहनीय की छब्बीस प्रकृतियो की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि होता है, उसके एक मिथ्यात्व का ही उपशम होता है।

२ तत्र मिथ्यात्वस्योपशमना मिथ्यादृष्टेर्वेदकसम्यग्दृष्टेश्च। सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोस्तु वेदकसम्यग्दृष्टेरेव।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४६

मिथ्यादृष्टि के नियम से मिथ्यात्व का उदय होता है। इसलिये उसके गुणश्रेणि की रचना उदय समय से लेकर होती है। अपूर्वकरण के बाद अनिवृत्तिकरण मे भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु उसके संख्यात भागों के बीत जाने पर जब एक भाग शेष रह जाता है तब मिथ्यात्व के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नीचे के निषेकों को छोड़कर, इससे कुछ अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ऊपर के निषेकों का अन्तरकरण किया जाता है। इस क्रिया मे नूतन स्थितिबंध के समान अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। यहा जिन दलिकों का अन्तरकरण किया जाता है, उनमे से कुछ को प्रथमस्थिति मे और कुछ को द्वितीयस्थिति मे डाल दिया जाता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का पर-प्रकृति रूप संक्रमण नहीं होता है। इसके प्रथमस्थिति मे आवलि प्रमाण काल शेष रहने तक प्रथमस्थिति के दलिकों की उदीरणा होती है किन्तु द्वितीयस्थिति के दलिकों की उदीरणा प्रथमस्थिति मे दो आवलि प्रमाणकाल शेष रहने तक ही होती है। यहाँ द्वितीय स्थिति के दलिकों की उदीरणा को आगाल कहते हैं।

सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर अलब्ध पूर्व आत्महित की उपलब्धि होती है—

> **मिच्छत्तुदए क्षीणे लहए सम्मत्तमोवसमियं सो।**
> **लंभेण जस्स लब्भइ आयहियमलद्धपुव्वं जं[1] ॥**

यह प्रथम सम्यक्त्व का लाभ मिथ्यात्व के पूर्णरूपेण उपशम से प्राप्त होता है और इसके प्राप्त करने वालो मे से कोई देशविरत और कोई सर्वविरत होता है। अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् सयम लाभ के लिए प्रयास किया जाता है।

किन्तु इस प्रथमोपशम सम्यक्त्व से जीव उपशमश्रेणि पर न चढकर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व से चढता है। अत उसके बारे मे बताते है कि जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक का उपशम करके उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होता है, उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते है। इनमे से अनन्तानुबन्धी के उपशम होने का कथन तो पहले कर आये हैं। अब यहाँ दर्शन-मोहनीय के उपशम होने की विधि को सक्षेप मे बतलाते है।

जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव सयम मे विद्यमान है, वह दर्शनमोह-नीय की तीन प्रकृतियो का उपशम करता है। इसके यथाप्रवृत्तकरण आदि तीन करण पहले के समान जानना चाहिये किन्तु इतनी विशे-षता है कि अनिवृत्तिकरण के सख्यात भागो के बीत जाने पर अन्तर-करण करते समय सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थापित की जाती है, क्योकि यह वेद्यमान प्रकृति है तथा सम्यग्-मिथ्यात्व और मिथ्यात्व की प्रथमस्थिति आवलि प्रमाण स्थापित की जाती है क्योकि वेदक सम्यग्दृष्टि के इन दोनो का उदय नही होता है। यहाँ इन तीनो प्रकृतियो के जिन दलिको का अतरकरण किया जाता है, उनका निक्षेप सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति मे होता है।

---

१ कर्मप्रकृति, गा० ३३०

इसी प्रकार इस जीव के मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति के दलिकों का सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति के दलिक में स्तिवुकसंक्रम के द्वारा संक्रमण होता रहता है और सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति का प्रत्येक दलिक उदय में आ-आकर निर्जीर्ण होता रहता है। इस प्रकार इसके सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति के क्षीण हो जाने पर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के प्राप्त होने के बाद चारित्र मोहनीय की उपशमना का क्रम प्रारम्भ होता है। अत अब चारित्र मोहनीय के उपशम के क्रम को बतलाते हैं।

चारित्र मोहनीय की उपशमना

देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वैक्रिय अगोपाग, आहारक अगोपाग, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर।

तदनन्तर स्थितिखड-पृथक्त्व हो जाने पर अपूर्वकरण का अतिम समय प्राप्त होता है। इसमे हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का बध-विच्छेद, छह नोकषायो का उदयविच्छेद तथा सब कर्मो की देशोपशमना, निधत्ति और निकाचना करणो की व्युच्छित्ति होती है। इसके बाद अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे प्रवेश होता है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे भी स्थितिघात आदि कार्य पहले के समान होते हैं। अनिवृत्तिकरण के सख्यात बहुभाग काल के बीत जाने पर चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियो का अतरकरण किया जाता है। अन्तरकरण करते समय चार सज्वलन कषायो मे से जिस संज्वलन कषाय का और तीन वेदो मे से जिस वेद का उदय होता है, उनकी प्रथमस्थिति को अपने-अपने उदयकाल प्रमाण स्थापित किया जाता है अन्य उन्नीस प्रकृतियो की प्रथमस्थिति को एक आवलि प्रमाण स्थापित किया जाता है। स्त्रीवेद और नपुसकवेद का उदयकाल सबसे थोडा है। पुरुषवेद का उदयकाल इससे सख्यातगुणा है। सज्वलन क्रोध का उदयकाल इससे विशेष अधिक है। सज्वलन मान का उदयकाल इससे विशेष अधिक है। सज्वलन माया का उदयकाल इससे विशेष अधिक है और सज्वलन लोभ का उदयकाल इससे विशेष अधिक है। पचसग्रह मे भी इसी प्रकार कहा है—

थीअपुमोदयकाला सखेज्जगुणो उ पुरिसवेयस्स।
तत्तो वि विसेसअहिओ कोहे तत्तो वि जहकमसो।[1]

---

[1] पचसग्रह, ७६३

अर्थात्—स्त्रीवेद और नपुंसक वेद के काल से पुरुषवेद का काल संख्यातगुणा है। उससे क्रोध का काल विशेष अधिक है। आगे भी इसी प्रकार यथाक्रम से विशेष अधिक काल जानना चाहिये।

जो संज्वलन क्रोध के उदय से उपशमश्रेणि का आरोहण करता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम नहीं होता तब तक संज्वलन क्रोध का उदय रहता है। जो संज्वलन मान के उदय से उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण मान और प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम नहीं होता, तब तक संज्वलन मान का उदय रहता है। जो संज्वलन माया के उदय से उपशमश्रेणि पर चढ़ता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण माया का और प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम नहीं होता तब तक संज्वलन माया का उदय रहता है तथा जो संज्वलन लोभ के उदय से उपशमश्रेणि पर चढ़ता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण लोभ और प्रत्याख्यानावरण लोभ का उपशम नहीं होता

श्रेणि पर चढने वाला पुरुषवेद का। जिन कर्मों का अन्तरकरण करते समय उदय ही होता है, बंध नही होता उनके अन्तरकरण सबधी दलिको को प्रथमस्थिति मे ही क्षेपण करता है, द्वितीयस्थिति मे नही, जैसे स्त्रीवेद के उदय से श्रेणि पर चढने वाला स्त्रीवेद का। अन्तर करने के समय जिन कर्मों का उदय न होकर केवल बध ही होता है, उसके अतरकरण सबधी दलिक को द्वितीय स्थिति मे ही क्षेपण करता है, प्रथम स्थिति मे नही, जैसे सज्वलन क्रोध के उदय से श्रेणि पर चढने वाला शेष सज्वलनो का। किन्तु अन्तरकरण करने के समय जिन कर्मों का न तो बध ही होता है और न उदय ही, उनके अन्तरकरण सम्बन्धी दलिको का अन्य सजातीय बधने वाली प्रकृतियो मे क्षेपण करता है, जैसे दूसरी और तीसरी कषायो का।[1]

अब अतरकरण द्वारा किये जाने वाले कार्य का सकेत करते है।

अतरकरण करके नपुसकवेद का उपशम करता है। पहले समय मे सबसे थोडे दलिको का उपशम करता है, दूसरे समय मे असख्यात-गुणे दलिको का उपशम करता है। इस प्रकार अतिम समय प्राप्त होने तक प्रति समय असख्यातगुणे, असख्यातगुणे दलिको का उपशम करता है तथा जिस समय जितने दलिको का उपशम करता है, उस समय दूसरे असख्यातगुणे दलिको का पर-प्रकृतियो मे क्षेपण करता है, किन्तु यह क्रम उपान्त्य समय तक ही चालू रहता है। अतिम समय मे तो जितने दलिको का पर-प्रकृतियो मे सक्रमण होता है, उससे असख्यातगुणे दलिको का उपशम करता है। इसके वाद एक अन्तर्मुहूर्त मे स्त्रीवेद का उपशम करता है। इसके वाद एक अन्त-र्मुहूर्त मे हास्यादि छह का उपशम करता है। हास्यादिपट्क का

---

१ इस सवधी विशेष ज्ञान के लिए कर्मप्रकृति टीका देखना चाहिये। यहाँ तो सक्षेप मे प्रकाश डाला है।

है[1] तथा दो आवलिकाल शेष रहने पर आगाल नही होता है किन्तु केवल उदीरणा ही होती है और एक आवलिका काल के शेष रह जाने पर सज्वलन क्रोध के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध तथा प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम हो जाता है उस समय सज्वलन क्रोध की प्रथम स्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको को और उपरितन स्थितिगत एक समय कम दो आवलिका काल के द्वारा बद्ध दलिको को छोडकर शेष दलिक उपशात हो जाते हैं ।

तदनन्तर प्रथम स्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको का स्तिबुकसक्रम के द्वारा क्रम से सज्वलन मान मे निक्षेप करता है और एक समय कम दो आवलिका काल मे बद्ध दलिको का पुरुषवेद के समान उपशम करता है और पर-प्रकृति रूप से सक्रमण करता है। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध के उपशम होने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल मे सज्वलन क्रोध का उपशम हो जाता है। जिस समय सज्वलन क्रोध के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर सज्वलन मान की द्वितीयस्थिति से दलिको को लेकर उनकी प्रथम स्थिति करके वेदन करता है। प्रथमस्थिति करते समय प्रथम समय मे सबसे थोडे दलिको का निक्षेप करता है। दूसरे समय असख्यातगुणे दलिको का, तीसरे समय मे इससे असख्यातगुणे दलिको का निक्षेप करता है। इस प्रकार प्रथमस्थिति के अतिम समय तक उत्तरोत्तर असख्यातगुणे दलिको का निक्षेप करता है। प्रथमस्थिति

---

१ तिसु आवलियासु समऊणियासु अपडिग्गहा उ सजलणा ।

—कर्मप्रकृति गा० १०७

आवलिका काल के शेप रहने पर अप्रत्याख्यानावरण माया और प्रत्याख्यानावरण माया के दलिको का सज्वलन माया मे प्रक्षेप न करके संज्वलन लोभ मे प्रक्षेप करता है। दो आवलि काल के शेप रहने पर आगाल नही होता किन्तु केवल उदीरणा ही होती है। एक आवलिका काल शेप रहने पर सज्वलन माया के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम हो जाता है। उस समय सज्वलन माया की प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको को और उपरितन स्थितिगत एक समय कम दो आवलिका काल मे वद्ध दलिको को छोडकर शेप दलिक उपशान्त हो जाते हैं।

अनन्तर प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको का स्तिवुकसक्रम के द्वारा क्रम से सज्वलन माया मे निक्षेप करता है और एक समय कम दो आवलिका काल मे वद्ध दलिको का पुरुपवेद के समान उपशम करता है और पर-प्रकृति रूप से सक्रमण करता है। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण माया और प्रत्याख्यानावरण माया के उपशम होने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल मे सज्वलन माया का उपशम हो जाता है। जिस समय सज्वलन माया के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर सज्वलन लोभ की द्वितीयस्थिति से दलिको को लेकर उनको लोभ वेदक काल के तीन भागो मे से दो भाग प्रमाण प्रथम स्थिति करके वेदन करता है। इनमे से पहले त्रिभाग का नाम अश्वकर्णकरण काल है और दूसरे त्रिभाग का नाम किट्टीकरणकाल है। प्रथम अश्वकर्णकरण काल मे पूर्व स्पर्धको मे दलिको को लेकर अपूर्व स्पर्धक करता है।

स्पर्धक की व्याख्या

जीव प्रति समय अनन्तानन्त परमाणुओ से बने हुए स्कधो को

कर्म रूप से ग्रहण करता है। इनमे से प्रत्येक स्कध मे जो सबसे जघन्य रस वाला परमाणु है, उसके बुद्धि से छेद करने पर सब जीवो से अनतगुणे अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। अन्य परमाणुओ मे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सिद्धो के अनतवें भाग अधिक इसके अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होने तक प्रत्येक परमाणु मे रस का एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढाते जाना चाहिये। यहा जघन्य रस वाले जितने परमाणु होते हैं, उनके समुदाय को एक वर्गणा कहते हैं। एक अधिक रसवाले परमाणुओ के समुदाय को दूसरी वर्गणा कहते हैं। दो अधिक रस वाले परमाणुओ के समुदाय को तीसरी वर्गणा कहते हैं। इस प्रकार कुल वर्गणायें सिद्धो के अनतवें भाग प्रमाण या अभव्यो से अनतगुणी प्राप्त होती है। इन सब वर्गणाओ के समुदाय को एक स्पर्धक कहते हैं।

दूसरे आदि स्पर्धक भी इसी प्रकार प्राप्त होते हैं किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथम आदि स्पर्धको की अतिम वर्गणा के प्रत्येक वर्ग मे जितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं, दूसरे आदि स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के प्रत्येक वर्ग मे सब जीवो से अनन्तगुणे रस के अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं और फिर अपने-अपने स्पर्धक की अतिम वर्गणा तक रस का एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढता जाता है। ये सब स्पर्धक ससारी जीवो के प्रारभ से ही यथायोग्य होते हैं। इसलिये इन्हें पूर्व स्पर्धक कहते हैं। किन्तु यहाँ पर उनमे से दलिको को ले-लेकर उनके रस को अत्यन्त हीन कर दिया जाता है, इसलिये उनको अपूर्व स्पर्धक कहते हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि ससार अवस्था मे इस जीव ने बध की अपेक्षा कभी भी ऐसे स्पर्धक नही किये थे, किन्तु विशुद्धि के प्रकर्ष से इस समय करता है, इसलिये इनको अपूर्व स्पर्धक कहा जाता है।

यह क्रिया पहले त्रिभाग मे की जाती है। दूसरे त्रिभाग मे पूर्व

स्पर्धको और अपूर्व स्पर्धकों मे से दलिको को ले-लेकर प्रति समय अनन्त किट्टिया करता अर्थात् पूर्व स्पर्धको और अपूर्व स्पर्धको से वर्गणाओ को ग्रहण करके और उनके रस को अनन्तगुणा हीन करके रस के अविभाग प्रतिच्छेदो मे अतराल कर देता है। जैसे, मानलो रस के अविभाग प्रतिच्छेद, सौ, एक सौ एक और एक सौ दो थे, उन्हे घटा कर क्रम से पाच, पद्रह और पच्चीस कर दिया, इसी का नाम किट्टीकरण है।

किट्टीकरण काल के अन्तिम समय मे अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण लोभ का उपशम करता है तथा उसी समय सज्वलन लोभ का बधविच्छेद होता है और बादर सज्वलन के उदय तथा उदीरणा के विच्छेद के साथ नौवे गुणस्थान का अत हो जाता है। यहा तक मोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ उपशात हो जाती है।[1] अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण लोभ के उपशान्त हो जाने पर सत्ताईस प्रकृतियाँ उपशान्त हो जाती है। इसके बाद सूक्ष्मसपराय गुणस्थान होता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। इसके पहले समय मे उपरितन स्थिति मे से कुछ किट्टियो को लेकर सूक्ष्मसपराय काल के बराबर उनकी प्रथमस्थिति करके वेदन करता है और एक समय कम दो आवलिका मे बँधे हुए सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त शेष दलिको का उपशम करता है।

तदनन्तर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्तिम समय मे सज्वलन लोभ का उपशम हो जाता है। इस प्रकार मोहनीय की अट्ठाईस प्रकृतिया उपशान्त हो जाती है और उसी समय ज्ञानावरण की पाच,

---

१ अनिवृत्तिबादर गुणस्थान तक उपशात प्रकृतियो की सख्या इस प्रकार है—

सत्तऽट्ठ नव य पनरस सोलस अट्ठारसेव इगुवीसा।
एगाहि दु चउवीसा पणवीसा बायरे जाण॥

दर्शनावरण की चार, अतराय की पाच, यश कीर्ति और उच्च गोत्र, इन सोलह प्रकृतियो का बधविच्छेद होता है। इसके बाद दूसरे समय मे ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्तकषाय होता है। इसमे मोहनीय की सब प्रकृतियाँ उपशात रहती हैं।[1] उपशातकषाय गुणस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

उपशमश्रेणि के आरोहक के ग्यारहवें उपशातमोह गुणस्थान मे पहुँचने पर, इसके बाद नियम से उसका पतन होता है। पतन दो प्रकार से होता है—भवक्षय से और अद्धाक्षय से। आयु के समाप्त हो जाने पर जो पतन होता है वह भवक्षय से होने वाला पतन है। भव अर्थात् पर्याय और क्षय अर्थात् विनाश तथा उपशातकपाय गुणस्थान के काल के समाप्त हो जाने पर जो पतन होता है वह अद्धाक्षय से होने वाला पतन है। जिसका भवक्षय से पतन होता है, उसके अनन्तर समय मे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान होता है और उसके पहले समय मे ही बन्ध आदि सब करणो का प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु जिसका अद्धाक्षय से पतन होता है अर्थात् उपशातमोह गुणस्थान का काल समाप्त होने के अनन्तर जो पतन होता है, वह जिस क्रम से चढता हे, उसी क्रम से गिरता है। इसके जहा जिस करण की व्युच्छित्ति हुई, वहाँ पहुँचने पर उस करण का प्रारम्भ होता है और यह जीव प्रमत्तसयत गुणस्थान मे जाकर रुक जाता है। कोई-कोई देशविरत और अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान को भी प्राप्त होता है तथा कोई सासादन भाव को भी प्राप्त होता है।

साधारणत एक भव मे एक वार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है। कदाचित् कोई जीव दो वार भी उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है,

---

१ सत्तावीस सुहुमे अट्ठावीस पि मोहपयडीओ।
उवसतवीयरागे उवसता होंति नायव्वा ॥

इससे अधिक वार नही। जो दो वार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, उसके उस भव मे क्षपकश्रेणि नही होती है लेकिन जो एक वार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, उसके क्षपकश्रेणि होती भी है[1]।

गाथा मे यद्यपि अनन्तानुवन्धी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियो का उपशम कहा है और उसका क्रम निर्देश किया है, परन्तु प्रसग से यहा टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने अनन्तानुवन्धी की विसयोजना और चारित्र मोहनीय की उपशमना का भी विवेचन किया है।

इस प्रकार उपशमश्रेणि का कथन करने के वाद अव क्षपकश्रेणि के कथन करने की इच्छा से पहले क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति कहा और किस क्रम से होती है, उसका निर्देश करते हैं।

पढमकसायचउक्कं एत्तो मिच्छत्तमीससम्मत्त।
अविरय देसे विरए पमत्ति अपमत्ति खीयंति ॥६३॥

शब्दार्थ—**पढमकसायचउक्कं**—प्रथम कषाय चतुष्क (अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क) **एत्तो**—तदनन्तर, इसके वाद, **मिच्छत्तमीससम्मत्तं**—मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यकत्व मोहनीय का, **अविरय**—अविरत सम्यग्दृष्टि, **देसे**—देशविरत, **विरए**—विरत, **पमत्ति अपमत्ति**—प्रमत्त और अप्रमत्त, **खीयति**—क्षय होता है।

गाथार्थ—अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत, इन चार गुणस्थानो मे से किसी एक

---

१ जो दुवे वारे उवसमसेढि पडिवज्जइ तस्स नियमा तम्मि भवे खवगसेढी नत्थि, जो एक्कसि उवसमसेढि पडिवज्जइ तस्स खवगसेढी होज्ज वा।
—चूर्णि

लेकिन आगम के अभिप्रायानुसार एक भव मे एक बार होती है—

मोहोपशम एकस्मिन् भवे द्वि स्यादसन्तत।
यस्मिन् भवे तूपशम क्षयो मोहस्य तत्र न ॥

गुणस्थान मे अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क का और तदनन्तर मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय का क्रम से क्षय होता है।

विशेषार्थ—पूर्वगाथा मे उपशमश्रेणि का कथन करने के बाद इस गाथा मे क्षपकश्रेणि की प्रारम्भिक तैयारी के रूप मे क्षपकश्रेणि की भूमिका का निर्देश किया गया है।

उपशमश्रेणि मे मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का उपशम किया जाता है और क्षपकश्रेणि मे उनका क्षय अर्थात् उपशमश्रेणि मे प्रकृतियो की सत्ता तो बनी रहती है किन्तु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिको का अन्तरकरण हो जाता है और द्वितीयस्थिति मे स्थित दलिक सक्रमण आदि के अयोग्य हो जाते हैं, जिससे अन्तर्मुहूर्त काल तक उनका फल प्राप्त नही होता है। किन्तु क्षपकश्रेणि मे उनका समूल नाश हो जाता है। कदाचित यह माना जाये कि बधादि के द्वारा उनकी पुन सत्ता प्राप्त हो जायेगी सो भी बात नही क्योकि ऐसा नियम है कि सम्यग्दृष्टि के जिन प्रकृतियो का समूल क्षय हो जाता है, उनका न तो बध ही होता है और न तद्रूप अन्य प्रकृतियो का सक्रम ही। इसलिए ऐसी स्थिति मे पुन ऐसी प्रकृतियो की सत्ता सम्भव नही है। हा, अनन्तानुबन्धी चतुष्क इस नियम का अपवाद है, इसलिये उसका क्षय विसयोजना शब्द के द्वारा कहा जाता है। इस प्रासगिक चर्चा के पश्चात् अब क्षपकश्रेणि का विवेचन करते हैं। सर्वप्रथम उसके कर्ता की योग्यता आदि को बतलाते हैं।

क्षपकश्रेणि का आरंभक

क्षपकश्रेणि का आरम्भ आठ वर्ष से अधिक आयु वाले उत्तम सहनन के धारक, चौथे, पाचवें, छठे या सातवे गुणस्थानवर्ती जिनकालिक मनुष्य के ही होता है, अन्य के नहीं। सबसे पहले वह अनता-

क्रम गुणश्रेणि के अन्त तक चालू रहता है। इसके आगे अन्तिम स्थिति प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर कम-कम दलिको का निक्षेप करता है।

यह क्रम द्विचरम स्थितिखड के प्राप्त होने तक चालू रहता है। किन्तु द्विचरम स्थितिखड से अन्तिम स्थितिखड सख्यातगुणा बडा होता है। जब यह जीव सम्यक्त्व के अन्तिम स्थितिखड की उत्कीरणा कर चुकता है तब उसे कृतकरण कहते है। इस कृतकरण के काल मे यदि कोई जीव मरता है तो वह चारो गतियो मे से परभव सम्बन्धी आयु के अनुसार किसी भी गति मे उत्पन्न होता है। इस समय यह शुक्ल लेश्या को छोडकर अन्य लेश्याओ को भी प्राप्त होता है। इस प्रकार दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ मनुष्य ही करता है। किन्तु उसकी समाप्ति चारो गतियो मे होती है। कहा भी है—

पट्ठवगो उ मणूसो, निट्ठवगो चउसु वि गईसु।

दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ मनुष्य ही करता है किन्तु उसकी समाप्ति चारो गतियो मे होती है।

यदि बद्धायुष्क जीव क्षपकश्रेणि का प्रारम्भ करता है तो अनन्ता-नुबंधी चतुष्क का क्षय हो जाने के पश्चात् उसका मरण होना भी सम्भव है। उस स्थिति मे मिथ्यात्व का उदय हो जाने से यह जीव पुन अनन्तानुबंधी का बंध और सक्रम द्वारा सचय करता है, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय मे अनन्तानुबंधी की नियम से सत्ता पाई जाती है। किन्तु जिसने मिथ्यात्व का क्षय कर दिया है, वह पुन अनन्तानुबंधी चतुष्क का सचय नही करता है। सात प्रकृतियो का क्षय हो जाने पर [illegible] परिणाम नही बदले वह मरकर नियम से देवो मे उत्पन्न होता [illegible]

है, किन्तु जिसके परिणाम वदल जाते हैं वह परिणामानुसार अन्य गतियो मे भी उत्पन्न होता है।[1]

वद्धायु होने पर भी यदि कोई जीव उस समय मरण नही करता तो सात प्रकृतियो का क्षय होने पर वह वही ठहर जाता है, चारित्र मोहनीय के क्षय का यत्न नही करता है—

वद्धाऊ पडिवन्नो, नियमा खीणम्मि सत्तए ठाइ[2]।

लेकिन जो वद्धायु जीव सात प्रकृतियो का क्षय करके देव या नारक होता है, वह नियम से तीसरी पर्याय मे मोक्ष को प्राप्त करता है और जो मनुष्य या तिर्यंच होता है, वह असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यो और तिर्यंचो मे ही उत्पन्न होता है, इसीलिये वह नियम से चौथे भव मे मोक्ष को प्राप्त होता है।[3]

यदि अवद्धायुष्क जीव क्षपकश्रेणि प्रारम्भ करता है तो वह सात प्रकृतियो का क्षय हो जाने पर चारित्रमोहनीयकर्म के क्षय करने का यत्न करता है।[4] क्योकि चारित्रमोहनीय की क्षपणा करने वाला मनुष्य अवद्धायु ही होता है, इसलिये उसके नरकायु, देवायु और तिर्यंचायु की सत्ता तो स्वभावत ही नही पाई जाती है तथा अनन्तानुवधी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक का क्षय पूर्वोक्त क्रम से हो जाता

---

१ वद्धाऊ पडिवन्नो पढमसायक्खए जइ मरिज्जा।
तो मिच्छत्तोदयओ चिणिज्ज भूयो न खीणम्मि॥
तम्मि मओ जाइ दिव तप्परिणामो य सत्तए खीणे।
उवरयपरिणामो पुण पच्छा नाणामईगईओ॥
—विशेषा० गा० १३१६-१७

२ विशेषा० गा० १३२५

३ तइय चउत्थे तम्मि व भवम्मि सिज्झति दसणे खीणे।
ज देवनिरयऽसखाउचरिमदेहेसु ते होति॥
—पचसग्रह गा० ७७६

४ इयरो अणुवरओ च्चिय, सयल सढि समाणेइ। —विशेषा० गा० १३२५

मतान्तर का उल्लेख

किन्तु इस विषय मे किन्ही आचार्यों का ऐसा भी मत है कि यद्यपि सोलह कषायो के क्षय का प्रारम्भ पहले कर दिया जाता है, तो भी आठ कषायो के क्षय हो जाने पर ही उक्त स्त्यानर्द्धित्रिक आदि सोलह प्रकृतियो का क्षय होता है। इसके पश्चात् नौ नोकषायो और चार सज्वलन, इन तेरह प्रकृतियो का अन्तरकरण करता है। अन्तरकरण करने के बाद नपुसकवेद के उपरितन स्थितिगत दलिको का उद्‌वलना विधि से क्षय करता है और इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त मे उसकी पल्य के असख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति शेष रह जाती है। तत्पश्चात् इसके (नपुसकवेद के) दलिको का गुणसक्रम के द्वारा बधने वाली अन्य प्रकृतियो मे निक्षेप करता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त मे इसका समूल नाश हो जाता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जो जीव नपुसकवेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणि पर चढता है वह उसके अध-स्तन दलिको का वेदन करते हुए क्षय करता है। इस प्रकार नपुसक वेद का क्षय हो जाने पर अन्तर्मुहूर्त मे इसी क्रम से स्त्रीवेद का क्षय किया जाता है। तदनन्तर छह नोकषायो के क्षय का एक साथ प्रारम्भ किया जाता है। छह नोकषायो के क्षय का आरम्भ कर लेने के पश्चात् इनका सक्रमण पुरुषवेद मे न होकर सज्वलन क्रोध मे होता है और इस प्रकार इनका क्षय कर दिया जाता है। सूत्र मे भी कहा है—

पच्छा नपुसग इत्थी।
तो नोकसायछक्क छुभइ सजलणकोहम्मि ॥

जिस समय छह नोकषायो का क्षय होता है, उसी समय पुरुषवेद के बध, उदय और उदीरणा की व्युच्छित्ति होती है तथा एक समय कम दो आवलि प्रमाण समय प्रबद्ध को छोडकर पुरुषवेद के शेष दलिको

का क्षय हो जाता है। यहाँ पुरुषवेद के उदय और उदीरणा का विच्छेद हो चुका है, इसलिये यह अपगतवेदी हो जाता है।

उक्त कथन पुरुपवेद के उदय से क्षपकश्रेणि का आरोहण करने वाले जीव की अपेक्षा जानना चाहिये। किन्तु जो जीव नपुसकवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढता है, वह स्त्रीवेद और नपुसकवेद का एक साथ क्षय करता है तथा इसके जिस समय स्त्रीवेद और नपुसकवेद का क्षय होता है, उसी समय पुरुपवेद का बधविच्छेद होता है और इसके बाद वह अपगतवेदी होकर पुरुषवेद और छह नोकषायो का एक साथ क्षय करता है। यदि कोई जीव स्त्रीवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढता है तो वह नपुसकवेद का क्षय हो जाने के पश्चात् स्त्रीवेद का क्षय करता है, किन्तु इसके भी स्त्रीवेद के क्षय होने के समय ही पुरुषवेद का बधविच्छेद होता है और इसके बाद अपगतवेदी होकर पुरुपवेद और छह नोकषायो का एक साथ क्षय करता है।

पुरुषवेद के आधार से क्षपकश्रेणि का वर्णन

जो जीव पुरुषवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर आरोहण कर क्रोध कषाय का वेदन कर रहा है तो उसके पुरुषवेद का उदयविच्छेद होने के बाद क्रोध कषाय का काल तीन भागो मे बँट जाता है—अश्वकर्णकरणकाल[1], किट्टीकरणकाल[2] और किट्टीवेदन

---

१ **अश्वकर्णकरण काल**—घोड़े के कान को अश्वकर्ण कहते है। यह मूल मे बडा और ऊपर की ओर क्रम से घटता हुआ होता है। इसी प्रकार जिस करण मे क्रोध से लेकर लोभ तक चारो सज्वलनो का अनुभाग उत्तरोत्तर अनत-गुणहीन हो जाता है, उस करण को अश्वकर्णकरण कहते है। इसके आदोलकरण और उद्वर्तनापवर्तनकरण, ये दो नाम और देखने को मिलते हैं।

किट्टीकरण—किट्टी का अर्थ कृश करना है। अत जिस करण मे पूर्व

काल[1]। इनमे से जब यह जीव अश्वकर्णकरण के काल मे विद्यमान रहता है तब चारो सज्वलनो की अन्तरकरण से ऊपर की स्थिति मे प्रतिसमय अनन्त अपूर्व स्पर्धक करता है तथा एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल मे बद्ध पुरुषवेद के दलिको को इतने ही काल मे सज्वलन क्रोध मे सक्रमण कर नष्ट करता है। यहाँ पहले गुणसक्रम होता है और अतिम समय मे सर्वसक्रम होता है। अश्वकर्णकरण काल के समाप्त हो जाने पर किट्टीकरणकाल मे प्रवेश करता है। यद्यपि किट्टियाँ अनन्त हैं पर स्थूल रूप से वे बारह हैं, जो प्रत्येक कषाय मे तीन-तीन प्राप्त होती हैं। किन्तु जो जीव मान के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढता है वह उद्वलना विधि से क्रोध का क्षय करके शेष तीन कषायो की नौ किट्टी करता है। यदि माया के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढता है तो क्रोध और मान का उद्वलना विधि से क्षय करके शेप दो कषायो की छह किट्टिया करता है और यदि लोभ के उदय से क्षपकश्रेणि चढता है तो उद्वलना विधि से क्रोध, मान और माया इन तीन का क्षय करके लोभ की तीन किट्टियां करता है।

इस प्रकार किट्टीकरण के काल के समाप्त हो जाने पर क्रोध के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढा हुआ जीव क्रोध की प्रथम किट्टी की द्वितीयस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेप रहने तक उसका वेदन करता है। अनन्तर दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है

स्पर्धको और अपूर्व स्पर्धको मे से दलिको को ले-लेकर उनके अनुभाग को अनन्त गुणहीन करके अतराल से स्थापित किया जाता है, उसको किट्टीकरण कहते है।

१ किट्टी वेदनकाल—किट्टियो के वेदन करने, अनुभव करने के काल को किट्टीवेदनकाल कहते हैं।

और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है। उसके वाद तीसरी किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेप रहने तक उसका वेदन करता है तथा इन तीनो किट्टियो के वेदन काल के समय उपरितन स्थितिगत दलिक का गुणसक्रम के द्वारा प्रति समय सज्वलन मान मे निक्षेप करता है और जब तीसरी किट्टी के वेदन का अतिम समय प्राप्त होता है तव सज्वलन क्रोध के बध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद हो जाता है।

इस समय इसके एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल के द्वारा बँधे हुए दलिको को छोडकर शेप का अभाव हो जाता है। तत्पश्चात् मान की प्रथम किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा मान की प्रथम किट्टी के वेदनकाल के भीतर ही एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल के द्वारा सज्वलन क्रोध के बधकाल प्रमाण क्रमण भी करता है। यहाँ दो समय कम दो आवलिका काल तक गुणसक्रम होता है और अतिम समय मे सर्व सक्रम होता है।

इस प्रकार मान की प्रथम किट्टी का एक समय अधिक एक आवलिका शेष रहने तक वेदन करता है और तत्पश्चात् मान की दूसरी किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक तक आवलिका काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है। तत्पश्चात् तीसरी किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है। इसी समय मान के बध, उदय और

उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा सत्ता मे केवल एक समय कम दो आवलिका के द्वारा बधे हुए दलिक शेप रहते हैं और बाकी सबका अभाव हो जाता है।

तत्पश्चात् माया की प्रथम किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा मान के बध आदिक के विच्छिन्न हो जाने पर उसके दलिक का एक समय कम दो आवलिका काल मे गुणसक्रम के द्वारा माया मे करता है। माया की प्रथम किट्टी का एक समय अधिक एक आवलिका काल शेष रहने तक वेदन करता है। तत्पश्चात् माया की दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्पण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाण काल के शेप रहने तक उसका वेदन करता है। उसके वाद माया की तीसरी किट्टी की दूसरी स्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और उसका एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेप रहने तक वेदन करता है। इसी समय माया के बध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद हो जाता है तथा सत्ता मे केवल एक समय कम दो आवलिका के द्वारा वधे हुए दलिक शेप रहते है, शेप का अभाव हो जाता है।

तत्पश्चात् लोभ की प्रथम किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्पण करके प्रथमस्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा माया के वघ आदिक के विच्छिन्न हो जाने पर उसके नवीन वधे हुए दलिक का एक समय कम दो आवलिका काल मे गुणसक्रम के द्वारा लोभ मे निक्षेप करता है तथा माया की प्रथम किट्टी का एक समय अधिक आवलिका काल के शेप रहने तक ही वेदन करता है।

अनन्तर लोभ की दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति मे दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक ममय अधिक एक आवलिका काल के शेप रहने तक उसका वेदन करता है। जव यह जीव दूसरी किट्टी का वेदन करता है तब तीसरी किट्टी के दलिक की सूक्ष्म किट्टी करता है। यह क्रिया भी दूसरी किट्टी के वेदन-काल के समान एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेप रहने तक चालू रहती है। जिस समय सूक्ष्म किट्टी करने का कार्य समाप्त होता है, उसी समय सज्वलन लोभ का वधविच्छेद, वादरकपाय के उदय और उदीरणा का विच्छेद तथा अनिवृत्तिवादर सपराय गुणस्थान के काल का विच्छेद होता है।

तदनन्तर सूक्ष्म किट्टी की दूसरी स्थिति मे स्थित दलिक का अप-कर्षण करके प्रथम स्थिति करता है और उसका वेदन करता है। इसी समय से यह जीव सूक्ष्मसपराय कहलाता है।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के काल मे एक भाग के शेष रहने तक यह जीव एक समय कम दो आवलिका के द्वारा बधे हुए सूक्ष्म किट्टी-गत दलिक का स्थितिघात आदि के द्वारा प्रत्येक समय मे क्षय भी करता है। तदनन्तर जो एक भाग शेष रहता है, उसमे सर्वापवर्तना के द्वारा सज्वलन लोभ का अपवर्तन करके उसे सूक्ष्मसपराय गुण-स्थान काल के बराबर करता है। सूक्ष्मसपराय गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त ही है। यहाँ से आगे सज्वलन लोभ के स्थितिघात आदि कार्य होना बन्द हो जाते हैं किन्तु शेष कर्मों के स्थितिघात आदि कार्य बराबर होते रहते है। सर्वापवर्तना के द्वारा अपवर्तित की गई इस स्थिति का उदय और उदीरणा के द्वारा एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहने तक वेदन करता है। तत्पश्चात् उदी-रणा का विच्छेद हो जाता है और सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्तिम समय तक सूक्ष्मलोभ का केवल उदय ही रहता है।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्तिम समय मे ज्ञानावरण की पाच, दर्शनावरण की चार, अन्तराय की पाँच, यश कीर्ति और उच्चगोत्र, इन सोलह प्रकृतियो का बधविच्छेद तथा मोहनीय का उदय और सत्ता विच्छेद हो जाता है।

इस प्रकार से मोहनीय की क्षपणा का क्रम वतलाने के वाद अव पूर्वोक्त अर्थ का सकलन करने के लिये आगे की गाथा कहते हैं—

पुरिसं कोहे कोहं माणे माण च छुहइ मायाए।
माय च छुहइ लोहे लोह सुहुम पि तो हणइ[1] ॥६४॥

शब्दार्थ—**पुरिस**—पुरुपवेद को, **कोहे**—सज्वलन क्रोध मे, **कोह**—क्रोध को, **माणे**—सज्वलन मान मे, **माण**—मान को, **च**—और, **छुहइ**—सक्रमित करता है, **मायाए**—सज्वलन माया मे, **माय**—माया को, **च**—और, **छुहइ**—सक्रमित करता है, **लोहे**—सज्वलन लोभ मे, **लोह**—लोभ को, **सुहुम**—सूक्ष्म, **पि**—भी, **तो**—उसके वाद, **हणइ**—क्षय करता है।

गाथार्थ—पुरुपवेद को सज्वलन क्रोध मे, क्रोध को सज्वलन मान में, मान को सज्वलन माया मे, माया को सज्वलन लोभ मे सक्रमित करता है, उसके वाद सूक्ष्म लोभ का भी स्वोदय से क्षय करता है।

विशेषार्थ—गाथा मे सज्वलन क्रोध आदि चतुष्क के क्षय का क्रम वतलाया है।

इसके लिये सर्वप्रथम वतलाते हैं कि पुरुपवेद के वध आदि का

१ तुलना कीजिये—

कोह च छुहइ माणे माण मायाए णियमसा छुहइ।
माय च छुहइ लोहे पडिलोयो सकियो णत्थि ॥

—कषाय पाहुड, क्षपणाधिकार

विच्छेद हो जाने पर उसका गुणसक्रमण क द्वारा सज्वलन क्रोध मे सक्रमण करता है। सज्वलन क्रोध के बध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका सज्वलन मान मे सक्रमण करता है। सज्वलन मान के बध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका सज्वलन माया मे सक्रमण करता है। सज्वलन माया के भी बध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका सज्वलन लोभ मे सक्रमण करता है तथा सज्वलन लोभ के बध आदि का विच्छेद हो जाने पर सूक्ष्म किट्टीगत लोभ का विनाश करता है।

इस प्रकार से सज्वलन क्रोध आदि कषायो की स्थिति हो जाने के बाद आगे की स्थिति बतलाते है कि लोभ का पूरी तरह से क्षय हो जाने पर उसके वाद के समय मे क्षीणकपाय होता है क्षीणकषाय के काल के बहुभाग के व्यतीत होने तक शेप कर्मो के स्थितिघात आदि कार्य पहले के समान चालू रहते है किन्तु जब एक भाग शेष रह जाता है तब ज्ञानावरण की पॉच, दर्शनावरण की चार, अन्तराय की पाँच और निद्राद्विक, इन सोलह प्रकृतियो की स्थिति का घात सर्वापवर्तना के द्वारा अपवर्तन करके उसे क्षीणकषाय के शेष रहे हुए काल के बराबर करता है। केवल निद्राद्विक की स्थिति स्वरूप की अपेक्षा एक समय कम रहती है। सामान्य कर्म की अपेक्षा तो इनकी स्थिति शेष कर्मो के समान ही रहती है। क्षीणकषाय के सम्पूर्ण काल की अपेक्षा यह काल यद्यपि उसका एक भाग है तो भी उसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है। इनकी स्थिति क्षीणकषाय के काल के बराबर होते ही इनमे स्थितिघात आदि कार्य नही होते किन्तु शेष कर्मो के होते हैं। निद्राद्विक के बिना शेष चौदह प्रकृतियो का एक समय अधिक एक आवलि काल के शेष रहने तक उदय और उदीरणा दोनो होते हैं। अनन्तर एक आवलि काल तक केवल उदय ही होता है। क्षीणकपाय के

उपान्त्य समय मे निद्राद्विक का स्वरूपसत्ता की अपेक्षा क्षय करता है और अन्तिम समय मे शेष चौदह प्रकृतियो का क्षय करता है—

खीणकसायदुचरिमे निद्दा पयला य हणइ छउमत्थो ।
आवरणमतराए छउमत्थो चरिमसमयम्मि ॥

इसके अनन्तर समय मे यह जीव सयोगिकेवली होता है। जिसे जिन, केवलज्ञानी भी कहते हैं। सयोगिकेवली हो जाने पर वह लोकालोक का पूरी तरह ज्ञाता-द्रष्टा होता है। ससार मे ऐसा कोई पदार्थ न है, न हुआ और न होगा जिसे जिनदेव नही जानते है। अर्थात् वे सबको जानते और देखते हैं—

सभिन्न पासतो लोगमलोग च सव्वओ सव्व ।
त नत्थि ज न पासइ भूय भव्व भविस्स च ॥

इस प्रकार सयोगिकेवली जघन्य मे अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट से कुछ कम पूर्वकोटि काल तक विहार करते हैं। सयोगिकेवली अवस्था प्राप्त होने तक चार घातीकर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—नि शेष रूप से क्षय हो जाते हैं, किन्तु शेष वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म शेष रह जाते हैं। अत यदि आयुकर्म को छोडकर शेष वेदनीय, नाम, गोत्र, इन तीन कर्मो की स्थिति आयुकर्म की स्थिति से अधिक होती है तो उनकी स्थिति को आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने के लिये अन्त मे समुद्घात करते हैं और यदि उक्त शेष तीन कर्मो की स्थिति आयुकर्म के बराबर होती है तो समुद्घात नही करते है। प्रज्ञापना सूत्र मे कहा भी है—

सव्वे वि ण भते ! केवली समुग्घाय गच्छति ? गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।
जस्साउएण तुल्लाइ बधणेहि ठिईहि य ।
भवोवग्गहकम्माइ न समुग्घाय स गच्छइ ॥

अगतूणं समुग्घायमणता केवली जिणा।
जरमरणविप्पमुक्का सिद्धि वरगइ गया ॥

समुद्घात की व्याख्या

मूल शरीर को न छोडकर आत्म-प्रदेशो का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है। इसके सात भेद है—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात, वैक्रियसमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात। इन सात भेदो के सक्षेप मे लक्षण इस प्रकार हैं—

तीव्र वेदना के कारण जो समुद्घात होता है, उसको वेदना समुद्घात कहते है। क्रोध आदि के निमित्त से जो समुद्घात होता है उसे कषायसमुद्घात कहते है। मरण के पहले उस निमित्त से जो समुद्घात होता है उसे मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। जीवो के अनुग्रह या विनाश करने मे समर्थ तैजस शरीर की रचना के लिये जो समुद्घात होता है उसे तैजससमुद्घात कहते है। वैक्रियशरीर के निमित्त से जो समुद्घात होता है उसे वैक्रियसमुद्घात कहते हैं, आहारकशरीर के निमित्त से जो समुद्घात होता है उसे आहारक समुद्घात कहते हैं तथा वेदनीय आदि तीन अघाति कर्मो की स्थिति आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने के लिये जिन (केवलज्ञानी) जो समुद्घात करते हैं, उसे केवलिसमुद्घात कहते हैं।

केवलिसमुद्घात का काल आठ समय है। पहले समय मे स्वशरीर का जितना आकार है तत्प्रमाण आत्म-प्रदेशो को ऊपर और नीचे लोक के अन्तपर्यन्त रचते हैं, उसे दण्डसमुद्घात कहते हैं। दूसरे समय मे पूर्व और पश्चिम या दक्षिण और उत्तर दिशा मे कपाटरूप से आत्म-प्रदेशो को फैलाते हैं। तीसरे समय मे मथानसमुद्घात करते हैं अर्थात् मथानी के आकार मे आठो दिशाओ मे आत्म-प्रदेशो का फैलाव

होता है। चौथे समय मे लोक मे जो अवकाश शेष रहता है उसे भर देते है। इसे लोकपूरण अवस्था कहते हैं। इस प्रकार से लोक-पूरित स्थिति बन जाने के पश्चात् पाँचवें समय मे सकोच करते हैं और आत्म-प्रदेशो को मथान के रूप मे परिणत कर लेते है। छठे समय मे मथान रूप अवस्था का सकोच करते है। सातवे समय मे पुन कपाट अवस्था को सकोचते हैं और आठवे समय मे स्वशरीरस्थ हो जाते है।

इस प्रकार यह केवलिसमुद्घात की प्रक्रिया है।

योग-निरोध की प्रक्रिया

जो केवली समुद्घात को प्राप्त होते हैं वे समुद्घात के पश्चात् और जो समुद्घात को प्राप्त नही होते हैं वे योग-निरोध के योग्य काल के शेष रहने पर योग-निरोध का प्रारम्भ करते हैं।

इसमे सबसे पहले बादर काययोग के द्वारा बादर मनोयोग को रोकते हैं। तत्पश्चात बादर वचनयोग को रोकते हैं। इसके बाद सूक्ष्म काययोग के द्वारा बादर काययोग को रोकते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म मनोयोग को रोकते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म वचनयोग को रोकते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म काययोग को रोकते हुए सूक्ष्मक्रियाप्रतिपात ध्यान को प्राप्त होते हैं। इस ध्यान की सामर्थ्य से आत्मप्रदेश सकुचित होकर निश्छिद्र हो जाते है। इस ध्यान मे स्थितिघात आदि के द्वारा सयोगि अवस्था के अन्तिम समय तक आयुकर्म के सिवाय भव का उपकार करने वाले शेष सब कर्मो का अपवर्तन करते हैं, जिससे सयोगिकेवली के अन्तिम समय मे सब कर्मों की स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थान के काल के बराबर हो जाती है। यहाँ इतनी विशेषता है कि जिन कर्मों का अयोगिकेवली के उदय नही होता उनकी स्थिति स्वरूप की अपेक्षा एक समय कम हो जाती है किन्तु कर्म सामान्य की

अपेक्षा उनकी भी स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थान के काल के बराबर रहती है।

सयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय मे निम्नलिखित तीस प्रकृतियो का विच्छेद होता है—

साता या असाता मे से कोई एक वेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह सस्थान, पहला सहनन, औदारिक-अगोपाग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, शुभ-अशुभ विहायोगति, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुस्वर और निर्माण।

सयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय मे उक्त तीस प्रकृतियो के उदय और उदीरणा का विच्छेद करके उसके अनन्तर समय मे वे अयोगिकेवली हो जाते है। अयोगिकेवली गुणस्थान का काल अन्त-र्मुहूर्त है। इस अवस्था मे भव का उपकार करने वाले कर्मों का क्षय करने के लिये व्युपरतक्रियाप्रतिपाति ध्यान करते हैं। वहाँ स्थिति-घात आदि कार्य नही होते है। किन्तु जिन कर्मों का उदय होता है, उनको तो अपनी स्थिति पूरी होने से अनुभव करके नष्ट कर देते है तथा जिन प्रकृतियो का उदय नही होता उनका स्तिबुकसक्रम के द्वारा प्रति समय वेद्यमान प्रकृतियो मे सक्रम करते हुए अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक वेद्यमान प्रकृति रूप से वेदन करते है।

अब आगे की गाथा मे अयोगिकेवली के उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो को बतलाते हैं।

देवगइसहगयाओ दुचरम समयभवियम्मि खीयंति।
सविवागेयरनामा नीयागोयं पि तत्थेव ॥६५॥

शब्दार्थ—देवगइसहगयाओ—देवगति के साथ जिनका बध होता है ऐसी, दुचरमसमयभवियम्मि—दो अन्तिम समय जिसके

वाकी हैं, ऐसे जीव के, खीयति—क्षय होती है, सविवागेयरनामा—विपाकरहित नामकर्म की प्रकृतियां, नीयागोय—नीच गोत्र और एक वेदनीय, पि—भी, तत्थेव—वही पर।

गाथार्थ—अयोगिकेवली अवस्था मे दो अतिम समय जिसके वाकी हैं ऐसे जीव के देवगति के साथ बधने वाली प्रकृतियो का क्षय होता है तथा विपाकरहित जो नामकर्म की प्रकृतियाँ हैं तथा नीच गोत्र और किसी एक वेदनीय का भी वही क्षय होता है।

विशेषार्थ—गाथा मे अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो का निर्देश किया है।

जैसा कि पहले बता आये हैं कि अयोगिकेवली अवस्था मे जिन प्रकृतियो का उदय नही होता है, उनकी स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थान के काल से एक समय कम होती है। इसीलिये उनका उपान्त्य समय मे क्षय हो जाता है। उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो का कथन पहले नही किया गया है, अत इस गाथा मे निर्देश किया है कि जिन प्रकृतियो का देवगति के साथ बध होता है उनकी तथा नामकर्म की जिन प्रकृतियो का अयोगिअवस्था मे उदय नही होता उनकी और नीच गोत्र व किसी एक वेदनीय की उपान्त्य समय मे सत्ता का विच्छेद हो जाता है।

देवगति के साथ वधने वाली प्रकृतियो के नाम इस प्रकार हैं—देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय वधन, वैक्रिय सघात, वैक्रिय अगोपाग, आहारक शरीर, आहारक वधन, आहारक सघात, आहारक अगोपाग, यह दस प्रकृतिया हैं।

गाथा मे अनुदय रूप से सकेत की गई नामकर्म की पैंतालीस प्रकृतिया यह हैं—औदारिक शरीर, औदारिक वधन, औदारिक सघात, तैजस शरीर, तैजस वन्धन, तैजस सघात, कार्मण शरीर, कार्मण-

बधन, कार्मण सघात, छह सस्थान, छह सहनन, औदारिक अगोपाग, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, पराघात, उपघात, अगुरुलघु, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, अपर्याप्त, उच्छ्वास, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दु स्वर, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति और निर्माण।

इनके अतिरिक्त नीच गोत्र और साता व असाता वेदनीय मे से कोई एक वेदनीय कर्म। कुल मिलाकर ये सब १०+४५+२=५७ होती है। जिनका अयोगिकेवली अवस्था के उपान्त्य समय मे क्षय हो जाता है—दुचरमसमयभवियम्मि खीयति।

उक्त सत्तावन प्रकृतियो मे वर्णचतुष्क मे वर्ण, गध, रस और स्पर्श, यह चार मूल भेद ग्रहण किये हैं, इनके अवान्तर भेद नही। यदि इन मूल वर्णादि चार के स्थान पर उनके अवान्तर भेद ग्रहण किये जाये तो उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो की सख्या तिहत्तर हो जाती है। यद्यपि गाथा मे किसी भी वेदनीय का नामोल्लेख नही किया किन्तु गाथा मे जो 'पि'—शब्द आया है उसके द्वारा वेदनीय कर्म के दोनो भेदो मे से किसी एक वेदनीय कर्म का ग्रहण हो जाता है।

इस प्रकार से अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो का उल्लेख करने के बाद अब आगे की गाथा मे अन्त समय तक उदय रहने वाली प्रकृतियो को बतलाते हैं।

अन्नयरवेयणीयं मणुयाउय उच्चगोय नव नामे।
वेएइ अजोगिजिणो उक्कोस जहन्न एक्कारं ॥६६॥

शब्दार्थ—**अन्नयरवेयणीय**—दो मे से कोई एक वेदनीय कर्म, **मणुयाउय**—मनुष्यायु, **उच्चगोय**—उच्चगोत्र, **नव नामे**—नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ, **वेएइ**—वेदन करते है, **अजोगिजिणो**—अयोगि-

केवली जिन, उक्कोस—उत्कृष्ट से, जहन्न—जघन्य से, एक्कार—ग्यारह।

गाथार्थ—अयोगिजिन उत्कृष्ट रूप से दोनो वेदनीय मे से किसी एक वेदनीय, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ, इस प्रकार बारह प्रकृतियो का वेदन करते हैं तथा जघन्य रूप से ग्यारह प्रकृतियो का वेदन करते हैं।

विशेषार्थ—अयोगिकेवली गुणस्थान मे उपान्त्य समय तक कर्मों की कुछ एक प्रकृतियो को छोडकर शेष प्रकृतियो का क्षय हो जाता है। लेकिन जो प्रकृतिया अन्तिम समय मे क्षय होती हैं उनके नाम इस गाथा मे बतलाते हैं कि किसी एक वेदनीय कर्म, मनुष्यायु, उच्च गोत्र और नामकर्म की नौ प्रकृतियो का क्षय होता है।

यहाँ (अयोगिकेवली अवस्था मे) किसी एक वेदनीय के क्षय होने का कारण यह है कि तेरहवे सयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय मे साता और असाता वेदनीय मे से किसी एक वेदनीय का उदयविच्छेद हो जाता है। यदि साता का विच्छेद होता है तो असाता वेदनीय का और असाता का विच्छेद होता है तो साता वेदनीय का उदय शेष रहता है। इसी बात को बतलाने के लिये गाथा मे 'अन्नयरवेयणीय'—अन्यतर वेदनीय पद दिया है।

इसके अलावा गाथा मे उत्कृष्ट रूप मे बारह और जघन्य रूप मे ग्यारह प्रकृतियो के उदय को बतलाने का कारण यह है कि सभी जीवो को तीर्थंकर प्रकृति का उदय नही होता है। तीर्थंकर प्रकृति का उदय उन्ही को होता है जिन्होने उसका बध किया हो। इसलिये अयोगिकेवली अवस्था मे अधिक से अधिक बारह प्रकृतियो का और कम से कम ग्यारह प्रकृतियो का उदय माना गया है।

बारह प्रकृतियो के नामोल्लेख मे नामकर्म की नौ प्रकृतिया

अतएव अब अगली गाथा मे अयोगि अवस्था मे उदययोग्य नामकर्म की नौ प्रकृतियो के नाम बतलाते है।

मणुयगइ जाइ तस बायरं च पज्जत्तसुभगमाइज्जं ।
जसकित्ती तित्थयर नामस्स हवंति नव एया ॥६७॥

शब्दार्थ—**मणुयगइ**—मनुष्यगति, **जाइ**—पचेन्द्रिय जाति, **तसबायर**—त्रस बादर, **च**—और, **पज्जत्त**—पर्याप्त, **सुभग**—सुभग, **आइज्ज**—आदेय, **जसकित्ती**—यश कीर्ति, **तित्थयर**—तीर्थंकर, **नामस्स**—नामकर्म की, **हवति**—है, **नव**—नौ, **एया**—ये।

गाथार्थ—मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश कीर्ति और तीर्थंकर ये नामकर्म नौ प्रकृतिया है।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा मे सकेत किया गया था कि नामकर्म की नौ प्रकृतियो का उदय अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय तक रहता है किन्तु उनके नाम का निर्देश नही किया था। अत इस गाथा मे नामकर्म की उक्त नौ प्रकृतियो के नाम इस प्रकार बतलाये है—१ मनुष्यगति, २ पचेन्द्रिय जाति, ३ त्रस, ४ बादर, ५ पर्याप्त, ६ सुभग, ७ आदेय, ८ यशःकीर्ति, ९ तीर्थंकर।

नामकर्म की नौ प्रकृतियो को बतलाने के बाद अब आगे की गाथा मे मनुष्यानुपूर्वी के उदय को लेकर पाये जाने वाले मतान्तर का कथन करते है।

तच्चाणुपुव्विसहिया तेरस भवसिद्धियस्स चरिमम्मि ।
संतंसगमुक्कोसं जहन्नयं बारस हवंति ॥६८॥

शब्दार्थ—**तच्चाणुपुव्विसहिया**—उस (मनुष्य की) आनुपूर्वी सहित, **तेरस**—तेरह, **भवसिद्धियस्स**—तद्‌भव मोक्षगामी जीव के, **चरिमम्मि**—चरम समय मे, **सतसग**—कर्म प्रकृतियो की सत्ता,

उक्कोस—उत्कृष्ट रूप से, जहन्नय—जघन्य रूप से, बारस—बारह, हवति—होती है ।

गाथार्थ—तद्भव मोक्षगामी जीव के चरम समय मे उत्कृष्ट रूप से मनुष्यानुपूर्वी सहित तेरह प्रकृतियो की और जघन्य रूप से बारह प्रकृतियो की सत्ता होती है ।

विशेषार्थ—इस गाथा मे मतान्तर का उल्लेख किया गया है कि कुछ आचार्य अयोगिकेवली गुणस्थान के चरम समय मे मनुष्यानुपूर्वी का भी उदय मानते हैं, इसलिये उनके मत से चरम समय मे तेरह प्रकृतियो की और जघन्य रूप से बारह प्रकृतियो की सत्ता होती है ।

पहले यह सकेत किया जा चुका है कि जिन प्रकृतियो का उदय अयोगि अवस्था मे नही होता है, उनकी सत्ता का विच्छेद उपान्त्य समय मे हो जाता है । मनुष्यानुपूर्वी का उदय पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थान मे ही होता है, इसलिये इसका उदय अयोगि अवस्था मे नही हो सकता है । इसी कारण इसकी सत्ता का विच्छेद अयोगिकेवली अवस्था के उपान्त्य समय मे बतलाया है । लेकिन अन्य कुछ आचार्यो का मत है कि मनुष्यानुपूर्वी की सत्त्व-व्युच्छित्ति अयोगि अवस्था के अतिम समय मे होती है । इस मतान्तर के कारण अयोगि अवस्था के चरम समय मे उत्कृष्ट रूप से तेरह प्रकृतियो की और जघन्य रूप से बारह प्रकृतियो की सत्ता मानी जाती है । इस मतान्तर का स्पष्टीकरण आगे की गाथा मे किया जा रहा है ।

पूर्वोक्त कथन का साराश यह है कि सप्ततिका के कर्ता के मतानुसार मनुष्यानुपूर्वी का उपान्त्य समय मे क्षय हो जाता है, जिससे अतिम समय मे उदयगत बारह प्रकृतियो या ग्यारह प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है । लेकिन कुछ आचार्यो के मतानुसार अतिम समय मे मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता और रहती है अत अतिम समय मे तेरह या बारह प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है ।

अब अन्य आचार्यो द्वारा मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता अतिम समय तक माने जाने के कारण को अगली गाथा मे स्पष्ट करते है।

मणुयगइसहगयाओ भवखित्तविवागजीववाग त्ति।
वेयणियन्नयरुच्चं च चरिम भविस्यस खीयंति ॥६९॥

शब्दार्थ—**मणुयगइसहगयाओ**—मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली, **भवखित्तविवाग**—भव और क्षेत्र विपाकी, **जीववाग त्ति**—जीवविपाकी, **वेयणियन्नयर**—अन्यतर वेदनीय (कोई एक वेदनीय कर्म), **उच्चं**—उच्च गोत्र, **च**—और, **चरिम भवियस्स**—चरम समय मे भव्य जीव के, **खीयति**—क्षय होती है।

गाथार्थ—मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियो का तथा किसी एक वेदनीय और उच्च गोत्र का तद्भव मोक्षगामी भव्य जीव के चरम समय मे क्षय होता है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे बतलाया गया है कि—'मणुयगइसहगयाओ' मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली जितनी भी भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियाँ है तथा कोई एक वेदनीय और उच्च गोत्र, इनका अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय मे क्षय होता है।

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी का अर्थ यह है कि जो प्रकृतिया नरक आदि भव की प्रधानता से अपना फल देती है, वे भवविपाकी कही जाती है, जैसे चारो आयु। जो प्रकृतिया क्षेत्र की प्रधानता से अपना फल देती हैं वे क्षेत्रविपाकी कहलाती हैं, जैसे चारो आनुपूर्वी। जो प्रकृतिया अपना फल जोव मे देती हैं उन्हे वविपाकी कहते हैं, जैसे पाँच ज्ञानावरण आदि।

यहाँ मनुष्यायु भवविपाकी है, मनुष्यानुपूर्वी क्षेत्रविपाकी और

पूर्वोक्त नामकर्म की नौ प्रकृतियां जीवविपाकी हैं तथा इनके अतिरिक्त कोई एक वेदनीय तथा उच्चगोत्र, इन दो प्रकृतियो को और मिलाने से कुल तेरह प्रकृतिया हो जाती हैं जिनका क्षय भवसिद्धिक जीव के अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय मे होता है।

मतान्तर सहित पूर्वोक्त कथन का साराश यह है कि मनुष्यानुपूर्वी का जब भी उदय होता है तब उसका उदय मनुष्यगति के साथ ही होता है। इस नियम के अनुसार भवसिद्धिक जीव के अतिम समय मे तेरह या तीर्थंकर प्रकृति के बिना बारह प्रकृतियो का क्षय होता है। किन्तु मनुष्यानुपूर्वी प्रकृति अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय मे क्षय हो जाती है इस मतानुसार मनुष्यानुपूर्वी का अयोगिकेवली अवस्था मे उदय नही होता है अत उसका अयोगि अवस्था के उपान्त्य समय मे क्षय हो जाता है। जो प्रकृतिया उदय वाली होती हैं उनका स्तिबुकसक्रम नही होता है जिससे उनके दलिक स्व-स्वरूप से अपने-अपने उदय के अतिम समय मे दिखाई देते हैं और इसलिये उनका अतिम समय मे सत्ताविच्छेद होता है। चारो आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी प्रकृतिया है, उनका उदय केवल अपान्तराल गति मे ही होता है। इसलिये भवस्थ जीव के उनका उदय सभव नही है और इसीलिये मनुष्यानुपूर्वी का अयोगि अवस्था के अतिम समय मे सत्ताविच्छेद न होकर द्विचरम समय मे ही उसका सत्ता विच्छेद हो जाता है। पहले जो द्विचरम समय मे सत्तावन प्रकृतियो का सत्ताविच्छेद और अतिम समय मे बारह या तीर्थंकर प्रकृति के बिना ग्यारह प्रकृतियो का सत्ताविच्छेद बतलाया है, वह इसी मत के अनुसार बतलाया है।[1]

---

1 दिगम्बर साहित्य गो० कर्मकाड मे एक इसी मत का उल्लेख है कि—मनुष्यानुपूर्वी की चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम समय मे सत्वव्युच्छित्ति होती है—

नि·शेप रूप से कर्मो का क्षय हो जाने के बाद जीव एक समय मे ही ऋजुगति से ऊर्ध्वगमन करके सिद्धि स्थान को प्राप्त कर लेता है। आवश्यक चूर्णि मे कहा है—

जत्तिए जीवोऽवगाढो तावइयाए ओगाहणाए उड्ढ
उज्जुग गच्छइ, न वंकं, बीय च समय न फुसइ ॥

अयोगि अवस्था मे प्रकृतियो के विच्छेद के मतान्तर का उल्लेख करने के बाद अब आगे की गाथा मे यह बतलाते हैं कि अयोगि अवस्था के अतिम समय मे कर्मों का समूल नाश हो जाने के बाद निष्कर्मा शुद्ध आत्मा की अवस्था कैसी होती है।

अह सुइयसयलजगसिहरमरुयनिरुवमसहावसिद्धिसुहं ।
अनिहणमव्वाबाहं तिरयणसारं अणुहवंति ॥७०॥

शब्दार्थ—अह—इसके बाद (कर्म क्षय होने के वाद), **सुइय**—एकात शुद्ध, **सयल**—ममस्त, **जगसिहर**—जगत के सुख के शिखर तुल्य, **अरुय**—रोग रहित, **निरुवम**—निरुपम, उपमारहित, **सहाव**—स्वाभाविक, **सिद्धिसुहं**—मोक्ष सुख को, **अनिहण**—नाश रहित, अनन्त, **अव्वाबाह**—अव्यावाध, **तिरयणसार**—रत्न त्रय के सार रूप, **अणुहवति**—अनुभव करते हैं।

गाथार्थ—कर्म क्षय होने के बाद जीव एकात शुद्ध, समस्त जगत के सब सुखो से भी बढकर, रोगरहित, उपमा रहित, स्वाभाविक, नाशरहित, बाधारहित, रत्नत्रय के सार रूप मोक्ष सुख का अनुभव करते है।

विशेषार्थ—गाथा मे कर्मक्षय हो जाने के बाद जीव की स्थिति का वर्णन किया है कि वह सुख का अनुभव करता है।

उदयगबार णराणू तेरस चरिमम्हि वोच्छिण्णा ॥३४१॥ किंतु धवला प्रथम पुस्तक मे सप्ततिका के समान दोनो ही मतो का उल्लेख किया है। देखो धवला, प्रथम पुस्तक, पृ० २२४।

कर्मातीत अवस्था प्राप्ति के बाद प्राप्त होने वाले सुख के क्रमश नौ विशेषण दिये है। उनमे पहला विशेषण है—'सुइय' जिसका अर्थ होता है शुचिक। टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने शुचिक का अर्थ एकान्त शुद्ध किया है। इसका यह भाव है कि ससारी जीवो को प्राप्त होने वाला सुख रागद्वेष से मिला हुआ होता है, किन्तु सिद्ध जीवो को प्राप्त होने वाले सुख मे रागद्वेष का सर्वथा अभाव होता है, इसलिये उनको जो सुख होता है वह शुद्ध आत्मा से उत्पन्न होता है, उसमे वाहरी वस्तु का सयोग और वियोग तथा इष्टानिष्ट कल्पना कारण नही है।

दूसरा विशेषण है—'सयल'—सकल। जिसका अर्थ सम्पूर्ण होता है। मोक्ष सुख को सम्पूर्ण कहने का कारण यह है कि ससार अवस्था मे जीवो के कर्मों का सवध वना रहता है, जिससे एक तो आत्मिक सुख की प्राप्ति होती ही नही और कदाचित् सम्यग्दर्शन आदि के निमित्त से आत्मिक सुख की प्राप्ति होती भी है तो उसमे व्याकुलता का अभाव न होने से वह किचिन्मात्रा मे, सीमित मात्रा मे प्राप्त होता है। किन्तु सिद्धो के सव वाधक कारणो का अभाव हो जाने से पूर्ण सिद्धि जन्य सुख प्राप्त होता है। इसी भाव को वतलाने के लिये 'सयल' विशेषण दिया गया है।

तीसरा विशेषण 'जग सिहर'—जग शिखर है जिसका अर्थ है कि जगत मे जितने भी सुख हैं, सिद्ध जीवो का सुख उन सव मे प्रधान है। क्योकि आत्मा के अनन्त अनुजीवी गुणो मे सुख भी एक गुण है। अत. जव तक यह जीव ससार मे वना रहता है, वास करता है तव तक उसका यह गुण घातित रहता है। कदाचित् प्रगट भी होता है, तो स्वल्प मात्रा मे प्रगट होता है। किन्तु सिद्ध जीवो के प्रतिवन्धक कारणो के दूर हो जाने से सुख गुण अपने पूर्ण रूप मे प्रगट हो जाता है, इसलिये जगत मे जितने भी प्रकार के सुख हैं, उनमे सिद्ध जीवो

का सुख प्रधानभूत है और इसी बात को जगशिखर विशेषण द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चौथा विशेषण 'अरुय'—रोग रहित है। अर्थात् उस सुख मे लेश मात्र भी व्याधि-रोग नही है। क्योकि रोगादि दोषो की उत्पत्ति शरीर के निमित्त से होती है और जहाँ शरीर है वहाँ रोग की उत्पत्ति अवश्य होती है—'शरीर व्याधिमदिरम्'। लेकिन सिद्ध जीव शरीर रहित है, उनके शरीर प्राप्ति का निमित्तकरण कर्म भी दूर हो गया है, इसीलिये सिद्ध जीवो का सुख रोगादि दोषो से रहित है।

सिद्ध जीवो के सुख के लिये पाँचवा विशेषण 'निरुवम' दिया है यानी उपमा रहित है। इसका कारण यह है कि उप अर्थात् उपचार से या निकटता से जो माप करने की प्रक्रिया है, उसे उपमा कहते हैं। इसका भाव यह है प्रत्येक वस्तु के गुण, धर्म और उसकी पर्याय दूसरी वस्तु के गुण, धर्म और पर्याय से भिन्न हैं, अत थोडी-बहुत समानता को देखकर दृष्टात द्वारा उसका परिज्ञान कराने की प्रक्रिया को उपमा कहते है। परन्तु यह प्रक्रिया इन्द्रियगोचर पदार्थों मे ही घटित हो सकती है और सिद्ध परमेष्ठी का सुख तो अतीन्द्रिय है, इसलिये उपमा द्वारा उसका परिज्ञान नही कराया जा सकता है। ससार मे तत्सदृश ऐसा कोई पदार्थ नही जिसकी उसे उपमा दी जा सके, इसलिये सिद्ध परमेष्ठि के सुख को अनुपम कहा है।

छठा विशेषण स्वभावभूत 'सहाव' है। इसका आशय यह है कि ससारी सुख तो कोमल स्पर्श, सुस्वादु भोजन, वायुमण्डल को सुरभित करने वाले अनेक प्रकार के पुष्प, इत्र, तेल आदि के गध, रमणीय रूप के अवलोकन, मधुर सगीत आदि के निमित्त से उत्पन्न होता है, लेकिन सिद्ध सुख की यह वात नही है, वह तो आत्मा का स्वभाव है, वह वाह्य इष्ट मनोज्ञ पदार्थों के सयोग से उत्पन्न नही होता है।

सातवाँ विशेषण 'अनिहण'—अनिधन है। इसका भाव यह है कि सिद्ध अवस्था प्राप्त हो जाने के बाद उसका कभी नाश नही होता है। उसके स्वाभाविक अनतगुण सदा स्वभाव रूप से स्थिर रहते है, उनमे सुख भी एक गुण है, अत उसका भी कभी नाश नही होता है।

आठवा विशेषण है—'अव्वावाह'—अव्याबाध। अर्थात् बाधारहित है उसमे किसी प्रकार का अन्तराल नही और न किसी के द्वारा उसमे रुकावट आती है। जो अन्य के निमित्त से होता है या अस्थायी होता है, उसी मे बाधा उत्पन्न होती है। परन्तु सिद्ध जीवो का सुख न तो अन्य के निमित्त से ही उत्पन्न होता है और न थोडे काल तक ही टिकने वाला है। वह तो आत्मा का अपना ही है और सदा-सर्वदा व्यक्त रहने वाला धर्म है। इसीलिये उसे अव्याबाध कहा है।

अन्तिम—नौवा विशेषण त्रिरत्नसार 'तिरयणसार' है। यानी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह तीन रत्न हैं, जिन्हे रत्नत्रय कहते हैं। सिद्धो को प्राप्त होने वाला सुख उनका सारफल है। क्योकि सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय कर्मक्षय का कारण है और कर्मक्षय के बाद सिद्ध सुख की प्राप्ति होती है। इसीलिये सिद्धि सुख को रत्नत्रय का सार कहा गया है। ससारी जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना इसीलिये करता है कि उसे निराकुल अवस्था की प्राप्ति हो। सुख की अभिव्यक्ति निराकुलता मे ही है। इसी कारण से सिद्धो को प्राप्त होने वाले सुख को रत्नत्रय का सार बताया है।

आत्मस्वरूप की प्राप्ति करना जीवमात्र का लक्ष्य है और उस स्वरूप प्राप्ति मे बाधक कारण कर्म है। कर्मों का क्षय हो जाने के अनन्तर अन्य कुछ प्राप्त करना शेष नही रहता है। ग्रथ मे कर्म की विभिन्न स्थितियों, उनके क्षय के उपाय और कर्म क्षय के पश्चात

प्राप्त होने वाली आत्मस्थिति का पूर्णरूपेण विवेचन किया जा चुका है। अत· अव ग्रथकार ग्रथ का उपसहार करने के लिए गाथा कहते है कि—

दुरहिगम-निउण-परमत्थ-रुइर-बहुभगदिट्ठिवायाओ ।
अत्था अणुसरियव्वा बधोदयसंतकम्माणं ॥७१॥

शब्दार्थ—**दुरहिगम**—अतिश्रम से जानने योग्य, **निउण**—सूक्ष्म बुद्धिगम्य, **परमत्थ**—यथावस्थित अर्थवाला, **रुइर**—रुचिकर, आह्लादकारी, **बहुभग**—बहुत भगवाला, **दिट्ठिवायाओ**—दृष्टिवाद अग, **अत्था**—विशेष अर्थ वाला, **अणुसरियव्वा**—जानने के लिये, **बंधोदयसंतकम्माणं**—बध, उदय और सत्ता कर्म की ।

गाथार्थ—दृष्टिवाद अग अतिश्रम से जानने योग्य, सूक्ष्म-बुद्धिगम्य, यथावस्थित अर्थ का प्रतिपादक, आह्लादकारी, बहुत भग वाला है। जो बध, उदय और सत्ता रूप कर्मो को विशेष रूप से जानना चाहते है, उन्हे यह सब इससे जानना चाहिये।

विशेषार्थ—गाथा मे ग्रथ का उपसहार करते हुए बतलाया है कि यह सप्ततिका ग्रथ दृष्टिवाद अग के आधार पर लिखा गया है। इस प्रकार से ग्रथ की प्रामाणिकता का सकेत करने के बाद बतलाया है कि दृष्टिवाद अग दुरभिगम्य है, सब इसको सरलता से नही समझ सकते हैं। लेकिन जिनकी बुद्धि सूक्ष्म है, सूक्ष्म पदार्थ को जानने के लिये जिज्ञासु है, वे ही इसमे प्रवेश कर पाते हैं। दृष्टिवाद अग को दुरभिगम्य बताने का कारण यह है कि यद्यपि इसमे यथावस्थित अर्थ का सुन्दरता से युक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया गया है लेकिन अनेक भेद-प्रभेद हैं, इसीलिये इसको कठिनता से जाना जाता है। इसका अपनी बुद्धि से मथन करके जो कुछ भी ज्ञात किया जा सका उसके आधार

से इस ग्रथ की रचना की है, लेकिन विशेप जिज्ञासुजन दृष्टिवाद अग का अध्ययन करें, और उससे बध, उदय और सत्ता रूप कर्मों के भेद-प्रभेदो को समझें। यह सप्ततिका नामक ग्रन्थ तो उनके लिये मार्ग-दर्शक के समान हैं।

अब ग्रथ की प्रामाणिकता, आधार आदि का निर्देश करने के बाद ग्रथकार अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए ग्रथ की समाप्ति के लिए गाथा कहते हैं—

जो जत्थ अपडिपुन्नो अत्थो अप्पागमेण बद्धो त्ति।
त खमिऊण बहुसुया पूरेऊणं परिकहंतु ॥७२॥

शब्दार्थ—**जो**—जिस, **जत्थ**—जहा, **अपडिपुन्नो**—अपूर्ण, **अत्थो**—अर्थ, **अप्पागमेण**—अल्पश्रुत, आगम के अल्प ज्ञाता—मैंने, **बद्धोत्ति**—निबद्ध किया है, **त**—उसके लिये, **खमिऊण**—क्षमा करके, **बहुसुया**—बहुश्रुत, **पूरेऊण**—परिपूर्ण करके, **परिकहतु**—भली प्रकार से प्रतिपादन करें।

गाथार्थ—मैं तो आगम का अल्प ज्ञाता हूँ, इसलिये मैंने जिस प्रकरण मे जितना अपरिपूर्ण अर्थ निबद्ध किया है, वह मेरा दोप—प्रमाद है। अत बहुश्रुत जन मेरे उस दोप—प्रमाद को क्षमा करके उस अर्थ की पूर्ति करने के साथ कथन करें।

विशेषार्थ—गाथा मे अपनी लघुता प्रगट करते हुए ग्रथकार लिखते है कि मैं न तो विद्वान हूँ और न बहुश्रुत, किन्तु अल्पज्ञ हूँ। इसलिये यह दावा नही करता हूँ कि ग्रथ सर्वांगीण रूप से विशेप अर्थ को प्रगट करने वाला बन सका है। इस ग्रथ मे जिस विषय को प्रतिपादन करने की धारणा की हुई थी, सम्भव है अपनी अल्पज्ञता के कारण उसको पूरी तरह से न निभा पाया होऊ तो इनके लिये मेरा प्रमाद

ही कारण है और यत्र-तत्र स्खलित भी हो गया होऊ किन्तु जो बहुश्रुत जन हैं, वे मेरे इस दोष को भूल जायें और जिस प्रकरण मे जो कमी रह गई हो, उसकी पूर्ति करते हुए कथन करने का ध्यान रखे, यही विनम्र निवेदन है।

इस प्रकार हिन्दी व्याख्या सहित सप्ततिका प्रकरण समाप्त हुआ।

☆

- षष्ठ कर्मग्रन्थ की मूल गाथाएँ
- छह कर्मग्रन्थो मे आगत पारिभाषिक शब्दो का कोष
- कर्मग्रन्थो की गाथाओ एव व्याख्या मे आगत पिण्ड-प्रकृति सूचक शब्दो का कोष
- गाथाओ का अकारादि अनुक्रम
- कर्मग्रन्थो की व्याख्या मे सहायक ग्रन्थ-सूची

परिशिष्ट : १

षष्ठ कर्मग्रन्थ की मूल गाथाएँ

सिद्धपएहिं महत्थ बन्धोदयसन्तपयडिठाणाण ।
वोच्छ सुण सखेव नीसद दिट्ठिवायस्स ॥१॥
कइ बधतो वेयइ कइ कइ वा पयडिसतठाणाणि ।
मूलुत्तरपगईसु भगविगप्पा उ बोधव्वा ॥२॥
अट्ठविहसत्तछब्बधगेसु अट्ठेव उदयसताइ ।
एगविहे तिविगप्पो एगविगप्पो अबधम्मि ॥३॥
सत्तट्ठबधअट्ठुदयसत तेरससु जीवठाणेसु ।
एगम्मि पच भगा दो भगा हुति केवलिणो ॥४॥
अट्ठसु एगविगप्पो छस्सु वि गुणसनिएसु दुविगप्पो ।
पत्तेय पत्तेय बधोदयसतकम्माण ॥५॥
बधोदयसतसा नाणावरणतराइए पच ।
बधोवरमे वि तहा उदसता हुति पचेव ॥६॥
बधस्स य सतस्स य पगइट्ठाणाइ तिन्नि तुल्लाइ ।
उदयट्ठाणाइ दुवे चउ पणग दसणावरणे ॥७॥
बीयावरणे नवबधगेसु चउ पच उदय नव सता ।

अट्ठगसत्तगछच्चउतिगदुगएगाहिया भवे वीसा ।
तेरस बारिक्कारस इत्तो पचाइ एक्कूणा ॥१२॥
सतस्स पगइठाणाइं ताणि मोहस्स हुति पन्नरस ।
बन्धोदयसंते पुण भगविगप्पा बहू जाण ॥१३॥
छब्बावीसे चउ इगवीसे सत्तरस तेरसे दो दो ।
नवबधगे वि दोन्नि उ एक्केक्कमओ पर भगा ॥१४॥
दस बावीसे नव इक्कवीस सत्ताइ उदयठाणाइ ।
छाई नव सत्तरसे तेरे पचाइ अट्ठेव ॥१५॥
चत्तारिमाइ नवबधगेसु उक्कोस सत्त उदयसा ।
पचविहबधगे पुण उदओ दोण्ह मुणेयव्वो ॥१६॥
इत्तो चउबधाई इक्केक्कुदया हवति सव्वे वि ।
बधोवरमे वि तहा उदयाभावे वि वा होज्जा ॥१७॥
एक्कग छक्केक्कारस दस सत्त चउक्क एक्कगा चेव ।
एए चउवीसगया चउवीस दुगेक्कमिक्कारा ॥१८॥
नवपचाणउइसएहुदयविगप्पेहि मोहिया जीवा ।
अउणत्तरिएगुत्तरिपयविंदसएहिं विन्नेया ॥१९॥
नवतेसीयसएहिं उदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा ।
अउणत्तरिसीयाला पयविदसएहि विन्नेया ॥२०॥
तिन्नेव य बावीसे इगवीसे अट्ठवीस सत्तरसे ।
छ च्चेव तेरनवबधगेसु पचेव ठाणाइ ॥२१॥
पचविहचउविहेसु छ छक्क सेसेसु जाण पचेव ।
पत्तेय पत्तेय चत्तारि य बधवोच्छेए ॥२२॥
दसनवपन्नरसाइ बधोदयसन्तपयडिठाणाइ ।
भणियाइ मोहणिज्जे इत्तो नाम पर वोच्छ ॥२३॥
तेवीस पण्णवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा ।
तीसेगतीसमेक्क बधट्ठाणाणि नामस्स ॥२४॥

नउ पणवीसा सोलस नव बाणउईसया य अडयाला।
एयालुत्तर छायालसया एक्केक्क बंधविही॥२५॥
वीसिगवीसा चउवीसगाइ एगाहिया उ इगतीसा।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य हुंति नामस्स॥२६॥
एग बियालेक्कारस तेत्तीसा छस्सयाणि तेत्तीसा।
बारससत्तरससयाणहिगाणि बिपचसीईहिं॥२७॥
अउणत्तीसेक्कारससयाहिगा सतरसपचसट्ठीहिं।
इक्केक्कगं च वीसादट्ठुदयंतेसु उदयविही॥२८॥
तिदुनउई उगुनउई अट्ठच्छलसी असीइ उगुसीई।
अट्ठयछप्पणत्तरि नव अट्ठ य नामसंताणि॥२९॥
अट्ठ य बारस बारस बंधोदयसंतपयडिठाणाणि।
ओहेणाएसेण य जत्थ जहासंभवं विभजे॥३०॥
नव पंचोदय संता तेवीसे पण्णवीस छव्वीसे।
अट्ठ चउरट्ठवीसे नव सत्तुगतीस तीसम्मि॥३१॥
एगेगमेगतीसे एगे एगुदय अट्ठ संतम्मि।
उवरयबंधे दस दस वेयगसंतम्मि ठाणाणि॥३२॥
तिविगप्पपगइठाणेहिं जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु।

पुरिस कोहे कोह माणे माण च छुहइ मायाए।
माय च छुहइ लोहे लोह सुहुम पि तो हणइ ॥६४॥
देवगइसहगयाओ दुचरमसमयभवियम्मि खीयति।
सविवागेयरनामा नीयागोय पि तत्थेव ॥६५॥
अन्नयरवेयणीय मणुयाउय उच्चगोय नव नामे।
वेएइ अजोगिजिणो उक्कोस जहन्न एक्कार ॥६६॥
मणुयगइ जाइ तस बायर च पज्जत्तसुभगमाइज्ज।
जसकित्ती तित्थयर नामस्स हवति नव एया ॥६७॥
तच्चाणुपुव्विसहिया तेरस भवसिद्धियस्स चरिमम्मि।
सतसगमुक्कोस जहन्नय बारस हवति ॥६८॥
मणुयगइसहगयाओ भवखित्तविवागजीववाग त्ति।
वेयणियन्नयरुच्च च चरिम भवियस्स खीयति ॥६९॥
अह सुइयसयलजगसिहरमरुयनिरुवमसहावसिद्धिसुह।
अनिहणमव्वाबाह तिरयणसार अणुहवति ॥७०॥
दुरहिगम-निउण - परमत्थ-रुइर-बहुभगदिट्ठिवायाओ।
अत्था अणुसरियव्वा बधोदयसतकम्माण ॥७१॥
जो अत्थ अपडिपुन्नो अत्थो अप्पागमेण बद्धो त्ति।
त खमिऊण बहुसुया पूरेऊण परिकहतु ॥७२॥

☆

परिशिष्ट : २

छह कर्मग्रन्थो में आगत पारिभाषिक शब्दो का कोष

(अ)

अगप्रविष्ट श्रुत—जिन शास्त्रो की रचना तीर्थंकरो के उपदेशानुसार गणधर स्वय करते हैं ।

अगोपाग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के अग और उपाग आदि रूप मे गृहीत पुद्‌गलो का परिणमन होता है ।

अगवाह्यश्रुत—गणधरो के अतिरिक्त अगो का आधार लेकर स्थविरो द्वारा प्रणीत शास्त्र ।

अक्षर—ज्ञान का नाम अक्षर है और ज्ञान जीव का स्वभाव होने के कारण श्रुत-ज्ञान स्वय अक्षर कहलाता है ।

अक्षर श्रुत—अकारादि लब्ध्यक्षरो मे से किसी एक अक्षर का ज्ञान ।

अक्षरसमास श्रुत—लब्ध्यक्षरो के समुदाय का ज्ञान ।

अकाम निर्जरा—इच्छा के न होते हुए भी अनायास ही होने वाली कर्म-निर्जरा ।

अकुशल कर्म—जिसका विपाक अनिष्ट होता है ।

अगमिक श्रुत—जिसमे एक सरीखे पाठ न आते हो ।

अगुरुलघु द्रव्य—चार स्पर्श वाले सूक्ष्म रूपी द्रव्य तथा अमूर्त आकाश आदि ।

अगुरुलघु नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को स्वय का शरीर वजन मे हल्का और भारी प्रतीत न होकर अगुरुलघु परिणाम वाला प्रतीत होता है ।

अग्निकाय—तेज परमाणुओ से निर्मित शरीर ।

अग्रहणवर्गणा—जो अल्प परमाणु वाली होने के कारण जीव द्वारा ग्रहण नही की जाती है ।

अघाती कर्म—जीव के प्रतिजीवी गुणो के घात करने वाले कर्म । उनके कारण आत्मा को शरीर की कैद मे रहना पडता है ।

अघातिनी प्रकृति—जो प्रकृति आत्मिक गुणो का घात नही करती है।

अचक्षु दर्शन—चक्षुरिन्द्रिय को छोडकर शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियो और मन के द्वारा होने वाले अपने-अपने विषयभूत सामान्य धर्मों का प्रतिभास।

अचक्षुदर्शनावरण कर्म—अचक्षुदर्शन को आवरण करने वाला कर्म।

अछाद्मस्थिक—जिनके छद्मो (चार घाति कर्मों) का सर्वथा क्षय हो गया हो।

अछाद्मस्थिक यथाख्यात संयम—केवलज्ञानियो का सयम।

अजघन्य बध—एक समय अधिक जघन्य बध से लेकर उत्कृष्ट वध से पूर्व तक के सभी बध।

अजीव—जिसमे चेतना न हो अर्थात् जड हो।

अज्ञान मिथ्यात्व—जीवादि पदार्थों को 'यही है' 'इसी प्रकार है' इस तरह विशेष रूप से न समझना।

अडड—चौरासी लाख अडडाग का एक अडड कहलाता है।

अडडाग—चौरासी लाख त्रुटित के समय को एक अडडाग कहते है।

अद्धापल्योपम—उद्धारपल्य के रोमखडो मे से प्रत्येक रोमखड के कल्पना के द्वारा उतने खड करे जितने सौ वर्ष के समय होते हैं और उनको पल्य मे भरने को अद्धापल्य कहते है। अद्धापल्य मे से प्रति समय रोमखडो को निकालते-निकालते जितने काल मे वह पल्य खाली हो, उसे अद्धा-पल्योपम काल कहते है।

अद्धासागर—दस कोटाकोटी अद्धापल्योपमो का एक अद्धासागर होता है।

अध्रुवबध—आगे जाकर विच्छिन्न हो जाने वाला बध।

अध्रुवबधिनी प्रकृति—बध के कारणो के होने पर भी जो प्रकृति बँधती भी है और नही भी बँधती है।

अध्रुवसत्ता प्रकृति—मिथ्यात्व आदि दशा मे जिस प्रकृति की सत्ता का नियम न हो यानी किसी समय सत्ता मे हो और किसी समय सत्ता मे न हो।

अध्रुवोदया प्रकृति—उसे कहते है, जिसका अपने उदयकाल के अन्त तक उदय लगातार नही रहता है। कभी उदय होता है और कभी नही होता है यानी उदय-विच्छेद काल तक भी जिसके उदय का नियम न हो।

अनक्षर श्रुत—जो शब्द अभिप्रायपूर्वक वर्णनात्मक नही बल्कि ध्वन्यात्मक किया जाता है अथवा छीकना, चुटकी वजाना आदि सकेतो के द्वारा दूसरो के अभिप्राय को जानना अनक्षर श्रुत है।

अनुगामी अवधिज्ञान—अपने उत्पत्ति स्थान मे स्थित होकर पदार्थ को जानने वाला किन्तु उत्पत्ति स्थान को छोड देने पर न जानने वाला अवधिज्ञान।

अनन्तानन्ताणु वर्गणा—अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा।

अनन्ताणु वर्गणा—अनन्त प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा।

अनन्तानुवधी कपाय—सम्यक्त्व गुण का घात करके जीव को अनत काल तक ससार मे परिभ्रमण कराने वाली उत्कट कपाय।

अनपवर्तनीय आयु—जो आयु किसी भी कारण से कम न हो। जितने काल तक के लिए वाधी गई हो, उतने काल तक भोगी जाये।

अनभिगृहीत मिथ्यात्व—परोपदेश निरपेक्ष—स्वभाव से होने वाला पदार्थों का अयथार्थ श्रद्धान।

अनवस्थित अवधिज्ञान—जो जल की तरग के समान कभी घटता है, कभी वढता है, कभी आविर्भूत हो जाता है और कभी तिरोहित हो जाता है।

अनवस्थित पल्य—आगे-आगे वढते जाने वाला होने से नियत स्वरूप के अभाव वाला पल्य।

अनाकारोपयोग—सामान्य विशेषात्मक वस्तु के सामान्य धर्म का अवबोध करने वाले जीव का चैतन्यानुविधायी परिणाम।

अनादि-अनन्त—जिस वध या उदय की परम्परा का प्रवाह अनादि काल से निरावाध गति से चला आ रहा है, मध्य मे न कभी विच्छिन्न हुआ है और न आगे कभी होगा, ऐसे वध या उदय को अनादि-अनत कहते हैं।

अनादि वध—जो वध अनादि काल से सतत हो रहा है।

अनादि श्रुत—जिस श्रुत की आदि न हो, उसे अनादि श्रुत कहते है।

अनादि-सान्त—जिस वध या उदय की परम्परा का प्रवाह अनादिकाल से विना व्यवधान के चला आ रहा है लेकिन आगे व्युच्छिन्न हो जायेगा, वह अनादि—सान्त है।

अनादेय नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का युक्तियुक्त अच्छा वचन भी अनादरणीय-अग्राह्य माना और समझा जाता है।

अनभिग्रहिक मिथ्यात्व—सत्यासत्य की परीक्षा किये विना ही सब पक्षों को वरावर समझना।

अनाभोग मिथ्यात्व—अज्ञानजन्य अतत्त्व रुचि।

अनाहारक—ओज, लोम और कवल इनमे से किसी भी प्रकार के आहार को न करने वाले जीव अनाहारक होते है।

अनिवृत्तिकरण—वह परिणाम जिसके प्राप्त होने पर जीव अवश्यमेव सम्यक्त्व प्राप्त करता है।

अनिवृत्तिबादरसपराय गुणस्थान—वह है जिसमे वादर (स्थूल) सपराय (कषाय) उदय मे हो तथा समसमयवर्ती जीवो के परिणामो मे समानता हो।

अनुत्कृष्ट बध—एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति बध से लेकर जघन्य स्थिति वध तक के सभी वध।

अनुगामी अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान अपने उत्पत्ति क्षेत्र को छोडकर दूसरे स्थान पर चले जाने पर भी विद्यमान रहता है।

अनुभवयोग्या स्थिति—अबाधा काल रहित स्थिति।

अनुभाग बध—कर्मरूप गृहीत पुद्गल परमाणुओ की फल देने की शक्ति व उसकी तीव्रता, मदता का निश्चय करना अनुभाग बध कहलाता है।

अनुयोग श्रुत—सत् आदि अनुयोगद्वारो मे से किसी एक के द्वारा जीवादि पदार्थों को जानना।

अनुयोगसमास श्रुत—एक से अधिक दो, तीन आदि अनुयोगद्वारो का ज्ञान।

अन्तरकरण—एक आवली या अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नीचे और ऊपर की स्थिति को छोडकर मध्य मे से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिको को उठाकर उनका बधने वाली अन्य सजातीय प्रकृतियो मे प्रक्षेप करने का नाम अन्तरकरण है। इस अन्तरकरण के लिये जो क्रिया की जाती है और उसमे जो काल लगता है उसे भी उपचार से अन्तरकरण कहते है।

अन्तराय—ज्ञानाभ्यास के साधनो मे विघ्न डालना, विद्यार्थियो के लिये प्राप्त होने वाले अभ्यास के साधनो की प्राप्ति न होने देना आदि अन्तराय कहलाता है।

अन्तराय कर्म—जो कर्म आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य रूप शक्तियो का घात करता है। अथवा दानादि मे अन्तराय रूप हो उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

अन्त कोडाकोडी—कुछ कम एक कोडाकोडी।

अपर्यवसित श्रुत—वह श्रुत जिमका अन्त न हो।

अपर्याप्त—अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले जीव।

अपर्याप्त नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्ति पूर्ण न करे।

अपरावर्तमाना प्रकृति—किसी दूसरी प्रकृति के बंध, उदय अथवा दोनों के बिना जिस प्रकृति के बंध, उदय अथवा दोनों होते है।

अपवर्तना—बद्ध कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग मे अध्यवसाय विशेष से कमी कर देना।

अपवर्तनाकरण—जिस वीर्य विशेष से पहले बधे हुए कर्म की स्थिति तथा रस घट जाते हैं, उसे अपवर्तनाकरण कहते है।

अपवर्तनीय आयु—बाह्य निमित्त से जो आयु कम हो जाती है उसे अपवर्तनीय (अपवर्त्य) कहते हैं। इस आयुच्छेद को अकालमरण भी कहा जाता है।

अपुण्यकर्म—जो दुःख का वेदन कराता है, उसे अपुण्यकर्म कहते हैं।

अपूर्वकरण—वह परिणाम जिसके द्वारा जीव राग-द्वेष की दुर्भेद्यग्रन्थि को तोड़कर लाघ जाता है।

अपूर्वस्थिति बंध—पहले की अपेक्षा अत्यन्त अल्प स्थिति के कर्मों को बांधना।

अप्रतिपाती अवधिज्ञान—जिसका स्वभाव पतनशील नही है।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय—जिस कषाय के उदय से देशविरति—आंशिक त्याग रूप अल्प प्रत्याख्यान न हो सके। जो कषाय आत्मा के देशविरत गुण (श्रावकाचार) का घात करे।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान—जो संयत (मुनि) विकथा, कषाय आदि प्रमादों का सेवन नही करते हैं वे अप्रमत्तसंयत है और उनके स्वरूप विशेष को अप्रमत्तसंयत गुणस्थान कहते है।

अप्राप्यकारी—पदार्थों के साथ बिना संयोग किये ही पदार्थ का ज्ञान करना।

अबंध प्रकृति—विवक्षित गुणस्थान मे वह कर्म प्रकृति न बंधे किन्तु आगे के स्थान मे उस कर्म का बंध हो, उसे अबंध प्रकृति कहते है।

अबंधकाल—पर-भव सम्बन्धी आयुकर्म के बंधकाल से पहले की अवस्था।

अबाधाकाल—बंधे हुए कर्म का जितने समय तक आत्मा को शुभाशुभ फल का वेदन नही होना।

अभिगृहीत मिथ्यात्व—कारणवश, एकान्तिक कदाग्रह से होने वाले पदार्थ के अयथार्थ श्रद्धान को कहते हैं।

अभिनव कर्मग्रहण—जिस आकाश क्षेत्र मे आत्मा के प्रदेश हैं उसी क्षेत्र मे अव-

स्थित कर्म रूप मे परिणत होने की योग्यता रखने वाले पुद्गल स्कन्धो की वर्गणाओ को कर्म रूप मे परिणत कर जीव द्वारा उनका ग्रहण होना अभिनव कर्म ग्रहण है ।

अभव्य—वे जीव जो अनादि तथाविध पारिणामिक भाव के कारण किसी भी समय मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता ही नही रखते ।

अम्लरस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर-रस नीबू, इमली आदि खट्टे पदार्थों जैसा हो ।

अयुत—चौरासी लाख अयुताग का एक अयुत होता है ।

अयुतांग—चौरासी लाख अर्थनिपूर के समय को एक अयुताग कहते हैं ।

अयोगिकेवली—जो केवली भगवान योगो से रहित है, अर्थात् जब सयोगि-केवली मन, वचन और काया के योगो का निरोध कर, कर्म-रहित होकर शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेते है, तब वे अयोगिकेवली कहलाते हैं ।

अयोगिकेवली यथाख्यात सयम—अयोगिकेवली का संयम ।

अयश कीर्ति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का लोक मे अपयश और अपकीर्ति फैले ।

अध्यवसाय—स्थितिबध के कारणभूत कषायजन्य आत्म-परिणाम ।

अध्यवसाय स्थान—कषाय के तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम तथा मन्द, मन्दतर और मन्दतम उदय-विशेष ।

अरति मोहनीय—जिस कर्म के उदय से कारणवश या बिना कारण के पदार्थों से अप्रीति-द्वेष हो ।

अर्थनिपूर—चौरासी लाख अर्थनिपूराग का एक अर्थनिपूर होता है ।

अर्थनिपूरांग—चौरासी लाख नलिन के समय को अर्थनिपूराग कहा जाता है ।

अर्थावग्रह—विषय और इन्द्रियो का सयोग पुष्ट हो जाने पर 'यह कुछ है' ऐसा जो विषय का सामान्य बोध होता है उसे अर्थावग्रह कहते हैं । अथवा पदार्थ के अव्यक्त ज्ञान को अर्थावग्रह कहते है ।

अर्धनाराचसहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियो की रचना मे एक ओर मर्कट बध और दूसरी ओर कीली हो ।

अल्पतर बंध—अधिक कर्म प्रकृतियो का बध करके कम प्रकृतियो के बध करने को अल्पतर बध कहते हैं ।

अल्पबहुत्व—पदार्थों का परस्पर न्यूनाधिक-अल्पाधिक भाव ।

अवक्तव्य बंध—बंध के अभाव के बाद पुनः कर्म बंध अथवा सामान्यपने से भंग विवक्षा को किये बिना अवक्तव्य बंध है।

अवग्रह—नाम, जाति आदि की विशेष कल्पना से रहित सामान्य सत्ता मात्र का ज्ञान।

अवधिअज्ञान—मिथ्यात्व के उदय से रूपी पदार्थों का विपरीत अवधिज्ञान। उसका दूसरा नाम विभंगज्ञान भी है।

अवधिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता की अपेक्षा न कर साक्षात् आत्मा के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक रूपी अर्थात मूर्त द्रव्य का ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। अथवा जो ज्ञान अधोऽधोविस्तृत वस्तु के स्वरूप को जानने की शक्ति रखता है अथवा जिस ज्ञान में सिर्फ रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष करने की शक्ति हो अथवा बाह्य अर्थ को साक्षात् करने के लिये जो आत्मा का व्यापार होता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञानावरण कर्म—अवधिज्ञान का आवरण करने वाला कर्म।

अवधिदर्शन—इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना ही आत्मा को रूपी द्रव्यों के सामान्य धर्म का प्रतिभास।

अवधिदर्शनावरण कर्म—अवधिदर्शन को आवृत्त करने वाला कर्म।

अवव—चौरासी लाख अववांग के काल को एक अवव कहते हैं।

अववांग—चौरासी लाख अडड का एक अववांग होता है।

अवस्थित अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान जन्मान्तर होने पर भी आत्मा में अवस्थित रहता है अथवा केवलज्ञान की उत्पत्ति पर्यन्त या आजन्म ठहरता है।

अवस्थित बंध—पहले समय में जितने कर्मों का बंध किया, दूसरे समय में भी उतने ही कर्मों का बंध करना।

अवसर्पिणी काल—दस कोटाकोटी सूक्ष्म अद्धासागरोपम के समय को एक अवसर्पिणी काल कहते हैं। इस समय में जीवों की शक्ति, गुण, अवगाहना आदि का उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है।

अवाय—ईहा के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थ के विषय में कुछ अधिक निश्चयात्मक ज्ञान होना।

अविपाक निर्जरा—उदयावली के बाहर स्थित कर्म को तप आदि क्रियाविशेष की सामर्थ्य से उदयावली में प्रविष्ट कराके अनुभव किया जाना।

अविभाग प्रतिच्छेद—वीर्य-शक्ति के अविभागी अश या भाग। वीर्य परमाणु, भाव परमाणु इसके दूसरे नाम है।

अविरत—दोषो से विरत न होना। यह आत्मा का वह परिणाम है जो चारित्र ग्रहण करने मे विघ्न डालता है।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—सम्यग्दृष्टि होकर भी जो जीव किसी प्रकार के व्रत को धारण नही कर सकता वह अविरत सम्यग्दृष्टि है और उसके स्वरूप विशेष को अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं।

अशुभ नामकर्म—जिस कर्म के उदय से नाभि के नीचे के अवयव अशुभ हो।

अशुभ विहायोगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव की चाल ऊँट आदि की चाल की भाँति अशुभ हो।

अश्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि—जो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणि पर तो चढा नही किंतु अनतानुबधी के उदय से सासादन भाव को प्राप्त हो गया उसे अश्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

असज्ञी—जिन्हे मनोलब्धि प्राप्त नही है अथवा जिन जीवो के बुद्धिपूर्वक इष्ट-अनिष्ट मे प्रवृत्ति-निवृत्ति नही होती है, वे असज्ञी हैं।

असज्ञी श्रुत—असज्ञी जीवो का श्रुत ज्ञान।

असख्याताणु वर्गणा—असख्यात प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा।

असत्य मनोयोग—जिस मनोयोग के द्वारा वस्तु स्वरूप का विपरीत चिन्तन हो अथवा सत्य मनोयोग से विपरीत मनोयोग।

असत्य वचनयोग—असत्य वचन वर्गणा के निमित्त से होने वाले योग अथवा किसी वस्तु को अयथार्थ सिद्ध करने वाले वचनयोग को कहते हैं।

असत्यामृषा मनोयोग—जो मन न तो सत्य हो और न मृषा हो उसे असत्या-मृषा मन कहते है और उसके द्वारा होने वाला योग असत्यामृषा मनोयोग कहलाता है। अथवा जिस मनोयोग का चिंतन विधि-निषेध शून्य हो, जो चिंतन न तो किसी वस्तु की स्थापना करता हो और न निषेध, उसे असत्यामृषा मनोयोग कहते है।

असत्यामृषा वचनयोग—जो वचनयोग न तो सत्य रूप हो और न मृषा रूप ही हो। अथवा जो वचनयोग किसी वस्तु के स्थापन-उत्थापन के लिए प्रवृत्त नही होता उसे असत्यामृषा वचनयोग कहते है।

असाता वेदनीय कर्म—जिस कर्म के उदय से आत्मा को अनुकूल इन्द्रिय विषयो

की अप्राप्ति हो और प्रतिकूल इन्द्रिय विषयो की प्राप्ति के कारण दुख का अनुभव हो।

अस्थिर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से नाक-भौं, जिह्वा आदि अवयव अस्थिर अर्थात् चपल होते है।

(आ)

आगाल—द्वितीय स्थिति के दलिको को अपकर्षण द्वारा प्रथम स्थिति के दलिको मे पहुंचाना।

आतप नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर स्वय उष्ण न होकर भी उष्ण प्रकाश करता है।

आदेय नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का वचन सर्वमान्य हो।

आनुपूर्वी नामकर्म—इसके उदय से विग्रहगति मे रहा हुआ जीव आकाश प्रदेशो की श्रेणी के अनुसार गमन कर उत्पत्ति-स्थान पर पहुंचता है।

आभिग्रहिक मिथ्यात्व—तत्त्व की परीक्षा किये विना ही किसी एक सिद्धात का पक्षपात करके अन्य पक्ष का खण्डन करना।

आभिनिवेशिक मिथ्यात्व—अपने पक्ष को असत्य जानकर भी उसकी स्थापना करने के लिये दुरभिनिवेश (दुराग्रह) करना।

आभ्यन्तर निर्वृत्ति—इन्द्रियो का आतरिक—भीतरी आकार।

आत्मागुल—प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना अगुल। इसके द्वारा अपने शरीर की ऊँचाई नापी जाती है।

आयु कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव-देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक के रूप मे जीता है और उसके क्षय होने पर उन-उन रूपो का त्याग करता है, यानी मर जाता है।

आयबिल—जिसमे विगय—दूध, घी आदि रस छोड़कर केवल दिन मे एक बार अन्न खाया जाता है तथा गरम (प्रासुक) जल पिया जाता है।

आवली—असख्यात समय की एक आवली होती है।

आवश्यक श्रुत—गुणो के द्वारा आत्मा को वश मे करना आवश्यकीय है, ऐसा वर्णन जिसमे हो उसे आवश्यक श्रुत कहते है।

आशातना—ज्ञानियो की निंदा करना, उनके बारे मे झूठी बातें कहना, मर्मच्छेदी

बातें लोक मे फैलाना, उन्हे मार्मिक पीडा हो ऐसा कपट-जाल फैलान आशातना है ।

आसन्न भव्य—निकट काल मे ही मोक्ष को प्राप्त करने वाला जीव ।

आस्रव—शुभाशुभ कर्मों के आगमन का द्वार ।

आहार—शरीर नामकर्म के उदय से देह, वचन और द्रव्य मन रूप बनने यो नोकर्म वर्गणा का जो ग्रहण होता है, उसको आहार कहते हैं । अथव तीन शरीर और छह पर्याप्तियो के योग्य पुद्‌गलो के ग्रहण को आहा कहते है ।

आहार पर्याप्ति—बाह्य आहार पुद्‌गलो को ग्रहण करके खलभाग रसभाग मे परिणमाने की जीव की शक्ति विशेष की पूर्णता ।

आहार संज्ञा—आहार की अभिलाषा, क्षुधा, वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले आत्मा का परिणाम विशेष ।

आहारक—ओज, लोम और कवल इनमे से किसी भी प्रकार के आहार को ग्रहण करने वाले जीव को आहारक कहते हैं । अथवा समय-समय जो आहार करे उसे आहारक कहते हैं ।

आहारक अगोपाग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर रूप परिणत पुद्‌गलो से अगोपाग रूप अवयवो का निर्माण हो ।

आहारक काययोग—आहारक शरीर और आहारक शरीर की सहायता से होने वाला वीर्य-शक्ति का व्यापार ।

आहारककार्मणबधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर पुद्‌गलो का कार्मण पुद्‌गलो के साथ सम्वन्ध हो ।

आहारकतैजसकार्मणबधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर पुद्‌गलो का तैजस-कार्मण पुद्‌गलो के साथ सम्बन्ध होता है ।

आहारकतैजसबधन नामकर्म—जिसके उदय से आहारक शरीर पुद्‌गलो का तैजस पुद्‌गलो के साथ सम्बन्ध हो ।

आहारकमिश्र काययोग—आहारक शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होने के प्रथम समय से लगाकर शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्त के मध्यवर्ती अपरिपूर्ण शरीर को आहारक मिश्रकाय कहते हैं और उसके द्वारा उत्पन्न योग को आहारकमिश्र काययोग कहते हैं । अथवा आहारक और औदा-

रिक उन दो शरीरों के मिश्रत्व द्वारा होने वाले वीर्य-शक्ति के व्यापार को आहारकमिश्र काययोग कहते हैं।

आहारकयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—आहारकयोग्य जघन्य वर्गणा से अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धों की आहारक शरीर के ग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

आहारकयोग्य जघन्य वर्गणा—वैक्रिय शरीरयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा के अनन्तर की अग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एक प्रदेश अधिक स्कन्धों की जो वर्गणा होती है, वह आहारकयोग्य जघन्य वर्गणा कहलाती है।

आहारक वर्गणा—जिन वर्गणाओं से आहारक शरीर बनता है।

आहारकशरीर नामकर्म—चतुर्दश पूर्वधर मुनि विशिष्ट कार्य हेतु, जैसे—किसी विषय में सन्देह उत्पन्न हो जाये अथवा तीर्थंकर की ऋद्धि दर्शन की इच्छा हो जाये, आहारक वर्गणा द्वारा जो एक-हस्त प्रमाण पुतला-शरीर बनाते हैं, उसे आहारकशरीर कहते हैं और जिस कर्म के उदय से जीव को आहारकशरीर की प्राप्ति होती है वह आहारक शरीर नामकर्म है।

आहारकशरीरबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत आहारक शरीर पुद्गलों के साथ गृह्यमाण आहारकशरीर पुद्गलों का आपस में मेल हो।

आहारकसंघातन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से आहारकशरीर रूप परिणत पुद्गलों का परस्पर सान्निध्य हो।

आहारक समुद्घात—आहारकशरीर के निमित्त से होने वाला समुद्घात।

(इ)

इत्वरसामायिक—जो अभ्यासार्थी शिष्यों को स्थिरता प्राप्त करने के लिए पहले पहल दिया जाता है। इसकी कालमर्यादा उपस्थान पर्यन्त (बड़ी दीक्षा लेने तक) छह मास तक मानी जाती है।

पुद्गलो मे से योग्य पुद्गल इन्द्रिय रूप से परिणत किये जाते है। अथवा जीव की वह शक्ति है जिसके द्वारा योग्य आहार पुद्गलो को इन्द्रिय रूप परिणत करके इन्द्रियजन्य बोध का सामर्थ्य प्राप्त किया जाता है।

(ई)

ईहा—अवग्रह के द्वारा जाने हुए पदार्थ के विषय मे धर्म विषयक विचारणा।

(उ)

उच्चकुल—धर्म और नीति की रक्षा के सबध मे जिस कुल ने चिरकाल से प्रसिद्धि प्राप्त की है।

उच्च गोत्रकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव उच्च कुल मे जन्म लेता है।

उच्छ्वास काल—निरोग, स्वस्थ, निश्चिन्त, तरुण पुरुष के एक बार श्वास लेने और त्यागने का काल।

उच्छ्वास-निश्वास—सख्यात आवली का एक उच्छ्वास-निश्वास होता है।

उच्छ्वास नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव श्वासोच्छ्वासलब्धि युक्त होता है।

उत्कृष्ट असंख्यातासख्यात—जघन्य असख्यातासख्यात की राशि का अन्योन्याभ्यास करने से प्राप्त होने वाली राशि मे से एक को कम करने पर प्राप्त राशि।

उत्कृष्ट परीतानन्त—जघन्य परीतानन्त की सख्या का अन्योन्याभ्यास करने पर प्राप्त सख्या मे से एक को कम कर देने पर प्राप्त सख्या।

उत्कृष्ट युक्तानन्त—जघन्य युक्तानन्त की सख्या का परस्पर गुणा करने पर प्राप्त सख्या मे से एक कम कर देने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त होता है।

उत्कृष्ट परीतासंख्यात—जघन्य परीतासख्यात की राशि का अन्योन्याभ्यास करके उसमे से एक को कम करने पर प्राप्त सख्या।

उत्कृष्ट युक्तासख्यात—जघन्य युक्तासख्यात की राशि का परस्पर गुणा करने पर प्राप्त राशि मे से एक को कम कर देने पर प्राप्त राशि।

उत्कृष्ट सख्यात—अनवस्थित, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका पल्यो को विधिपूर्वक सरसो के दानो से परिपूर्ण भरकर उनके दानो के जोड मे से एक दाना कम कर लिए जाने पर प्राप्त सख्या।

उत्कृष्ट बन्ध—अधिकतम स्थिति बन्ध।

उत्तर प्रकृति—कर्मों के मुख्य भेदो के अवान्तर भेद ।

उत्पल—चौरासी लाख उत्पलांग का एक उत्पल होता है ।

उत्पलांग—चौरासी लाख 'हु हु' के समय को एक उत्पलांग कहते है ।

उत्श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका—यह अनन्त व्यवहार परमाणु की होती है ।

उत्सर्पिणी काल—दस कोटा कोटी सूक्ष्म अद्धा सागरोपम का काल । इसमे जीवो की शक्ति, बुद्धि, अवगाहना आदि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है ।

उत्सेधांगुल—आठ यव मध्य का एक उत्सेधांगुल होता है ।

उदय—बंधे हुए कर्म दलिको की स्वफल प्रदान करने की अवस्था अथवा काल प्राप्त कर्म परमाणुओ के अनुभव करने को उदय कहते है ।

उदयकाल—अबाधा काल व्यतीत हो चुकने पर जिस समय कर्म के फल का अनुभव होता है, उस समय को उदयकाल कहते है । अथवा कर्म के फल-भोग के नियत काल को उदयकाल कहा जाता है ।

उदयविकल्प—उदयस्थानो के भगो को उदयविकल्प कहते है ।

उदयस्थान—जिन प्रकृतियो का उदय एक साथ पाया जाये, उनके समुदाय को उदयस्थान कहते है ।

उदीरणा—उदयकाल को प्राप्त नहीं हुए कर्मों का आत्मा के अध्यवसाय-विशेष—प्रयत्न-विशेष से नियत समय से पूर्व उदयहेतु उदयावलि मे प्रविष्ट करना, अवस्थित करना या नियत समय से पूर्व कर्म का उदय मे आना अथवा अनुदयकाल को प्राप्त कर्मों को फलोदय की स्थिति मे ला देना ।

उदीरणा स्थान—जिन प्रकृतियो की उदीरणा एक साथ पाई जाये उनके समुदाय को उदीरणास्थान कहते है ।

उद्धार पल्य—व्यवहार पल्य मे एक-एक रोमखड के कल्पना के द्वारा असख्यात कोटि वर्ष के समय जितने खड करके उन सब खडो को पल्य मे भरना उद्धार पल्य कहलाता है ।

औदारिककार्मणवन्धन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिक ~र पुद्गलो का कार्मण पुद्गलो के साथ सम्वन्ध हो।

औदारिकतैजसकार्मणवधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिकशर पुद्गलो का तैजस-कार्मण पुद्गलो के साथ सम्वन्ध हो।

औदारिकतैजसबधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से द कर पुद्गलो का तैजस पुद्गलो के साथ सम्वन्ध हो।

औदारिकमिश्र काय—औदारिकशरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होने के प्रथम सम से लगाकर अन्तर्मुहूर्त तक मध्यवर्ती काल मे वर्तमान अपरिपूर्ण शरीर क कहते है।

औदारिकमिश्र काययोग—औदारिक और कार्मण इन दोनो शरीरो की रा से होने वाले वीर्य-शक्ति के व्यापार को अथवा औदारिकमिश्र काय द्वार होने वाले प्रयत्नो को औदारिकमिश्र काययोग कहा जाता है।

औदारिक शरीर—जिस शरीर को तीर्थंकर आदि महापुरुष धारण करते है, जिससे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, जो औदारिक वर्गणाओ से निष्पन्न मास, हड्डी आदि अवयवो से बना होता है, स्थूल है आदि, वह औदारिक-शरीर कहलाता है।

औदारिकशरीर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिकशरीर प्राप्त हो।

औदारिकशरीरबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से पूर्वग्रहीत औदारिक पुद्गलो के साथ वर्तमान मे ग्रहण किये जाने वाले औदारिक पुद्गलो का आपस मे मेल होता है।

औदारिक वर्गणा—जिन पुद्गल वर्गणाओ से औदारिक शरीर बनता है।

औदारिकसघातन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर रूप परि-णत पुद्गलो का परस्पर सान्निध्य हो।

औपपातिक वैक्रिय शरीर—उपपात जन्म लेने वाले देव और नारको को जो शरीर जन्म समय से ही प्राप्त होता है।

औपशमिक भाव—मोहनीयकर्म के उपशम से होने वाला भाव।

औपशमिक चारित्र—चारित्र मोहनीय की पच्चीस प्रकृतियो के उपशम से व्यक्त होने वाला स्थिरात्मक आत्म-परिणाम।

औपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबधी कषाय चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक—कुल

सात प्रकृतियो के उपशम से जो तत्त्व रुचि व्यंजक आत्म-परिणाम प्रगट होता है, वह औपशमिक सम्यक्त्व है।

(क)

कटुरस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर-रस चिरायते, नीम आदि जैसा कटु हो।

कमल—चौरासी लाख कमलांग के काल को कहते हैं।

कमलांग—चौरासी लाख महापद्म का एक कमलांग होता है।

करण-पर्याप्त—वे जीव जिन्होंने इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण कर ली है अथवा अपनी योग्य पर्याप्तियां पूर्ण कर ली हैं।

करण-अपर्याप्त—पर्याप्त या अपर्याप्त नामकर्म का उदय होने पर भी जब तक करणो—शरीर, इन्द्रिय आदि पर्याप्तियो की पूर्णता न हो तब तक वे जीव करण अपर्याप्त कहलाते हैं।

करणलब्धि—अनादिकालीन मिथ्यात्व-ग्रन्थि को भेदने मे समर्थ परिणामो या शक्ति का प्राप्त होना।

कवलाहार—अन्न आदि खाद्य पदार्थ जो मुख द्वारा ग्रहण किये जाते है।

कर्म—मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से हुई जीव की प्रवृत्ति द्वारा आकृष्ट एव सम्बद्ध तत्योग्य पुद्गल परमाणु।

कर्मजा बुद्धि—उपयोगपूर्वक चिन्तन, मनन और अभ्यास करते-करते प्राप्त होने वाली बुद्धि।

कर्मयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—कर्मयोग्य जघन्य वर्गणाओ के अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धो की कर्मग्रहण के योग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

कर्मयोग्य जघन्य वर्गणा—उत्कृष्ट मनोयोग्य वर्गणा के अनन्तर की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कन्ध के प्रदेशो से एक प्रदेश अधिक स्कन्धो की वर्गणा कर्मग्रहण के योग्य जघन्य वर्गणा होती है।

कर्मरूप परिणमन—कर्म पुद्गलो मे जीव के ज्ञान, दर्शन आदि स्वाभाविक गुणो का आवरण करने की शक्ति का हो जाना।

कर्मरूपतावस्थानलक्षणा स्थिति—बंधने के बाद जब तक कर्म आत्मा के साथ रहता है, उतना काल।

कर्मवर्गणा—कर्म स्कन्धो का समूह।

कृतकरण—सम्यक्त्व मोहनीय के अन्तिम स्थिति खण्ड को खपाने वाले क्षपक को कहते है।

कृष्णलेश्या—काजल के समान कृष्ण वर्ण के लेश्या जातीय पुद्गलो के सम्बन्ध से आत्मा मे ऐसे परिणामो का होना, जिससे हिंसा आदि पाँचो आस्रवो मे प्रवृत्ति हो—मन, वचन, काय का सयम न रहना, गुण-दोष की परीक्षा किये बिना ही कार्य करने की आदत बन जाना, क्रूरता आ जाना आदि।

कृष्णवर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कोयले जैसा काला हो।

केवलज्ञान—ज्ञानावरण कर्म का नि शेष रूप से क्षय हो जाने पर जिसके द्वारा भूत, वर्तमान और भावी त्रैकालिक सब द्रव्य और पर्यायें जानी जाती हैं, उसे केवलज्ञान कहते हैं। किसी की सहायता के बिना सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थों का विषय करने वाला ज्ञान केवलज्ञान है।

केवलज्ञानावरण कर्म—केवलज्ञान का आवरण करने वाला कर्म।

केवलदर्शन—सम्पूर्ण द्रव्यो मे विद्यमान सामान्य धर्म का प्रतिभास।

केवलदर्शनावरण कर्म—केवलदर्शन का आवरण करने वाला कर्म।

केवली समुद्घात—वेदनीय आदि तीन अघाती कर्मों की स्थिति आयुकर्म के बराबर करने के लिए केवली-जिन द्वारा किया जाने वाला समुद्घात।

केशाग्र—आठ रथरेणु का देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्य का एक केशाग्र होता है। उनके आठ केशाग्रो का हरिवर्ष और रम्यकवर्ष के मनुष्य का एक केशाग्र होता है तथा उनके आठ केशाग्रो का हेमवत और हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्य का एक केशाग्र होता है, उनके आठ केशाग्रो का पूर्वापर विदेह के मनुष्य का एक केशाग्र होता है और उनके आठ केशाग्रो का भरत, ऐरावत क्षेत्र के मनुष्य का एक केशाग्र होता है।

कोडाकोडी—एक करोड को एक करोड से गुणा करने पर प्राप्त राशि।

क्रोध—समभाव को भूलकर आक्रोश मे भर जाना, दूसरो पर रोष करना क्रोध है। अतरग मे परम उपशम रूप अनन्त गुण वाली आत्मा मे क्षोभ तथा वाह्य विषयो मे अन्य पदार्थों के सम्वन्ध से क्रूरता, आवेश रूप विचार उत्पन्न होने को क्रोध कहते है। अथवा अपना और पर का उपघात या अनुपकार आदि करने वाला क्रूर परिणाम क्रोध कहलाता है।

क्षपकश्रेणि—जिस श्रेणि मे मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का मूल से नाश किया जाता है।

क्षमाशीलता—बदला लेने की शक्ति होते हुए भी अपने साथ बुरा बर्ताव करने वालो के अपराधो को सहन करना। क्रोध के कारण उपस्थित होने पर भी क्रोधभाव पैदा न होने देना।

क्षय—विच्छेद होने पर पुन बध की सम्भावना न होना।

क्षयोपशम—वर्तमान काल मे सर्वघाती स्पर्धको का उदयाभावी क्षय और आगामी काल की अपेक्षा उन्ही का सदवस्थारूप उपशम तथा देशघाती स्पधको का उदय क्षयोपशम कहलाता है। अर्थात् कर्म के उदयावलि मे प्रविष्ट मन्दरस स्पर्धक का क्षय और अनुदयमान रसस्पर्धक की सर्व-घातिनी विपाकशक्ति का निरोध या देशघाती रूप मे परिणमन व तीव्र शक्ति का मदशक्ति रूप मे परिणमन (उपशमन) क्षयोपशम है।

क्षायिकज्ञान—अपने आवरण कर्म का पूर्ण रूप से क्षय कर देने से उत्पन्न होने वाला ज्ञान।

क्षायिक भाव—कर्म के आत्यन्तिक क्षय से प्रगट होने वाला भाव।

क्षायिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबंधी कषायचतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियो के क्षय से आत्मा मे तत्त्व रुचि रूप प्रगट होने वाला परिणाम।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि—सम्यक्त्व की बाधक मोहनीय कर्म की सातो प्रकृतियो का पूर्णतया क्षय करके सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले जीव।

क्षायोपशमिक ज्ञान—अपने-अपने आवरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला

क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि—मोहनीयकर्म की प्रकृतियो मे से क्षय योग्य प्रकृतियो के क्षय और शेष रही हुई प्रकृतियो के उपशम करने से सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले जीव को कहते हैं।

क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान—उन जीवो के स्वरूप विशेष को कहते हैं जो मोहनीयकर्म का सर्वथा क्षय कर चुके हैं किन्तु शेष छद्म (घाति-कर्मों का आवरण) अभी विद्यमान है।

क्षुद्र भव—सम्पूर्ण भवो मे सबसे छोटे भव।

क्षेत्र अनुयोगद्वार—जिसमे विवक्षित धर्म वाले जीवो का वर्तमान निवास-स्थान बतलाया जाता है, उसे क्षेत्र अनुयोगद्वार कहते है।

क्षेत्रविपाकी प्रकृति—जो प्रकृतियाँ क्षेत्र की प्रधानता से अपना फल देती हैं, उन्हे क्षेत्रविपाकी प्रकृति कहते हैं। अथवा विग्रह-गति मे जो कर्म प्रकृति उदय मे आती है, अपने फल का अनुभव कराती है, वह क्षेत्रविपाकी प्रकृति है।

(ख)

खरस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर गाय की जीभ जैसा खुरदरा, कर्कश हो। इसे कर्कशस्पर्श नामकर्म भी कहा जाता है।

(ग)

गध नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर मे शुभ अच्छी या अशुभ बुरी गध हो।

गति—गति नामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय और जिससे जीव मनुष्य, तिर्यंच, देव या नारक व्यवहार का अधिकारी कहलाता है, उसे गति कहते है, अथवा चारो गतियो—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव मे गमन करने के कारण को गति कहते है।

गतित्रस—उन जीवो को कहते है जिनको उदय तो स्थावर नामकर्म का होता है, किन्तु गतिक्रिया पाई जाती है।

गति नामकर्म—जिसके उदय से आत्मा मनुष्यादि गतियो मे गमन करे उसे गति कहते है।

गमिक श्रुत—आदि, मध्य और अवसान मे कुछ विशेषता से उसी सूत्र को बार-बार कहना गमिक श्रुत है।

गुणाणु—पाँच शरीरो के योग्य परमाणुओ की रस-शक्ति का बुद्धि के द्वारा खडन करने पर जो अविभागी अश होता है, उसे गुणाणु या भावाणु कहते हैं।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान जन्म लेने से नहीं किन्तु जन्म लेने के बाद यम, नियम और व्रत आदि अनुष्ठान के बल से उत्पन्न होता है, उसको क्षायोपशमिक अवधिज्ञान भी कहते हैं।

गुणस्थान—ज्ञान आदि गुणों की शुद्धि और अशुद्धि के न्यूनाधिक भाव से होने वाले जीव के स्वरूप विशेष को कहते हैं।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि जीव के स्वभाव को गुण कहते हैं और उनके स्थान अर्थात् गुणों की शुद्धि-अशुद्धि के उत्कर्ष एवं अपकर्ष-जन्य स्वरूप विशेष का भेद गुणस्थान कहलाता है।

दर्शन मोहनीय आदि कर्मों की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्थाओं के होने पर उत्पन्न होने वाले जिन भावों से जीव लक्षित होते हैं, उन भावों को गुणस्थान कहते हैं।

गुणस्थान क्रम—आत्मिक गुणों के न्यूनाधिक क्रमिक विकास की अवस्था।

गुणसंक्रमण—पहले की बँधी हुई अशुभ प्रकृतियों को वर्तमान में बँधने वाली शुभ प्रकृतियों के रूप में परिणत कर देना।

गुणश्रेणी—जिन कर्मदलिकों का स्थितिघात किया जाता है उनको समय के क्रम से अन्तर्मुहूर्त में स्थापित कर देना गुणश्रेणी है। अथवा ऊपर की स्थिति से उदय क्षण से लेकर प्रति समय असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे कर्मदलिकों की रचना को गुणश्रेणी कहते हैं।

गुणश्रेणी निर्जरा—अल्प-अल्प समय में उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कर्म परमाणुओं

गोत्रकर्म—जो कर्म जीव को उच्च-नीच गोत्र—कुल मे उत्पन्न करावे अथवा जिस कर्म के उदय से जीव मे पूज्यता-अपूज्यता का भाव उत्पन्न हो, जीव उच्च-नीच कहलाये ।

ग्रन्थि—कर्मों से होने वाले जीव के तीव्र राग-द्वेष रूप परिणाम ।

(घ)

घटिका—साढ़े अडतीस लव का समय । इसका दूसरा नाम 'नाली' है ।

घातिकर्म—आत्मा के अनुजीवी गुणो का, आत्मा के वास्तविक स्वरूप का घात करने वाले कर्म ।

घातिनी प्रकृति—जो कर्मप्रकृति आत्मिक-गुणो—ज्ञानादिक का घात करती है ।

घन—तीन समान सख्याओ का परस्पर गुणा करने पर प्राप्त सख्या ।

(च)

चक्षुदर्शन—चक्षु के द्वारा होने वाले पदार्थ के सामान्य धर्म के बोध को कहते है ।

चक्षु दर्शनावरण कर्म—चक्षु के द्वारा होने वाले वस्तु के सामान्य धर्म के ग्रहण को रोकने वाला कर्म ।

चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को चार इन्द्रियाँ—शरीर, जीभ, नाक और आँख प्राप्त हो ।

चतु स्थानिक—कर्मप्रकृतियो मे स्वाभाविक अनुभाग से चौगुने अनुभाग—फलजनक शक्ति का पाया जाना ।

चारित्रमोहनीयकर्म—आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति या उसमे रमण करना चारित्र है । चारित्रगुण को घात करने वाला कर्म चारित्रमोहनीयकर्म कहलाता है ।

चूलिका—चौरासी लाख चूलिकाग की एक चूलिका होती है ।

चूलिकांग—चौरासी लाख-नयुत का एक चूलिकाग होता है ।

चैत्यनिन्दा—ज्ञान, दर्शन, चारित्र-सपन्न गुणी महात्मा तपस्वी आदि की अथवा लौकिक दृष्टि से स्मारक, स्तूप, प्रतिमा आदि की निन्दा करना चैत्यनिंदा कहलाती है ।

छ

छ[illegible]—वे जीव जिनको मोहनीयकर्म का क्षय होने पर भी अन्य छद्मो (घातिकर्मों) का सद्भाव पाया जाता है ।

छाद्मस्थिक यथाख्यातसंयम—ग्यारहवें (उपशान्तमोह) और बारहवें (क्षीणमोह) गुणस्थानवर्ती जीवों को होने वाला संयम।

छेदोपस्थापनीय संयम—पूर्व संयम पर्याय को छेदकर फिर से उपस्थापन (व्रतारोपण) करना।

ज

जघन्य अनन्तानन्त—उत्कृष्ट युक्तानन्त की संख्या में एक को मिलाने पर प्राप्त राशि।

जघन्य असंख्यातासंख्यात—उत्कृष्ट युक्तासंख्यात की राशि में एक को मिलाने पर प्राप्त संख्या।

जघन्य परीतानन्त—उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात में एक को मिला देने पर प्राप्त राशि।

जघन्य परीतासंख्यात—उत्कृष्ट संख्यात में एक को मिलाने पर प्राप्त संख्या।

जघन्य युक्तानन्त—उत्कृष्ट परीतानन्त की संख्या में एक को मिलाने पर प्राप्त राशि।

जघन्य युक्तासंख्यात—उत्कृष्ट परीतासंख्यात की राशि में एक को मिलाने पर प्राप्त राशि।

(द)

दड समुद्घात—सयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती जीव के द्वारा पहले समय मे अपने शरीर के बाहुल्य प्रमाण आत्म प्रदेशो को ऊपर से नीचे तक लोक पर्यन्त रचने को दड समुद्घात कहते है।

दर्शन—सामान्य धर्म की अपेक्षा जो पदार्थ की सत्ता का प्रतिभास होता है, उसे दर्शन कहते हे।

सामान्य विशेषात्मक वस्तुस्वरूप मे से वस्तु के सामान्य अश के बोधरूप चेतना के व्यापार को दर्शन कहते है। अथवा सामान्य की मुख्यता पूर्वक विशेष को गौण करके पदार्थ के जानने को दर्शन कहते है।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा के दर्शन गुण को आच्छादित करने वाला कर्म।

दर्शनमोहनीय—तत्त्वार्थ श्रद्धा को दर्शन कहते है और उसको घात करने वाले, आवृत करने वाले कर्म को दर्शनमोहनीय कर्म।

दर्शनोपयोग—प्रत्येक वस्तु मे सामान्य और विशेष यह दो प्रकार के धर्म पाये जाते है, उनमे से सामान्य धर्म को ग्रहण करने वाले उपयोग को दर्शनोपयोग कहते है।

दानान्तराय कर्म—दान की इच्छा होने पर भी जिस कर्म के उदय से जीव मे दान देने का उत्साह नही होता।

दीर्घकालिकी सज्ञा—उस सज्ञा को कहते है, जिसमे भूत, वर्तमान और भविष्य काल सबधी क्रमबद्ध ज्ञान होता है कि अमुक कार्य कर चुका हूँ, अमुक कार्य कर रहा हूँ और अमुक कार्य करूँगा।

दीपक सम्यक्त्व—जिनोक्त क्रियाओ से होने वाले लाभो का समर्थन, प्रचार, प्रसार करना दीपक सम्यक्त्व कहलाता है।

दुर्भग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव उपकार करने पर भी सभी को अप्रिय लगता हो, दूसरे जीव शत्रुता एव वैरभाव रखें।

दुरभिगंध नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर मे लहसुन अथवा सडे-गले पदार्थों जैसी गध हो।

दुरभिनिवेश—यथार्थ वक्ता मिलने पर भी श्रद्धा का विपरीत बना रहना।

दु स्वर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर व वचन श्रोता को अप्रिय व कर्कश प्रतीत हो।

दूर भव्य—जो भव्य जीव बहुत काल के बाद मोक्ष प्राप्त करने वाला है।

देव—देवगति नामकर्म के उदय होने पर नाना प्रकार की बाह्य विभूति से द्वीप-समुद्र आदि अनेक स्थानो पर इच्छानुसार क्रीडा करते हैं, विशिष्ट ऐश्वर्य का अनुभव करते हैं, दिव्य वस्त्राभूषणो की समृद्धि तथा अपने शरीर की साहजिक कांति से जो दीप्तमान रहते हैं वे देव कहलाते हैं।

देवगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को ऐसी अवस्था प्राप्त हो कि जिससे 'यह देव है' ऐसा कहा जाये।

देवायु—जिसके कारण से देवगति का जीवन बिताना पडता है, उसे देवायु कहते है।

देशघाती प्रकृति—अपने घातने योग्य गुण का आंशिक रूप से घात करने वाली प्रकृति।

देशविरति—अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने के कारण जो जीव देश (अंश) से पापजनक क्रियाओ से अलग हो सकते हैं वे देशविरत कहलाते हैं।

देशविरत गुणस्थान—देशविरत जीवो का स्वरूप विशेष।

देशविरत संयम—कर्मबंधजनक आरंभ, समारंभ से आंशिक निवृत्त होना, निर-पराध त्रस जीवो की संकल्पपूर्वक हिंसा न करना देशविरति संयम है।

द्रव्यकर्म—ज्ञानावरण आदि कर्मरूप परिणाम को प्राप्त हुए पुद्गल।

द्रव्यप्राण—इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास।

द्रव्यलेश्या—वर्ण नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए शरीर के वर्ण को द्रव्यलेश्या कहते हैं।

द्रव्यवेद—मैथुनेच्छा की पूर्ति के योग्य नामकर्म के उदय से प्रगट बाह्य चिन्ह विशेष।

द्वीन्द्रिय—जिन जीवो के स्पर्शन और रसन यह दो इन्द्रियां हैं तथा द्वीन्द्रिय जाति नामकर्म का उदय है।

द्वीन्द्रियजाति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को दो इन्द्रियां—शरीर (स्पर्शन) और जिह्वा (रसना) प्राप्त हो।

द्वितीयस्थिति—अन्तर स्थान से ऊपर की स्थिति को कहते हैं।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व—जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधी कषाय और

दर्शनमोहनीय का उपशम करके उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है, उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

द्विस्थानिक—कर्म प्रकृतियो के स्वाभाविक अनुभाग से दुगना अनुभाग ।

(ध)

धनुष—चार हाथ के माप को धनुष कहा जाता है ।

धारणा—अवाय के द्वारा जाने हुए पदार्थ का कालान्तर मे विस्मरण न हो, इस प्रकार के सस्कार वाले ज्ञान को धारणा कहते है ।

ध्रुवोदया प्रकृति—अपने उदयकाल पर्यन्त प्रत्येक समय जीव को जिस प्रकृति का उदय बराबर बिना रुके होता रहता है ।

ध्रुवबन्ध—जो बध न कभी विच्छिन्न हुआ और न होगा ।

ध्रुवबधिनी प्रकृति—योग्य कारण होने पर जिस प्रकृति का बध अवश्य होता है ।

ध्रुवसत्ताक प्रकृति—जो अनादि मिथ्यात्व जीव को निरन्तर सत्ता मे होती है, सर्वदा विद्यमान रहती है ।

(न)

नपु सक वेद—स्त्री एव पुरुष दोनो के साथ रमण करने की इच्छा ।

नयुत—चौरासी लाख नयुताग का एक नयुत होता है ।

नयुतांग—चौरासी लाख प्रयुत के समय को कहते है ।

नरकगति नामकर्म—जिसके उदय से जीव नारक कहलाता है ।

नरकायु—जिसके उदय से जीव को नरकगति का जीवन बिताना पडता है ।

नलिन—चौरासी लाख नलिनाग का एक नलिन होता है ।

नलिनाग—चौरासी लाख पद्म का एक नलिनाग कहलाता है ।

नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति प्राप्त करके अच्छी-बुरी विविध पर्यायें प्राप्त करता है, अथवा जिस कर्म से आत्मा गति आदि नाना पर्यायो को अनुभव करे अथवा शरीर आदि बने, उसे नामकर्म कहते है ।

नारक—जिनको नरकगति नामकर्म का उदय हो । अथवा जीवो को क्लेश पहुँचाये । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जो स्वय तथा परस्पर मे प्रीति को प्राप्त न करते हो ।

नाराचसंहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियो की रचना मे दोनो तरफ मर्कट बध हो, लेकिन वेठन और कील न हो ।

नाली—साढे अडतीस लव के समय को नाली कहते हैं।

निकाचन—उद्वर्तना, अपवर्तना, सक्रमण और उदीरणा इन चार अवस्थाओ के न होने की स्थिति का नाम निकाचन है।

निकाचित प्रकृति—जिस प्रकृति मे कोई भी करण नही लगता। उसे निकाचित प्रकृति कहते हैं।

निर्जरा—आत्मा के साथ नीर-क्षीर की तरह आपस मे मिले हुए कर्म पुद्गलो का एकदेश क्षय होना।

निद्रा—जिस कर्म के उदय से जीव को ऐसी नीद आये कि सुखपूर्वक जाग सके, जगाने मे मेहनत न करनी पड़े।

निद्रा-निद्रा—जिस कर्म के उदय से जीव को जगाना दुष्कर हो, ऐसी नीद आये।

निधत्ति—कर्म की उदीरणा और सक्रमण के सर्वथा अभाव की स्थिति।

निर्माण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर मे अग-प्रत्यग अपनी-अपनी जगह व्यवस्थित होते हैं।

निरतिचार छेदोपस्थापनीय सयम—जिसको इत्वर सामायिक सयम वाले वडी दीक्षा के रूप मे ग्रहण करते हैं।

निवृत्तिवादर गुणस्थान—वह अवस्था, जिसमे अप्रमत्त आत्मा अनन्तानुवधी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण इन तीनो चतुष्क रूपी वादर कपाय से निवृत्त हो जाती है। इसमे स्थितिघात आदि का अपूर्व विधान होने से इसे अपूर्वकरण गुणस्थान भी कहते हैं।

निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय—इन्द्रियो की आकार-रचना।

निरुपक्रम आयु—जिस आयु का अपवर्तन-घात नही होता।

निर्विश्यमान—परिहार विशुद्धि सयम को धारण करने वालो को कहते हैं।

निर्विष्टकायिक—परिहारविशुद्धि सयम धारको की सेवा करने वाले।

निश्चय सम्यक्त्व—जीवादि तत्वो का यथारूप से श्रद्धान।

निह्नव—मानवश ज्ञानदाता गुरु का नाम छिपाना, अमुक विषय को जानते हुए भी मैं नही जानता, उत्सूत्र प्ररूपणा करना आदि निह्नव कहलाता है।

नीच कुल—अधर्म और अनीति करने से जिस कुल ने चिरकाल से अप्रसिद्धि व अपकीर्ति प्राप्त की है।

नीच गोत्र कर्म—जिन कर्म के उदय से जीव नीच कुल में जन्म लेता है।

नीललेश्या—अशोक वृक्ष के समान नीले रग के लेश्या पुद्गलो से आत्मा मे ऐसा परिणाम उत्पन्न होना कि जिससे ईर्ष्या, असहिष्णुता, छल-कपट आदि होने लगे ।

नीलवर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर तोते के पख के जैसा हरा हो ।

नोकषाय—जो स्वय तो कषाय न हो किन्तु कषाय के उदय के साथ जिसका उदय होता है अथवा कषायो को पैदा करने मे, उत्तेजित करने मे सहायक हो ।

न्यग्रोधपरिमडलसंस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति न्यग्रोध (वटवृक्ष) के समान हो अर्थात् शरीर मे नाभि से ऊपर के अवयव पूर्ण मोटे हो और नाभि से नीचे के अवयव हीन—पतले हो ।

(प)

पचेन्द्रिय जाति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को पाँचो इन्द्रियाँ प्राप्त हो ।

पडित वीर्यान्तराय कर्म—सम्यग्दृष्टि साधु मोक्ष की चाह रखते हुए भी जिस कर्म के उदय से उसके योग्य क्रियाओ को न कर सके ।

पतद्ग्रह प्रकृति—आकर पडने वाले कर्म दलिको को ग्रहण करने वाली प्रकृति ।

पद—प्रत्येक कर्म प्रकृति को पद कहते हैं ।

पदवृन्द—पदो के समुदाय को पदवृन्द कहा जाता है ।

पदश्रुत—अर्थविबोधक अक्षरो के समुदाय को पद और उसके ज्ञान को पदश्रुत कहते है ।

पदसमासश्रुत—पदो के समुदाय का ज्ञान ।

पद्म—चौरासी लाख पद्माग का एक पद्म होता है ।

पद्म लेश्या—हल्दी के समान पीले रग के लेश्या पुद्गलो से आत्मा मे ऐसे परिणामो का होना जिससे काषायिक प्रवृत्ति काफी अशो मे कम हो, चित्त प्रशान्त रहता हो, आत्म-सयम और जितेन्द्रियता की वृत्ति आती हो ।

पद्मांग—चौरासी लाख उत्पल का एक पद्माग होता है ।

पराघात नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव बड़े-बड़े बलवानो की दृष्टि मे भी अजेय मालूम हो ।

परावर्तमाना प्रकृति—किसी दूसरी प्रकृति के बध, उदय अथवा दोनो को रोक कर जिस प्रकृति का बध, उदय अथवा दोनो होते हैं।

परिहारविशुद्धि सयम—परिहार का अर्थ है तपोविशेष और उस तपोविशेष से जिस चारित्र मे विशुद्धि प्राप्त की जाती है, उसे परिहारविशुद्धि सयम कहते है। अथवा जिसमे परिहारविशुद्धि नामक तपस्या की जाती है, वह परिहारविशुद्धि सयम है।

पर्याप्त नामकर्म—पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले जीवो को पर्याप्त कहते हैं और जिस कर्म के उदय से जीव अपनी पर्याप्तियों से युक्त होते हैं, वह पर्याप्त नामकर्म है।

पर्याप्ति—जीव की वह शक्ति जिसके द्वारा पुद्गलो को ग्रहण करने तथा उनको आहार, शरीर आदि के रूप मे बदल देने का कार्य होता है।

पर्याप्त श्रुत—उत्पत्ति के प्रथम समय मे लब्ध्यपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीव के होने वाले कुश्रुत के अश से दूसरे समय मे ज्ञान का जितना अश बढता है, वह पर्यायश्रुत है।

पर्याय समास श्रुत—पर्याय श्रुत का समुदाय।

पल्य—अनाज वगैरह भरने के गोलाकार स्थान को पल्य कहते हैं।

पल्योपम—काल की जिस लम्बी अवधि को पल्य की उपमा दी जाती है, उसको पल्योपम कहते है। एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े एव एक योजन गहरे गोलाकार कूप की उपमा से जो काल गिना जाता है उसे पल्योपम कहते हैं।

परोक्ष—मन और इन्द्रिय आदि बाह्य निमित्तो की सहायता से होने वाला पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान।

पश्चादानुपूर्वी—अन्त से प्रारम्भ कर आदि तक की गणना करना।

पाद—छह उत्सेधागुल का एक पाद होता है।

पाप—जिसके उदय से दुःख की प्राप्ति हो, आत्मा शुभ कार्यों से पृथक् रहे।

पाप प्रकृति—जिसका फल अशुभ होता है।

पारिणामिकी बुद्धि—दीर्घायु के कारण बहुत काल तक ससार के अनुभवो से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

पारिणामिक भाव—जिसके कारण मूल वस्तु मे किसी प्रकार का परिवर्तन न हो किन्तु स्वभाव मे ही परिणत होते रहना पारिणामिक भाव है। अथवा

कर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम की अपेक्षा न रखने वाले द्रव्य की स्वाभाविक अनादि पारिणामिक शक्ति से ही आविर्भूत भाव को पारिणामिक भाव कहते हैं।

पिंड प्रकृति—अपने मे अन्य प्रकृतियो को गर्भित करने वाली प्रकृति।

पुण्य—जिस कर्म के उदय से जीव को सुख का अनुभव होता है।

पुण्य कर्म—जो कर्म सुख का वेदन कराता है।

पुण्य प्रकृति—जिस प्रकृति का विपाक-फल शुभ होता है।

पुद्गलपरावर्त—ग्रहण योग्य आठ वर्गणाओ (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस शरीर, भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन, कार्मण वर्गणा) मे से आहारक शरीर वर्गणा को छोडकर शेष औदारिक आदि प्रकार से रूपी द्रव्यो को ग्रहण करते हुए एक जीव द्वारा समस्त लोकाकाश के पुद्गलो का स्पर्श करना।

पुद्गलविपाकी प्रकृति—जो कर्म प्रकृति पुद्गल मे फल प्रदान करने के सन्मुख हो अर्थात् जिस प्रकृति का फल आत्मा पुद्गल द्वारा अनुभव करे। औदारिक आदि नामकर्म के उदय से ग्रहण किये गये पुद्गलो मे जो कर्म प्रकृति अपनी शक्ति को दिखावे, वह पुद्गलविपाकी प्रकृति है।

पुरुषवेद—जिसके उदय से पुरुष को स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा हो।

पूर्व—चौरासी लाख पूर्वाङ्ग का एक पूर्व होता है।

पूर्वश्रुत—अनेक वस्तुओ का एक पूर्व होता है। उसमे से एक का ज्ञान पूर्वश्रु[त] कहलाता है।

पूर्वसमासश्रुत—दो-चार आदि चौदह पूर्वों तक का ज्ञान।

पूर्वाङ्ग—चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वाङ्ग होता है।

पूर्वानुपूर्वी—जो पदार्थ जिस क्रम से उत्पन्न हुआ हो या जिस क्रम से सू[त्रकार] के द्वारा स्थापित किया गया हो, उसकी उसी क्रम से गणना करना।

पृथ्वीकाय—पृथ्वी से बनने वाला पार्थिव शरीर।

प्रकृति—कर्म के स्वभाव को प्रकृति कहते है।

प्रकृति बंध—जीव द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलो मे भिन्न-भिन्न शक्तियो स्वभावो का उत्पन्न होना, अथवा कर्म परमाणुओ का ज्ञानावरण आ[दि] के रूप मे परिणत होना।

प्रकृतिविकल्प—प्रकृतियो के भेद से होने वाले भग।

बाल पडित वीर्यान्तराय—देशविरति के पालन की इच्छा रखता हुआ भी जीव जिसके उदय से उसका पालन न कर सके।

बाल वीर्यान्तराय—सासारिक कार्यों को करने की सामर्थ्य होने पर भी जीव जिसके उदय से उनको न कर सके।

बाह्य निर्वृत्ति—इन्द्रियो के बाह्य-आकार की रचना।

(भ)

भय मोहनीयकर्म—जिस कर्म के उदय से कारणवशात् या विना कारण डर पैदा हो।

भयप्रत्यय अवधिज्ञान—जिसके लिए सयम आदि अनुष्ठान की अपेक्षा न हो किन्तु जो अवधिज्ञान उस गति मे जन्म लेने से ही प्रगट होता है।

भव विपाकी प्रकृति—भव की प्रधानता से अपना फल देने वाली प्रकृति।

भव्य—जो मोक्ष प्राप्त करते है या पाने की योग्यता रखते हैं अथवा जिनमे सम्यग्दर्शन आदि भाव प्रगट होने की योग्यता है।

भाव—जीव और अजीव द्रव्यो का अपने-अपने स्वभाव रूप से परिणमन होना।

भाव अनुयोगद्वार—जिसमे विवक्षित धर्म के भाव का विचार किया जाता है।

भावकर्म—जीव के मिथ्यात्व आदि वे वैभाविक स्वरूप जिनके निमित्त से कर्म-पुद्गल कर्म रूप हो जाते हैं।

भावप्राण—ज्ञान, दर्शन, चेतना आदि जीव के गुण।

भावलेश्या—योग और सक्लेश से अनुगत आत्मा का परिणाम विशेष। सक्लेश का कारण कषायोदय है अत कषायोदय से अनुरजित योग प्रवृत्ति को भावलेश्या कहते हैं। मोहकर्म के उदय या क्षयोपशम या उपशम या क्षय से होने वाली जीव के प्रदेशो मे चचलता को भावलेश्या कहते हैं।

भाववेद—मैथुनेच्छा की पूर्ति के योग्य नामकर्म के उदय से प्रगट बाह्य चिन्ह विशेष के अनुरूप अभिलाषा अथवा चारित्र मोहनीय की नोकषाय की वेद प्रकृतियो के कारण स्त्री, पुरुष आदि से रमण करने की इच्छा रूप आत्म परिणाम।

भावश्रुत—इन्द्रिय और मन के निमित्त से उत्पन्न होने वाला ज्ञान जो कि

नियत अर्थ को कहने मे समर्थ है तथा श्रुतानुसारी (शब्द और अर्थ के विकल्प से युक्त) है उसे भावश्रुत कहते हैं।

भावेन्द्रिय—मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न आत्म-विशुद्धि अथवा उस विशुद्धि से उत्पन्न होने वाला ज्ञान।

भाषा—शब्दोच्चार को भाषा कहते हैं।

भाषा पर्याप्ति—उस शक्ति की पूर्णता को कहते हैं जिससे जीव भाषावर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा रूप परिणमावे और उसका आधार लेकर अनेक प्रकार की ध्वनि रूप मे छोड़े।

भाषाप्रायोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—भाषाप्रायोग्य जघन्य वर्गणा से एक-एक प्रदेश बढ़ते-बढ़ते जघन्य वर्गणा के अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धो की भाषाप्रायोग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

भाषाप्रायोग्य जघन्य वर्गणा—तैजस शरीर की ग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के ऊपर की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एक प्रदेश अधिक स्कन्धो की जो वर्गणा होती है, वह भाषा प्रायोग्यजघन्य वर्गणा है।

भूयस्कार बंध—पहले समय मे कम प्रकृतियो का बंध करके दूसरे समय मे उससे अधिक कर्म प्रकृतियो के बंध को भूयस्कार बंध कहते हैं।

भोग-उपभोग—एक बार भोगे जाने वाले पदार्थों को भोग और बार-बार भोगे जाने वाले पदार्थों को उपभोग कहते है।

भोगान्तराय कर्म—भोग के साधन होते हुए भी जिस कर्म के उदय से जीव भोग्य वस्तुओं का भोग न कर सके।

(म)

मध्यम असख्यातासख्यात—जघन्य और उत्कृष्ट असख्यातसख्यात के मध्य की राशि ।

मध्यम परीतासख्यात—जघन्य परीतासख्यात को एक सख्या से युक्त करने पर जहाँ तक उत्कृष्ट परीतासख्यात न हो, वहाँ तक की सख्या ।

मध्यम परीतानन्त—जघन्य और उत्कृष्ट परीतानन्त के मध्य की सख्या ।

मध्यम युक्तानन्त—जघन्य और उत्कृष्ट युक्तानन्त के वीच की सख्या ।

मध्यम युक्तासख्यात—जघन्य और उत्कृष्ट युक्तासख्यात के वीच की सख्या ।

मध्यम सख्यात—दो से ऊपर (तीन से लेकर) और उत्कृष्ट सख्यात से एक कम तक की सख्या ।

मन—विचार करने का साधन ।

मन पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की अपेक्षा न रखते हुए, मर्यादा के लिए हुए सज्ञी जीवो के मनोगत भावो को जानना मन पर्याय ज्ञान है अथवा-मन के चिन्तनीय परिणामो को जिस ज्ञान से प्रत्यक्ष किया जाता है, उसे मन पर्याय ज्ञान कहते है ।

मन पर्याय ज्ञानावरण—मन पर्यायज्ञान का आवरण करने वाला कर्म ।

मन पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव मन के योग्य मनोवर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके मन रूप परिणमन करे और उसकी शक्ति विशेष से उन पुद्गलो को वापस छोडे, उसकी पूर्णता को मन पर्याप्ति कहते हैं ।

मनुष्य—जो मन के द्वारा नित्य ही हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्त्व, आप्त-अनाप्त, धर्म-अधर्म आदि का विचार करते हैं, कर्म करने मे निपुण है, उत्कृष्ट मन के धारक हैं, विवेकशील होने से न्याय-नीतिपूर्वक आचरण करने वाले है, उन्हे मनुष्य कहते हैं ।

मनुष्यगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को वह अवस्था प्राप्त हो कि जिसमे 'यह मनुष्य है' ऐसा कहा जाये ।

मनुष्यायु—जिसके उदय से मनुष्यगति मे जन्म हो ।

मनोद्रव्य योग्य उत्कृष्ट वर्गणा—मनोद्रव्य योग्य जघन्य वर्गणा के ऊपर एक-एक प्रदेश बढते-बढते जघन्य वर्गणा के स्कन्ध के प्रदेशो के अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धो की मनोद्रव्य योग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है ।

मनोद्रव्य योग्य जघन्य वर्गणा—श्वासोच्छ्वास योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के बाद की

अग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कन्धों से एक प्रदेश अधिक स्कन्धों की मनोद्रव्ययोग्य जघन्यवर्गणा होती है।

मनोयोग—जीव का वह व्यापार जो औदारिक, वैक्रिय या आहारक शरीर के द्वारा ग्रहण किये हुए मनप्रायोग्य वर्गणा की सहायता से होता है। अथवा काययोग के द्वारा मनप्रायोग्य वर्गणाओं को ग्रहण करके मनोयोग से मनरूप परिणत हुए वस्तु विचारात्मक द्रव्य को मन कहते हैं और उस मन के सहचारी कारणभूत योग को मनोयोग कहते हैं। अथवा जिस योग का विषय मन है अथवा मनोवर्गणा से निष्पन्न हुए द्रव्य मन के अवलंबन से जीव का जो संकोच-विकोच होता है वह मनोयोग है।

महाकमल—चौरासी लाख महाकमलांग का एक महाकमल होता है।

महाकमलांग—चौरासी लाख कमल के समय को एक महाकमलांग

जाता है उनकी उसी रूप मे विचारणा, गवेषणा करना मार्गणा कहलाता है ।

मारणान्तिक समुद्घात—मरण के पहले उस निमित्त जो समुद्घात होता है, उसे मारणान्तिक समुद्घात कहते ह ।

मिथ्यात्व—पदार्थों का अयथार्थ श्रद्धान ।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान—मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव की दृष्टि (श्रद्धा, प्रतिपत्ति) मिथ्या (विपरीत) हो जाना मिथ्यादृष्टि है और मिथ्यादृष्टि जीव के स्वरूप विशेष को मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहते हैं ।

मिथ्यात्व मोहनीय—जिसके उदय से जीव को तत्त्वो के यथार्थ स्वरूप की रुचि न हो । मिथ्यात्व के अशुद्ध दलिको को मिथ्यात्व मोहनीय कहते हैं ।

मिथ्यात्व श्रुत—मिथ्यादृष्टि जीवो के श्रुत को मिथ्यात्व श्रुत कहा जाता है ।

मिश्र गुणस्थान—मिथ्यात्व के अर्ध शुद्ध पुद्गलो का उदय होने से जब जीव की दृष्टि कुछ सम्यक् (शुद्ध) और कुछ मिथ्या (अशुद्ध) अर्थात् मिश्र हो जाती है तब वह जीव मिश्रदृष्टि कहलाता है और उसके स्वरूप विशेष को मिश्र गुणस्थान कहते है । इसका दूसरा नाम सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान भी है ।

मिश्र मनोयोग—किसी अश मे यथार्थ और किसी अश मे अयथार्थ ऐसा चिन्तन जिस मनोयोग के द्वारा हो उसे मिश्र मनोयोग कहते है ।

मिश्र मोहनीय—जिस कर्म के उदय से जीव को यथार्थ की रुचि या अरुचि न होकर दोलायमान स्थिति रहे । मिथ्यात्व के अर्धशुद्ध दलिको को भी मिश्र मोहनीय कहा जाता है ।

मिश्र सम्यक्त्व—सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीयकर्म के उदय से तत्त्व और अतत्त्व इन दोनो की रुचि रूप लेने वाला मिश्र परिणाम ।

मुक्त जीव—सपूर्ण कर्मों का क्षय करके जो अपने ज्ञान, दर्शन आदि भाव प्राणो से युक्त होकर आत्मस्वरूप मे अवस्थित हैं, वे मुक्त जीव कहलाते है ।

मुहूर्त—दो घटिका या ४८ मिनट का समय ।

मूल प्रकृति—कर्मों के मुख्य भेदो को मूल प्रकृति कहते हैं ।

विपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की कर्मों के ग्रहण करने मे कारणभूत शक्ति को योग कहा जाता है।

योगस्थान—स्पर्द्धको के समूह को योगस्थान कहते हैं।

योजन—चार गव्यूत या आठ हजार धनुष का एक योजन होता है।

(र)

रति मोहनीय—जिस कर्म के उदय से सकारण या अकारण पदार्थों मे राग-प्रेम हो।

रथरेणु—आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु होता है।

रस-गौरव—मधुर, अम्ल आदि रसो से अपना गौरव समझना।

रसघात—बधे हुए ज्ञानावरण आदि कर्मों की फल देने की तीव्र शक्ति को अपवर्तनाकरण के द्वारा मद कर देना।

रस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर मे तिक्त, मधुर आदि शुभ, अशुभ रसो की उत्पत्ति हो।

रसबध—जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलो मे फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का होना।

रसविपाकी—रस के आश्रय अर्थात् रस (अनुभाग) की मुख्यता से निर्दिश्यमान विपाक जिस प्रकृति का होता है, उस प्रकृति को रस विपाकी कहते है।

रसाणु—पुद्गल द्रव्य की शक्ति का सबसे छोटा अश।

रसोदय—बधे हुए कर्मों का साक्षात् अनुभव करना।

राजू—प्रमाणागुल से निष्पन्न असख्यात कोटा-कोटी योजन का एक राजू होता है। अथवा श्रेणि के सातवें भाग को राजू कहते है।

रुक्षस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बालू जैसा रूखा हो।

ऋजुमति मन पर्यायज्ञान—दूसरो के मन मे स्थित पदार्थ के सामान्यस्वरूप को जानना।

ऋद्धि गौरव—धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य को ऋद्धि कहते हैं और उससे अपने को महत्वशाली समझना ऋद्धि गौरव है।

ऋषभनाराचसंहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियो की रचना

विशेष मे दोनो तरफ हड्डी का मर्कटबंध हो, तीसरी हड्डी का वेठन भी हो, लेकिन तीनो को भेदने वाली हड्डी की कील न हो।

रोचक सम्यक्त्व—जिनोक्त क्रियाओ मे रुचि रखना।

(ल)

लघु स्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर आक की रूई जैसा हल्का हो।

लता—चौरासी लाख लतांग के समय को एक लता कहते हैं।

लतांग—चौरासी लाख पूर्व का एक लतांग होता है।

लब्धि—ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम विशेष को लब्धि कहते हैं।

लब्धित्रस—वे जीव जिन्हें त्रस नामकर्म का उदय होता है और चलते-फिरते भी हैं।

लब्धि पर्याप्त—वे जीव जिनको पर्याप्त नामकर्म का उदय हो और अपनी योग्य पर्याप्तियो को पूर्ण करके मरते हैं, पहले नही।

लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर—वैक्रियलब्धिजन्य जिस वैक्रिय शरीर से मनुष्य और तिर्यंचो द्वारा विविध विक्रियायें की जाती हैं।

लब्धि भावेन्द्रिय—मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से चेतना शक्ति की योग्यता विशेष।

लब्ध्यक्षर—शब्द को सुनकर या रूप को देखकर अर्थ का अनुभवपूर्वक पर्यालोचन करना।

लब्ध्यपर्याप्त—वे जीव जो स्वयोग्य पर्याप्तियो को पूर्ण किये बिना ही मर जाते है।

लव—सात स्तोक का समय।

लाभान्तराय कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो सके।

लीख—भरत और ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यो के आठ केशाग्रो की एक लीख होती है।

लेश्या—जीव के ऐसे परिणाम जिनके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त हो अथवा कषायोदय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति।

लोभ—धन आदि की तीव्र आकाक्षा या गृद्धता, बाह्य पदार्थों मे 'यह मेरा है' इस प्रकार की अनुराग बुद्धि, ममता आदि रूप परिणाम।

लोमाहार—स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाने वाला आहार।

लोहित वर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सिन्दूर जैसा लाल हो।

(व)

वर्ग—समान दो सख्याओ का आपस मे गुणा करने पर प्राप्त राशि।
सजातीय प्रकृतियो के समुदाय।
अविभागी प्रतिच्छेदो का समूह।

वर्गणा—समान जातीय पुद्गलो का समूह।

वचनयोग—जीव के उस व्यापार को कहते है जो औदारिक, वैक्रिय या आहारक शरीर की क्रिया द्वारा सचय किये हुए भाषा द्रव्य की सहायता से होता है। अथवा भाषा परिणामरूपता को प्राप्त हुए पुद्गल को वचन कहते है और उस सहकारी कारणभूत वचन के द्वारा होने वाले योग को वचनयोग कहते हैं। अथवा वचन को विजय करने वाले योग को या भाषावर्गणा सम्बन्धी पुद्गल स्कन्धो के अवलबन से जो जीव प्रदेशो मे सकोच-विकोच होता है, उसे वचनयोग कहते है।

वज्रऋषभनाराचसहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियो की रचना विशेप मे वज्र-कीली, ऋपभ-वेष्ठन, पट्टी और नाराच—दोनो ओर मर्कट वध हो, अर्थात् दोनो ओर से मर्कट बध से वधी हुई दो हड्डियो पर तीसरी हड्डी का वेठन हो और उन तीनो हड्डियो को भेदने वाली हड्डी की कीली लगी हुई हो।

वर्णनामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर मे कृष्ण गौर आदि रग होते है।

वर्धमान अवधिज्ञान—अपनी उत्पत्ति के समय अल्प विषय वाला होने पर भी परिणाम-विशुद्धि के साथ उत्तरोत्तर अधिकाधिक विपय होने वाला।

वनस्पति काय—जिन जीवो का शरीर वनस्पति मय होता है।

वस्तु श्रुत—अनेक प्राभृतो का एक वस्तु अधिकार होता है। एक वस्तु अधिकार के ज्ञान को वस्तुश्रुत कहते हैं।

वस्तु समास श्रुत—दो-चार वस्तु अधिकारो का ज्ञान।

वामन सस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर वामन (वौना) हो।

वायुकाय—वायु से वनने वाला वायवीय शरीर।

विकल प्रत्यक्ष—चेतना शक्ति के अपूर्ण विकास के कारण जो ज्ञान मूर्त पदार्थों की समग्र पर्यायो भावो को जानने मे असमर्थ हो ।

वितस्ति—दो पाद की एक वितस्ति होती है ।

विनय मिथ्यात्व—सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव, गुरु और उनके कहे हुए शास्त्रो मे समान बुद्धि रखना ।

विपाक—कर्मप्रकृति की विशिष्ट अथवा विविध प्रकार के फल देने की शक्ति को और फल देने के अभिमुख होने का विपाक कहते हैं ।

विपाक-काल—कर्म प्रकृतियो का अपने फल देने के अभिमुख होने का समय ।

विपरीतमिथ्यात्व—धर्मादिक के स्वरूप को विपरीत रूप मानना ।

विपुलमति मन पर्यायज्ञान—चिन्तनीय वस्तु की पर्यायो को विविध विशेपताओ सहित स्फुटता से जानना ।

विभगज्ञान—मिथ्यात्व के उदय से रूपी पदार्थों के विपरीत अवधिज्ञान को विभगज्ञान कहते हैं ।

विरति—हिंसादि सावद्य व्यापारो अर्थात् पापजनक प्रयत्नो से अलग हो जाना ।

विशुद्ध्यमानक सूक्ष्मसपराय सयम—उपशमश्रेणि या क्षपकश्रेणि का आरोहण करने वालो को दसवें गुणस्थान की प्राप्ति के समय होने वाला सयम ।

विशेपबन्ध—किसी खास गुणस्थान या किसी खास गति आदि को लेकर जो वध कहा जाता है उसे विशेपवध कहते हैं ।

विसयोजना—प्रकृति के क्षय होने पर भी पुन वध की सम्भावना बनी रहे ।

विहायोगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव की चाल हाथी, बैल आदि की चाल के समान शुभ या ऊँट, गधे की चाल के समान अशुभ होती है ।

वीर्यान्तरायकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव शक्तिशाली और निरोग होते हुए भी कार्य विशेप मे पराक्रम न कर सके, शक्ति सामर्थ्य का उपयोग न कर सके ।

वेद—जिसके द्वारा इन्द्रियजन्य, सयोगजन्य सुख का वेदन किया जाये । अथवा मैथुन सेवन करने की अभिलाषा को वेद कहते है । अथवा वेद मोहनीय-कर्म के उदय, उदीरणा से होने वाला जीव के परिणामो का सम्मोह (चचलता) जिससे गुण-दोष का विवेक नही रहता ।

वेदक सम्यक्त्व—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व मे विद्यमान जीव सम्यक्त्व मोहनीय के अन्तिम पुद्गल के रस का अनुभव करता है उस समय के उसके परिणाम।

वेदना समुद्घात—तीव्र वेदना के कारण होने वाला समुद्घात।

वेदनीय कर्म—जिसके उदय से जीव को सासारिक इन्द्रियजन्य सुख-दु ख का अनुभव हो।

वैक्रिय अंगोपाग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर रूप परिणत पुद्गलो से अगोपाग रूप अवयव निर्मित होते है।

वैक्रियकाययोग—वैक्रिय शरीर के द्वारा होने वाले वीर्य-शक्ति के व्यापार को वैक्रिय काययोग कहते है। अथवा वैक्रिय शरीर के अवलम्बन से उत्पन्न हुए परिस्पन्द द्वारा जो प्रयत्न होता है, उसे वैक्रियकाययोग कहा जाता है।

वैक्रियकार्मणबधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर पुद्गलो का कार्मण पुद्गलो के साथ सम्बन्ध हो।

वैक्रियतैजसकार्मणबधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर पुद्गलो का तैजस-कार्मण पुद्गलो के साथ सम्बन्ध हो।

वैक्रियतैजसबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर पुद्गलो का तैजस पुद्गलो के साथ सम्बन्ध हो।

वैक्रियमिश्र काय—वैक्रिय शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होने के प्रथम समय से लगाकर शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्त के मध्यवर्ती अपूर्ण शरीर को वैक्रियमिश्र काय कहते हैं।

वैक्रियमिश्र काययोग—वैक्रिय और कार्मण तथा वैक्रिय और औदारिक इन दो-दो शरीरो के मिश्रत्व के द्वारा होने वाला वीर्य-शक्ति का व्यापार।

वैक्रियवैक्रियबधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत वैक्रिय शरीर पुद्गलो के साथ गृह्यमाण वैक्रिय शरीर पुद्गलो का आपस मे मेल होता है।

वैक्रिय वर्गणा—वे वर्गणाएँ जिनसे वैक्रिय शरीर बनता है।

वैक्रिय शरीर—जिस शरीर के द्वारा छोटे-बडे, एक-अनेक, विविध विचित्र रूप बनाने की शक्ति प्राप्त हो तथा जो शरीर वैक्रिय शरीर वर्गणाओ से निष्पन्न हो।

वैक्रियशरीर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को वैक्रियशरीर प्राप्त हो।

वैक्रियशरीरयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—वैक्रियशरीर के ग्रहणयोग्य जघन्य वर्गणा से उसके अनन्तवें भाग अधिक स्कन्धो की वैक्रियशरीरयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

वैक्रियशरीरयोग्य जघन्य वर्गणा—औदारिक शरीर के अग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कन्धो से एक अधिक परमाणु वाले स्कन्धो की समूह रूप वर्गणा।

वैक्रियसघातन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर रूप परिणत पुद्गलो का परस्पर सान्निध्य हो।

वैक्रियसमुद्घात—वैक्रिय शरीर के निमित्त से होने वाला समुद्घात।

वैनयिकी बुद्धि—गुरुजनो आदि की सेवा से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

व्यजन—पदार्थ के ज्ञान को अथवा जिसके द्वारा पदार्थ का वोध किया जाता है।

व्यजनाक्षर—जिससे अकार आदि अक्षरो के अर्थ का स्पष्ट वोध हो। अथवा अक्षरो के उच्चारण को व्यजनाक्षर कहते हैं।

व्यजनावग्रह—अव्यक्त ज्ञान रूप अर्थावग्रह से पहले होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान।

व्यवहार परमाणु—अनन्त निश्चय परमाणुओ का एक व्यवहार परमाणु होता है।

व्यवहार सम्यक्त्व—कुगुरु, कुदेव और कुमार्ग को त्याग कर सुगुरु, सुदेव और सुमार्ग को स्वीकार करना, उनकी श्रद्धा करना।

व्रतयुक्तता—हिंसादि पापो से विरत होना व्रत है। अणुव्रतो या महाव्रतो के पालन करने को व्रतयुक्तता कहते है।

(श)

शरीर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के औदारिक, वैक्रिय आदि शरीर बनें अथवा औदारिक आदि शरीरो की प्राप्ति हो।

शरीर पर्याप्ति—रस के रूप मे बदल दिये गये आहार को रक्त आदि सात धातुओ के रूप मे परिणमाने की जीव की शक्ति की पूर्णता।

शलाकापल्य—जिस पल्य को एक-एक साक्षीभूत सरसो के दाने से भरा जाता है, उसे शलाकापल्य कहते है।

शीतस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर वर्फ जैसा ठडा हो।

शीर्षप्रहेलिका—चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकाग की एक शीर्षप्रहेलिका होती है।

शीर्षप्रहेलिकाग—चौरासी लाख चूलिका का एक शीर्षप्रहेलिकाग कहलाता है।

शुक्ललेश्या—शख के समान श्वेतवर्ण के लेश्या जातीय पुद्गलो के सम्वन्ध से आत्मा के ऐसे परिणामो का होना कि जिनसे कषाय उपशान्त रहती है, वीतराग-भाव सम्पादन करने की अनुकूलता आ जाती है।

शुभ नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर मे नाभि से ऊपर के अवयव शुभ हो।

शुभविहायोगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव की चाल हाथी, वैल की चाल की तरह शुभ हो।

श्रुतज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है जिसमे शब्द और अर्थ का सम्वन्ध भासित होता है, जो मतिज्ञान के बाद होता है तथा शब्द और अर्थ की पर्यालोचना के अनुसरणपूर्वक इन्द्रिय व मन के निमित्त से होने वाला है, उसे श्रुतज्ञान कहते है।

श्रुतअज्ञान—मिथ्यात्व के उदय से सहचरित श्रुतज्ञान।

श्रुतज्ञानावरणकर्म—श्रुतज्ञान का आवरण करने वाला कर्म।

श्रेणि—सात राजू लबी आकाश के एक-एक प्रदेश की पक्ति।

श्रेणिगत सासादनसम्यग्दृष्टि—वह जीव जो उपशमश्रेणि से गिरकर सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है।

शैलेशी अवस्था—मेरु पर्वत के समान निश्चल अथवा सर्व सवर रूप योग निरोध की अवस्था।

शैलेशीकरण—वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीन कर्मों की असख्यात गुणश्रेणि से और आयुकर्म की यथास्थिति से निर्जरा करना।

शोकमोहनीय—जिस कर्म के उदय से कारणवश या बिना कारण ही शोक होता है।

श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका—आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है।

श्वासोच्छ्वास—शरीर से बाहर की वायु को नाक के द्वारा अन्दर खीचना और अन्दर की हवा को बाहर निकालना श्वासोच्छ्वास कहलाता है।

श्वासोच्छ्वास काल—रोगरहित निश्चिन्त तरुण पुरुप के एक वार श्वास लेने और त्यागने का काल।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति—श्वासोच्छ्वासयोग्य पुद्गलो को ग्रहण कर श्वासोच्छ्वास रूप परिणत करके उनका सार ग्रहण करके उन्हें वापस छोडने की जीव की शक्ति की पूर्णता।

श्वासोच्छ्वासयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—श्वासोच्छ्वासयोग्य जघन्य वर्गणा के ऊपर एक-एक प्रदेश वढते-वढते जघन्य वर्गणा के स्कन्ध के प्रदेशो के अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धो की श्वासोच्छ्वासयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

श्वासोच्छ्वासयोग्य जघन्य वर्गणा—भापायोग्य उत्कृष्ट वर्गणा के वाद की उत्कृष्ट अग्रहणयोग्य वर्गणा के स्कन्धो से एक प्रदेश अधिक स्कन्धो की वर्गणा श्वासोच्छ्वासयोग्य जघन्य वर्गणा होती है।

(स)

सक्लिश्यमान सूक्ष्मसपराय सयम—उपशमश्रेणि से गिरने वाले जीवो के दसवें गुणस्थान की प्राप्ति के समय होने वाला सयम।

सक्रमण—एक कर्म रूप मे स्थित प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश का अन्य सजातीय कर्म रूप मे वदल जाना अथवा वीर्यविशेप से कर्म का अपनी ही दूसरी सजातीय कर्म प्रकृति स्वरूप को प्राप्त कर लेना।

सख्या—भेदो की गणना को सख्या कहा जाता है।

सख्या अनुयोगद्वार—जिस अनुयोग द्वार मे विवक्षित धर्म वाले जीवो की सख्या का विवेचन हो।

सख्याताणुवर्गणा—सख्यात प्रदेशी स्कन्धो की सख्याताणुवगणा होती है।

सघनिन्दा—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप सघ की निन्दा, गर्हा करने को सघनिन्दा कहते हैं।

सघात नामकर्म—जिस कर्म के उदय से प्रथम ग्रहण किये हुए शरीर पुद्गलो पर नवीन ग्रहण किये जा रहे शरीरयोग्य पुद्गल व्यवस्थित रूप से स्थापित किये जाते हैं।

सघात श्रुत—गति आदि चौदह मार्गणाओ मे से किसी एक मार्गणा का एकदेश ज्ञान।

संघात समासश्रुत—किसी एक मार्गणा के अनेक अवयवो का ज्ञान।

सज्वलन कषाय—जिस कषाय के उदय से आत्मा को यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति न हो तथा सर्वविरति चारित्र के पालन मे बाधा हो।

संज्ञा—नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम या तज्जन्य ज्ञान को अथवा अभिलाषा को सज्ञा कहते है।

सज्ञाक्षर—अक्षर की आकृति, बनावट, सस्थान आदि जिसके द्वारा यह जाना जाये कि यह अमुक अक्षर है।

सज्ञित्व—विशिष्ट मनशक्ति, दीर्घकालिकी सज्ञा का होना।

सज्ञी—बुद्धिपूर्वक इष्ट-अनिष्ट मे प्रवृत्ति-निवृत्ति करने वाले जीव। अथवा सम्यग्ज्ञान रूपी सज्ञा जिनको हो, उन्हे सज्ञी कहते हैं। जिनके लब्धि या उपयोग रूप मन पाया जाये उन जीवो को सज्ञी कहते है।

सज्ञीश्रुत—सज्ञी जीवो का श्रुत।

सभव सत्ता—किसी कर्म प्रकृति की अमुक समय मे सत्ता न होने पर भी भविष्य मे सत्ता की सभावना मानना।

सयम—सावद्य योगो—पापजनक प्रवृत्तियो—से उपरत हो जाना, अथवा पापजनक व्यापार—आरम्भ-समारम्भ से आत्मा को जिसके द्वारा सयमित-नियमित किया जाता है उसे सयम कहते है अथवा पाँच महाव्रतो रूप यमो के पालन करने या पाँच इन्द्रियो के जय को सयम कहते हैं।

सवर—आस्रव का निरोध सवर कहलाता है।

सवासानुमति—पुत्र आदि अपने सम्बन्धियो के पापकर्म मे प्रवृत्त होने पर भी उन पर सिर्फ ममता रखना।

सवेध—परस्पर एक समय मे अविरोध रूप से मिलना।

सस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर के भिन्न-भिन्न शुभ या अशुभ आकार वनें।

ससारी जीव—जो अपने यथायोग्य द्रव्यप्राणो और ज्ञानादि भावप्राणो से युक्त होकर नरकादि चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण करते हैं।

सहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हाडो का आपस मे जुड जाना अर्थात् रचना विशेष होती है।

सासयिक मिथ्यात्व—समीचीन और असमीचीन दोनो प्रकार के पदार्थों मे से

किसी भी एक का निश्चय न होना । अथवा सशय से उत्पन्न होने वाला मिथ्यात्व । अथवा-देव-गुरु-धर्म के विषय मे सदेहशील बने रहना ।

सकलप्रत्यक्ष—सम्पूर्ण पदार्थों को उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायो सहित युगपत जानने वाला ज्ञान ।

सत्ता—बध समय या सक्रमण समय से लेकर जब तक उन कर्म परमाणुओ का अन्य प्रकृति रूप से सक्रमण नही होता या उनकी निर्जरा नही होती तब तक उनका आत्मा से लगे रहना ।

बधादि के द्वारा स्व स्वरूप को प्राप्त करने वाले कर्मों की स्थिति ।

सत्तास्थान—जिन प्रकृतियो की सत्ता एक साथ पाई जाये उनका समुदाय ।

सत्य मनोयोग—जिस मनोयोग के द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का विचार किया जाता है । अथवा सद्भाव अर्थात् समीचीन पदार्थों को विषय करने वाले मन को सत्यमन और उसके द्वारा होने वाले योग को सत्य मनोयोग कहते है ।

सत्यमृषा मनोयोग—सत्य और मृषा (असत्य) से मिश्रित मनोयोग ।

सत्यमृषा वचनयोग—सत्य और मृषा से मिश्रित वचनयोग ।

सत्य वचनयोग—जिस वचनयोग के द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का कथन किया जाता है । सत्य वचन वर्गणा के निमित्त से होने वाला योग ।

सदनुयोगद्वार—विवक्षित धर्म का मार्गणाओ मे बतलाया जाना कि किन मार्गणाओ मे वह धर्म है और किन मार्गणाओ मे नहीं है ।

सद्भाव सत्ता—जिस कर्म की सत्ता अपने स्वरूप से हो ।

सपर्यवसित श्रुत—अन्तहीन श्रुत ।

समचतुरस्र—पालथी मारकर बैठने पर जिस शरीर के चारो कोण समान हो, यानी आसन और कपाल का अन्तर, दोनो घुटनो का अन्तर, दाहिने कधे और बायें जानु का अन्तर, बायें कधे और दाहिने जानु का अन्तर समान हो ।

समचतुरस्र सस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से समचतुरस्र सस्थान की प्राप्ति हो अथवा सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जिस शरीर के सम्पूर्ण अवयव शुभ हो ।

समय—काल का अत्यन्त सूक्ष्म अविनाशी अश ।

समास—अधिक, समुदाय या सग्रह ।

समुद्घात—मूल शरीर को छोडे बिना ही आत्मा के प्रदेशो का बाहर निकलना।

सयोगिकेवली—वे जीव जिन्होने चार घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान और दर्शन प्राप्त कर लिया है जो पदार्थ के जानने देखने मे इन्द्रिय आलोक आदि की अपेक्षा नही रखते और योग (आत्मवीर्य शक्ति उत्साह पराक्रम) से सहित है।

सयोगिकेवली गुणस्थान—सयोगिकेवली के स्वरूप विशेष को कहते हैं।

सयोगिकेवली यथाख्यातसयम—सयोगिकेवली का यथाख्यातसयम ।

सम्यक् श्रुत—सम्यग्दृष्टि जीवो का श्रुत ।

सम्यक्त्व—छह द्रव्य, पच अस्तिकाय, नव तत्त्वो का जिनेन्द्र देव ने जैसा कथन किया है, उसी प्रकार से उनका श्रद्धान करना अथवा तत्त्वार्थ श्रद्धान् ।

मोक्ष के अविरोधी आत्मा के परिणाम को सम्यक्त्व कहते हैं।

सम्यक्त्वमोहनीय—जिसका उदय तात्त्विक रुचि का निमित्त होकर भी औपशमिक या क्षायिक भाव वाली तत्त्व रुचि का प्रतिबध करता है।

सम्यक्त्व का घात करने मे असमर्थ मिथ्यात्व के शुद्ध दलिको को सम्यक्त्व मोहनीय कहते हैं ।

सविपाक निर्जरा—यथाक्रम से परिपाक काल को प्राप्त और अनुभव के लिए उदयावलि के स्रोत मे प्रविष्ट हुए शुभाशुभ कर्मों का फल देकर निवृत्त होना ।

सागरोपम—दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

सात गौरव—शरीर के स्वास्थ्य, सौन्दर्य आदि का अभिमान करना ।

सातावेदनीय कर्म—जिस कर्म के उदय से आत्मा को इन्द्रिय-विषय सम्बन्धी सुख का अनुभव हो ।

सातिचार छेदोपस्थापनीय सयम—जो किसी कारण से मूल गुणो–महाव्रतो के भग हो जाने पर पुन ग्रहण किया जाता है ।

सादि-अनन्त—जो आदि सहित होकर भी अनन्त हो ।

सादि बध—वह बध जो रुककर पुन होने लगता है ।

सादिश्रुत—जिस श्रुत ज्ञान की आदि (आरम्भ शुरूआत) हो ।

सादिसान्त—जो बध या उदय बीच मे रुककर पुन प्रारम्भ होता है और कालान्तर मे पुनः व्युच्छिन्न हो जाता है ।

सादिसस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से नाभि से ऊपर के अवयव हीन-पतले और नाभि से नीचे के अवयव पूर्ण मोटे हो।

साधारण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवो का एक शरीर हो अर्थात् अनन्त जीव एक शरीर के स्वामी बनें।

सान्निपातिक भाव—दो या दो से अधिक मिले हुए भाव।

सान्तर स्थिति—प्रथम और द्वितीय स्थिति के बीच मे कर्म दलिको से शून्य अवस्था।

सामायिक—रागद्वेष के अभाव को समभाव कहते हैं और जिस सयम से समभाव की प्राप्ति हो अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र को सम कहते हैं और उनकी आय-लाभ प्राप्ति होने को समाय तथा समाय के भाव को अथवा समाय को सामायिक कहा जाता है।

सासादन सम्यक्त्व—उपशम सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व के अभिमुख हुआ जीव जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नही करता है, तब तक के उसके परिणाम विशेप को सासादन सम्यक्त्व कहते हैं।

सासादन सम्यग्दृष्टि—जो औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबधी कषाय के उदय से सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व की ओर अभिमुख हो रहा है, किन्तु अभी मिथ्यात्व को प्राप्त नही हुआ, उतने समय के लिए वह जीव सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

सासादन गुणस्थान—सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के स्वरूप विशेष को कहते हैं।

सितवर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शख जैसा सफेद हो।

सिद्ध पद—जिन ग्रन्थो के सब पद सर्वज्ञोक्त अर्थ का अनुसरण करने वाले होने से सुप्रतिष्ठित है उन ग्रन्थो को, अथवा जीवस्थान गुणस्थानो को सिद्ध पद कहते है।

सुभग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव किसी प्रकार का उपकार न करने पर भी और किसी प्रकार का सम्बन्ध न होने पर भी सभी को प्रिय लगता हो।

सुरभिगध नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर मे कपूर, कस्तूरी आदि पदार्थों जैसी सुगन्ध हो।

सुस्वर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर श्रोता को प्रिय लगता है।

सूक्ष्म नामकर्म—जिस कर्म के उदय से परस्पर व्याघात से रहित सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति हो। यह शरीर स्वय न किसी से रुकता है और न अन्य किसी को रोकता है।

सूक्ष्म अद्धापल्योपम—सूक्ष्म उद्धार पल्य मे से सौ-सौ वर्ष के बाद केशाग्र का एक-एक खड निकालने पर जितने समय मे वह पल्य खाली हो जाता है उतने समय को सूक्ष्म अद्धापल्योपम कहते है।

सूक्ष्म अद्धासागरोपम—दस कोटा-कोटी सूक्ष्म अद्धापल्योपम का एक सूक्ष्म अद्धा-सागरोपम कहलाता है।

सूक्ष्म उद्धार पल्योपम—द्रव्य, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यातगुणी सूक्ष्म अवगाहना वाले केशाग्र खडो से पल्य को ठसाठस भरकर प्रति समय उन केशाग्र खडो मे से एक-एक खड को निकालने पर जितने समय मे वह पल्य खाली हो, उतने समय को सूक्ष्म उद्धार पल्योपम कहते है।

सूक्ष्म उद्धार सागरोपम—दस कोटाकोटी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम होता है।

सूक्ष्मकाल पुद्‌गल परावर्त—जितने समय मे एक जीव अपने मरण के द्वारा उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के समयो को क्रम से स्पर्श कर लेता है।

सूक्ष्मक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान—जिस शुक्लध्यान मे सर्वज्ञ भगवान द्वारा योग निरोध के क्रम मे अनन्त सूक्ष्म काययोग के आश्रय से अन्य योगो को रोक दिया जाता है।

सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम—बादर क्षेत्र पल्य के बालाग्रो मे से प्रत्येक के असख्यात खड करके पल्य को ठसाठस भर दो। वे खड उस पल्य मे आकाश के जितने प्रदेशो को स्पर्श करे और जिन प्रदेशो को स्पर्श न करें, उनसे प्रति समय एक-एक प्रदेश का अवहरण करते-करते जितने समय मे स्पृष्ट और अस्पृष्ट सभी प्रदेशो का अवहरण किया जाता है, उतने समय को एक सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम कहते हैं।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्‌गल परावर्त—कोई एक जीव ससार मे भ्रमण करते हुए आकाश

के किसी एक प्रदेश मे मरण करके पुन उस प्रदेश के समीपवर्ती दूसरे प्रदेश मे मरण करता है, पुन उसके निकटवर्ती तीसरे प्रदेश मे मरण करता है। इस प्रकार अनन्तर-अनन्तर प्रदेश मे मरण करते हुए जब समस्त लोकाकाश के प्रदेशो मे मरण कर लेता है तब उतने समय को सूक्ष्म क्षेत्रपुद्गल परावर्त कहते हैं।

सूक्ष्मक्षेत्र सागरोपम—दस कोटाकोटी सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का एक सूक्ष्मक्षेत्र सागरोपम होता है।

सूक्ष्मद्रव्यपुद्गल परावर्त—जितने समय मे समस्त परमाणुओ को औदारिक आदि सातो वर्गणाओ मे से किसी एक वर्गणा रूप से ग्रहण करके छोड देता है।

सूक्ष्मभावपुद्गल परावर्त—जितने समय मे एक जीव अपने मरण के द्वारा अनुभाग बध के कारणभूत कपायस्थानो को क्रम से स्पर्श कर लेता है।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान—जिसमे सपराय अर्थात् लोभ कपाय के सूक्ष्म खडो का ही उदय हो।

सूक्ष्मसपराय सयम—क्रोधादि कपायो द्वारा ससार मे परिभ्रमण होता है अत, उनको सपराय कहते हैं। जिस सयम मे सपराय (कपाय का उदय) सूक्ष्म (अतिस्वल्प) रहता है।

सेवार्तसहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियो की रचना मे मर्कट बध, बेठन और कीलन न होकर दो ही हड्डियाँ आपस मे जुडी हो।

स्तिबुकसक्रम—अनुदयवर्ती कर्म प्रकृतियो के दलिको को सजातीय और तुल्य स्थितिवाली उदयवर्ती कर्मप्रकृतियो के रूप मे बदलकर उनके दलिको के साथ भोग लेना।

स्तोक—सात श्वासोच्छ्वास काल के समय प्रमाण को स्तोक कहते है।

स्त्यानर्द्धि—जिस कर्म के उदय से जाग्रत अवस्था मे सोचे हुए कार्य को निद्रावस्था मे करने की सामर्थ्य प्रकट हो जाए। अथवा जिस निद्रा के उदय से निद्रित अवस्था मे विशेष बल प्रगट हो जाए। अथवा जिस निद्रा मे दिन मे चिन्तित अर्थ और साधन विषयक आकाक्षा का एकत्रीकरण हो जाये।

स्त्रीवेद—जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा हो।

स्थावर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव स्थिर रहे, सर्दी-गर्मी से बचने का प्रयत्न करने की शक्ति न हो ।

स्थितकल्पी—जो आचेलक्य, औद्देशिक, शय्यातर पिंड, राजपिंड, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण, मास और पर्यूषण इन दस कल्पो मे स्थित हैं ।

स्थितास्थितकल्पी—जो शय्यातरपिंड, व्रत, ज्येष्ठ और कृति कर्म इन चार कल्पो मे स्थित तथा शेष छह कल्पो मे अस्थित हैं ।

स्थिति—विवक्षित कर्म के आत्मा के साथ लगे रहने का काल ।

स्थितिघात—कर्मों की बडी स्थिति को अपवर्तनाकरण द्वारा घटा देने अर्थात् जो कर्म दलिक आगे उदय मे आने वाले हैं उन्हे अपवर्तनाकरण के द्वारा अपने उदय के नियत समय से हटा देना स्थितिघात है ।

स्थितिबंध—जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्‌गलो मे अमुक समय तक अपने-अपने स्वभाव का त्याग न कर जीव के साथ रहने की काल मर्यादा का होना ।

स्थितिबंध अध्यवसाय—कषाय के उदय से होने वाले जीव के जिन परिणाम विशेषो से स्थितिबंध होता है, उन परिणामो को स्थितिबंध अध्यवसाय कहते हैं ।

स्थितिस्थान—किसी कर्म प्रकृति की जघन्य स्थिति से लेकर एक-एक समय बढते-बढते उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त स्थिति के भेद ।

स्थिर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के दांत, हड्डी, ग्रीवा आदि शरीर के अवयव स्थिर हो अपने-अपने स्थान पर रहे ।

स्निग्धस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर घी के समान चिकना हो ।

स्पर्द्धक—वर्गणाओ के समूह को स्पर्द्धक कहते हैं ।

स्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर का स्पर्श कर्कश, मृदु, स्निग्ध, रूक्ष आदि रूप हो ।

स्पर्शन अनुयोगद्वार—विवक्षित धर्म वाले जीवो द्वारा किये जाने वाले क्षेत्र स्पर्श का समुच्चय रूप से निर्देश करना ।

स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह—स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान ।

(ह)

हाथ—दो वितस्ति के माप को हाथ कहते हैं।

हारिद्रवर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर हल्दी जैसा पीला हो।

हास्य मोहनीय—जिस कर्म के उदय से कारणवश अथवा बिना कारण के हँसी आती है।

हीयमान अवधिज्ञान—अपनी उत्पत्ति के समय अधिक विषय वाला होने पर भी परिणामों की अशुद्धि के कारण दिनोंदिन क्रमश अल्प, अल्पतर, अल्पतम विषयक होने वाला अवधिज्ञान।

हुण्डसस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर के सभी अवयव बेडौल हों, यथायोग्य प्रमाण युक्त न हों।

हुहु—चौरासी लाख हुहु-अग का एक हुहु होता है।

हुहु-अग—चौरासी लाख अवव की सख्या।

हेतुवादोपदेशिकी सज्ञा—अपने शरीर के पालन के लिए इष्ट मे प्रवृत्ति और अनिष्ट वस्तु से निवृत्ति के लिए उपयोगी सिर्फ वर्तमानकालिक ज्ञान जिससे होता है, वह हेतुवादोपदेशिकी सज्ञा है।

हेतुविपाकी—पुद्गलादि रूप हेतु के आश्रय से जिस प्रकृति का विपाक—फलानुभव होता है।

परिशिष्ट ३

कर्मग्रन्थों की गाथाओं एवं व्याख्या में आगत पिण्डप्रकृति-सूचक शब्दों का कोष

(अ)

अगुरुलघुचतुष्क—अगुरुलघु नाम, उपघातनाम, पराघातनाम, उच्छ्वासनाम।

अघातिचतुष्क—वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र कर्म।

अज्ञानत्रिक—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभगज्ञान (अवधि-अज्ञान)

अनन्तानुबधी एकत्रिशत्–(अनन्तानुबधी क्रोध आदि ३१ प्रकृतियाँ) अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, न्यग्रोध परिमडल, सादि, वामन, कुब्ज सस्थान, वज्रऋषभनाराच सहनन, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका सहनन, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग नाम, दु स्वर नाम, अनादेय नाम, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि, उद्योत नाम, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग।

अनन्तानुबधी चतुर्विशति—(अनन्तानुबधी क्रोध आदि २४ प्रकृतियाँ) अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, न्यग्रोध परिमडल, सादि, वामन, कुब्ज सस्थान, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका सहनन, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग नाम, दु स्वर नाम, अनादेय नाम, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि, उद्योत नाम, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी।

अनन्तानुबधीचतुष्क—अनन्तानुबधी, क्रोध मान, माया, लोभ।

अनन्तानुबधी षड्विशति—(अनन्तानुबधी क्रोध आदि २६ प्रकृतियाँ) अनन्तानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, न्यग्रोधपरिमडल, सादि, वामन, कुब्ज सस्थान, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका सहनन, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग नाम, दु स्वर नाम, अनादेय नाम,

निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि, उद्योत नाम, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु, मनुष्यायु।

अनादेयद्विक—अनादेय नाम, अयश कीर्ति नाम।

अंगोपांगत्रिक—औदारिक अंगोपांग, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक अंगोपांग।

अंतरायपंचक—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय।

अंतिम संहननत्रिक—अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त संहनन।

अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ।

अपर्याप्तषट्क—अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय।

अवधिद्विक—अवधिज्ञान, अवधिदर्शन।

अस्थिरद्विक—अस्थिर नाम, अशुभ नाम।

अस्थिरषट्क—अस्थिर नाम, अशुभ नाम, दुर्भग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम, अयश कीर्ति नाम।

(आ)

आकृतित्रिक—(१) समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन, कुब्ज, हुंड संस्थान, (२) वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त संहनन, (३) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति।

आतपद्विक—आतप नाम, उद्योत नाम।

आयुत्रिक—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु।

आवरण नवक—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय, केवल ज्ञानावरण; चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शनावरण।

आहारकद्विक—आहारक शरीर नाम, आहारक अंगोपांग नाम।

आहारकसप्तक—आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक संघात, आहारक-आहारक बंधन, आहारक-तैजस बंधन, आहारक-कार्मण बंधन, आहारक-तैजस-कार्मण बंधन नाम।

आहारकषट्क—आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु।

(उ)

उच्छ्वासचतुष्क—उच्छ्वास, आतप, उद्योत, पराघात नाम।

उद्योतचतुष्क—उद्योत नाम, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु।

उद्योतत्रिक—उद्योत नाम, आतप नाम, पराघात नाम।

उद्योतद्विक—उद्योत नाम, आतप नाम।

(ए)

एकेन्द्रियत्रिक—एकेन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम।

(औ)

औदारिकद्विक—औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग नाम।

औदारिकसप्तक—औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, औदारिक सघात औदारिक-औदारिक बधन, औदारिक-तैजस बधन, औदारिक कार्मण बधन, औदारिक-तैजस-कार्मण बधन नाम।

(क)

कषायपचविंशतिः—(कषाय मोहनीय के २५ भेद) अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद।

कषायषोडशक—अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।

केवलद्विक—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण।

(ख)

खगतिद्विक—शुभ विहायोगति नाम, अशुभ विहायोगति नाम।

(ग)

गंधद्विक—सुरभिगध नाम, दुरभिगध नाम।

गतित्रिक—गति नाम, आनुपूर्वी नाम, आयुकर्म।

गतिद्विक—गति नाम, आनुपूर्वी नामकर्म।

गोत्रद्विक—नीचगोत्र, उच्चगोत्र कर्म।

ज्ञानत्रिक—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान।

ज्ञानावरणपंचक—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्याय-
ज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण।

ज्ञानावरण-अंतरायदशक—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यायज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण, ज्ञानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय।

(घ)

घातिचतुष्क—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय कर्म।

(ज)

जातिचतुष्क—एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति।

जातित्रिक—(१) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, (२) नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवगति, (३) शुभ विहायोगति, अशुभ विहायोगति।

जिनपंचक—तीर्थंकर नाम, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग नाम।

जिनैकादश—(तीर्थंकर आदि ११ प्रकृतियाँ) तीर्थंकर नाम, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु।

(त)

तिर्यंचत्रिक—तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु ।

तिर्यंचद्विक—तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी ।

तृतीय कषाय—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ ।

तैजसकार्मणसप्तक—तैजस शरीर, कार्मण शरीर, तैजस-तैजस बधन, तैजस-कार्मण बधन, कार्मण-कार्मण बधन, तैजस सघातन, कार्मण सघातन ।

तैजसचतुष्क—तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण नाम ।

त्रसचतुष्क—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक नाम ।

त्रसत्रिक—त्रस, बादर, पर्याप्त नाम ।

त्रसदशक—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति नाम ।

त्रसद्विक—त्रस नाम, बादर नाम ।

त्रसनवक—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय नाम ।

त्रसषट्क—त्रस नाम, बादर नाम, पर्याप्त नाम, प्रत्येक नाम, स्थिर नाम, शुभ नाम ।

त्रसादि वीस—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति नाम ।

(द)

दर्शनचतुष्क—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ।

दर्शनत्रिक—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन ।

दर्शनद्विक—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन ।

दर्शनावरणचतुष्क—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ।

दर्शनावरणषट्क—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवल-दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला ।

दर्शनमोहत्रिक—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय ।

दर्शनमोहसप्तक—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय, अनन्तानु-बधी क्रोध, मान, माया, लोभ ।

दुर्भगचतुष्क—दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति नाम ।

दुर्भगत्रिक—दुर्भग नाम, दु:स्वर नाम, अनादेय नाम ।
द्वितीय कषाय—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ ।
देवत्रिक—देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु ।
देवद्विक—देवगति, देवानुपूर्वी ।
दो युगल—हास्य-रति, शोक-अरति ।

(न)

नपुंसक चतुष्क—नपुंसक वेद, मिथ्यात्व मोहनीय, हुंडसंस्थान, सेवार्तसंहनन ।
नरत्रिक—मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यायु ।
नरद्विक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी ।
नरकत्रिक—नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु ।
नरकद्विक—नरकगति, नरकानुपूर्वी ।
नरकद्वादश—नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम ।
नरकनवक—नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति ।
नरकषोडश—(नरकगति आदि १६ प्रकृतियाँ) नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम, अपर्याप्त नाम, साधारण नाम, हुंड संस्थान, सेवार्त संहनन, आतप नाम, नपुंसकवेद, मिथ्यात्वमोहनीय ।
निद्राद्विक—निद्रा, प्रचला ।
निद्रापंचक—निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि ।
नोकषायनवक—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ।

(प)

(ब)

बंधनपंचक—औदारिक शरीर बधन, वैक्रिय शरीर बधन, आहारक शरीर बधन, तैजस शरीर बधन, कार्मण शरीर बधन नाम ।

बधकपचदश—औदारिक-औदारिक बधन, औदारिक-तैजस बधन, औदारिक-कार्मण बधन, औदारिक-तैजस-कार्मण बधन, वैक्रिय-वैक्रिय बधन, वैक्रिय-तैजस बधन, वैक्रिय-कार्मण बधन, वैक्रिय-तैजस-कार्मण बधन, आहारक-आहारक बधन, आहारक-तैजस बधन, आहारक-कार्मण बधन, आहारक-तैजस-कार्मण बधन, तैजस-तैजस बधन, तैजस-कार्मण बधन, कार्मण-कार्मण बधन नाम ।

(म)

मध्यमसंस्थानचतुष्क—न्यग्रोधपरिमडल, सादि, वामन, कुब्ज सस्थान ।

मध्यमसहननचतुष्क—ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका सहनन ।

मनुष्यत्रिक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी मनुष्यायु ।

मनुष्यद्विक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी ।

मिथ्यात्वत्रिक—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र दृष्टि ।

मिथ्यात्वद्विक—मिथ्यात्व, सासादन ।

(र)

रसपचक—तिक्तरस, कटुरस, कषायरस, अम्लरस, मधुररस ।

(व)

वर्णचतुष्क नाम (वर्ण)—वर्णनाम, गधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम ।

वर्णपचक—कृष्ण वर्ण, नील वर्ण, लोहित वर्ण, हारिद्र वर्ण, श्वेत वर्ण नाम ।

वर्णादि बीस—पांच वर्ण, पांच रस, दो गध, आठ स्पर्श नामकर्म ।

विकलत्रिक—द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति नाम ।

विहायोगतिद्विक—शुभ विहायोगति, अशुभ विहायोगति नाम ।

वेदत्रिक—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद ।

वेदनीयद्विक—सातावेदनीय, असातावेदनीय ।

वैक्रिय-अष्टक—वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु ।

वैक्रिय-एकादश—देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर,

वैक्रिय अगोपाग, वैक्रिय सघात, वैक्रिय-वैक्रिय बधन, वैक्रिय-तैजस बधन, वैक्रिय-कार्मण बधन, वैक्रिय-तैजस-कार्मण बधन ।

वैक्रियद्विक—वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग ।

वैक्रियषट्क—वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवगति, देवानुपूर्वी ।

(श)

शरीरपचक—औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर नाम ।

(स)

सघातनपचक—औदारिक सघातन, वैक्रिय सघातन, आहारक सघातन, तैजस सघातन, कार्मण सघातन नाम ।

सज्वलनकषायचतुष्क—सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ।

सज्वलनकषायत्रिक—सज्वलन क्रोध, मान, माया ।

सज्ञीद्विक—सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त, सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त ।

सस्थानषट्क—समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमडल, सादि, वामन, कुब्ज, हुड सस्थान ।

सहननषट्क—वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त सहनन ।

सम्यक्त्वत्रिक—औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व ।

सम्यक्त्वद्विक—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व ।

सुभगचतुष्क—सुभग नाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम, यश कीर्ति नाम ।

सुभगत्रिक—सुभग नाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम ।

सुरत्रिक—देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु ।

सुरद्विक—देवगति, देवानुपूर्वी ।

सूक्ष्मत्रयोदशक—(सूक्ष्म नाम आदि १३ प्रकृतियाँ) सूक्ष्म नाम, साधारण नाम, अपर्याप्त नाम, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम, नपुसकवेद, मिथ्यात्व मोहनीय, हुड सस्थान, सेवार्त सहनन ।

सूक्ष्मत्रिक—सूक्ष्म नाम, साधारण नाम, अपर्याप्त नाम ।

सुरैकोनविंशति—(देवगति आदि १९ प्रकृतियाँ) देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, सूक्ष्म नाम, साधारण नाम, अपर्याप्त नाम, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम।

स्त्यानर्द्धित्रिक—स्त्यानर्द्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला।

स्थावरचतुष्क—स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम, अपर्याप्त नाम, साधारण नाम।

स्थावरदशक—स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति नाम।

स्थावरद्विक—स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम।

स्पर्श-अष्टक—कर्कश स्पर्श, मृदु स्पर्श, गुरु स्पर्श, लघु स्पर्श, शीत स्पर्श, उष्ण स्पर्श, स्निग्ध स्पर्श, रूक्ष स्पर्श नाम।

स्थिरषट्क—स्थिर नाम, शुभ नाम, सुभगनाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम, यशःकीर्ति नाम।

(ह)

हास्यषट्क—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा मोहनीय।

परिशिष्ट ४

सप्ततिका प्रकरण की गाथाओ का अकारादि अनुक्रम

(व)

(स)

परिशिष्ट ५

कर्मग्रन्थो की व्याख्या मे प्रयुक्त सहायक ग्रन्थों की सूची

अनुयोगद्वारसूत्र—आगमोदय समिति, सूरत
अनुयोगद्वारसूत्र टीका (मलधारी हेमचन्द्र सूरि) आगमोदय समिति, सूरत
आचारागसूत्र टीका (शीलाकाचार्य)
आचारागसूत्र निर्युक्ति (भद्रबाहु स्वामी)
आप्तमीमासा (स्वामि समन्तभद्र) जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
आवश्यकनिर्युक्ति (भद्रबाहु स्वामी) आगमोदय समिति, सूरत
आवश्यकनिर्युक्ति टीका (हरिभद्रसूरि)
आवश्यकनिर्युक्ति टीका (मलयगिरि) आगमोदय समिति, सूरत
उत्तराध्ययनसूत्र
उत्तराध्ययनसूत्र टीका (शातिसूरि)
उपासकदशाग सूत्र
औपपातिक सूत्र—आगमोदय समिति, सूरत
कर्मप्रकृति—मुक्तावाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
कर्म प्रकृति चूर्णि—मुक्तावाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
कर्मप्रकृति टीका (उपाध्याय यशोविजय) मुक्तावाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
कर्मप्रकृति टीका (मलयगिरि) मुक्तावाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
कपायपाहुड (गुणधर आचार्य)
कपायपाहुड चूर्णि (स्थविर यतिवृषभ)
काललोकप्रकाश—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत
क्षपणासार (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
गोम्मटसार कर्मकाण्ड (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) रायचन्द जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
गोम्मटसार जीवकाण्ड (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) रायचन्द जैन ग्रन्थमाला, बम्बई

जयधवला (वीरसेन आचार्य)
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—सस्कृत टीका
जीवाभिगमसूत्र
जीवस्थानचूलिका—स्थान समुत्कीर्तन—जैन साहित्योद्धारक फड, अमरावती
ज्योतिषकरण्डक—श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वे० सस्था, रतलाम
ज्ञानबिन्दु (उपाध्याय यशोविजय)
तत्त्वार्थसूत्र (उमास्वाति)
तत्त्वार्थ राजवार्तिक (अकलकदेव) श्री जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
तत्त्वार्थाधिगमभाष्य (उमास्वाति)
त्रिलोकसार (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) श्री माणिकचन्द दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
द्रव्यलोकप्रकाश—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत
द्रव्यसग्रह (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती)
धवला उदयाधिकार (वीरसेन आचार्य)
धवला उदीरणाधिकार (वीरसेन आचार्य)
नन्दीसूत्र (देवर्धिगणि क्षमाश्रमण)
नन्दीसूत्र टीका (मलयगिरि)
नवीन प्रथम कर्मग्रन्थ स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन द्वितीय कर्मग्रन्थ स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन तृतीय कर्मग्रन्थ अवचूरिका टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन पचम कर्मग्रन्थ स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन कर्मग्रन्थो के टवा (जयसोमसूरि, जीवविजय)

नवीन कर्मग्रन्थो के गुजराती अनुवाद—जैन श्रेयस्कर मडल, मेहसाना
नियमसार (कुन्दकुन्दाचार्य)
न्यायदर्शन (गौतम ऋषि)
पचसग्रह (चन्द्रर्षि महत्तर) श्वेताम्बर सस्था, रतलाम
पचसग्रह (अमितगति) श्री माणिकचन्द दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
पचसग्रह टीका (मलयगिरि) मुक्ताबाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
पचसग्रहप्राकृत
पचसग्रह सप्ततिका—मुक्ताबाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
पचास्तिकाय (कुन्दकुन्दाचार्य) रायचन्द जैन शास्त्रमाला, बम्बई
पचाशक (हरिभद्रसूरि) श्वेताम्बर सस्था, रतलाम
पातजल योगदर्शन (पतजलि)
प्रकरण रत्नाकर—भीमसी माणक, बम्बई
प्रशमरति प्रकरण (उमास्वाति)
प्रवचनसार टीका (अमृतचन्द्राचार्य) रायचन्द जैन शास्त्रमाला, बम्बई
प्रवचनसारोद्धार—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत
प्रवचनसारोद्धार टीका—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत
प्रशस्तपादभाष्य
प्रमेयकमलमार्तण्ड (प्रभाचन्द्राचार्य) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
प्रज्ञापनासूत्र
प्रज्ञापनासूत्र चूर्णि
प्रज्ञापनासूत्र टीका (मलयगिरि)
प्राचीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ (जिनवल्लभनाथ)
प्राचीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ भाष्य
प्राचीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ टीका (मलयगिरि)
प्राचीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ टीका (हरिभद्रसूरि)
प्राचीन बध स्वामित्व
प्राचीन पचम कर्मग्रन्थ बृहच्चूर्णि
भगवद्गीता
भगवतीसूत्र

भगवतीसूत्र टीका (अभयदेव सूरि)
महाभारत (वेदव्यास)
मोक्षमार्ग प्रकाश—अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला, बम्बई
योगदर्शन भाष्य टीका आदि सहित
योगवासिष्ठ
लब्धिसार (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
लोकप्रकाश—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत
विशेषावश्यक भाष्य (जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण)
विशेषावश्यकभाष्य टीका (कोट्याचार्य) श्वेताम्बर सस्था, रतलाम
विशेषावश्यकभाष्य टीका (मलधारी हेमचन्द्र)
विशेषावश्यकभाष्य वृहद्‌वृत्ति—यशोविजय ग्रन्थमाला, काशी
विशेषणवती (जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण) श्वेताम्बर सस्था, रतलाम
वृहत्कर्मस्तवभाष्य
वृहत्सग्रहणी (जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण)
वृहत्सग्रहणी टीका (मलयगिरि)
वैशेषिक दर्शन (कणाद)
षट्‌पाहुड (कुन्दकुन्दाचार्य)
सग्रहणीसूत्र (चन्दसूरि)
सप्ततिकाचूर्णि
सप्ततिकाप्रकरण टीका (मलयगिरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
सन्मतितर्क (सिद्धसेन दिवाकर)
सर्वार्थसिद्धि (पूज्यपादाचार्य)
साख्यकारिका
साख्यदर्शन (कपिल ऋषि)
सूत्रकृतागसूत्र टीका (शीलाकाचार्य)
सूत्रकृताग निर्युक्ति (भद्रबाहु स्वामी)
स्वामी कीर्तिकेयानुप्रेक्षा (आचार्य कार्तिकेय) भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता

श्रीमरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति,

(प्रवचन प्रकाशन विभाग)

सदस्यों की शुभ नामावली

विशिष्ट सदस्य

१ श्री घीसुलाल जी मोहनलाल जी सेठिया, मैसूर
२ श्री वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सेला, (सोजत-सिटी)
३ श्री रेखचन्द जी साहब राका, मद्रास (वगडी-नगर)
४ श्री वलवतराज जी खाटेड, मद्रास (वगडी-नगर)
५ श्री नेमीचन्द जी बांठिया, मद्रास (वगडी-नगर)
६ श्री मिश्रीलाल जी लू कड, मद्रास (वगडी-नगर)
७ श्री माणकचन्द जी कात्रेला, मद्रास (वगडी-नगर)
८ श्री रतनलाल जी केवलचन्द जी कोठारी मद्रास (निम्बोल)
९ श्री अनोपचन्द जी किशनलाल जी वोहरा, अटपडा
१० श्री गणेशमल जी खीवसरा, मद्रास (पूजलू)
११ शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर, चतर एण्ड कम्पनी, व्यावर
१२ शा० वस्तीमल जी वोहरा C/o सिरेमल जी घुलाजी,
गाणो की गली उदयपुरिया वाजार, पाली
१३ शा० आलमचद जी भैरुलाल जी राका, सिकन्द्रावाद, (रायपुर)
१४ शा० धूलचन्द जी अभयराज जी वोरुदिया, वुलन्दा (मारवाड)
१५ शा० चम्पालाल जी कन्हैयालाल जी छलाणी, मद्रान्तकम, मद्रास
१६ शा० कालूराम जी हस्तीमल जी मुथा, रायचूर

प्रथम श्रेणी

१ मैं० जी सी ओसवाल, जवाहर रोड, रत्नागिरी (सिरियारी)
२ शा० इन्दरसिंह जी मुनोत, जालोरी गेट, जोधपुर
३ शा० लादूराम जी छाजेड, व्यावर (राजस्थान)

४ शा० चम्पालाल जी डूगरवाल, नगरथपेठ, वेंगलोर सिटी (करमावास)
५ शा० कामदार प्रेमराज जी, जुमामस्जिद रोड, वेंगलोर सिटी (चावडिया)
६ शा० चादमल जी मानमल जी पोकरना, पेरम्बूर मद्रास, ११ (चावडिया)
७ जे० वस्तीमल जी जैन, जयनगर, वेगलोर ११ (पूजलू)
८ शा० पुखराज जी सीसोदिया, व्यावर
९ शा० वालचद जी रूपचद जी वाफना,
११८/१२० जवेरी वाजार वम्वई—२ (सादडी निवासी)
१० शा० वालाबगस जी चपालाल जी वोहरा, राणीवाल
११ शा० केवलचद जी सोहनलाल जी वोहरा राणीवाल
१२ शा० अमोलकचद जी धर्मीचद जी आच्छा, वडाकाचीपुरम्, मद्रास (सोजत रोड)
१३ शा० भूरमल जी मीठालाल जी वाफना, तिरकोयलूर, मद्रास (आगेवा)
१४ शा० पारसमल जी कावेडिया, आरकाट, मद्रास (सादडी)
१५ शा० पुखराज जी अनराज जी कटारिया, आरकोनम्, मद्रास (सेवाज)
१६ शा० सिमरतमल जी सखलेचा, मद्रास (वीजाजी का गुडा)
१७ शा० प्रेमसुख जी मोतीलाल जी नाहर, मद्रास (कालू)
१८ शा० गूदडमल जी शातिलाल जी तलेसरा, एनावरम्, मद्रास
१९ शा० चपालाल जी नेमीचद, जवलपुर, (जैतारण)
२० शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर, व्यावर
२१ शा० सम्पतराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, कूपल (मारवाड-मादलिया)
२२ शा० हीराचद जी लालचद जी धोका, नक्शावाजार, मद्रास
२३ शा० नेमीचद जी धर्मीचद जी आच्छा, चगलपेट, मद्रास
२४ शा० एच० घीसुलाल जी, पोकरना, एण्ड सन्स, आरकाट—N A.D T (बगडी-नगर)
२५ शा० घीसुलाल जी पारसमल जी सिंघवी, चागलपेट, मद्रास
२६ शा० अमोलकचद जी भवरलाल जी विनायकिया, नक्शावाजार, मद्रास
२७ शा० पी० बीजराज नेमीचद जी धारीवाल, तीरुवेलूर
२८ शा० रूपचद जी माणकचद जी बोरा, वुशी
२९ शा० जेठमल जी राणमल जी सर्राफ, वुशी
३० शा० पारसमल जी सोहनलाल जी सुराणा कुभकोणम्, मद्रास

३१ शा० हस्तीमल जी मुणोत, पॉटमार्केट सिकन्द्राबाद (आन्ध्र)
३२ शा० देवराज जी मोहनलाल जी चौधरी, तीरुकोईलूर, मद्रास
३३ शा० वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सोजतसिटी
३४ शा० गेवरचद जी जसराज जी गोलेछा, बेंगलोर सिटी
३५ शा० डी० छगनलाल जी नोरतमल जी बब, बेंगलोर सिटी
३६ शा० एम० मगलचद जी कटारिया, मद्रास
३७ शा० मगलचद जी दरडा C/o मदनलाल जी मोतीलाल जी, शिवराम पेंठ, मैसूर
३८ पी० नेमीचन्द जी धारीवाल, N क्रास रोड, राबर्टसन पेठ, K G F
३९ शा० चम्पालालजी प्रकाशचन्द जी छलाणी न० ५७ नगरथ पेंठ, बेंगलोर—२
४० शा० आर विजयराज जागडा, न० १ क्रास रोड, रावर्टसन पेट K G F
४१ शा० गजराज जी छोगमल जी, ११५३, रविवार पेठ पूना
४२ श्री पुखराज जी किशनलाल जी तातेड, पॉट-मार्केट, सिकन्द्राबाद—A P
४३ श्री केसरीमल जी मिश्रीमल जी आच्छा, वालाजाबाद, मद्रास
४४ श्री कालूराम जी हस्तीमल जी मूथा, गांधीचौक रायचूर
४५ श्री बस्तीमल जी बोहरा C/o सीरेमल जी धुलाजी गाणो की गली, उदयपुरिया बाजार, पाली
४६ श्री सुकनराज जी भोपालचद जी पगारिया, चिकपेट, बेंगलोर
४७ श्री बिरदीचद जी लालचद जी मरलेचा, मद्रास
४८ श्री उदयराज जी केवलचद जी बोहरा, मद्रास (वर)
४९ श्री भवरलाल जी जवरचद जी दूगड, कुरडारा
५० शा० मदनचद जी देवराज जी दरडा, १२ रामानुजम् अयर स्ट्रीट, मद्रास १
५१ शा० सोहनलाल जी दूगड, ३७ कालाती पीले-स्ट्रीट, साहूकार पेट, मद्रास-१
५२ शा० धनराज जी केवलचद जी, ५ पुडुपेट स्ट्रीट, आलन्दुर, मद्रास १६
५३ शा० जेठमल जी चोरडिया C/o महावीर ड्रग हाउस न १४ वानेश्वरा टेम्पल-स्ट्रीट ५ वा क्रोस आरकाट श्रीनिवासचारी रोड, पो० ७६४८, बेंगलोर ५३
५४ शा० सुरेन्द्र कुमार जी गुलाबचन्द जी गोठी मु० पो० घोटी, जि० नासिक (महाराष्ट्र)

५५ शा० मिश्रीलाल जी उत्तमचन्द जी ४२४/३ चीकपेट-बैंगलोर २ A
५६ शा० एच० एम० काकरिया २९९, OPH रोड, बैंगलोर १
५७ शा० सन्तोषचद जी प्रेमराज जी सुराणा मु० पो० मनमाड जि० नासिक (महाराष्ट्र)
५८ शा० जुगराज जी जवाहरलाल जी नाहर, नेहरू बाजार न० १६ श्रीनिवास अयर स्ट्रीट, मद्रास १
५९ मदनलाल जी राका (वकील), ब्यावर
६० पारसमल जी राका C/o वकील भवरलाल जी राका, ब्यावर
६१ शा० धनराज जी पन्नालाल जी जागडा नयामोडा, जालना (महाराष्ट्र)
६२ शा० एम० जवाहरलाल जी वोहरा ६९ स्वामी पण्डारम् स्ट्रीट, चीन्ताधर-पेट, मद्रास २
६३ शा० नेमीचद जी आनन्दकुमार जी राका C/o जोहरीलाल जी नेमीचंद जी जैन, वापूजी रोड, सलूरपेठ (A P)
६४ शा० जुगराज जी पारसमल जी छोदरी, २५ नारायण नायकन स्ट्रीट, पुडुपेट मद्रास २
६५ चैनराज जी सुराणा गाधी वाजार, शिमोगा (कर्नाटक)
६६ पी० वस्तीमल जी मोहनलाल जी वोहरा (जाडण), रावर्टसन पेठ (KGF)
६७ सरदारमल जी उमरावमल जी सचेती, सरदारपुरा (जोधपुर)
६८ चपाराम जी मीठालाल जी सकलेचा, जालना (महाराष्ट्र)
६९ पुखराज जी ज्ञानचद जी मुणोत, मद्रास
७० सपतराज जी प्यारेलाल जी जैन, मद्रास
७१ चपालाल जी उत्तमचद जी गाधी जवाली, मद्रास
७२ पुनराज जी किशनलाल जी तातेड, सिकन्दरावाद (रायपुर वाले)
७३ श्रीमान् शा० चेनराजी सुराना वर्धमान क्लोथ स्टोर, गाधी वाजार, सीमोगा (कर्नाटक)
७४ शा० वस्तीमल जी मोहनलाल जी वोहरा जाडण No 1, क्रासरोड रावर्टसन पेट (KGF)
७५ श्रीमान् शा० सरदारमल जी उमरावमल जी सचेती, सरदारपुरा, जोधपुर

७६ शा० चपालाल जी मीठालाल जी सकलेचा (वलून्दा) ट्रान्सपोर्ट प्रा० लि० जालना, महाराष्ट्र

७७ शा० पुखराज जी ज्ञानचद जी मुगोत C/o F, पुखराज जैन No 168 वेलावरी रोड, ताम्बरम, मद्रास 59

७८ शा० सपतराज जी प्यारेलाल जी जैन No 3 वाबुस्वामी स्ट्रीट नैगनतुर, मद्राम 61

७९ शा० C चपालाल जी उत्तमचद जी गाधी (जवाली) ज्वेलरी मर्चेन्ट No C 114 T H रोड, मद्राम

८० शा० पुखराज जी किशनलाल जी तातेड, पोट मार्केट सिकन्द्राबाद A P

८१ शा० लालचद जी भवरलाल जी सचेती जुरोकावास, पाली, (राजस्थान)

८२ शा० जी० सुवालाल जी महावीरचद जी करणावट, जसनगर (केकिन्द)

८३ शा० सुखराजी चादमल जी गुगलीया, जसनगर (केकिन्द)

८४ श्रीमान् शा० मुगनचद जी गणेशमल जी भडारी (निम्बाज) वेंगलोर

८५ श्री डी० कचरुलाल जी कर्णावट अचरापाकम, मद्रास

८६ श्री जवरीलाल जी पारसमल जी वालिया मु० पाली (राजस्थान)

८७ श्री चुन्नीलाल जी कन्हैयालाल जी दुधेरिया भुवानगिरि, मद्रास

द्वितीय श्रेणी

१ श्री लालचद जी श्री श्रीमाल, ब्यावर

२ श्री सूरजमल जी इन्दरचद जी सकलेचा, जोधपुर

३ श्री मुन्नालाल जी प्रकाशचद जी नम्बरिया, चौधरी चौक, कटक

४ श्री घेवरचद जी रातडिया, रावर्टसनपेठ

५ श्री वगतावरमल जी अचलचद जी खीवसरा ताम्बरम्, मद्रास

६ श्री छोगमल जी सायबचद जी खीवसरा, वोपारी

७ श्री गणेशमल जी मदनलाल जी भडारी, नीमली

८ श्री माणकचद जी लुलेद्धा, ब्यावर

९ श्री पुखराज जी वोहरा, राणीवाल वाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ

१० श्री धर्मीचद जी वोहरा, जुठावाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ

११ श्री नथमल जी मोहनलाल जी लूणिया, चडावल

१२ श्री पारसमल जी शान्तीलाल जी ललवाणी, विलाडा

१३ श्री जुगराज जी मुणोत, मारवाड जकशन
१४ श्री रतनचद जी शान्तीलाल जी मेहता, सादडी (मारवाड)
१५ श्री मोहनलाल जी पारसमल जी भडारी, बिलाडा
१६ श्री चपालाल जी नेमीचद जी कटारिया, बिलाडा
१७ श्री गुलाबचद जी गभीरमल जी मेहता, गोलवड
[तालुका डेणु—जिला थाणा (महाराष्ट्र)]
१८ श्री भवरलाल जी गौतमचद जी पगारिया, कुशालपुरा
१९ श्री चनणमल जी भीकमचद जी राका, कुशालपुरा
२० श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी बोहरा, कुशालपुरा
२१ श्री सतोकचद जी जवरीलाल जी जामड,
१४६ बाजार रोड, मदरान्तकम्
२२ श्री कन्हैयालाल जी गादिया, आरकोणम्
२३ श्री धरमीचद जी ज्ञानचद जी मूथा, बगडानगर
२४ श्री मिश्रीमल श्री नगराज जी गोठी, बिलाडा
२५ श्री दुलराज इन्दरचद जी कोठारी
११४ तैयप्पा मुदली स्ट्रीट, मद्रास-१
२६ श्री गुमानलाल जी मागीलाल जी चौरडिया चिन्ताधरी पैठ मद्रास-१
२७ श्री सायरचद जी चौरडिया, ६० एलीफेन्ट गेट मद्रास-१
२८ श्री जीवराज जी जवरचद जी चौरडिया, मेडतासिटी
२९ श्री हजारीमल जी निहालचद जी गादिया १६२ कोयम्बतूर, मद्रास
३० श्री केसरीमल जी झूमरलाल जी तलेसरा, पाली
३१ श्री धनराज जी हस्तीमल जी आच्छा, मु० कावेरी पाक
३२ श्री सोहनराज जी शान्तिप्रकाश जी सचेती, जोधपुर
३३ श्री चपालाल जी भवरलाल जी सुराना, कालाऊना
३४ श्री मागीलाल जी शकरलाल जी भसाली,
२७ लक्ष्मीअमन कोयल स्ट्रीट, पैरम्बूर मद्रास-१२
३५ श्री हेमराज जी शान्तिलाल जी सिंघी,
११ बाजार रोड, राय पेठ मद्रास-१४
३६ शा० अम्बूलाल जी प्रेमराज जी जैन, गुडियातम
३७ शा० रामसिंह जी चौधरी, ब्यावर

३८ शा० प्रतापमल जी मगराज जी मलकर—केसरीसिंह जी का गुडा
३९ शा० सपतराज जी चौरडिया, मद्रास
४० शा० पारसमल जी कोठारी, मद्रास
४१ शा० मीकमचन्द जी चौरडिया, मद्रास
४२ शा० शान्तिलाल जी कोठारी, उतशेटे
४३ शा० जवरचद जी गोकलचद जी कोठारी, व्यावर
४४ शा० जवरीलाल जी धरमीचद जी गादिया, लाविया
४५ श्री सेंममल जी धारीवाल, वगडीनगर (राज०)
४६ जे० नौरतमल जी वोहरा, १०१८ के० टी० स्ट्रीट, मैसूर-१
४७ उदयचद जी नौरतमल जी मूथा
C/o हजारीमल जी विरधीचद जी मूथा, मेवाडी वाजार व्यावर
४८ हस्तीमल जी तपस्वीचद जी नाहर, पो० कौसाना (जोधपुर)
४९ श्री आर० पारसमल जी लुणावत ४१-वाजार रोड, मद्रास
५० श्री मोहनलाल जी मीठालाल जी, वम्बई-२
५१ श्री पारसमल जी मोहनलाल जी पोरवाल, वेंगलोर
५२ श्री मीठालाल जी ताराचद जी छाजेड, मद्रास
५३ श्री अनराज जी शान्तिलाल जी विनायकिया, मद्रास-११
५४ श्री चादमल जी लालचद जी ललवाणी, मद्रास-१४
५५ श्री लालचद जी तेजराज जी ललवाणी, त्रिकयोलूर
५६ श्री सुगनराज जी गौतमचद जी जैन, तमिलनाडु
५७ श्री के० मागीलाल जी कोठारी, मद्रास-१६
५८ श्री एस० जवरीलाल जी जैन, मद्रास-५२
५९ श्री केसरीमल जी जुगराज जी सिंघवी, वैंगलूर-१
६० श्री सुगनराज जी शान्तिलाल जी साखला, तीरुवल्लुर
६१ श्री पुखराज जी जुगराज जी कोठारी, मु० पो० चावडिया
६२ श्री भवरलाल जी प्रकाशचद जी वगाणी, मद्रास
६३ श्री रूपचद जी वाफणा, चडावल
६४ श्री पुखराज जी रिखवचद जी राका, मद्रास
६५ श्री मानमल जी प्रकाशचद जी चौरडिया, पीचियाक
६६ श्री मोहनचद जी शोभागचद जी लूणिया, पीचियाक

६७ श्री जैवतराज जी सुगमचद जी वाफणा, बेंगलोर (कुशालपुरा)
६८ श्री घेवरचद जी भानीराम जी चाणोदिया, मु० इसाली
६९ शा० नेमीचद जी कोठारी न० १२ रामानुजम अयर स्ट्रीट मद्रास-१
७० शा० मागीलाल जी सोहनलाल जी रातडीआ C/o नरेन्द्र एथर्टरी कस स्टोर, चीकपेट, बेगलोर-४
७१ शा० जवरीलाल जी सुराणा अलन्दुर, मद्रास १६
७२ शा० लुमचद जी मगलचद जी तालेडा अशोका रोड, मैसूर
७३ शा० हसराजजी जसवतराजजी सुराणा मु० पो० सोजतसिटी
७४ शा० हरकचदजी नेमीचदजी भनसाली मु० पो० घोटी जि० ईगतपुरी (नासिक, महाराष्ट्र)
७५ शा० समीरमलजी टोडरमलजी छोदरी फलो का बास मु० पो० जालोर
७६ शा० बी० सजनराजजी पीपाडा मारकीट कुनुर जि० नीलगिरी (मद्रास)
७७ शा० चम्पालालजी कान्तीलालजी अन्ड० कुन्टे न० ४५८९७७/१४१ भवानी शकर रोड, वीसावा बिल्डिग, दादर, वोम्बे न० २८
७८ शा० मिश्रीमलजी वीजेराजजी नाहर मु० पो० वायद जि० पाली (राज०)
७९ शा० किसोरचदजी चादमलजी मोलकी C/o K C Jain 14 M C Lain II Floor 29 Cross Kilai Road, Banglore 53.
८० शा० निरमलकुमारजी मागीलालजी खीवसरा ७२, धनजी स्ट्रीट पारसी गली, गनपत भवन, वम्वई ३
८१ श्रीमती सोरमवाई, धर्मपत्नी पुकराजजी मुनोत मु० पो० राणावास
८२ शा० एच० पुकराजजी जैन (वोपारी) मु० पो० खरतावाद, हैदरावाद ५०००४
८३ शा० सुगालचदजी उत्तमचदजी कटारीया रेडीलस, मद्रास ५२
८४ शा० जवरीलालजी लुकड (कोटडी) C/o घमडीराम सोहनराज एण्ड क० ४८६/२ रेवडी वाजार अहमदावाद-२
८५ शा० गौतमचदजी नाहटा (पीपलिया) न० ८, वाट्ठु पलीयार कोयल स्ट्रीट, साहुकार पेट, मद्रास १
८६ शा० नथमलजी जवरीलालजी जैन (पटारीकमावस) वस स्टेण्ड रोड यहलका बेंगलोर (नार्थ)

८७ शा० मदनलालजी छाजेड मोती ट्रेडर्स १५७ ओपनकारा स्ट्रीट, कोयम्बतूर (मद्रास)

८८ शा० सीमरथमलजी पारसमलजी कातरेला जूना जेलखाना के सामने सिकन्दरावाद (A P)

८९ शा० एम० पुकराजजी एण्ड कम्पनी क्रास वाजार दूकान न० ९, कुनूर (नीलगिरी)

९० शा० चम्पालालजी मूलचदजी नागोनरा सोलकी मु० पोस्ट—राणा वायापाली (राजस्थान)

९१ शा० वस्तीमलजी सम्पतराजजी खारीवाल (पाली)
C/o लक्ष्मी इलैक्ट्रीकल्स न० ९५ नेताजी सुभाषचद रोड, मद्रास १

९२ माणकचदजी ललवानी (मेडतासिटी) मद्रास

९३ मागीलालजी टीपरावत (टाकरवास) मद्रास

९४ सायरचदजी गाधी पाली (मारवाड)

९५ मागीलालजी लुणावत, उदयपुर (राज०)

९६ सरदारचदजी अजितचदजी भडारी, त्रिपोलीया वाजार (जोधपुर)

९७ सुगालचदजी अनराजजी मूथा मद्रास

९८ लालचदजी सपतराजजी कोठारी, बेंगलोर

९९ माणकचदजी महेन्द्रकुमारजी ओस्तवाल, बेंगलोर

१०० वक्तावरमलजी अनराजजी छलाणी (जैतारण) रावर्टसन पेट K G.F

१०१ शा० माणकचदजी ललवाणी मेडतासिटी (मद्राम)

१०२ शा० मागीलालजी टपरावत ठाकरवास (मद्रास)

१०३ शा० सायरचदजी गाधी पाली (मारवाड)

१०४ शा० मागीलालजी लूणावन उदयपुर (मारवाड)

१०५ शा० भडारी सरदारचदजी अजीतचदजी, जोधपुर

१०६ शा० सुगालचदजी अनराजी मूथा मद्रास,, (परमपुर)

१०७ शा० लालचदजी सपनराजजी कोठारी वेंगलोर

१०८ माणकचदजी महेन्द्रकुमार ओस्तवाल बेंगलोर

१०९ B अनराजजीछलाणी, रावर्टसन पेट K G F

११० शा० मदनलालजी रीखवचदजी चोरडीया, भेरुन्दा

१११ शा० पनराजी महावीरचदजी लुणावत बेंगलोर

११२ शा० बुधराजी रूपचदजी झामड मेडतासीटी
११३ शा० भवरलालजी खीवराजी मेहता पाली, मारवाड
११४ शा० माणकचदजी लाभचदजी गुलेछा, पाली
११५ शा० घीसुलालजी सम्पतराजजी चोपडा, पाली
११६ शा० उदयराजजी पारसमलजी तिलेसरा, पाली
११७ शा० जसराजी धनराजी घारोलीया, पाली
११८ शा० धनराजी भीकमचदजी पगारीया, पाली
११९ शा० फुलचदजी महावीरचदजी बोरुन्दीया जसनगर, केकिन्द
१२० शा० चनुरभुजी सम्पतराजी गादीया जसनगर, केकिन्द (मदुरीन्तरम)
१२१ शा० सेसमलजी महावीरचदजी सेठीया बेगलोर
१२२ सेसमलजी सीरेमलजी बोहरा पीसागन (सीरकाली)
१२३ श्रीमान मोतीलालजी बोरुन्दिया, मदुरान्तकम् मद्रास
१२४ श्रीमान शुकलचदजी मुन्नालालजी लोढा, पाली (राज०)
१२५ श्रीमान सूरजकरणजी माणकचदजी आँचलिया, जसनगर (राज०)
१२६ श्रीमान घीसूलालजी धर्मीचदजी गादिया, हैद्राबाद
१२७ श्रीमान बी० रामचद्रजी बस्तीमलजी पटवा, पुदुपेट, मद्रास

तृतीय श्रेणी

१ श्री नेमीचद जी कर्णावट, जोधपुर
२ श्री गजराज जी भडारी, जोधपुर
३ श्री मोतीलाल जी सोहनलाल जी बोहरा, ब्यावर
४ श्री लालचद जी मोहनलाल जी कोठारी, गोठन
५ श्री सुमरेमल जी गाधी, सिरियारी
६ श्री जवरचद जी बम्व, सिन्धनूर
७ श्री मोहनलाल जी चतर, ब्यावर
८ श्री जुगराज जी भवरलाल जी राका, ब्यावर
९ श्री पारसमल जी जवरीलाल जी धोका, सोजत
१० श्री छगनमल जी वस्तीमल जी वोहरा, ब्यावर
११ श्री चनणमलजी थानमल जी खीवसरा, मु० वोपारा
१२ श्री पन्नालाल जी भवरलाल जी ललवाणी, विलाडा

१३ श्री अनराज जी लखमीचद जी ललवाणी, आगेवा
१४ श्री अनराज जी पुखराज जी गादिया, आगेवा
१५ श्री पारसमल जी धरमीचद जी जागड, विलाडा
१६ श्री चम्पालाल जी धरमीचद जी खारीवाल, कुशालपुरा
१७ श्री जवरचद जी शान्तिलाल जी वोहरा, कुशालपुरा
१८ श्री चम्पालाल जी हीराचदजी गुन्देचा, सोजतरोड
१९ श्री हिम्मतलाल जी प्रेमचद जी साकरिया, साडेराव
२० श्री पुखराज जी रिखवाजी साकरिया, साडेराव
२१ श्री बाबूलाल जी दलीचद जी वरलोटा, फालना स्टेशन
२२ श्री मागीलाल जी सोहनराज जी राठोड, सोजतरोड
२३ श्री मोहनलाल जी गाधी, केसरसिंह जी का गुडा
२४ श्री पन्नालाल जी नथमल जी भसाली, जाजणवास
२५ श्री शिवराज जी लालचद जी वोकडिया, पाली
२६ श्री चादमल जी हीरालाल जी वोहरा, ब्यावर
२७ श्री जगराज जी मुन्नीलाल जी मूथा, पाली
२८ श्री नेमीचद जी भवरलाल जी डक, सारण
२९ श्री ओटरमल जी दीपाजी, साडेराव
३० श्री निहालचद जी कपूरचद जी, साडेराव
३१ श्री नेमीचद जी शातिलाल जी सिसोदिया, इन्द्रावड
३२ श्री विजयराज जी आणदमल जी सिसोदिया, इन्द्रावड
३३ श्री नूणकरण जी पुखराज जी लूकड, बिग-बाजार, कोयम्बतूर
३४ श्री किस्तूरचद जी सुराणा, कालेजरोड कटक (उडीसा)
३५ श्री मूलचद जी बुधमल जी कोठारी, बाजार स्ट्रीट, मण्डिया (मैसूर)
३६ श्री चम्पालाल जी गौतमचद जी कोठारी, गोठन स्टेशन
३७ श्री कन्हैयालाल जी गौतमचद जी कांकरिया, मद्रास (मेडतासिटी)
३८ श्री निर्मल जी साहिबचद जी गांधी, केसरसिंह जी का गुडा
३९ श्री अनराज जी बादलचद जी कोठारी, खवासपुरा
४० श्री चम्पालाल जी अमरचद जी कोठारी, खवासपुरा
४१ श्री पुखराज जी दीपचद जी कोठारी, खवासपुरा
४२ श्री० बालमसिंग जी जावरिया, गुलावपुरा

४३ शा० मिट्ठालाल जी कातरेला, वगडीनगर
४४ शा० पारसमल जी लक्ष्मीचद जी काठेड, ब्यावर
४५ शा० धनराज जी महावीरचद जी खीवसरा, बैंगलोर-३०
४६ शा० पी० एम० चौरडिया, मद्रास
४७ शा० अमरचद जी नेमीचद जी पारसमल जी नागौरी, मद्रास
४८ शा० बनेचद जी हीराचद जी जैन, सोजतरोड (पाली)
४९ शा० झूमरमल जी मागीलाल जी गूदेचा, सोजतरोड (पाली)
५० श्री जयतीलाल जी सागरमल जी पुनमिया, सादडी
५१ श्री गजराज जी भडारी एडवोकेट, बाली
५२ श्री मागीलाल जी रैड, जोधपुर
५३ श्री ताराचद जी बम्ब, ब्यावर
५४ श्री फतेहचद जी कावडिया, ब्यावर
५५ श्री गुलाबचद जी चौरडिया, विजयनगर
५६ श्री सिंधराज जी नाहर, ब्यावर
५७ श्री गिरधारीलाल जी कटारिया, सहवाज
५८ श्री मीठालाल जी पवनकवर जी कटारिया, सहवाज
५९ श्री मदनलाल जी सुरेन्द्रराज जी ललवाणी, बिलाडा
६० श्री विनोदीलाल जी महावीरचद जी मकाणा, ब्यावर
६१ श्री जुगराज जी सम्पतराज जी बोहरा, मद्रास
६२ श्री जीवनमल जी पारसमल जी रेड, तिरुपति (आ० प्रदेश)
६३ श्री बकतावरमल जी दानमल जी पूनमिया, सादडी (मारवाड)
६४ श्री मैं० चन्दनमल पगारिया, औरगाबाद
६५ श्री जसवतराज जी सज्जनराज जी दुगड, कुरडाया
६६ श्री वी० भवरलाल जैन, मद्रास (पाटवा)
६७ श्री पुखराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, बेडकला
६८ श्री आर० प्रसन्नचद चोरडिया, मद्रास
६९ श्री मिश्रीलाल जी सज्जनलाल जी कटारिया, सिकन्द्राबाद
७० श्री सुकनचद जी चादमल जी कटारिया, इलकल
७१ श्री पारसमल जी कातीलाल जी वोरा, इलकल
७२ श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी जैन (पाली) बैंगलूर

७३ शा० जी० एम० मङ्गलचद जी जैन (सोजतसिटी)
C/o मङ्गल टेक्सटाईल्स २६/७८ फर्स्ट फ्लोर मूलचद मारकेट
गोडाउन स्ट्रीट, मद्रास १

७४ श्रीमती रतनकवर वाई धर्मपत्नी शातीलालजी कटारिया C/o पृथ्वीराजजी
प्रकाशचद जी फतेपुरियो की पोल मु० पो० पाली (राज०)

७५ शा० मगराज जी रूपचद खीवसरा C/o रूपचद-विमलकुमार
पो० पेरमपालम, जिला चगलपेट

७६ शा० माणकचद जी भवरीलाल जी पगारिया C/o नेमीचद मोहनलाल जैन
१७ बिन्नी मिल रोड, बेंगलोर ५३

७७ शा० ताराचद जी जवरीलाल जी जैन कदोई वाजार, जोधपुर (महामदिर)

७८ शा० इन्दरमलजी भण्डारी—मु० पो० नीमाज

७९ शा० भीकमचद जी पोकरणा १९ गोडाउन स्ट्रीट, मद्रास १

८० शा० चम्पालाल जी रतनचदजी जैन (सेवाज)
C/o सी० रतनचद जैन—४०३/७ वाजार रोड, रेडीलस, मद्रास ५२

८१ शा० मगराज जी माधोलाल जी कोठारी मु० पो० वोरूदा वाया पीपाड
सिटी (राज०)

८२ शा० जुगराज जी चम्पालाल जी नाहर C/o चदन इलैक्ट्रीकल ६६५
चीकपेट, बेंगलोर ५३

८३ शा० नथमल जी पुकराज जी मीठालाल जी नाहर C/o हीराचद नथमल
जैन No ८९ मैनरोड मुनीरडी पालीयम, बेंगलोर-६

८४ शा० एच० मोतीलाल जी शान्तीलाल जी समदरिया सामराज पेट न०
९८/७ क्रोस रोड, बेंगलोर १८

८५ शा० मगनचद जी नेमीचदजी वोहरा C/o मानीराम गणेममल एण्ड सन्स
No ५६ मलाम पालीयम बेंगलोर-२

८६ शा० धनराज जी चम्पालाल जी समदरिया जी० १२९ मीलरोड
बेंगलोर-५३

८७ शा० मिश्रीलाल जी पूनचद जी दरला C/o मदनलाल मोतीलाल जैन,
मोचरामपेट, मैसूर

८८ शा० चम्पालाल जी दीपचदजी नींगी (मोरीवारी) C/o दीपक स्टोर
हैदरगुडा ३/६/२९४/२/३ हैदराबाद (A. P.)

८९ शा० जे० वीजेराज जी कोठारी C/o कीचयालेन काटन पेट, बेंगलोर-५३
९० शा० वी० पारसमल जी सोलकी C/o श्री विनोद ट्रेडर्स राजास्ट्रीट कोयम्बतूर
९१ शा० कुशालचद जी रीखवचद जी सुराणा ७२९ सदर बाजार, बोलारम (आ० प्र०)
९२ शा० प्रेमराज जी भीकमचद जी खीवसरा मु० पो० वोपारी वाया, राणावास
९३ शा० पारसमल जी डक (सारन) C/o सायवचद जी पारसमल जैन म० न० १२/५/१४८ मु० पो० लालागुडा सिकन्द्रावाद (A P)
९४ शा० सोभाचद जी प्रकाशचद जी गुगलीया C/o जुगराज हीराचद एण्ड क० मण्डीपेट—दावनगिरी—कर्णाटक
९५ श्रीमती सोभारानी जी राका C/o भवरलाल जी राका मु० पो० व्यावर
९६ श्रीमती निरमलादेवी राका C/o वकील भवरलाल जी राका मु० पो० व्यावर
९७ शा० जम्बूकुमार जैन दालमील, भैंरो वाजार, वेलनगज, आगरा-४
९८ शा० सोहनलाल जी-मेडतीया सिंहपोल मु० पो० जोधपुर
९९ भवरलाल जी श्यामलाल जी बोरा, व्यावर
१०० चम्पालाल जी काटेड, पाली (मारवाड)
१०१ सम्पतराज जी जयचद जी सुराणा पाली मारवाड (सोजत)
१०२ हीरालाल जी खावीया पाली मारवाड
१०३ B चैनराज जी तातेड अलसुर, वेगलोर (वीलाडा)
१०४ रतनलाल जी घीसुलाल जी समदडीया, खडकी पूना
१०५ मी० नितन्द्र कुमार जी जैन मु० पो० धार (म० प्र०)
१०६ श्रीमान भवरलाल जी श्यामलाल जी बोहरा व्यावर
१०७ श्रीमान चपालाल जी खांटेर (दलाल) पाली
१०८ श्रीमान सपतराज जी जयचद जी सुराणा (सोजत) पाली
१०९ श्रीमान हीरालाल जी खावीया पाली
११० श्रीमान B चेनराज पॉन ब्रोकर, वेगलोर
१११ श्रीमान रतनलाल जी घीसुलाल जी समदडीया (केलवाज) पूना

११२ श्रीमान निलेन्द्र कुमार सराफ, धार M P
११३ श्रीमान हीरेमल जी पारसमल जी पगारिया, निमार खेडी
११४ श्रीमान पुखराज जी मुथा, पाली (मारवाड)
११५ श्रीमान मुकनराज जी भवरलाल जी (पच) सुराणा, पाली
११६ श्रीमान सोहनराज जी हेमावसवाला, पाली
११७ श्रीमान बागमल जी धनराज जी कोठेड, पाली
११८ श्रीमान भेरुमल जी तलेसरा पाली
११९ श्रीमान वस्तीमल जी कान्तीलाल जी धोका, पाली
१२० श्रीमान जुगराज जी ज्ञानराज जी मुथा, पाली
१२१ श्रीमान ताराचद जी हुकमीचद जी तातेड पाली
१२२ श्रीमान सोहनराज जी बरडीया पाली
१२३ श्रीमान वस्तीमल जी डोसी पाली
१२४ श्रीमान K वस्तीमल जी राजेन्द्रकुमार वोहरा जसनगर (मद्रास)
१२५ श्रीमान वस्तीमल जी जुगराज जी वोरुन्दिया, जसनगर (मद्रास)
१२६ श्रीमान जे० सज्जाराम जी मडलेचा, मुलाई कत्थलम, (मद्रास)

□ □
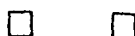
हमारा महत्त्वपूर्ण साहित्य

१	प्रवचन-सुधा	५)
२	प्रवचन-प्रभा	५)
३	धवल ज्ञान धारा	५)
४	साधना के पथ पर	५)
५	जैनधर्म मे तप स्वरूप और विश्लेषण	१०)
६	दशवैकालिक सूत्र [व्याख्या पद्यानुवाद]	१५)
७	तकदीर की तस्वीर	—
८	कर्मग्रन्थ [प्रथम—कर्मविपाक]	१०)
९	कर्मग्रन्थ [द्वितीय—कर्मस्तव]	१०)
१०	कर्मग्रन्थ [तृतीय—बन्ध-स्वामित्व]	१०)
११	कर्मग्रन्थ (चतुर्थ-षडशीति)	१५)
१२	कर्मग्रन्थ (पचम-शतक)	१५)
१३	कर्मग्रन्थ (षष्ठ-सप्ततिका प्रकरण)	१५)
१४	तीर्थंकर महावीर	१०)
१५	विश्वबन्धु वर्धमान	१)
१६	सुधर्म प्रवचनमाला [१ से १०] [दस श्रमण-धर्म पर दस पुस्तकें]	६)

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति,

पीपलिया बाजार, ब्यावर